'ज्ञानपीठ'-लोकोदय-ग्रन्थमाला—हिन्दी-ग्रंथांक ७

ओं तत्सत्

वैदिक साहित्य

'आमुख'-लेखक,
माननीय डा० सम्पूर्णानन्द
(शिक्षामंत्री, उत्तर-प्रदेश-राज्य)

लेखक,
प० रामगोविन्द त्रिवेदी, वेदान्तशास्त्री
(ऋग्वेदके हिन्दीभाषान्तरकार)

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

ग्रन्थमालासम्पादक और नियामक,
लक्ष्मीचन्द्र जैन एम. ए., डालमियानगर

प्रकाशक,
अयोध्याप्रसाद गोयलीय,
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ काशी,
दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

प्रथम सस्करण ३०००
नवम्बर, १९५०
मूल्य छः रुपये

मुद्रक,
देवताप्रसाद गहमरी
संसार प्रेस,
काशीपुरा, बनारस

समर्पण

जो हिंदुत्वकी प्रचण्ड चेतनाके प्रख्यात प्रतीक और अनेकानेक अमूल्य
ग्रन्थ-रत्नोंके रचयिता हैं, जो वैदिक धर्म और हिन्दूसंस्कृतिके
अनन्य अनुरागी हैं, जो इस जड़वाद-प्रधान-युगमें
शाश्वत "सनातनधर्म"के प्रबल प्रचारक हैं, जो
धर्म-गतप्राण, परदुःखकातर, परोपकारव्रत-
निरत और आदर्श दान-वीर
हैं, जिनकी पवित्र प्रेरणासे
यह "वैदिक साहित्य"
लिखा गया है,

उन

उद्भट लेखक, यशःशाली सम्पादक, प्रसन्न-वदन,
सदाचार-मूर्ति, भक्त-प्रवर और हिन्दीके श्रेष्ठ
मासिक "कल्याण"के सम्पादक

श्री० हनुमानप्रसादजी पोद्दार

के

कमनीय कर-कमलोंमें

सप्रेम समर्पित

विषय-सूची

विषय-प्रवेश

१ अध्याय

२ अध्याय

ऋग्वेद और नारीजाति

३ अध्याय

यजुर्वेदकी संहिताएँ

४ अध्याय

सामवेदकी संहिताएँ

५ अध्याय

अथर्ववेदकी संहिताएँ

६ अध्याय

ब्राह्मण-ग्रन्थ

७ अध्याय

ब्राह्मण-ग्रन्थोंके अपूर्व उपदेश

८ अध्याय

आरण्यक-ग्रन्थ

९ अध्याय

उपनिषद्-ग्रन्थ

१० अध्याय

उपनिषद् और अद्वैतवाद

११ अध्याय

उपनिषदोंके अनूठे उपदेश

१२ अध्याय

कल्पसूत्र

१३ अध्याय

कल्पसूत्रोंके आदेश

१४ अध्याय

निघण्टु और निरुक्त

१५ अध्याय

अनुक्रमणी और वेदांग

१६ अध्याय

प्रातिशाख्य

१७ अध्याय

बृहद्देवता

१८ अध्याय

यज्ञरहस्य

१९ अध्याय

जैमिनीय मीमांसा और वेद

२० अध्याय

वेदव्याख्याता और परम्परा-प्राप्त वेदार्थ

२१ अध्याय

वेद और भूगोल

२२ अध्याय

वेद और खगोल

२३ अध्याय

वेद और ज्यौतिष

२४ अध्याय

वैदिक राष्ट्रकी रूप-रेखा

२५ अध्याय

वैदिक संस्कृतिकी व्यापकता

२६ अध्याय

वेद और अवस्ता

२७ अध्याय

वेद और गोजाति

२८ अध्याय

वेद और विमान

२९ अध्याय

वेद और अवतार

३० अध्याय

वेद और अलंकार

३१ अध्याय

वेद और परलोक

३२ अध्याय

वेद और गायत्री

३३ अध्याय

तीन वैदिक देवता

३४ अध्याय

वैदिक संहिताओंके पदपाठकार

३५ अध्याय

वैदिक भाष्य-टीका-कार

३६ अध्याय

निघण्टु और निरुक्तके भाष्य-टीका-कार

३७ अध्याय

कुछ आदर्श सूक्त

३८ अध्याय

वैदिक संहिताओंकी सूक्तियाँ

उपसंहार

आमुख

लेखक, डा० सम्पूर्णानन्द

(शिक्षामन्त्री, वित्तमन्त्री और श्रममन्त्री, उत्तर-प्रदेश-राज्य)

"वैदिक साहित्य"के 'विषय-प्रवेश'के आरम्भमें लिखा है—"वेदों पर हिन्दूजातिकी अनन्त कालसे अविचल श्रद्धा है ।" इसमें सन्देह नहीं कि जहांतक इतिहास या अनुश्रुति-परम्पराकी गति है, हमको यही पता चलता है कि एतद्देशीय समाजके बहुत बड़े अंगकी वेदोंपर अविचल श्रद्धा रही है । श्रद्धालुओंका क्षेत्र समय-समयपर घटता-बढ़ता रहा है । आज तो वह सिमटकर बहुत छोटा हो गया है । यह बात सुननेमें विचित्र प्रतीत होगी । भारतकी जनसंख्यामें हिन्दू ही सबसे अधिक हैं और हिन्दूके लिये वेद स्वतःप्रमाण और अंतिम प्रमाण है । यदि वेदकी कोई स्पष्ट आज्ञा है, तो वह हिन्दूके लिये अकाट्य है । सिद्धान्ततः यह बात ठीक है; परन्तु व्यवहार इससे दूर जा पड़ा है । करोड़ों हिन्दुओंने वेदका नाम तक नहीं सुना है । जिन लोगोंने सुना भी है, वह वेदसे परिचित नहीं हैं; तुलसीदासजीकी रामायण जैसी पोथियां उनके स्वाध्यायका विषय हैं और वह वेद-नामधारी अज्ञात पुस्तककी अपेक्षा ऐसी परिचित पुस्तकोंको ही प्रामाणिकताके आसनपर बैठा सकते हैं । पंडित-समाज तक वेदोंका आदर नहीं करता । वेदका नाम लेकर शास्त्रार्थ करना दूसरी बात है; परन्तु लाखों पंडितम्मन्य विद्वानोंने सम्पूर्ण वेदोंको नहीं देखा है; देखनेका यत्न भी नहीं करते ! वेदोंकी अपेक्षा उनको श्रीमद्भगवद्गीता या श्रीमद्-भागवतपर अधिक श्रद्धा है ।

यह दुर्भाग्यकी बात है । वेदोंमें हमारे समाजकी अमूल्य सांस्कृतिक निधि भरी पड़ी है । जिन अर्वाचीन पोथियोंको हमने मूर्धन्य बना रखा है, वह तो वेदोंके थोड़ेसे गिने-चुने मंत्रोंपर न्योछावर की जा सकती है । भगवद्गीता बड़ी ही उत्तम पुस्तक है; पर वह इन दो मन्त्रोंकी, जो यजुर्वेद के चालीसवें अध्यायमें आते हैं, व्याख्याके सिवाय और क्या है:—

"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥
कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म्म लिप्यते नरे ॥"

वेदाध्ययन हिन्दूमात्रके लिये तो उपयोगी है ही, हिन्दूधर्ममें दर्शन, उपासना, सदाचार जो कुछ भी है, वह सब वेदपर अवलम्बित है । परन्तु दूसरे लोगोंके लिये भी इसका उपयोग कम नही है । मनुष्यकी इस प्राचीनतम पुस्तकमें सहस्रों वर्षोंका इतिहास भरा पड़ा है और ज्ञान की वह ज्योति जगमगा रही है, जिसकी मानवको आज भी आवश्यकता है ।

भारतीय, यों कहिये कि हिन्दू, पंडित-समाजने वेदके अध्ययनका प्रायः परित्याग कर रखा है । उपनिषदोंको छोड़कर ब्राह्मण–ग्रन्थ प्रायः पढ़े नहीं जाते । 'रुद्राध्याय' या ऐसे ही कुछ और अंगोंको छोड़कर संहिता-भाग प्रायः अछूता रह जाता है । यज्ञयाग होते नही । इसलिये वेदाध्ययन अर्थकर नहीं रह गया । शास्त्रार्थ-विषयत्व कम होनेसे सरस भी नही है । पंचमहायज्ञकी प्रथा उठ गयी; अतः स्वाध्यायकी भी परम्परा नहीं है । फलतः वेद जाननेवालोंकी संख्यामें निरन्तर ह्रास होता जाता है । ऐसे लोग, जिनको संहिता कंठस्थ हो, कम होते जा रहे हैं और जिन लोगोंको कर्म्मकाण्डके सम्बन्धसे कुछ अंश कंठस्थ है भी और जो मंत्रोंको स्वरादिके साथ ठीक-ठीक पढ़ना भी जानते है, उनमें भी यथार्थ अर्थ जानने वाले बहुत कम हैं । वेदके शब्दोंका, शब्दोंके क्रमका और शब्दोंके शुद्ध उच्चारणका बहुत महत्त्व है । स्वरमें थोड़ा-सा व्यतिक्रम हो जानेसे अनर्थ हो सकता है:––

"मंत्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या-प्रयुक्तो न तमर्थमाह ।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ॥"

(जो मन्त्र स्वर या वर्णसे हीन होता है अथवा जिसका प्रयोग ठीक-ठीक न किया जाय, वह उद्देश्यकी सिद्धि नहीं करता । वह वाग्वज्र बनकर

यजमानको ही मार डालता है, जैसे कि स्वरदोषके कारण वृत्रासुर मारा गया।) इन्द्रको मारनेके लिये विश्वरूपने यज्ञ किया। मंत्रमें था "**इन्द्र-शत्रुर्वर्धस्व**"। उनका तात्पर्य यह था कि **इन्द्रके शत्रु, वृत्रासुरकी, वृद्धि हो**; परन्तु स्वरका अशुद्ध उच्चारण होनेसे यह अर्थ निकला कि **इन्द्रकी, जो शत्रु है, वृद्धि हो**। इससे इन्द्रकी विजय हुई और वृत्रासुरका पराभव हुआ।

प्रत्येक मन्त्रका विनियोग नियत है अर्थात् यह नियत है कि वह मंत्र किस अवसरपर पढ़ा जाय। विनियोग कब नियत हुआ, यह कहना कठिन है; यह तो नहीं ही कहा जा सकता कि किसने विनियोग नियत किया। यदि किसी मन्त्रमें "**अग्निमीले**" (मैं अग्निकी स्तुति करता हूँ) जैसे शब्द आते हों और उसका विनियोग अग्निको स्थापित करने अथवा आहुति डालनेमें होता हो, तो यह बात समझमें आती है; परन्तु कहीं-कहीं अर्थ और विनियोगमें कोई सम्बन्ध नही देख पड़ता। "**शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये, शंयोरभिस्रवन्तु नः**" का अर्थ है, 'दिव्य जल हमारे कल्याणके लिये बरसे, हमारे लिये हितकर हो और अभद्र तथा अनिष्ट बातोंको हमसे दूर करे।' इस मन्त्रका विनियोग शनिकी पूजामें क्यों होता है, यह कहना कठिन है!

स्वर, वर्ण और उच्चारणके साथ-साथ मन्त्रके छन्द और उसकी देवताको भी जानना चाहिये। मन्त्र-देवताओंके सम्बन्धमें बहुत भ्रम है। सामान्य बोलचालमें तो देवताका प्रयोग देवके अर्थमें किया जाता है। संस्कृतमें देवता स्त्रीलिंग शब्द है; परन्तु इस मन्त्रकी 'देवता इन्द्र है' न कहकर ऐसा कहनेका चलन है कि इस मन्त्रके देव इन्द्र हैं, इत्यादि। एक ओर पाश्चात्त्य विद्वान् यह कहते है कि प्राचीन आर्य हवा, पानी, आग, बिजली आदिकी पूजा करते थे। दूसरी ओर वह लोग हैं, जो ऐसा कहते हैं कि इन्द्रादि सब परमात्माके ही नाम हैं और मन्त्रोंमें अनेक नामों से उसकी ही उपासना होती है। यह यथार्थ है कि परमात्मा एक है और

सम्पूर्ण जगत्में व्याप्त है तथा सभी नामों और रूपोंसे उसीकी उपासना होती है। परन्तु देव और देवताके अर्थमें अन्तर है। जो लोग अपने तप और कर्म्मके द्वारा ऊँचे लोकोंमें पहुँचते हैं, उनको देव कहते हैं। देवोंके भी दो भेद है। जो लोग उन लोकोंके भोगमात्रके अधिकारी होते हैं, वह 'कर्म्मदेव' कहलाते हैं। जिनको भोग और शक्ति, दोनों प्राप्त होते है, उन्हें 'आजान देव' कहते हैं। इन्द्र, यम, अग्नि आदि इसी दूसरे वर्गमें आते हैं।

परमात्मा और उसकी ज्ञानेच्छा, क्रिया, सामर्थ्य एक दूसरेसे अभिन्न हैं। इन दोनोंको ही शिव और शक्ति, प्रकाश और विमर्श कहते हैं। शक्तिहीन शिव शवके समान निश्चेष्ट और जड़ होगा और शिवविरहित शक्ति निराश्रय टिक ही नहीं सकती। यह आदिशक्ति ही परा देवता है। ज्यों-ज्यों जगत्का विकास होता है, त्यों-त्यों यह मूल देवता भी नाना रूपोंको धारण करती है। आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक, जितनी भी शक्तियां है, सभी इस देवताके भेद मात्र है। इसीलिये कहा गया है कि देवता असंख्य हैं। परन्तु इनमेंसे कुछ प्रधान शक्तियोंको यज्ञ-सम्पादनकी दृष्टिसे चुन लिया गया है। ऐसा माना जाता है कि मंत्रोंका ठीक व्यवहार होनेसे जगत्में ऐसे कम्प उत्पन्न होते हैं, जिनसे प्रसुप्त शक्तियोंमेंसे कोई एक शक्ति विशेष उद्भूत, जागरित, अभिव्यक्त हो उठती है। उस शक्तिको उस मन्त्रकी देवता कहते हैं। जहां यह कहा गया हो कि अमुक मन्त्रकी देवता इन्द्र है, वहां यह समझना चाहिये कि उस मन्त्रके यथार्थ प्रयोगसे ऐन्द्री शक्ति जागरित होती है और मन्त्र अपना फल देता है।

अस्तु। मन्त्रसे लाभ उठानेके लिये यथोचित उच्चारणके साथ-साथ छन्द और देवता तथा ऋषिका ज्ञान होना आवश्यक है। ऋषिके संबंध में आगे विचार होगा। परन्तु इन सब बातोंके होते हुए भी यदि मन्त्रके अर्थका ठीक-ठीक बोध न हो, तो मन्त्र निरर्थक होगा अर्थात् फल न देगा। निरुक्तकारने इस सम्बन्धमें इन वाक्योंको उद्धृत किया है:—

"स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम् ।
योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा ।।"
"यद्गृहीतमविज्ञातं निगदेनैव शब्द्यते ।
अनग्नाविव शुष्केन्धो न तज्ज्वलति कर्हिचित् ।।"

(जो मनुष्य वेदको पढ़कर अर्थको नहीं जानता, वह बोझ ढोनेवाला स्थाणु है । जो अर्थज्ञ है, वह भद्रका भोगी होता है और ज्ञानसे पापको धोकर स्वर्गको प्राप्त करता है । जो विना अर्थ समझे रटा हुआ पढ़ा जाता है, वह अग्निहीन स्थानमें पड़ी हुई सूखी लकड़ीके समान कभी प्रज्वलित नहीं होता ।)

यह भी ध्यान रखना चाहिये कि मंत्रार्थ समझनेके लिये केवल उस मंत्रको देखना पर्याप्त नहीं है, वरन्

"इतिहास-पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति ।।"

(इतिहास और पुराणके द्वारा वेदार्थका विस्तार करना चाहिये । वेद अल्पश्रुत व्यक्तिसे डरता है कि यह मुझे मारेगा ।)

इतना ही नहीं, तर्कसे भी काम लेना आवश्यक है । ऐसा कहा गया है— **"ऋषिषूत्क्रामत्सु मनुष्या देवानब्रुवन् को न ऋषिर्भविष्यतीति तेभ्यः तर्कमृषिं प्रायच्छन् ।"** (जब ऋषिगण पृथिवीसे उठ गये, तब मनुष्यगण देवोंसे बोले कि अब हमारा ऋषि कौन होगा । तब उन्होंने उनको तर्कको ऋषिरूपसे दिया ।) अतः ऋषिके समान तर्कसे भी सहायता लेनी होगी ।

इन बातोंका मैंने किंचित् विस्तारसे इसलिये निरूपण किया है कि हम वेदाध्ययन-सम्बन्धी साम्प्रत अवस्थाको समझ सकें । अर्थबोध, यथोचित उच्चारण और सद्विनियोगकी कसौटियोंको अपने सामने रख कर विचार किया जाय, तो वेदको जाननेवालोंकी संख्या बहुत थोड़ी प्रतीत होगी । और फिर जो लोग साधारणतः अर्थज्ञ कहे जा सकेंगे, वह

भी स्यात् वस्तुतः अर्थज्ञ नहीं हैं। सचमुच विद्याका पात्र कौन है, वह इस मंत्रसे प्रकट होता है :—

"विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा शेवधिष्टेऽहमस्मि।
असूयकायानृजवेऽयताय न मा ब्रूया वीर्यवती तथा स्याम् ॥"

(विद्या ब्राह्मणके पास आकर बोली कि 'मेरी रक्षा करो, मैं तुम्हारी निधि हूँ। जो असूयावान्, अनृजु और अयत हो अर्थात् जो दूसरोंसे डाह करता हो, कुटिल हो और असंयमी हो, उसे मुझे मत देना, तभी मैं वीर्यवती हूँगी'।)

यह प्रश्न हो सकता है कि वेदके साथ इतनी माथापच्ची क्यों की जाय। जहांतक शोध, रिसर्च, का प्रश्न है, वेदमंत्रोंसे प्राचीन इतिहास और भूगोलके तत्त्व ढूंढ़ निकालने हैं, उच्चारणका कोई महत्त्व नहीं है, विनियोग जानना अनावश्यक है, विना संयमी और सदाचारी हुए भी काम चल सकता है। यह ठीक है, परन्तु हिन्दू, चाहे वह किसी भी समुदाय का हो, यदि उसे अपने धर्मके सम्बन्धमें कुछ जानकारी है, तो वह वेदको केवल इतिहास, भूगोल, साहित्यकी पुस्तक नही मानता। वह जानता है कि वेदमें इतिहास आदिसे सम्बन्ध रखनेवाली बातें भी हैं, पर उसके लिये उनका महत्त्व गौण है। उसके लिये वेदकी विशेषता यह है कि वह ऐसे विषयका प्रतिपादन करता है, जिसका ज्ञान अन्यथा नहीं प्राप्त हो सकता। समाजमें मिलजुलकर रहना चाहिये, एक दूसरेको धोखा नहीं देना चाहिये, इत्यादि नैतिक नियमोंको तो मनुष्य अपने अनुभवसे निकाल सकता है, परन्तु अमुक यज्ञ करनेसे अमुक फलकी प्राप्ति होगी, यह बात अनुभवसे नहीं निकल सकती। इस प्रकारके दृष्टादृष्ट विषयोंका प्रतिपादन करने में ही वेदका परम प्रामाण्य है। न्याय और मीमांसाके विद्वानोंने वेदकी प्रामाणिकताके विषयमें विशद विचार किया है। जबतक हिन्दूधर्म और आर्य-संस्कृतिके प्रति निष्ठा रहेगी, तब तक वेदकी मान्यता अक्षुण्ण रहेगी और तब तक वेदका, हिन्दुत्वकी एकमात्र आधारशिलाका, यथाविधि

अध्ययन और पाठ करना ही होगा। इसीलिये हिन्दूके लिये वेद अनन्य श्रद्धाका विषय है। ईश्वरकी सत्ताको स्वीकार न करनेवाला भी हिन्दू हो सकता है; परन्तु वेदको न माननेवाला हिन्दू नहीं हो सकता। लोकमान्य तिलकके शब्दोंमें "**प्रामाण्य-बुद्धिर्वेदेषु**"... (वेदोंको स्वतः प्रमाण मानना... हिन्दू होनेका अव्यभिचारी लक्षण है।)

जिन वेदोंकी इतनी महत्ता है, उनकी संख्या क्या है और रचना किसने की, यह जाननेकी इच्छा स्वाभाविक है। साधारणतः ऐसा माना जाता है कि वेद चार हैं, जिनके नाम ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्व-वेद हैं। शुक्ल और कृष्ण भेदसे यजुर्वेद नामके दो ग्रंथ हैं। परन्तु बहुत जगह तीन वेदोंका ही उल्लेख है; वेदोंके लिये बहुधा त्रयी शब्दका प्रयोग होता है। वस्तुतः दृष्टि-भेदसे तो दोनों संख्याएँ ठीक हैं। वेदमंत्र तीन प्रकारके होते हैं, पद्य, गद्य और गेय। इस दृष्टिसे वेद तीन हैं। परन्तु मंत्रोंकी चार संहिताएँ चार संग्रह हैं। इस दृष्टिसे वेद चार हैं। ऋग्वेद में पूर्णतया ऋक् अर्थात् पद्य-मंत्र हैं। यजुर्वेदमें मुख्यतया यजुष् अर्थात् गद्य-मंत्र है। सामवेदमें सभी गेय मंत्र हैं। अथर्ववेदमें ऋक् और यजुष् दोनों हैं, परन्तु ऋक्का बाहुल्य है।

'रचना किसने की', यह टेढ़ा प्रश्न है। निष्ठावान् हिन्दू ऐसा मानता है कि वेद अपौरुषेय है, ईश्वरका निःश्वास है। इसका तात्पर्य यह है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है। ईश्वरके समान ही उसका ज्ञान भी कालानवच्छिन्न है। समय समयपर किन्हीं परम तपस्वी मनुष्योंको समाधिकी अवस्था मे ईश्वरीय प्रेरणा मिली, जिससे उनके सामने उनके अन्तःकरणमें इस अनन्त ज्ञानका कोई अंश मंत्र-रूपसे उपस्थित हो गया। इसका नाम मंत्र का दर्शन करना है। जो लोग मंत्रद्रष्टा हुए, उन्हें ऋषि कहते हैं। इस मतके अनुसार मंत्रोंके वाक्य भी ऋषियोंकी रचना नहीं है। ज्ञान भी ईश्वरका और उसको व्यक्त करनेवाला शब्द-विन्यास भी ईश्वरका ही है। दूसरा मत इससे थोड़ा-सा भिन्न है। यह ठीक है कि ईश्वरी ज्ञान अगाध

और असीम है। कभी कभी किसी किसी कलाकार, कवि, विचारकको उसकी एक झलक मिल जाती है। वह उतनेमें ही नाच उठता है ! किसी किसी सत्यकाम योगीको समाधिमें इस ज्ञानराशिके अंशका साक्षात्कार होता है। वह अपनी अनुभूतिको जिन शब्दोंमें व्यक्त करता है, वह मंत्र हैं। स्फूर्ति दैवी है, परन्तु शब्द ऋषिके हैं। कवि और ऋषि, दोनोंमें समानता है। दोनोंको स्फूर्ति भीतरसे, जब वह अन्तर्मुख होते हैं, मिलती है और उससे प्रेरित होकर दोनों ही रचना करते हैं। भेद इतना ही है कि ऋषि योगी होता है, अतः वह जिस स्तरका भेदी होता है, वह कविकी पीठिकासे बहुत ऊँचा होता है। मुझको स्वयं यही मत अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

"रचना किसने की"के समान ही यह प्रश्न महत्त्वका है कि "रचना कब हुई"। साधारण आस्तिक हिन्दूकी तो यह धारणा है कि वेद अनादि है। विषय-दृष्टिसे अनादि होते हुए भी शब्द-दृष्टिसे वेद अनादि नहीं है। इसका तो पुष्ट प्रमाण है कि सब मंत्र एक साथ अवतरित नहीं हुए। द्वापरका अन्त होने पर याज्ञवल्क्यको सूर्यने शुक्ल यजुर्वेदकी शिक्षा दी। महिदास ऐतरेयको पृथिवीने वह मंत्र बतलाये, जो उनके पहले किसी को भी विदित नहीं थे। यह तो सर्वसम्मत कथाएँ हैं; परन्तु मंत्रोंमें भाषा-भेद जैसे आभ्यन्तर प्रमाणोंसे भी यही अनुमान होता है कि इनकी रचना एक साथ नहीं हुई। एक ही वंश, जैसे भृगु या वशिष्ठ या कण्व गोत्र, के कई व्यक्ति मंत्रद्रष्टा हुए हैं। यह सब समकालीन नहीं हो सकते।

पाश्चात्त्य विद्वानोंके अनुसार वेदोंका रचना-काल आजसे ३५००–४००० वर्षोंके भीतर था। वह वेदोंके लिये इससे अधिक प्राचीनताकी कल्पना नहीं कर सकते थे। इसका कारण यह है कि बाइबिलके अनुसार मानव-जातिका इतिहास कुल ८००० वर्षोंका है। इसीके भीतर सब कुछ घटाना था। उन लोगोंने यह भी स्थिर किया कि आर्यजातिका आदिम निवास-स्थान मध्य एशियामें था। इन परिणामोंपर पहुँचनेमें उन लोगों

ने वेदोंके अन्तःसाक्ष्यकी ओर ध्यान देना आवश्यक नहीं समझा। यदि वेदोंमें कोई बात ऐसी आ गयी, जो उनके मतके विपरीत ठहरी, तो उसको यों ही टाल दिया। इसका एक उदाहरण लीजिये। वेदोंमें कई जगह सिन्धु शब्द आया है। आर्यदेशके उत्तर, पूर्व और दक्षिणमें समुद्रका वर्णन है। सौ डांड़ोंसे चलनेवाली नौकाओंका उल्लेख है। परन्तु मध्य एशिया में तो कहीं समुद्र है नहीं। अतः पाश्चात्त्य विद्वानोंने यह मान लिया कि वेदमें सिन्धु और उसके पर्याय-शब्दोंका अर्थ केवल नदी होता है और ऐसी बड़ी नौकाओंकी चर्चा कविकल्पना मात्र है। **लोकमान्य तिलकने** अपनी पुस्तकोंमें यह सिद्ध किया है कि पाश्चात्त्योंके यह दोनों मत भ्रान्त हैं। उनके अनसार आर्योंका आदिस्थान ऋक्ष प्रदेश अर्थात् उत्तरीय ध्रुव प्रदेश था और वेदोंका कुछ अंश १०,००० वर्ष पुराना है।

लोकमान्यका पांडित्य प्रगाढ़ था और उन्होंने पाश्चात्त्य पंडितोंके मतोंकी निःसारता बहुत ही तर्कयुक्त रूपसे दिखलायी है; परन्तु स्वयं उनका मत भी पुष्ट नहीं है। मैंने अपनी पुस्तक "आर्योंका आदि देश" में एतद्-विषयक प्रमाण दिये हैं। आर्योंका मूल निवास भारतका 'सप्तसिन्धव' प्रदेश था। उन दिनों इसके उत्तर, दक्षिण और पूर्वमें समुद्र था। यह वह भूभाग है, जहां आज कश्मीरकी उपत्यका, राजपूताना और उत्तर प्रदेश स्थित हैं। भूगर्भशास्त्र-वेत्ताओंका कहना है कि यह अवस्था आज से लगभग २५,००० और ५०,००० वर्ष पूर्वके बीचकी है। उन दिनों हिमालय समुद्रमेंसे ऊपर उठ रहा था। पर्वत चंचल थे, पृथिवीमें बराबर कम्प आते रहते थे। आर्योंने उस अस्थिरताको अपनी आंखोंसे देखा था। इन्द्रकी स्तुति करते हुए बारबार कहा गया है कि उन्होंने हिलते पहाड़ोंको दृढ़ किया। उदाहरणके लिये ऋग्वेदके द्वितीय मंडलके बारहवें सूक्तका दूसरा मंत्र कहता है:—

"यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद् यः पर्वतान्प्रकुपितां अरम्णात्...... स जनास इन्द्रः।"

(हे लोगो, इन्द्र वह है, जिसने व्यथित, हिलती-डोलती, पृथिवीको दृढ़ किया और कुपित, चंचल, पर्वतोंको शान्त किया।) ऋग्वेदके दशम मंडलके पचासीवें सूक्तका तेरहवां मंत्र इस प्रकार है :—

"सूर्य्याया वहतुः प्रागात् सविता यमवासृजत्।
अघासु हन्यन्ते गावोऽर्जुन्योः पर्युह्यते॥"

(सूर्यने अपनी लड़की सूर्य्याके विवाहमें जो दहेज दिया था, वह आगे चला। उसको ढोनेवाली गाड़ीके बैलोंको मघा नक्षत्रमें मारना पड़ता है। फाल्गुनियों–पूर्वा और उत्तरा फाल्गुनी—में रथ वेगसे चलता है।)

सामान्यतः इस मंत्रका अर्थ कुछ समझमें नहीं आता। सायणने इसका अर्थ निकालनेका यत्न नहीं किया। परन्तु ज्यौतिषसे इसपर प्रकाश पड़ता है। सूर्यके पास प्रकाशके सिवाय और क्या था, जिसे वह अपनी लड़कीको देते। प्रकाश चला। मघापर पहुँचते-पहुँचते उसकी गति बहुत धीमी हो गयी; गाड़ीके बैल मानों अड़कर बैठ गये; उनको डंडों से पीट-पाटकर फिर उठाया। फाल्गुनीमें पहुँचकर गाड़ीकी गति बढ़ गयी, प्रकाश वेगसे आगे बढ़ा। तात्पर्य यह है कि दक्षिणायन चलते-चलते सूर्यकी गति कम होती जाती थी, मघामें पहुँचकर एकमात्र रुक जाती थी। फिर उत्तरायण-गतिका आरम्भ होता था और फाल्गुनीमें वेगमें प्रत्यक्ष वृद्धिका अनुभव होता था। मघा सिंह राशिमें है। आजकल उत्तरायणका आरम्भ मकर राशिमें होता है, जो चार महीने पीछे आती है। पर आजसे १८०,०० वर्ष पूर्व मंत्रमें संकेत किया हुआ दृग्विषय होता था।

इसके कहनेका तात्पर्य यह नहीं है कि सब मन्त्र १८,००० से २५-३० सहस्र वर्ष पुराने हैं। मंत्रोंकी पुष्ट काव्य-शैली यह बतलाती है कि उसके पीछे बहुत लम्बा साहित्यिक इतिहास होगा। यह इतिहास कितना पीछे जाता है, यह नहीं कहा जा सकता; परन्तु इतना तो स्पष्ट है कि आर्य्य-जातिने अद्भुत प्राकृतिक उथल-पुथल देखे थे। अपने इस अनुभवको

सम्भवतः उन्होंने छन्दोबद्ध भी किया होगा; गीत भी गाये होंगे। काल पाकर पुरानी रचनाएँ नष्ट हो गयी होंगी। पर उनमें जो स्मृतियां सुरक्षित थीं, वह नयी रचनाओंमें भी अनुस्यूत हो गयीं होंगी। कई जगह वेदों में "नः पूर्वे पितरः"......हमारे पूर्व पितरोंका उल्लेख आया है। पितर तो सभी अपनेसे पुराने होते हैं, 'पूर्वे' विशेषण अति प्राचीन कालकी ओर संकेत करता प्रतीत होता है। यह कहना कठिन है कि कौनसे मंत्र २५,००० वर्ष या उसके पूर्वके हैं। सम्भवतः ऐसी सब रचनाएँ लुप्त हो चुकी हैं; परन्तु ऐसे बहुतसे मंत्र हैं, जो भूगोल, भूगर्भ और खगोलवर्ती दृग्विषयोंका ऐसे शब्दोंमें वर्णन करते हैं, जो प्रत्यक्षदर्शीकी लेखनीसे ही निकल सकते हैं। उनको १५,००० वर्षसे पूर्वका मानना ही होगा।

वेदोंकी रक्षा करनेके लिये ब्राह्मणोंने जैसा यत्न किया, उसको हम भूल नहीं सकते। उनके ऋणसे सभ्य जगत् मुक्त नहीं हो सकता। फिर भी वैदिक वाङ्मयकी बहुत-सी पुस्तकें नष्ट हो गयीं; स्वयं वेदकी कई शाखाओं का लोप हो गया! नाम मात्र अवशिष्ट रह गया है। सम्भव है, किन्हीं निजी पुस्तकालयोंमें रद्दीके ढेरके नीचे कुछ पन्ने पड़े हों। यह भी सम्भव है कि देशी नरेशोंके पुस्तकालयोंके कोनोंमें कुछ ऐसे ग्रंथ पड़े हों। काशी के राजकीय संस्कृत-महाविद्यालयसे सम्बद्ध सरस्वती-भवनमें कई सौ ऐसे हस्तलिखित ग्रंथ हैं, जिनकी अभी तक सूची भी नहीं बन पायी है! विदेशोंमें भी ऐसे ग्रंथ मिल सकते हैं। अथर्ववेदकी पैप्पलाद-शाखाकी संहिता लुप्त मानी जाती थी; परन्तु काश्मीरके राज-पुस्तकालयमें शारदा लिपिमें मिली। वहांसे बर्लिन पहुँची।

अस्तु। प्रत्येक दृष्टिसे वेदोंका महत्त्व अपूर्व और असाधारण है। मोक्षमूलरने ऋग्वेदके सम्बन्धमें लिखा था :—

"यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावदृग्वेद-महिमा लोकेषु प्रचरिष्यति॥"

(जब तक भूतलपर नदी और पर्वत रहेंगे, तब तक लोकोंमें ऋग्वेद की महिमाका प्रचार रहेगा।)

यही बात न्यूनाधिक रूपसे सम्पूर्ण वेदके लिये कही जा सकती है। इस अद्वितीय निधिकी रक्षा करना यों तो मनुष्यमात्रका कर्त्तव्य है; परन्तु उन लोगोंपर, जो वेदानुगामी माने जाते हैं, यह दायित्व विशेष रूपसे आता है। इस निधिकी रक्षा करनेका एक उपाय यह भी है कि वेदके अमृतमय उपदेशका यथाधिकार जनसाधारणमें प्रचार किया जाय। "**इमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः**" (मैं इस कल्याणमयी वाणीका प्रचार लोगोंमें करूँगा, ऐसा हमारा संकल्प होना चाहिये।) किसी मत या ग्रंथ या उपासना-पद्धतिका उन्मूलन या खंडन करना अभीष्ट नहीं है; परन्तु सबके मूल, सबके आधार, सबको प्राण देनेवाले, वेदका परिचय कराना धर्म्म है। ऋषियों और मनुओंका हमपर जो ऋण है, वह यों ही हल्का हो सकता है कि उनका जलाया हुआ दीपक बुझने न पाये, वरन् बुझनेके पहिले प्रत्येक दीपक पार्श्वस्थ प्रदीपको प्रज्वलित कर जाय।

परन्तु इस कर्त्तव्यका पालन करनेके पहिले यह आवश्यक है कि हम स्वयं वेदको जानें और यह तब हो सकता है, जब हमको यह ज्ञात हो कि वेद-परिवार क्या है, वेदके अंग कौनसे हैं, वेदका विषय क्या है, इत्यादि। श्रीरामगोविन्दजी त्रिवेदीकी लिखी यह पुस्तक इस कामके लिये उपयोगी है। अपने छोटेसे कलेवरमें वैदिक वाङ्मयके विस्तार और थोड़ेमें उसके विषयका जो विहगावलोकन कराया गया है, वह सन्तोषजनक है। जो लोग इसके आगे वेदाध्ययनके लिये प्रवृत्त न हो सकेंगे, उनको भी इस जानकारीसे लाभ होगा।

शिक्षा-विभाग,
सचिवालय,
लखनऊ
दिनांक १३ जुलाई, १९५०.

सम्पूर्णानन्द

प्राथमिकी

जो पक्षपात-हीन होकर भाष्यों और टीकाओंके साथ वैदिक साहित्यका सविधि स्वाध्याय कर चुके हैं और साम्प्रदायिकतासे ऊपर उठकर तथा तटस्थ होकर सारे वैदिक वाङ्मयको मथ चुके हैं, वे कहते हैं——

"वेद आर्य-सभ्यता और हिन्दू-संस्कृतिका मूलाधार है। वेद आर्य-ज्ञान-विज्ञानका उज्ज्वल धाम है। वेद सम्पूर्ण आर्य-वाङ्मयका प्राण है। वह भक्ति-रसकी मन्दाकिनी और उच्च गम्भीर विचारोंका सुखद आवास है। वेदमें ओज, तेज और वर्चस्वकी राशि है। वेद ब्रह्मगवी का गान और रणाङ्गणका बिहाग है। वेदमें दिग्दिगन्तको पावन करनेवाले उदात्त उपदेश हैं। वेदमें मानवताके विद्रोहियोंमें हड़कम्प मचानेवाले अनुपम आदेश हैं। वेद अत्याचारियों-अनाचारियोंको ध्वस्त-विध्वस्त करनेवाला रणोन्मादी आर्योंका ब्रह्मास्त्र है। वेद मानवके समस्त उच्च गुणोंकी क्रीड़ा-स्थली है। वेदमें आधिभौतिक उन्नतिकी चरम सीमा है, आधिदैविक अभ्युदयकी पराकाष्ठा है और आध्यात्मिक उन्नयनका चूड़ान्त रूप है।"

प्रसिद्ध विद्वान् डा० सम्पूर्णानन्दने इस ग्रन्थके 'आमुख'में ठीक ही लिखा है कि "यजुर्वेदके चालीसवें अध्यायके प्रथम दो मन्त्रोंकी व्याख्याके सिवा "गीता" और क्या है?" जिस भागवत गीताके सैकड़ों संस्करण हो चुके हैं, जिसकी प्रशंसा संसारके उद्भट विद्वान् करते हैं,

जिसका सांस्कृतिक प्रभाव विश्वकी अनेक भाषाओं और देशोंमें पड़ा है और जिसने लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधीके समान महापुरुषोंके जीवन आदर्श बनाये हैं, वही गीता वेदके केवल दो मन्त्रोंकी टीका है—दो ही मन्त्रोंके आधारपर बनी है! इससे स्पष्ट विदित होता है कि वेद-मन्त्रोंके आधारपर ऐसी सैकड़ों गीताएँ बन सकती हैं। वैदिक वाङमय और संस्कृतवाङमयके अधिकारी विद्वान् जानते ही हैं कि वेद-मन्त्रोंके आधारपर गीता ही नहीं, सम्पूर्ण दर्शनशास्त्र, अखिल पुराण, निखिल धर्मशास्त्र और समस्त संस्कृत-साहित्य निर्मित हुए हैं। यह भी सब जानते हैं कि २४ अक्षरोंवाले गायत्री-मन्त्रके आधारपर ही २४ हजार श्लोकोंकी बाल्मीकीय रामायण बनी है।

इसीलिये कहा जाता है कि "वेद ईश्वरकी विमल वाणी है और विश्वके उद्धारके लिये ही उसका अवतरण हुआ है। वैदिक वाङ्मय पारिजातसे भी अधिक सुगन्धमय और स्फटिक मणिसे भी अधिक शुभ्र है। वेदके किसी मन्त्रमें कुरुक्षेत्रका भैरव रव है, किसीमें वीरोंकी भयंकर हुंकार है, किसीमें रण-चण्डीका प्रचण्ड अट्टहास है, किसीमें समर-भूमिका विकट झणत्कार है, किसीमें लक्ष्मीका मधुर हास्य है, किसीमें वृन्दावनका प्रेम-प्रवाह है, किसीमें दिव्य शक्तिका नवल नृत्य ह और किसीमें ब्रह्म-द्रवका ललित विलास है। श्रुति भगवती जिसे छू देती है, वह अमृतसे भी अधिक प्रिय बन जाता है, जिसे देख देती है, वह चन्द्रिकासे भी अधिक निर्मल हो जाता है और जिसके ऊपर पैर रख देती है, वह पद्मराग मणिसे भी मूल्यवान् हो रहता है।"

वेदके किसी मन्त्रकी बात तो अलग रहे, इतनी दूरतक कहा गया है कि "एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे मर्त्ये च कामधुग् भवति।" अर्थात् वेदके एक ही शब्दके पूर्ण ज्ञान और सम्यक् प्रयोगसे ऐहलौकिक

और पारलौकिक--दोनों फलोंकी प्राप्ति हो जाती है। यही वैदिक ज्ञानका रहस्य है। वेदका प्रत्येक शब्द बाह्य तत्त्वोंसे विमुक्त और योगकी प्रक्रियासे विशुद्ध है। इस विशुद्धीकरणके कारण ही वेदके प्रत्येक शब्दमें दिव्य शक्ति निहित है। वेदका प्रत्येक शब्द तपःपूत योगियों और महर्षियोंकी विमल समाधिमें उपलब्ध अनन्तशक्तिशाली यन्त्र है। फलतः प्रत्येक वेद-मन्त्रमें रहस्य भरा पड़ा है। कमी है केवल इस रहस्यको समझानेवाले तपस्वी और अधिकारी पुरुषोंकी।

पहले लिखा जा चुका है कि 'वेदमें आधिभौतिक उन्नतिकी चरम सीमा है।' इसका एक उदाहरण ऋग्वेदका प्रसिद्ध "दाशराज्ञ-युद्ध" भी है। इस महासमरम ९९ नगर विध्वस्त किये गये थे (ऋग्वेद १.५४.६) और ६६०६६ मनुष्य जानसे मारे गये थे (ऋ० ७.१८.१४)! आर्यलोग सोनेकी माला पहनते थे (ऋ० ५.५३.४)। वे सौ दरवाजोंका मकान बनाते थे (ऋ० ७.८८.५)। लोहे और सोनेके भी मकान बनते थे (ऋ० ७.३.७ और ७.१५.१४)। दरवाजेपर सन्तरी पहरा देते थे (ऋ० २.१५.९)। पायेदार दोतल्ले मकान होते थे (५.६२.६)। उनके रथ सोने और काठके होते थे (ऋ० ३.६१.२ और १०.८५.२)। घोड़े स्वर्णालंकारोंसे सजाये जाते थे (ऋ० ४.२.८)। आर्य लोग तलवार, भाला, धनुर्बाण, कवच, लोहे और सोनेका टोप और दस्ताना भी धारण करते थे (ऋ० ६.७५ सूक्त)। वे मुद्रानीतिके ज्ञाता थे (ऋ० ५.२७.२)। वे समुद्रयात्रा करते थे (ऋ०७.८८.३, १.११६.३, १.१५८.३)। घोड़े, कुत्ते और ऊँटकी पीठपर अन्न ढोया जाता था (८.४६.२८)। पृथुश्रवा राजाने सत्तर हजार घोड़े, दो हजार ऊँट, एक हजार काली घोड़ियां और दस हजार गायें दान दी थीं (ऋ० ८.५६.२२)। उनके कवच सोने और लोहेके होते थे (ऋ० १.२५.१३ और १.५६.३)। अरुण नामक राजाने दस हजार स्वर्ण-मुद्राएँ अत्रि ऋषिको दान दी थीं

(ऋ० ५.२७.१) । शहरके शहर लोहे और सोनेके बनते थे (७.३.७.)। केवल लोहेके बने सौ नगर थे (ऋ० ७.१५.१४)। रथपर सारथियोंके बैठनेके तीन स्थान होते थे (ऋ० ७.६९.२)। तीन तल्लोंवाले मकान भी बनते थे (ऋ० ८.५०.१२) । ध्वस्र और पुरुषन्ति राजाओंने अवत्सार ऋषिको तीस हजार वस्त्र दान दिये थे (ऋ० ९.५८.४)। हाथीको अंकुश से वशमें रखा जाता था। (ऋ० १०.४४.९) । पाँच-पाँच सौ रथ एक साथ चलते थे (ऋ० १०.९३.१४)। मेघोंके समान वाणवर्षा की जाती थी (ऋ० १०.१०२.११) । नौकर वेतनपर रखे जाते थे (ऋ० ९.१०३.१) । हार, वलय आदिसे बच्चोंको अलंकृत किया जाता था (ऋ० ९.१०४.१) । तैत्तिरीयारण्यक (१.३१.१) में एक ऐसे रथका उल्लेख है, जिसमें अनेक चक्र हैं, एक हजार धुरे हैं और एक हजार घोड़े जुते हैं । घोड़ोंको मोतियोंकी माला भी पहनायी जाती थी ।

आर्योंकी चार संस्थाएँ थीं—समिति, सभा, सेना और विदथ । उनका राज्य जन-तन्त्र था । राष्ट्रपति वा प्रधान शासकका प्रजा द्वारा चुनाव होता था । अन्यायी शासकको प्रजा पदच्युत करती थी । आर्य वायुयान बनाते थे । उनके विमान मन और वायुकी तरह वेगशाली होते थे (ऋ० १.११८.१, १.१२०.१०, ४.३६.१) । वे पंखोंवाली नाव भी बनाते थे (ऋ० १.१८२.५)। ऋग्वेदसे लेकर उपनिषदोंतक में बिजलीका विवरण और उसके विविध उपयोगकी बातें पायी जाती हैं । यहाँ अधिक उल्लेखका स्थान नहीं है । मुख्य बात यह है कि आर्य लोग आधिभौतिक उन्नतिकी चरम सीमापर पहुंच चुके थे ।

परन्तु केवल आधिभौतिक उन्नतिसे मानव-जातिका सर्वांगीण उन्नयन नहीं हो सकता । केवल भौतिकवादसे न तो किसी धनाधिपति को स्थिर शान्ति प्राप्त हो सकती है, न अनवरत आनन्द ही उपलब्ध हो सकता है । केवल भौतिकतामें चिपटे रहनेसे तो मानव-जातिका

सर्वनाश हो सकता है। हिटलर, मुसोलिनी और तोजोने भी तो पूरी भौतिक उन्नति कर ली थी। परन्तु इसका फल क्या हुआ ? मदान्ध होकर ये तीनों रणांगणमें कूद पड़े। लाखों जर्मन, इटालियन और जापानी गाजर-मूलीकी तरह काट दिये गये, इनके देश रौंद डाले गये और ये अनेक वर्षोंके लिये गुलामीकी जंजीरमें जकड़ दिये गये ! जहां भौतिक वादकी शानमें विश्व-विधाताको भी दुत्कार दिया जायगा और जहां नीति, न्याय, धर्म और सदाचारको पैरों तले कुचला जायगा, वहां प्रलय-कांड मच जायगा और शान्ति तथा आनन्दका नाम-निशान भी नहीं रहेगा। इन दिनों संसारके राष्ट्र भौतिक उन्नतिके लिये दौड़ लगा रहे हैं; अमेरिका भौतिक उन्नतिकी चरम सीमापर पहुंचनेकी चेष्टा कर रहा है। परन्तु संसारमें इसका नतीजा क्या देखनेमें आ रहा है ? एक ओर युद्ध-भयसे सारा विश्व विकम्पित हो रहा है, पृथिवीकी छातीपर परमाणु बम दानवी दावानल उगलनेको तैयार बैठा है, दूसरी ओर संसारमें करोड़ों आदमी दाने-दानेको मर रहे हैं, करोड़ों कपड़ेके लिये हाहाकार मचाये हुए हैं। हर ओर हड़ताल, सब ओर मार-काट, ब्रह्माण्ड भरमें घनघोर अशान्ति और प्रलय—ताण्डव !! आज भौतिकवादके उपद्रव-उत्पात और उथल-पुथलसे दसो दिग्गज डोल रहे हैं और वसुन्धराका कण-कण 'त्राहि-त्राहि' कर रहा है !!! केवल उच्छृङ्खल भौतिकवादमें परमात्माका जघन्य तिरस्कार, धर्मके प्रति घोर घृणा, अपने लिये निकृष्ट स्वार्थपरता और नृशंस विषया-भिलाषा रहती है ! इसीलिये जातिकी जाति सदाके लिये धरातलसे विध्वस्त हो जाती है ! इतिहासमें इसके अनेकानेक उदाहरण पाये जाते हैं।

इसीलिये वेदमें केवल आधिभौतिक उन्नतिकी चरम सीमा ही नहीं है, आधिदैविक अभ्युदयकी पराकाष्ठा भी है। दिव्य गुण, दिव्य शक्ति, दिव्य चरित्र, दिव्य विभूति और दिव्य लोककी प्राप्तिके लिये

वेदमें सत्य, सदाचार, नीति, यज्ञ आदिके पालनकी विधि है। ऋग्वेद (१०.१९०.१) से विदित होता है कि प्रज्वलित तपसे सत्यकी उत्पत्ति हुई है। अपनेसे ऊपर उठकर अपनी स्वार्थ-हानि करके भी सत्य-बोलने, सत्य संकल्प करने, सत्य कर्म करनेके आदेश वेदमें बार-बार दिये गये हैं। आर्य लोग सबसे अधिक घृणा असत्यसे करते थे। उनकी पक्की धारणा थी कि 'असत्य बोलनेवालेकी पवित्रता नष्ट हो जाती है' (शतपथ-ब्राह्मण ३.१.३.१८)। 'असत्य बोलना वाणीका छिद्र है, जिसमेंसे सब कछ गिर जाता है' (ताण्ड्य-महाब्राह्मण ८.६.१३)। 'असत्यवादीका तेज कम होता जाता है—वह प्रतिदिन पापी होता जाता है' (शतपथ-ब्राह्मण २.२.२.१९)। 'सत्यसे ही स्वर्गकी प्राप्ति होती है' (ताण्ड्यमहाब्राह्मण १८.२.१९)। और तो और, तीनों वेदोंको ही सत्य रूप बताया गया है (शतपथ ९.५.१.१८)। सत्यवादी अजेय कहा गया है (शतपथ ३.४.२.८)।

यज्ञ-कर्ताके लिये कहा गया है—'वह झूठ तो बोले ही नहीं, मांस भी न खाय' (तैत्तिरीय-संहिता २.५.५.३२)। शराब पीना पाप माना गया है (मैत्रायणी-संहिता २.४.२ और काठक–संहिता १२.१२)। द्वेष करना, चोरी करना, डाका डालना, गाली देना भी पाप माना गया है (आपस्तम्बधर्मसूत्र २.३.६.१९–२०; ऐतरेयब्राह्मण. ८.११ और ७.२७)। अहंकारको अधःपतनका द्वार बताया गया है (शत-पथ ५.१.१.१)। अपने स्वास्थ्यकी चिन्ता न करनेवाला भी पापी माना गया है (काठक–संहिता १३ ६)।

तैत्तिरीयोपनिषद् (१.११.१) में कहा गया है कि 'सत्य बोलो। सत्यसे कभी दूर नहीं जाना।' प्रश्नोपनिषद्का कथन है कि 'सत्य, तप और ब्रह्मचर्यका पालन करनेवालेके लिये ही ब्रह्मलोक है।'

गौतमधर्मसूत्र (८.२०.२५) का मत है कि 'जो सद्गुण (सत्य, सदाचार आदि) से शून्य हैं, वे न तो ब्रह्मलोक जा सकेंगे, न ब्रह्मको

पा सकेंगे।' वसिष्ठधर्मसूत्र (६.३) में कहा गया है कि 'जैसे चिड़ियोंके बच्चे पंख हो जानेपर घोंसलेको छोड़कर चले जाते हैं, वैसे ही वेद और वेदांग सद्गुण-शून्य मनुष्यका त्याग कर देते हैं।'

पूजा, उपासना, परोपकार आदि यज्ञके अर्थ हैं। यज्ञसे हमें शिक्षा मिलती है कि 'भले काम किये जाओ और बुरे कामोंसे बचे रहो।' वेदाज्ञा है कि 'यज्ञके द्वारा स्वार्थ-त्याग-पूर्वक अपनेको समाजमें, देशमें, विश्वकी सम्पूर्ण मानवजातिमें और सारे प्राणियोंमें मिला दो, अपनेमें देवोंको समझो और अपनेको देवोंमें समझो। मनको वशीकर अपनेको ब्रह्माण्डमें मिला दो; तुम्हें दिव्य शक्ति मिल जायगी।'

यज्ञरूप नींवपर ही धर्म-रूप इमारत खड़ी है। ऋग्वेदका मत है कि 'यज्ञसे ही सब कुछ उत्पन्न है' (१०.९०.८–९)। अथर्ववेदका भी कहना है कि 'संसारका उत्पत्ति-स्थान यज्ञ ही है।' 'तपस्वियोंने यज्ञ-पुरुषको हृदयमें प्रबुद्ध किया है' (ऋ० १०.९०.६)। शतपथब्राह्मण (१.७.१.५) ने 'यज्ञको सर्व-श्रेष्ठ कर्म तो माना ही है', प्रजापति और विष्णुका रूप भी यज्ञको बताया है।

अग्निमें दी गयी हवि वायुके सहारे सूर्यकी ओर जाकर समस्त अन्तरिक्षमें व्याप्त होती है। सूर्यके प्रभावसे मेघ-मण्डलके साथ धूम-मिश्रित हविके मिल जानेपर वर्षा होती है, जिससे अन्न उत्पन्न होता है और अन्नसे प्रजाकी रक्षा होती है। इसके अतिरिक्त हविसे पार्थिव पदार्थ, वायु और सूर्य-किरण आदि भी शुद्ध होते हैं। हविसे देवता तृप्त होकर मनुष्य-समाजका कल्याण करते हैं। यज्ञ-रूप फलसे स्वर्ग आदिकी प्राप्ति होती है। यज्ञमें देव-पूजनके कारण याज्ञिकको देवत्व प्राप्त होता है।

जैसे सूर्य संसारकी दुर्गन्धको दूर करता है और जलको पवित्र करता है, वैसे ही यज्ञ भी करता है। यज्ञके द्वारा विशुद्ध वर्षा-जल

अन्य जलको और अन्नको शुद्ध करता है और शुद्ध अन्न-जलसे ही शरीर स्वस्थ और शुद्ध रहता है। इसीलिये कहा गया है—'**वृष्टि-कामो यजेत्**' (वर्षाकी इच्छावाला यज्ञ करे।)

षड्विंश-ब्राह्मण (३.१.३) का मत है कि 'यज्ञ-कर्त्ता सारे पापोंको मारता है।' शतपथब्राह्मण (२.३.१.६) का तो कहना है कि 'यज्ञ-कर्त्ता सारे पापोंसे छूट जाता है।' जैमिनीय मीमांसाके मतसे तो यज्ञसे ही मुक्ति भी मिल जाती है।

इस तरह अनेक मार्गोंसे यज्ञ मानव-कल्याण करता और मनुष्यको दिव्य शक्ति और भव्य विभूति प्रदान करता है।

फलतः वेदमें आधिदैविक अभ्युदयकी भी पराकाष्ठा है।

परन्तु आधिदैविक अभ्युदयकी पराकाष्ठासे भी चिर शान्ति, अखण्ड आनन्द और मोक्षकी प्राप्ति नहीं हो सकती। मीमांसाके मतसे यज्ञसे जो मुक्ति-प्राप्तिकी बात कही गयी है, वह यज्ञकी स्तुतिके लिये है। वस्तुतः बात ऐसी नहीं है। आधिदैविक अभ्युदयकी पराकाष्ठा में भी मनुष्यमें वासना बनी रहती है; इसलिये उसे मोक्षकी प्राप्ति नहीं हो पाती। स्वर्ग-सुख भोग करते-करते पुण्य समाप्त हो जाता है, जिससे देवत्वसे पतित होकर जीव पुनः मनुष्य-योनिमें आ जाता है। इसीलिये वेदमें आधिदैविक अभ्युदयकी पराकाष्ठा ही नहीं है, आध्यात्मिक उन्नयनका चूड़ान्त रूप भी है।

यद्यपि वेदमें ३३ देवता माने गये हैं और ऋग्वेदके दो मन्त्रों (३.९.९. और १०.५२.६) में ३३३९ देवता माने गये हैं; परन्तु सायणाचार्यने लिखा है कि "देवोंकी विशाल महिमा बतानेके लिये ही ३३३९ देवोंका उल्लेख किया गया है"। ३३ देवोंके बारेमें सायणकी राय है कि परमात्माके कर्मानुसार अनेक नाम हैं; इसलिये वह अनेक नामोंसे वैदिक मन्त्रोंमें स्तुत किये गये हैं। वस्तुतः सभी देव-नामोंसे परमात्मा

की ही पुकार लगायी गयी है--"**तस्मात्सर्वैरपि परमेश्वर एव हूयते**" (सायण)। ऐतरेयब्राह्मण (३.२.३.१२) का भी मत है कि 'ऋग्वेदी लोग एक ही सत्ताकी उपासना विविध मन्त्रोंमें करते हैं।' ऋग्वेद (१.१६४.४६) में स्पष्ट कहा गया है कि 'परमात्मा एक है, तो भी विद्वान् उन्हें अनेक नामोंसे पुकारते हैं।' एक दूसरे मन्त्र (१०.११४.५) में कहा गया है कि 'क्रान्तदर्शी लोग अनेक प्रकारसे परमात्माकी कल्पना करते हैं।' परमात्माको सारे लोकोंका स्वामी (६.३६.४) और द्यावा-पृथिवीका धारक बताया गया है (१०.३१.८) माध्यन्दिन-संहिता (शुक्ल यजुर्वेद ३१. १६) में कहा गया है कि 'परमात्मामें ही सारे लोक अवस्थित हैं।' 'परमात्मा सारी प्रजामें ओत-प्रोत हैं' (३२.८)। 'उस प्रभुका ज्ञान प्राप्त करके ही मनुष्य मृत्युको लांघ सकता है; उसके मुक्त होनेका कोई भी दूसरा मार्ग नहीं है' (३१.१८)। अथर्ववेद (शौनकसंहिता ६.१०.१) का कहना है, 'जिन्होंने परमात्माको जान लिया, उन्हें मोक्ष मिल गया।' 'एक मात्र परमात्मा ही प्रणम्य और स्तुत्य है' (२.२.१)। 'भगवन्, हम तेरे भक्त हों' (६.७६.३)।

ऋग्वेदके ३य मण्डलके ५५ वें सूक्तमें २२ मन्त्र हैं और सबके अन्तमें कहा गया है कि 'देवोंकी शक्ति एक (परमात्मा) ही है, भिन्न २ वा स्वतन्त्र नहीं है।' इसी वेदके १० म मण्डलका १२१ वां सूक्त 'हिरण्यगर्भ-सूक्त' है। यह सूक्त आध्यात्मिक तत्त्वोंसे भरा पड़ा है। ईश्वर, जीवात्मा, सृष्टि, परलोक आदि अध्यात्म-विषयोंका इसमें जागरूक विवरण है। दशम मण्डलका ९० वां सूक्त 'पुरुषसूक्त' है, जिसके दूसरे मन्त्रमें स्पष्ट कहा गया है कि 'जो कुछ है, जो कुछ हुआ है और जो कुछ होगा, सो सब परमात्मा हैं।' प्रथम मण्डलका ८९ वां सूक्त 'अदिति-सूक्त' है। इसमें भी ब्रह्मके सर्वव्यापी होनेका सुन्दर वर्णन है।। ऋग्वेदके '**अस्य वामीय सूक्त**' (१.१६४) और 'नासदीय सूक्त' (१०.१२९) तो अध्यात्मवादके प्राणसे हैं। लोकमान्य तिलकने

नासदीय सूक्तको 'मनुष्यजातिका सर्वश्रेष्ठ स्वाधीन चिन्तन' कहा है। इसी प्रकार ऋग्वेदके अनेक स्थानों (१०.७९.१; १०.१२०.६; १०.८९. १; १०.१२८.७; ३.५५.३; ५.८५.१; १०.२७.९; १०.३१.८; १०.११४.५ और ७) में अध्यात्मवादके विशिष्ट विषयोंका अत्युच्च विवरण है। एक स्थल (१०.२७.९) पर महाज्ञानी ऋषि कहते हैं—"संसारमें घास (शाक) और अन्न खानेवाले जितने मनुष्य हैं, वह मैं ही हूँ। हृदयाकाशमें जो अन्तर्यामी ब्रह्म अवस्थित हैं, वह मैं ही हूँ।'

अथर्ववेदके 'स्कम्भसूक्त' (१०-७-८ सूक्त) और 'उच्छिष्टसूक्त' (११.९) अध्यात्मवादके महत्त्वपूर्ण सूक्त हैं। इनमें ब्रह्मकी व्यापकता और उसकी आत्मासे अभिन्नताका सुन्दर प्रतिपादन हैं।

उपनिषदोंमें तो अध्यात्मवादका विशद वर्णन है ही। ब्रह्म-तत्त्व, आत्म-तत्त्व, जीवतत्त्व, परलोक-तत्त्व और सृष्टि-तत्त्वका उपनिषदोंमें ऐसा मार्मिक विवरण है कि संसारके बड़े-बड़े मनीषी उपनिषदोंपर विमुग्ध हैं। उपनिषदोंका नाम ही 'ब्रह्मविद्या' है।

चिर शान्ति, अखण्ड आनन्द वा मोक्षकी प्राप्तिके तीन मार्ग हैं—निष्काम कर्म, परा भक्ति और परम ज्ञान। तीनोंमें तीनोंका साहाय्य अपेक्षित होता है। इनमें सबसे सरल मार्ग भक्तिका है। महात्मा गांधी निष्काम-कर्मी होते हुए भी भक्ति-मार्गके पथिक थे। उन्होंने बार-बार कहा है— "अध्यात्मवाद और ईश्वर-विश्वासके विना मनुष्य सत्य और अहिंसाको नहीं समझ सकता।" गांधीजीने अपनी "आत्मकथा" में लिखा है—"ईश्वर-प्रार्थनाने मेरी रक्षा की। प्रार्थनाके आश्रयके विना मैं कबका पागल हो गया होता। प्रार्थनाके विना जीवन मुझे नीरस और शून्य मालूम होता है। शरीरके लिये भोजन भी उतना आवश्यक नहीं, जितनी आत्माके लिये प्रार्थमाकी आवश्यकता है। ईसा, महम्मदको प्रार्थनासे ही प्रकाश मिला। वे प्रार्थनाके विना

जीवित नहीं रह सकते थे। प्रार्थनाके ही कारण राजनीतिक आकाश निराशाके बादलोंसे घिरा रहनेपर भी मेरी आन्तरिक शान्ति कभी भंग नहीं हुई।"

महात्मा गांधीकी राजनीति अध्यात्मवादपर आश्रित है—गान्धीजी के आधिभौतिकवाद और आधिदैविक वाद (नैतिकता आदि) अध्यात्म-वादके विना वैसे ही निर्जीव हैं, जैसे प्राणके विना शरीर। यही हिन्दू-संस्कृति और आर्य-मर्यादा है। जहाँ सुमर, अक्कद, चाल्डियन, बेवीलोनियन, फिनिशियन आदि जातियां संसारसे सदाके लिये मिट गयीं, वहाँ इसी संस्कृति और मर्यादाके कारण हिन्दूजाति विश्वमें हिमालयकी तरह अटल-अचल बनी हुई है—सो भी प्रायः वैदिक संस्कृतिके उसी प्रतापी रूपमें।

गान्धीजीने कई बार यह भी लिखा है कि "अध्यात्मवादके विना प्राप्त स्वराज्यकी रक्षा नहीं की जा सकेगी।" "धर्मनिरपेक्ष राज्य" चलाने वालोंको अपने पथ-प्रदर्शकके इस मूल्यवान् उपदेशको सदा ध्यानमें रखना चाहिये। वेद वा किसी भी हिन्दूशास्त्र वा ऋषिने अध्यात्मवाद वा धर्मसे अधिभूतवाद वा अधिदैववादको कभी भी अलग नहीं किया। वेद-स्मर्त्ताओंने और शास्त्र-कर्त्ताओं सबका आधार और लक्ष्य परमात्माको रखा है। उनका अनुभव था कि "मनुष्य कितना ही अधीर हो, चंचल हो, संसारके थपेड़े खाकर मरणासन्न हो चुका हो; परन्तु प्रभुका स्मरण करते ही वह सबल-सतेज हो उठता है। जिस समय अपने मकानमें प्रचण्ड अग्नि प्रज्वलित हो, प्रबल तूफान उठा हुआ हो, प्रतापी ज्वालामुखी हुहुकार मचाये हुए हो, महासागरका वड़वानल क्षुब्ध हो उठा हो और जहाज संसारके अगाध गर्भमें विलीन होने वाला हो, उस समय ईश्वरका सर्वशक्तिमान् स्मरण मनुष्यमें अनन्त विक्रम और विश्व-विजयी प्रताप भर देता है और

वह इन आपदाओंको देखकर भक्तराज प्रह्लादकी तरह हँसने-खेलने लगता है ।" वस्तुतः ईश्वर भक्तके भयको लेकर निर्भयता, रोगको लेकर नीरोगिता, दुःखको लेकर आनन्द, चञ्चलताको लेकर शान्ति और मरणको लेकर जीवन प्रदान करता है । मनुष्य अपने सारे दुःख-दैन्य, झंझट-प्रपंच, पाप-ताप और कुकर्म-कुवासनाएँ ईश्वरके ऊपर फेंक देता है, "ब्रह्मार्पण" वा "कृष्णार्पण" कर देता है और वह प्रतिक्षण अपने नाथसे सरसता और सुन्दरता, प्रतिभा और वर्चस्व प्राप्त करता रहता है । इसी रहस्यको अनुभूत करके प्रो० हालडेनने जोर देकर लिखा है कि "मैं तो अध्यात्म-क्षेत्रके अतिरिक्त और किसी क्षेत्रका विचार ही नहीं कर सकता ।"

इसी प्रचण्ड चेतनाका पावन प्रतीक वेद है । इसके साथ ही वेदमें आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक वादोंका सुन्दर समन्वय भी है और इन तीनों वादोंके अभ्युदयका चूड़ान्त स्वरूप भी पाया जाता है । यही कारण है कि वेदमें और वैदिक वाङ्मयमें स्फूर्त्ति और तारुण्य है, ताजगी और जीवट है । पाठक इस "वैदिक साहित्य"में इन सारे रहस्योंका विवरण पावेंगे ।

वेद--ऐतिहासिकोंके मतसे ऋग्वेद--संसारकी सबसे प्राचीन पुस्तक है; इसलिये संसारकी प्राचीनतम मनुष्यजातिके इतिहास-भूगोल, आचार-विचार और संस्कृति-सभ्यता जाननेके लिये एक मात्र आधार वेद है ।

हिन्दू-जातिका तो मूल ग्रन्थ वेद है ही; इसलिये हिन्दूजातिके धर्म, सदाचार, वीर्य, शौर्य, परोपकृति, देशभक्ति, त्याग, तप, इतिहास, कला, विज्ञान, समाज-व्यवस्था, राजनीति आदि आदि जाननेके लिये एकमात्र अवलम्ब वेद है ।

प्राथमिकी

प्रायः समस्त संस्कृत-साहित्यकी रचना वेदके आधारपर ही हुई है; इस दृष्टिसे भी वेदका अध्ययन अनिवार्य है ।

ऊपर लिखी इन सारी बातोंपर ध्यान रखकर वर्षोंके परिश्रमसे इस ग्रन्थका निर्माण किया गया है । अन्यान्य विषयोंके अतिरिक्त इन सारी बातोंका विशद विवेचन और समालोचन इस ग्रन्थमें किया गया है । जहाँ तक इन पंक्तियोंके लेखकको ज्ञात है, वैदिक साहित्यपर इस तरहका ग्रन्थ अबतक नहीं था । यह ग्रन्थ कैसा बन पड़ा है, इसका विवेचन विज्ञ वाचक ही कर सकते हैं ।

अत्यन्त कार्यव्यस्त रहते हुए भी उत्तर-प्रदेश-राज्यके शिक्षामन्त्री, अर्थमन्त्री और श्रममन्त्री तथा प्रख्यात मनीषी डा० सम्पूर्णानन्दने जो इस ग्रन्थका महत्त्व-पूर्ण "आमुख" लिखनेकी कृपा की है, उसके लिये लेखक आभार मानता है ।

अनेकानेक भाषाओं और विषयोंके प्रख्यात पण्डित दर्शनकेसरी बन्धुवर पण्डित वाराणसीप्रसाद त्रिवेदी एम० ए०, काव्य-सांख्य-तीर्थके सत्परामर्शोंके लिये भी लेखक अनुगृहीत है ।

इस "वैदिक साहित्य"की फाइल वा छपे फार्म देखकर दिग्गज विद्वान् और जीवित विश्वकोष डा० गोपीनाथ कविराज एम० ए०, डी० लिट्०, विख्यात वेद-विज्ञाता डा० मङ्गलदेव शास्त्री एम० ए०, डी० फिल्० (आक्सन), भारत-प्रसिद्ध ऐतिहासिक प्रो० जयचन्द्र विद्यालंकार और वैदिक-साहित्य-विषयक अनेक ग्रन्थोंके रचयिता साहित्याचार्य प्रो० बलदेव उपाध्याय एम० ए० ने जो अपनी अमूल्य सम्मतियां दी हैं, उनके लिये लेखक कृतज्ञ रहेगा ।

"ज्ञानपीठ-लोकोदय-ग्रन्थमाला"के सम्पादक और संचालक तथा प्रसिद्ध विद्वान् बाबू लक्ष्मीचन्द्र जैन एम० ए० की प्रेरणा और

तत्परताके ही कारण यह ग्रन्थ इतना शीघ्र प्रकाशित हो सका है। इसके लिये ग्रन्थ-लेखक आपको शतशः साधुवाद देना आवश्यक समझता है।

"ज्ञानपीठ"के सुयोग्य मन्त्री बाबू अयोध्याप्रसाद गोयलीयने बड़ी लगनसे इस ग्रन्थको सुन्दरता और शुद्धतासे छपाया है। इसके लिये लेखक आपको बहुत-बहुत धन्यवाद देना नहीं भूल सकता।

ग्राम कूसी, डाकखाना दिलदारनगर,
जिला गाजीपुर।
श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी, सं० २००७ विक्रमीय

रामगोविन्द त्रिवेदी

सम्पादकीय वक्तव्य

भारतीय ज्ञानपीठकी स्थापना और उसके प्रकाशनोंका उद्देश्य व्यक्त करते हुए हमने अपनी पूर्वप्रकाशित रचनाओंका 'आमुख' प्रायः इन वाक्योंसे प्रारम्भ किया है:–

"जैन, बौद्ध, वैदिक—भारतीय संस्कृतिकी इन प्रमुख धाराओंका अवगाहन किये बिना अपनी आर्यपरम्पराका ऐतिहासिक विकासक्रम हम जान नही सकते। सभ्यताकी इन्हीं तीन सरिताओंकी त्रिवेणीका संगम हमारा वास्तविक तीर्थराज होगा। और ज्ञानपीठके साधकोंका अनवरत यही प्रयास रहेगा कि हमारी मुक्तिका महामंदिर त्रिवेणीके उसी संगमपर बने; उसी संगमपर महामानवकी प्राणप्रतिष्ठा हो।"

उपर्युक्त वाक्यमें जैन, बौद्ध, वैदिक धाराओंका नामक्रम देते समय यह व्यक्त करना इष्ट था कि प्रकाशन–योजनाएँ स्थिर करते हुए पहले जैन साहित्यको और फिर बौद्ध तथा वैदिक साहित्यको प्रमुखता दी जायगी; क्योंकि वैदिक और बौद्ध साहित्यकी अपेक्षा जैन साहित्य अभी कम प्रकाशमें आया है। प्रकाशनोंका क्रम इस प्रकारसे चला ही था कि ज्ञानपीठके संचालकों तथा सम्पादक-मंडलको यह जानकर आश्चर्य हुआ कि यद्यपि वैदिक साहित्यके अमुक-अमुक विशेष अंगोंपर प्रकाश डालनेवाला पांडित्यपूर्ण साहित्य थोड़ा-बहुत उपलब्ध है भी; किन्तु ऐसी एक भी पुस्तक नहीं, जो समस्त वैदिक साहित्यका तथा उसके आनुषंगिक ग्रन्थों और पूरक रचनाओंका संक्षेपमें एवं सुबोध शैलीमें परिचयात्मक मौलिक ज्ञान करा सके। 'वैदिक साहित्य'का प्रकाशन इसी कमीको पूरा करनेके लिए, उक्त प्रकाशन-योजनाके पूर्वनिश्चित क्रममें परिवर्तन करके, किया जा रहा है।

यह हमारा सौभाग्य है कि वैदिक साहित्यके प्रकांड विद्वान् और परम्परागत धर्मशास्त्र, पुराण तथा भारतीय दर्शनोंके प्रसिद्ध अध्येता श्री

पंडित रामगोविन्द त्रिवेदी, वेदान्तशास्त्रीने यह ग्रन्थ लिख देनेकी कृपा की। शास्त्रीजी आज तीस वर्षोंसे वैदिक साहित्यके अध्ययन, अनुशीलन और प्रचारमें लगे हुए हैं। आपने सम्पूर्ण ऋग्वेदका हिन्दीमें अनुवाद करके आजसे प्रायः २० वर्ष पहले आठ भागोंमें प्रकाशित कराया था। आपका दूसरा ग्रन्थ 'दर्शन-परिचय' भी कई भागोंमें छपा था। 'विष्णु-पुराण' ग्रन्थमें आपने १८ पुराणोंका आलोचनात्मक दिग्दर्शन कराया है। अनेक पत्रोंके सम्पादनके अतिरिक्त मासिक पत्र 'गंगा'के 'वेदांक'के सम्पादकके रूपमें आपने ख्याति पायी है। त्रिवेदीजीने अपनी सहज प्रतिभा के बलपर संस्कृत, अंग्रेजी, बंगला, मराठी, गुजराती, नेपाली और क्रिओली भाषाओंमें यथोचित गति प्राप्त की है। वैदिक साहित्यके प्रचारकी उद्दाम भावना आपको देशकी सीमाओंके पार बर्मा, चीन, लंका, मोरिशस, दक्षिण अफ्रिका, न्यूगिनी, मेडागास्कर, जंजीबार, रोडेशिया और पूर्व अफ्रीका आदि देशोंमें ले गयी, जहां आपने अनेक सांस्कृतिक संस्थाओंकी स्थापना की। हमारा दृढ़ विश्वास है कि उपयोगिताकी दृष्टिसे 'वैदिक साहित्य' हिन्दीमें अद्वितीय प्रमाणित होगा। वैदिक साहित्यका इतना मौलिक सांगोपांग समीक्षण हिन्दी तो क्या, सम्भवतया भारतकी अन्य भाषाओंमें भी उपलब्ध नहीं है। पुस्तकके लगभग ५०० पृष्ठोंमें अबतक प्राप्त ११ वैदिक संहिताओं, १८ ब्राह्मण-ग्रन्थों, ९ आरण्यकों और २२० उपनिषदोंकी मूल ज्ञानराशि और उनके सम्बन्धमें अन्य ज्ञातव्य बातोंको भी त्रिवेदीजीने सार रूपमें रख दिया है।

हमें इस बातकी विशेष प्रसन्नता है कि पुस्तकका 'आमुख' विख्यात विद्वान् और राजनैतिक नेता डाक्टर सम्पूर्णानन्दजीने लिखकर हमें उपकृत किया है। पुस्तकके अनुरूप ही डा० सम्पूर्णानन्दजीने अत्यन्त सुन्दर ढंगसे वैदिक साहित्यकी मूल भावनाओं और अनुपम महत्त्वको ओजस्वी भाषामें सार रूपसे समझाया है। उनकी भूमिका वैदिक साहित्यके विद्यार्थीको एक निश्चित दृष्टि देती है, जिसके प्रकाशमें सारा वैदिक साहित्य वाद-

प्रतिवादके क्षेत्रसे ऊपर उठ जाता है; क्योंकि वह श्रद्धाका विषय बन जाता है। वह लिखते हैं:–

"अमुक यज्ञ करनेसे अमुक फलकी प्राप्ति होगी, यह बात अनुभवसे नहीं निकल सकती। इस प्रकारके दृष्टादृष्ट विषयोंका प्रतिपादन करनेमें ही वेदका परम प्रामाण्य है।"

निःसन्देह, वेद और वैदिक साहित्यकी महत्ताका यह एक प्रमुख विचार-क्षेत्र है; किन्तु वैदिक साहित्यका एक उच्चतम नैतिक, राष्ट्रिय और अन्ताराष्ट्रिय महत्त्व भी है, जिसे न श्रद्धाके अवलम्बकी अपेक्षा है, न वैदिक याज्ञिक निष्ठाकी। विद्वान् भूमिका-लेखकने वैदिक साहित्यकी इस विशेषताकी ओर संकेत किया है, पर इसे गौण माना है।

वेदका यह गौण पहलू अर्थात् उसकी उच्चतम नैतिकता और राष्ट्रियता आज हमारे देशके लिए अपरिमित महत्त्वकी है। वैदिक युगके मनीषियों और अलौकिक द्रष्टाओंकी वाणीमें हमें धर्मकी मूल प्रेरणाओंका स्फुरण मिलता है–धर्मका वह रूप, जो सार्वदेशिक और सार्वकालिक नैतिकताके कारण अनुभूत और ग्राह्य है। धर्मकी व्यापकताके विषयमें कहा गया है:–

ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम्
शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा। (अथर्व० १२.१)

"यह ध्रुव और अचल भूमि, यह पृथ्वी, जो धर्मद्वारा धारण* की गयी है, हम उस शिव-सुख-दायिनी भूमिपर विश्वान्त विचरण करें।"

*** अथर्ववेदमें प्रायः ऐसे धार्मिक और दार्शनिक तत्त्वोंका उल्लेख है, जो एक ओर ऋग्वैदिक कालकी सभ्यतासे पूर्वके हैं और दूसरी ओर उसी परम्पराके क्रमागत विकास और व्याख्याके साथ ऋग्वेदकी रचना-कालके सामयिक अथवा रचनाकालके बादके हैं। आर्य और आर्येतर सभ्यताओंकी मान्यताओं और विचारोंके आदान-प्रदान द्वारा विकसित यह धार्मिक तत्त्व कहीं-कहीं यज्ञ-परक, इन्द्रादि-देवतामूलक मान्यताओंसे मेल नहीं खाते। इसका परिहार कभी कभी 'वेदत्रयी' अर्थात् ऋक्,**

वैदिक ऋषियोंने धर्मको जीवनयात्राके लिए उपयोगी बताया है, जो उनके अनुभवकी उपज है। **"सुगा ऋतस्य पन्थाः"**—(ऋग्वेद ८.३.१३) धर्मका मार्ग सुखसे गमन करने योग्य है। **"सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन्"** (ऋ० ९.७३.१)—सत्यकी नाव ही धर्मात्माको पार लगाती है।

इसी साहित्यमें हमें उस चरम अहिंसाके भी दर्शन होते हैं, जो भारतीय संस्कृतिकी सारे विश्वको देन है और आज भी जिसका सन्देश संसारको देनेकी क्षमता रखनेके कारण भारत अन्ताराष्ट्रिय नेतृत्वकी कल्पना कर रहा है। अहिंसाकी शुद्ध सर्वग्राही परिभाषाके लिए आजकल हम प्रसिद्ध जैनाचार्य उमास्वातिके 'तत्वार्थ-सूत्राधिगम'का यह सूत्र प्रस्तुत करते हैः—

"प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा।"

प्रमाद (असावधानी और असंयम) के कारण प्राणोंका व्यपरोपण करना—किसी जीवको ठेस लगाना—हिंसा है। अथर्ववेदमें प्राचीन मूलधारासे यह विचार इस प्रकार लिया गया हैः—

"मा जीवेभ्यः प्रमदः।" (अथर्व ८.१.७)

जीवोंके प्रति प्रमादी मत बनो।

'प्रमाद' शब्द अपने समूचे अर्थमें अत्यन्त विशद है। अथर्ववेदमें हिंसाके प्रकरणमें ठीक इसी शब्दका प्रयोग सांस्कृतिक दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है।

यजुः और साम, केवल तीनको ही वेद मानकर किया जाता है। पुस्तकके लेखक इस मतको नहीं मानते मालूम होते। उनके लिए अथर्ववेद समान रूपसे प्रामाणिक है। वेदत्रयीका अर्थ वेदोंमें तीन प्रकारकी रचनाओं—गद्य, पद्य और गेय—से है। धर्मकी इस परिभाषाको आचार्य समन्तभद्रने रत्नकरण्ड-श्रावकाचारमें इस प्रकार दिया हैः—

देशयामि समीचीनं धर्मं कर्मनिवर्हणं
संसारदुःखतः सत्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे।

कर्मोंका नाश करनेवाले सच्चे धर्मका मैं उपदेश करता हूँ। धर्म वह है, जो जीवोंको संसारके दुःखसे छुड़ाकर (और ऊपर उठाकर) उत्तम सुखमें धारण करे।

कृषि-कर्ममें लीन वेदकालीन गृहस्थ, भूमि जोतते हुए दयार्द्र और विनम्र होकर, सरल भावसे पुकार उठता है:-

"यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु ।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम् ।।"

हे भूमि, मैं तुम्हें जहाँसे खनूँ, वह शीघ्र ही (प्राणोंसे) हरा-भरा हो जाय । मैं तुम्हारे मर्मपर आघात न करूँ, मैं तुम्हारे हृदयको व्यथित न करूँ ।

जिन वेदग्रंथोंमें नरमेध और अश्वमेधका वर्णन है, उनमें इस दिव्य अहिंसाके दर्शन कर हम विमुग्ध हो जाते हैं ।

वेदकी एक और विशेषता, जो सदासे स्फूर्तिदायिनी रही है और आजके युगमें हमें जिसके महत्त्वको विशेष रूपसे समझना चाहिए, वह है वैदिक वाङ्मयमें ध्वनित तत्कालीन राष्ट्रकी प्रबुद्ध चेतना, तत्कालीन मानवका सबल व्यक्तित्व । पिछले ५० वर्षोंमें हमारे सामने जिस इतिहासकी आवृत्ति हुई है और आज हम इतिहासकी जिस धारासे गुज़र रहे हैं, वह हमें प्रेरित करती है कि हम वेदवाणीमें आरम्भिक राष्ट्र-जागरणकी प्रभातीके स्वर सुनें और समझें कि राष्ट्रका उदय, संगठन और समुत्थान कैसे होता था ।

उस दिन उस प्रबुद्ध मानवने अपनी मातृभूमिके साथ आत्मसात् होकर बालककी भांति किलकारी भरी थी—

"माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः ।" (अथ. १२.१.१२)

यह भूमि मेरी माता है, मैं पृथ्वीका पुत्र हूं ।

उसने अपने नेताकी पुकार सुनी थी—

"उपसर्प मातरं भूमिम् ।" (ऋ. १०.१८.१०)

मातृभूमिकी सेवा कर ।

और उसने अन्य पृथ्वीपुत्रोंके साथ खड़े होकर प्रतिज्ञा की थी—

"यतेमहि स्वराज्ये ।" (ऋ. ५.६६.६)

(आओ) हम स्वराज्यके लिए सदा प्रयत्नशील रहें ।

अनेक देवताओंकी उपासना करनेवालोंके बीच उस स्वावलम्बी महामहिम मानवने गर्वोन्नत स्वरमें कहा था–

"न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः।" (ऋ. ४.३३.११)

बिना स्वयम् परिश्रम किये देवोंकी मैत्री प्राप्त नहीं होती।

और उसका इससे भी अधिक उन्नत और गौरवशील स्वर सुनाई देता है अथर्ववेदमें—

'कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।" (अथ. ७.५२.८)

पुरुषार्थ मेरे दाहिने हाथमें और जय बांये हाथमें है।

यह प्रतापी व्यक्ति जब अपने साहस और श्रमसे गृहनिर्माण करवाता था, तो प्रवेशके समय उसकी भावना दर्प और दम्भकी नहीं होती थी, वह अपने आत्मसंतोषकी आभासे दीप्त, कल्याणकारी तथा मैत्री भावसे सम्पन्न चक्षुसे ही इन घरोंको देखता था–

"गृहानैमि मनसा मोदयान, ऊर्जं विभ्रद् वः सुमतिः सुमेधाः।
अघोरेण चक्षुषा मित्रियेण गृहाणां पश्यन्यय उत्तरामि ॥"
(अथ. ३.२६.१.)

मैं प्रसन्न मनसे घरमें आता हूं; शक्ति और सामर्थ्यको पुष्ट करता, मतिमान् और मेधावी, कल्याणकारी और मैत्रीपूर्ण चक्षुसे इन्हें देखता हूँ और इनमें जो रस है, उसे ग्रहण करता हू।

आश्चर्य नहीं कि यह स्नेहशील सुखी मानव प्रवासमें रहते हुए घर लौटनेके लिए आकुल हो उठता है—

"येषामध्येति पवसन्।" (पैप्प० ३.२६.४)

(घर) जिनकी याद हमें प्रवासमें आती रहती है।

राष्ट्रके कर्णधार इन उदारचेता मनुष्योंने धन और परिग्रहके प्रति कहीं-कहीं अद्भुत अलिप्साकी भावनाका प्रचार किया है। वेदके सहस्रों मंत्रोंमें जहां सैकड़ों देवताओंसे अनेकानेक याचनाएँ की गयी हैं और जिन याचनाओं—आकांक्षाओंको अपरिमित प्रलोभनों द्वारा यज्ञ-साधकोंने ईसलिए प्रेरित किया है कि उनकी प्राप्तिमें वह साझीदार थे, उन वेद-ग्रन्थों

में उत्कृष्ट त्याग-भावना और अकिंचनत्व देखकर आधुनिक समाजवादकी नूतनता समाप्त हो जाती है। वैभवके प्रति उनका अनुभूत दृष्टिकोण है:-

"ओहि वर्तन्ते रथ्येव चक्रान्यमन्यमुपतिष्ठन्ति रायः।"

(ऋ. १०.११७.५)

राय (धन-सम्पत्ति) रथके पहियोंकी तरह आवर्तित होनेवाली है। कभी एकके पास रहती है, कभी दूसरेके पास।

केवल यही नहीं कहा कि-

"मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।" (यजु०४०.१)

किसीके धनपर मत ललचाओ।

किन्तु यह भी घोषित किया है कि जो स्वार्थी है, उसका अन्न उपजाना व्यर्थ है। इस प्रकारका स्वार्थपूर्ण उत्पादन ही उस व्यक्तिका संहार करता है—

"मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि बध इत् स तस्य।"

इस ऋषिकी वात्सल्यपूर्ण, आग्रहपूर्ण, स्वात्मानुभवपूर्ण वाणी देखिए; वह कहता है, **"सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य"**—"मैं सच कहता हूँ, इस प्रकारका स्वार्थपूर्ण अन्न-उत्पादन स्वयं उत्पादकका बध करा देता है।"

"नार्यमणं पुष्यति नो सखायं
केवलाघो भवति केवलादी।" (ऋ. १०.११७.६)

जो धनको न धर्ममें लगाता है, न अपने मित्रको देता है, जो 'केवलादी'—अपना ही पेट पालनेवाला है, वह 'केवलाघ'—साक्षात् पापमय है।

इसीलिए इन अनुभवी पूर्वजोंने कर्मठ पुरुषोंके सामने आदर्श रखा था:-

"शतहस्त समाहर सहस्रहस्त संकिर।" (अ. ३.२४.५)

सैकड़ों हाथोंसे इकट्ठा करो और हजारों हाथोंसे बांट दो।

संक्षेपमें, अथर्ववेदके ब्रह्मर्षिने यहां तक व्यवस्था कर दी है-

"समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे, सह वो युनज्मि।"

(अथ. ५.१९.६)

तुम लोगोंका पानी समान हो, तुम्हारा अन्न समान हो। तुम सबको समान बंधनमें बांधता हूँ, तुम एक दूसरेके साथ सम्बन्धित रहो।

इस मन्त्रके अर्थमें यदि यह सन्देह हो कि इस प्रकारका बंधन, इस प्रकारका समान अन्न ही नहीं, पानी भी, मनुष्योंमें कैसे सार्थक होगा, तो पशुलोककी यह दूसरी उपमा सुनिये—

"सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।

अन्योऽन्यमभिनवत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥" (पैप्पलाद० ५.१९.१)

आप सबके बीचसे विद्वेषको हटाकर मैं सहृदयता और संमनस्कताका प्रचार करता हूँ, आप सब एक दूसरेसे इस प्रकार प्रेम करें, जिस प्रकार गौ बछड़ेसे प्रीति करती है।

सहज प्रश्न होता है, कौनसा समाजवाद या साम्यवाद ऐसा होगा, जो सिद्धान्त रूपमें इससे आगे जायगा ?

वैदिक साहित्यपर ऐतिहासिक दृष्टिसे विचार करते समय सबसे बड़ी कठिनाई यह आ उपस्थित होती है कि वेदके प्रायः प्रत्येक पहलूपर विवाद है और विविध मान्यताएँ हैं। संसारकी किसी भी भाषाका इतना विपुल साहित्य इतने प्राचीन रूपमें प्राप्त नहीं है। आर्योंने जिस महान् प्रयत्न, सूझ और श्रमसे इस साहित्यको सहस्राब्दियों तक सम्हाले रखा है, वह विश्वमें निराला उदाहरण है। मनुष्य अपने श्रममें नहीं चूका; पर प्रायः ऐसा हुआ है कि समय और परिस्थितियां उसे भटकाती रही हैं, उसे मुखर और मूक करती रही हैं। देशोंके मानचित्र इस प्रकार बदल गये कि आज उनके पूर्व रूपकी कल्पनाको कल्पना तक मानना कठिन हो गया है। साम्राज्य, संस्कृतियां और इतिहासकी परम्पराएँ परिवर्तित, ध्वस्त और नवनिर्मित होकर पुनः पुनः अनेक प्रत्यावर्तनोंको पार करती रही हैं। ऐसी स्थितिमें यह कहां सम्भव था कि प्राणोंकी रक्षासे भी लाचार मानव इतने विशाल और विस्तृत साहित्यको केवल कंठगत बनाये पीढियों के बाद पीढ़ियोंको उत्तराधिकारमें दिये चला जाय। किन्तु यह आश्चर्य-जनक घटना घटी है और इसीलिए वेदका अस्तित्व विश्वका विस्मय है ! पर, जब मूल वेदधारी मानवके वंशानुवंश विजयकी प्रेरणा, पराजयकी

प्रतारणा अथवा प्राणरक्षाके निमित्त आश्रय और अन्नकी खोजके कारण इधरसे उधर स्थानच्युत हुए, तो इन उपजातियोंका संबंध अन्य उपजातियों से विच्छिन्न होता गया। कालान्तरमें परिवर्तित जलवायुके कारण नये उच्चारण और अन्य मानसिक अथवा परिस्थिति-जन्य कारणोंसे शब्द, अर्थ और भावमें नये परिवर्तन तथा मौलिक मान्यताओंमें भी अन्तर आ गया।

इस संबंधमें कुछ बातें विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं–

१. वेदमन्त्रोंके शुद्ध उच्चारणपर अत्यन्त अधिक जोर दिया गया है और यहां तक कहा गया है कि स्वर और वर्णके अशुद्ध प्रयोगके कारण मंत्र वज्र बनकर स्वयं यजमानका ही संहार कर देता है।

"मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्।"

उदाहरण दिया गया है कि मंत्रपाठीका अभिप्राय था कि इन्द्रशत्रु अर्थात् इन्द्रके शत्रुकी वृद्धि हो; किन्तु जिस ढंगसे यह समासयुक्त शब्द पढ़ा गया, उसमें स्वरभेद हो गया और इन्द्रके शत्रु (वृत्रासुर) की अभिवृद्धिकी जगह स्वयं इन्द्र, जो शत्रु है–उसकी अभिवृद्धि हो गयी। यजमान वृत्रासुर मारा गया।

वैदिक कालमें उच्चारणकी विभिन्नतासे ही 'आर्य' और 'म्लेच्छ' का भेद किया जाता था। असुरोंको 'मृध्रवाचः' कहा गया है। शतपथ-ब्राह्मणमें पराजित असुरोंके युद्ध-क्रन्दनका उल्लेख है–

"ते असुरा आत्तवचसो हे अलवो हे अलव इति वदन्तः पराबभूवुः।"
अर्थात् वे असुर 'हे अलवो, हे अलवो' इस प्रकार कहते हुए पराजित हो गये।

असुरोंका अभिप्राय 'हे अरयः', 'हे शत्रुओ' कहनेका है; किन्तु वह 'र' का 'ल' और 'य' का 'व' उच्चारण करते हैं और अरयः को अलवः बना देते हैं। मूल भाषा वही है।

अब कल्पना कीजिये कि शपतथ-ब्राह्मणका पाठ करनेवाला कोई द्विज भारतके किसी सीमाप्रान्तीय गांवमें रहता है। वह देखता है कि मुसलमान 'अल्ला', 'अल्ला' पुकारते हैं और मुसलमान उसकी दृष्टिमें असुर तथा म्लेच्छ हैं ही, तो वह शतपथब्राह्मणमें दिये उक्त वाक्यके आधारपर अलवा और अल्लाके उच्चारणकी समानता देखकर तत्काल यह धारणा बना सकता है कि वेदमें असुर-रूपमें मुसलमानोंका और उनके अल्लाह का वर्णन है। इस तरह उच्चारण-भेदके आधारपर अर्थभेद हो जायगा और इतिहासका क्रम समझनेवाला यदि कोई व्यक्ति भूल सुझायगा तो विवाद खड़ा हो जायगा। हो सकता है, काशीके विद्वानोंमें ही आज भी ऐसे पंडित हों, जो शतपथब्राह्मणके उक्त उद्धरणका यह अर्थ लगाते हों।

ऊपर हमने देखा कि **वर्ण**के उच्चारणभेदकी बात तो दूर, मात्र **स्वर** के उच्चारण-भेदसे यजमान वृत्र मारा गया। किन्तु वेदकी प्रचलित उच्चारण शैलियोंमें कहीं-कहीं वर्णोंके उच्चारणमें गम्भीर अन्तर है। यजुर्वेदकी वाजसनेयशाखाके अनुयायी 'ष'का उच्चारण 'ख' करते हैं। 'सहस्रशीर्षा पुरुषः' मंत्रका उच्चारण वह करेंगे 'सहस्रशीरखा पुरुखः' यह ठीक है कि इस विभिन्नताके समर्थनमें कोई शास्त्रीय व्यवस्था उपलब्ध होगी और यजमान घातसे बच जायगा; किन्तु भाषाशास्त्रीके निष्कर्षमें उस व्यवस्थासे कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। उसको यह मानना ही होगा कि कालान्तरमें वेदके मूल मंत्रोंका पाठान्तर और अर्थान्तर हो गया।

२. यह तो रही स्वर, वर्ण और शब्दोंके परिवर्तनकी बात। वेदमंत्रों के अर्थके विषयमें तो विवाद सदासे ही चला आ रहा है। आश्चर्यजनक बात यह है कि जितना समय बीतता जाता है, जितनी अधिक छानबीन होती जा रही है, विवादका क्षेत्र उतना ही विस्तृत होता जा रहा है। संस्कृत भाषाकी यह विलक्षणता है कि व्युत्पत्तिके आधारपर इसके प्रत्येक शब्दके अनेक अर्थ किये जा सकते हैं। मूल धातुमें प्रत्यय और उपसर्ग लगाकर सन्धि और विग्रह, आगम और परिहार द्वारा मनचाहा अर्थ लगाया जा

सकता है। यद्यपि शब्द भावानुगामी हैं और व्यवहारमें लौकिक संस्कृतके शब्दोंके अर्थ भी निश्चित हैं; किन्तु विवाद उपस्थित हो जानेपर प्रत्येक पक्ष उसी शब्दमें अपना अर्थ आरोपित कर सकता है। जैसा कि लेखकने इस ग्रन्थमें दिखाया है, यास्कने वेदार्थ करनेकी अनेक प्रणालियोंका और पक्षोंका उल्लेख किया है। वेदोंका अर्थ निम्नलिखित पक्षोंने अपने-अपने ढंगसे किया है और आदिसे अन्त तक अपने पक्षकी विचारप्रणालीकी सार्थकता वेदोंसे सिद्ध की है—

१. आधिदैवत	४. ऐतिहासिक	७. परिव्राजक
२. आध्यात्मिक	५. नैदान	८. पूर्वयाज्ञिक
३. आख्यानसमयपरक	६. नैरुक्त	९. याज्ञिक

लेखकने दिखाया है कि स्वयं यास्कने लगभग एक दर्जन निरुक्तकारों के मतका उल्लेख किया है और दिखाया है कि उन्होंने किस प्रकार एक शब्दके विभिन्न अर्थ करके मन्त्रोंको विभिन्नार्थक बनाया है। सायणके मतानुसार वेदोंमें तीन प्रकारकी भाषाओंका प्रयोग है—समाधि भाषा, परकीय भाषा और लौकिक भाषा। उदाहरणार्थ, इन्द्रके विभिन्न अर्थ ह—ईश्वर, देव, ज्ञान, विद्युत्। इसी तरह वृत्रके विभिन्न अर्थ असुर, अज्ञान, मेघ और असुरोंके राजा किये जाते हैं। पृश्निके इतने अर्थ हैं—मरुतोंकी माता, पृथ्वी, आकाश, मेघ। इसी तरह गौ शब्दके अर्थ गाय, किरण, जलधारा, इन्द्रिय और वाणी हैं। ऋग्वेदके प्रथम मंडलके १६४ वें सूक्तके पैंतालीसवें मंत्रकी व्याख्या सायण और पतंजलिने ७ प्रकारसे की है। स्वामी दयानन्दने तो ऐतिहासिक या भौगोलिक नामोंका भी यौगिक अर्थ किया है। भरद्वाज, वसिष्ठ और विश्वामित्रका अर्थ वह क्रमशः मन, प्राण और कान करते हैं। अनेक यूरोपीय विद्वानों, विशेषकर डाक्टर रेलेकी तो यह धारणा है कि वेदमें देवताओंके क्रियाकलाप मनुष्य के मन और चैतन्यकी विभिन्न क्रियाओंके द्योतक हैं।

वेदार्थके सम्बन्धमें इतनी मतविभिन्नता देखकर और सम्भवतया

वितंडावादसे हताश होकर एक सम्प्रदाय ही ऐसा उत्पन्न हो गया—कौत्स सम्प्रदाय–जिसने प्रचार किया कि मन्त्रोंका कुछ अर्थ ही नहीं–"**अनर्थका हि मंत्राः।**" उनका मत है कि वेदमंत्रोंका उच्चारण मात्र कर देनेसे ही फलकी सिद्धि हो जाती है।

३. वेदोंके अर्थका विचार करते हुए इस बातको भी दृष्टिमें रखना बहुत आवश्यक है कि जो अर्थ किया जाय, वह ऐतिहासिक दृष्टिसे, पूर्वापर सम्बन्धकी उपयुक्ततासे, भाषाके विकास-क्रमकी स्थितिसे, पूर्वोत्तर विचार-धाराओंकी क्रमानुगत शृंखलासे तथा मंत्र-रचयिता या मंत्रद्रष्टाकी तत्कालीन संभावित भौतिक तथा मानसिक परिस्थितियोंके सामंजस्य द्वारा समर्थित हो। खोज-शोध करनेवाले निष्पक्ष विद्वानोंका वैज्ञानिक दृष्टिकोण यही है। पर इस तरहका अनुशीलन विना सारा जीवन खपाये बड़ेसे बड़े विद्वान्‌को भी उपलब्ध नहीं। इसके लिए वैदिक साहित्यके रचनाकालसे लेकर आजतक, अबतक, जो अनुशीलन हो चुका है, उस सबका ज्ञान होना चाहिये। कितना दीर्घकाल है यह और कितनी विवादास्पद है इसकी दीर्घता! वेदोंका रचनाकाल श्रद्धालुओंकी दृष्टिमें अनादि, पाश्चात्त्य विद्वानोंकी दृष्टिमें साढ़े तीन हजार वर्षसे लेकर पांच हज़ार वर्ष तक, लोकमान्य तिलकके मतसे १० हज़ार वर्ष और पुस्तकके विद्वान लेखक तथा भूमिकालेखकके मतसे यह समय २५ हज़ार वर्षसे ५० हज़ार वर्ष तक है। इतने लम्बे इतिहासकी परम्पराओंका सामंजस्य बिठाना तो दूर, इसकी स्थूल घटनाओंका ज्ञान प्राप्त करना भी कठिन है। तथ्यकी प्राप्ति तो और भी कठिन है।

कहते हैं, अंग्रेज जातिके पराक्रमी पर्यटक और विद्वान् सर वाल्टर रेले जब राजनैतिक विरोधके कारण 'टवर आफ लन्दन'के बन्दीगृहमें बन्द थे, तो उन्होंने अवकाशका सदुपयोग करनेके लिए संसारका इतिहास लिखना प्रारम्भ किया। जब वह लिख रहे थे तो एक दिन जेलके दरवाजेपर उन्होंने हल्लागुल्ला सुना। खिड़कीसे झांककर देखा तो कोई विशेष घटना घटित

हो जानेके लक्षण नजर आये। नीचे जाकर उन्होंने जेलरोंसे पूछा कि क्या बात है? जेलरोंने बताया कि किसी आदमीकी हत्या हो गयी है। आगे छानबीन की तो यह पता ही न चला कि हत्या कैसे और किसके द्वारा हुई। हताश होकर उन्होंने कहा, "जब मैं अपनी नाकके नीचे घटित घटनाका भी तथ्य मालूम न कर सका, तो मैं संसारका इतिहास क्या खाक लिखूंगा?" उन्होंने कलम फेंक दी।

यदि वेद-सम्बन्धी मूल साहित्य भी पूरा पूरा प्राप्त हो जाय, विशेषकर संहिताएँ और ब्राह्मणग्रन्थ, तो मूलपाठों और व्याख्याओंके सादृश्यके आधार पर बहुतसे अस्पष्ट स्थलोंका स्पष्टीकरण हो जाय। ऋग्वेदकी २१ शाखाओंमें केवल १ और यजुर्वेदकी १०० शाखाओंमें केवल ५ ही उपलब्ध हैं। सामवेदकी एक हजार और अथर्ववेदकी ९ शाखाओंका उल्लेख मिलता है। इस प्रकार वेदकी ११३० शाखाओंकी सम्भावना मुक्तिकोपनिषद्के उल्लेखसे ध्वनित होती है। इनमेंसे केवल ११ संहिताएँ ही प्रकाशमें आयी हैं।

४. वैदिक साहित्य अपने समूचे आनुषंगिक ग्रन्थोंके प्रकाशमें जिस सभ्यता और संस्कृतिका दिग्दर्शन कराता है, वह सहस्राब्दियोंके क्रमिक विकासके आधारपर ही समझी जा सकती है। देशके विभिन्न प्रदेशोंमें, जातिके विभिन्न वर्गोंमें और समाजके विभिन्न स्तरोंमें अनेक समयोंमें अनेक प्रकारकी जीवनचर्या और उससे उत्पन्न होनेवाली सांस्कृतिक मान्यताएँ रही हैं। परम्पराएँ भी चली हैं और स्वतन्त्र चिन्तन भी चला है। **'स्तोमं जनयामि नव्यम्'**—(ऋ० १-१०९-२) मैं नया स्तोत्र बनाता हूं—यह कहनेवाला कवि और द्रष्टा पुरातन संस्कृतिको वहन करके ही संतुष्ट नहीं हुआ होगा, उसने उस संस्कृतिके विकासमें नई भावनाओं और नई प्रेरणाओंका सृजन भी किया होगा।

वैदिक साहित्यका बहुत बड़ा भाग यज्ञ, अनुष्ठान और क्रियाकांडके विधि-विधानोंसे सम्बन्धित है। यह विधान इतने गूढ़ और रहस्यमय थे अथवा यों कहें कि यह इतने दुर्बोध तथा दुर्गम बना लिये गये थे कि ब्राह्मणोंके अतिरिक्त अन्य किसी वर्गका इनपर अधिकार ही नहीं रह

गया था और न कोई इनके विकासमें नये कृतित्वका योगदान दे सकता था। यथार्थ बात यह प्रतीत होती है कि वैदिक क्रियाकांडके समर्थक गुरु-पुरोहितोंने प्राणपणसे यही प्रयत्न किया है कि उनकी यज्ञानुष्ठानमयी संस्कृति जीवन और कालके परिवर्तनोंकी छायासे बची रहे और वह सदा उनकी प्रतिष्ठा, अधिकार और अर्थोपार्जनका चिरन्तन साधन बनकर वंशके लिए धरोहरका काम करती रहे।

देशमें बसनेवाली बहुसंख्यक आर्येतर जातियोंके प्रबल प्रभावसे बचने के लिए ही आर्योंने अपने ऊपर विधि-निषेधात्मक बन्धन लगाये थे। वर्णाश्रमकी व्यवस्था भी इसी उद्देश्यसे की गयी मालूम होती है। इस योजना का लौकिक, आर्थिक या राजनैतिक उद्देश्य कुछ भी रहा हो, इसका एक सांस्कृतिक सुखद परिणाम यह निकला कि वेद-ग्रन्थोंकी धरोहर सुरक्षित रह सकी। यदि इतर जातियोंके तत्कालीन साहित्यका संसारसे लोप हो गया है, तो उसका एक कारण यह भी है कि उन जातियोंके साहित्यसर्जकों को किसी ऐसी उद्दाम प्रेरणाका आकर्षण प्राप्त नहीं था, जो उनके वंशजोंके लिए अधिकार, अर्थ और धार्मिक नेतृत्वके अर्जन और संरक्षणकी आधार-शिला हो सकती। इसीलिए वैदिक ऋत्विकोंके वंशजोंको उनकी सूझबूझ और नीतिज्ञताकी सराहना अवश्य करनी होगी। वेदके अन्य अध्येताओंके लिए भी ब्राह्मण-वर्गका यह महारथी प्रयत्न आकर्षणका विषय है।

५. जैसा कि ऊपर लिखा गया है, वैदिक संस्कृतिके व्यवहारिक रूपमें यज्ञानुष्ठानोंका विस्तृत विधि-विधान बहुत बड़ा महत्त्व रखता है। सोम, हवि और पाक संस्थाओंके सात-सात यज्ञोंकी गणनाके अनुसार नीचे लिखे २१ प्रकारके यज्ञोंका विस्तृत वर्णन वैदिक साहित्यमें मिलता है—

१ अग्निष्टोम, २ अत्यग्निष्टोम, ३ उक्थ्य, ४ षोड़शी, ५ वाजपेय, ६ अतिरात्र, ७ आप्तोर्याम, ८ अग्न्याधेय, ९ अग्निहोत्र, १० दर्श, ११ पौर्णमास, १२ आग्रायण, १३ चातुर्मास्य, १४ पशुवन्ध, १५ सायंहोम, १६ प्रातर्होम, १७ स्थालीपाक, १८ नवयज्ञ, १९ वैश्वदेव, २० पितृयज्ञ और २१ अष्टका।

प्रत्येक अनुष्ठानमें कितने प्रकारकी क्रियाएँ होती थीं और प्रत्येक क्रियाके लिए किस प्रकार अलग अलग मंत्रोंका और अनुयोगोंका विधान था, इसका अनुमान उन ४६ क्रियाओंकी सूचीसे लगेगा, जो दर्श या पौर्ण-मासके (क्योंकि कहीं कहीं दोनोंको एक माना गया है) यज्ञके अनुष्ठानमें करनी पड़ती है। यह सूची इस ग्रन्थके 'यज्ञ-रहस्य' नामक अध्यायके अन्तमें दी हुई है।

जिन यज्ञोंके अनुष्ठानके लिए इतने लम्बे-चौड़े क्रियाकांडका उल्लेख है, उनके सम्बन्धमें यह भी अभी विवादग्रस्त है कि इन यज्ञोंमें पशुबलि होती थी या नहीं। ऐतिहासिक दृष्टिसे वेदोंका अध्ययन करनेवालोंका स्पष्ट मत है कि वेदोंमें नरमेध, अश्वमेध और अजमेध यज्ञसे मनुष्यकी, घोड़ेकी और बकरेकी आहुतिसे अभिप्राय है। ऋग्वेदमें 'पक्वं वाजिनम्'से 'पकाये हुए घोड़े'के खानेका अभिप्राय झलकता है। पर, आजके दिन लाखों शाकाहारी ब्राह्मणोंका मत है कि (१) यज्ञोंमें जीव-बध नहीं होता था। नर, अश्व और अज शब्दोंका आध्यात्मिक अर्थ है। पशुबलिके स्पष्ट उल्लेखका परिहार इस प्रकार भी किया जाता है कि (२) पशुयज्ञों में आटेके पिंड आदिका अनुकल्प (बदल) चलता था या (३) पशुबलिका विधान तामसिक लोगोंके लिए था अथवा यह कि (४) कलियुगमें पशु-बलिका निषेध है। विद्वान् लेखकने अभिमत दिया है, "लेखकके मतसे चारों उत्तर यथास्थल ठीक हो सकते हैं।" अर्थात् विवादकी सामग्री यथावत् मौजूद है।

तटस्थ दृष्टिसे देखें तो समझ जायंगे कि यज्ञकी भावना, यज्ञके दार्श-निक आधार और धार्मिक प्रयोजनके पीछे विकासका एक लम्बा इतिहास है। वैदिक यज्ञोंके लम्बे और गूढ़ क्रियाकांडको कितना ही बांधकर और शिकंजेमें कसकर रखा गया हो, यज्ञकी आधारभूत मूलभावनाओंमें चूड़ान्त परिवर्तन होता रहा है। मनुष्यकी बलिसे लेकर वनस्पतियों द्वारा यज्ञ सम्पादित करनेके शास्त्रीय विधान तक पहुंचते-पहुंचते मनुष्यको अनेक महती और भीषण धार्मिक क्रान्तियोंमेंसे गुजरना पड़ा होगा। यह भी

स्पष्ट है कि इस क्रान्तिके नेतृत्व और सफल सम्पादनमें उन मनीषियोंका प्रभाव उत्तरोत्तर क्रियाशील होता रहा होगा, जो अहिंसक संस्कृतिके अनुयायी या समर्थक थे। इस विकास–प्रयत्नकी झांकी हमें शतपथमें ही मिल जाती है।

"आदिमें बलिके लिए पुरुष या ईश्वर मनुष्यके शरीरमें गया। परन्तु **तन्नारोचत**—वह उसको अच्छा नहीं लगा। फिर वह गऊके शरीरमें गया। वह भी अच्छा नहीं लगा। इसके बाद घोड़े, फिर भेड़, बकरीके शरीरोंको छोड़ा। अन्तमें उसने औषधियोंमें प्रवेश किया। यह उसे अच्छा लगा। इस छोटेसे आख्यानमें उन सैकड़ों या हजारों वर्षोंका इतिहास बन्द है, जिनमें नरमेधसे आर्ययाजक फल, फूल, पत्तियोंकी बलि या हवि तक पहुंचे।" (श्रीसम्पूर्णानन्द लिखित 'आर्योंका आदि देश', पृष्ठ २३८)।

गीताके समय तक पहुंचते पहुंचते यज्ञ शब्दके अर्थमें, यज्ञके प्रयोजनमें ही आमूल परिवर्तन हो गया। इसका भाव हो गया, **'निःस्वार्थ पूजन'**। महात्मा गांधीने इस भावको और आगे बढ़ाया और यज्ञका अर्थ किया, **'परोपकार'**। गीताने यज्ञका अर्थ और प्रयोजन ही नहीं बदला, उसने क्रियाकांडका सर्वथा परिहार भी कर दिया। इससे भी अधिक उसने वैदिक देवताओंकी उपासनाका भी बन्धन नहीं रखा। गीताने कहा—

"येऽप्यन्यदेवता-भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥" ८.२३.

हे कौन्तेय! जो श्रद्धापूर्वक दूसरे देवताको भजते हैं, वे भी भले ही विधिरहित भजें, मुझे ही भजते हैं।

यहां हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि गीता एक उपनिषद् है; अतः वेदका महत्त्वपूर्ण अंग है। गीताका कथन वेदका ही कथन है।

किन्तु कहां ऋग्वेदकी यह याचना—

"यावया वृक्यं वृकं यवयस्तेन भूम्ये अथा नः सुतरा भव।"
(ऋ० १०.१२७.६)

हमसे भेड़ियोंको दूर करो, चोरोंको दूर करो, हे रात्रि, हमारे लिए पार जाने योग्य (सुतर) बनो।

और कहां गीताका निष्काम कर्म, त्याग-भावनायुक्त पूजन, क्रिया-कांडका अभाव और देवताओंकी मान्यताके सम्बन्धमें छूट ।

यह हम मानते हैं कि गीताने जिस दर्शनका विकसित रूप उपस्थित किया, वह दर्शन वेदोंमें बीज रूपसे है; किन्तु वह तो संस्कृतिका आभ्यन्तर रूप है। वेदोंमें संस्कृतिका जो बाह्य और व्यावहारिक रूप है, वह यज्ञोंके सविधि अनुष्ठान और अनेक देवता-शक्तियोंकी निर्दिष्ट उपासनापर आश्रित है। ऊपर हमने यह दिखाया है कि स्वयं वैदिक परम्परामें मंत्रोंके अर्थों, यज्ञके प्रयोजनों, देवताओंकी पूजाभावना और कर्मकांडकी उपयोगिता आदिके विषयमें विभिन्न मत हैं, जो संस्कृतिके मूलाधार हैं। ऐसी अवस्था में संस्कृतिके किस रूपको और किस मान्यताको वैदिक संस्कृति समझा जाय ? वेदमें आस्था रखने और वेदको अन्तिम प्रमाण माननेके लिए वैदिक युगकी किस संस्कृति और संस्कृतिकी कौनसी मान्यताको वैदिक संस्कृति माना जाय और किसे न माना जाय ?

विद्वद्वर सम्पूर्णानन्दजीने 'आमुख'में लिखा है—

"ईश्वरकी सत्ताको स्वीकार न करनेवाला भी हिन्दू हो सकता है; परन्तु वेदको न माननेवाला हिन्दू नहीं हो सकता। लोकमान्य तिलक के शब्दोंमें "**प्रामाण्यबुद्धिर्वेदेषु**"—वेदोंको स्वतः प्रमाण मानना, हिन्दू होनेका अव्यभिचारी लक्षण है।"

इस ग्रन्थके लेखक श्रीरामगोविन्दजी त्रिवेदीने भी श्रीसावरकरके 'हिन्दुत्व' नामक ग्रन्थके आधारपर यह निष्कर्ष निकाला है—

"इस दृष्टिसे तो आर्य शब्दसे हिन्दू शब्द नवीनतर नहीं है। फलतः हिन्दूधर्मका अर्थ वैदिक धर्म है और हिन्दूसंस्कृतिका अर्थ वैदिक संस्कृति है।" (पृष्ठ ३४३)।

श्रीसम्पूर्णानन्दजीने लोकमान्य तिलकके मतका उल्लेख करते हुए जो वेदोंको स्वतः प्रमाण माननेवालोंको ही हिन्दू कहा है और श्रीत्रिवेदीजी ने वैदिक संस्कृतिका अर्थ हिन्दू-संस्कृति किया, उसे स्वीकार करनेमें जो आपत्तियां हैं, उनपर विचार करना आवश्यक है।

स्वयं इस ग्रन्थमें ही श्रीत्रिवेदीजीने लोकमान्य तिलकके मन्तव्यों और निष्कर्षोंको पृष्ठ ३७ पर दिया है, जिनके अनुसार निम्नलिखित बातों की प्रामाणिकता वेद-सिद्ध है—

१. अधिकारि-भेद अथवा उपासनाकी शैलीमें रुचि-स्वातन्त्र्य ।

२. उपास्य देवताके विषयमें नियमका अभाव अर्थात् जो जिस देवको माने, उसीकी उपासना करता रहे ।

३. वैदिक धर्मके मूल प्रवर्तकका अभाव ।

४. वैदिक धर्मका सब धर्मोंसे अविरोध ।

इसका यह अर्थ हुआ कि वेदमें सब देवोंकी सब प्रकारकी धार्मिक उपासनाको समर्थन प्राप्त है और वेदका किसी धर्मकी किसी मान्यतासे विरोध नहीं । तब फिर वेद इस मान्यताके समर्थनके लिए भी प्रमाण बन जाते हैं कि संसारमें जितने भी धर्म और दर्शन हैं, चाहे वे वैदिक हों या अवैदिक, आर्य हों या आर्येतर, भारतीय हों या अभारतीय, सब वैदिक हैं । ऐसी अवस्थामें वेदको प्रमाण माननेका कोई अर्थ ही नहीं रह जाता । ईश्वर, यज्ञ, धर्म और नैतिकताको न माननेवाला हिन्दू ब्राह्मण वेदको किसलिए, किस बातका प्रमाण मानेगा, यह समझमें नहीं आता । फिर भी वह हिन्दू ही रहेगा । उसके हिन्दुत्वका वेदकी प्रामाणिकतासे कोई सम्बन्ध नहीं ।

वास्तवमें 'वैदिक' और 'हिन्दू' शब्दोंको समानार्थक मानना ठीक नहीं; क्योंकि वैदिक शब्द एक विशेष प्रकारकी धार्मिक और सांस्कृतिक परम्पराओं और मान्यताओंका द्योतक है या कालपरक शब्द है, जब कि हिन्दू शब्द प्रधानतः भौगोलिक सीमाओंका संकेत करनेवाला, देश या तद्देशवर्ती जनताका द्योतक है । यह बात अब प्रायः सभी शिक्षित व्यक्ति जानते हैं कि मूलतः सिन्धु शब्दसे ही हिन्दू शब्द बना है; क्योंकि प्राचीन कालमें बाबुलके लोग (बैविलोनियन) हमारे इस देशको सिन्धु कहते थे और वैदिक सिन्धुहीका पारसियोंकी भाषामें 'हिन्दू' उच्चारण पाया जाता है ।

सिन्धु अथवा हिन्दू नदीकी सीमाके आधारपर उस पार बसनेवाले जन-समुदायको पारसियों, यूनानियों आदिने हिन्दू कहा।

यों तो हिन्दू शब्दकी व्याख्या इस प्रकार भी की गयी है—

"हिंसया दूयते चित्तं तेन हिंदुरितीरितः।"

जिसका चित्त हिंसासे दुखे, वही हिंदू है।

किन्तु सबसे सरल, निर्विवाद और सम्भवतया आजतक उपलब्ध ऐतिहासिक सत्यके सबसे अधिक निकट जो परिभाषा हुई है, वह श्रीसावरकर की है। उन्होंने घोषित किया है—

"आसिन्धोः सिन्धुपर्यन्ता यस्य भारतभूमिका।
पितृभूः पुण्यभूश्चैव स वै हिन्दुरिति स्मृतः॥"

अर्थात् सिन्धु नदसे लेकर सिन्धु (सागर=कन्याकुमारी) पर्यन्त भारतभूमिको अपनी पितृभूमि और पुण्यभूमि माननेवाला व्यक्ति हिंदू है।

राष्ट्रिय दृष्टिकोणसे और धार्मिक तीर्थोंके अस्तित्वकी दृष्टिसे भारतवर्ष वैदिक आर्यों (जिनके पश्चिमोत्तर यूरोप, एशिया माइनर और उत्तरी ध्रुवप्रदेशसे आकर बसनेकी मान्यता विद्वानोंमें प्रचलित है) की अपेक्षा उन व्यक्तियोंकी पितृभूमि और पुण्यभूमि निश्चित रूपसे अधिक है, जिनके पूर्वज भारतवर्षके मूलनिवासी माने जाते हैं।

इतिहास और पुराण साक्षी हैं कि इस देशका नाम भारतवर्ष राजा भरतके नामपर निर्धारित है। भरत उन ऋषभ भगवान्के पुत्र थे, जिन्हें आदिब्रह्मा कहा गया है। ऋषभ जैनियोंके प्रथम तीर्थंकर हैं। इनका वर्णन श्रीमद्भागवतमें निम्नलिखित शब्दोंमें आया है—

"इति ह स्म सकलवेदलोकदेवब्राह्मणगवां परमगुरोर्भगवत ऋषभाख्यस्य विशुद्धचरितमीरितं पुंसो समस्तदुश्चरितानि हरणम्।"

इस तरह (हे परीक्षित) सम्पूर्ण वेद, लोक, देव, ब्राह्मण और गौके परम गुरु भगवान् ऋषभ देवका यह विशुद्ध चरित्र मैंने तुम्हें सुनाया। यह मनुष्योंके समस्त पापोंको हरनेवाला है।

इन भगवान् ऋषभदेवके गृहत्याग और दिगम्बरत्वके विषयमें वहां लिखा है—

"उन्होंने केवल शरीरमात्रका परिग्रह रखा और सब कुछ घरपर रहते ही छोड़ दिया। अब वे वस्त्रोंका भी त्याग करके सर्वथा दिगम्बर हो गये। उस समय उनके बाल बिखरे हुए थे। उन्मत्तकासा वेश था। इस स्थितिमें वे आहवनीय, अग्निहोत्रकी अग्नियोंको अपनेमें ही लीन करके संन्यासी हो गये और ब्रह्मावर्त देशसे बाहर निकल गये।" (भागवत का अनुवाद ५.२८)।

आगे चलकर लिखा है कि योगमायासे भगवान्का शरीर अनेक देशोंमें विचरता रहा और वह दैववश कोंक, वेंक और कुटक आदि दक्षिण कर्णाटकके देशोंमें गया।

यदि हम उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्रीके आधारपर उक्त वर्णनका भाव देखें तो पता लगेगा कि दिगम्बरी अवस्थामें भगवान् ऋषभदेवने कोंक, वेंक, कुटक और दक्षिण भारतमें जिस धर्मका प्रचार किया था, वह वेदोंमें निर्दिष्ट व्रात्यधर्म था, जो भारतवर्षके प्राचीनतर मूल निवासियों की नाग, यक्ष, द्रविड़ और राक्षस नामक जातियोंमें प्रचलित हुआ। व्रात्य का अर्थ था व्रतमें दीक्षित।

अथर्ववेदमें व्रात्यके सम्बन्धमें लिखा है—

"व्रात्य आसीदीयमान् एव स प्रजापतिं समैरयत्।" (१५.१)

अर्थात् व्रात्यने अपने पर्यटनमें प्रजापतिको शिक्षा और प्रेरणा दी। सायणने इस पदकी व्याख्या करते हुए लिखा है—

"कंचिद्विद्वत्तमं महाधिकारं पुण्यशीलं विश्वसंमान्यं
कर्म परैर्ब्राह्मणविद्विष्टं व्रात्यमनुलक्ष्य वचनमिति मन्तव्यम्।"

अर्थात् यहाँ उस व्रात्यसे मन्तव्य है, जो विद्वानोंमें उत्तम, महाधिकारी, पुण्यशील और विश्वपूज्य है और जिससे कर्मकांडी ब्राह्मण विद्वेष करते हैं।

इन व्रात्य मुनियोंका जहां जहां वर्णन आया है, उसमें इनकी यही विशेषता दिखायी है कि वे शरीरसे निर्मोह, योगियोंकी तरह विचरते थे और इन्द्रियनिग्रह, त्याग, त्रिगुप्ति (मन, वचन, कायको संयत रखने) का उपदेश देते फिरते थे। यह वर्णन ऊपर दिये गये भगवान् ऋषभदेवके

वर्णनसे मिलता जुलता है, जिससे प्रकट होता है कि यह उनके व्रतमें दीक्षित साधुओं और मुनियोंका वर्णन है। यह वेदको नहीं मानते थे, यह भी स्पष्ट है।

सम्भवतया इन्हीं व्रात्योंका वेदमें 'अन्यव्रत' नामसे उल्लेख है, जिनके विरुद्ध बहुत चुभती हुई भाषाका प्रयोग किया गया है—

"अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः
त्वं तस्या मित्रहन्वधर्दासस्य दम्भय।"

यह हमारा अपमान करनेवाला दस्यु अकर्मा (गृहत्यागी), अन्यव्रत (दूसरे व्रत-धर्ममें दीक्षित) और अमानुष (दूसरी जातिका) है। हे इंद्र, तुम इस शत्रुका, इस दासका, बध करो।

इस प्रसंगसे यह मालूम होता है कि दक्षिण देशका साधारण जन-समाज, विशेषकर वैदिक कालसे पूर्वके मूल निवासी बहुसंख्यामें व्रात्योंके अनुयायी थे और उनका प्रभाव वैदिकोंमें भी इतना अधिक बढ़ गया था कि अपनी आस्था और कर्मकांडको अक्षुण्ण रक्षणमें तत्पर याज्ञिक पुरोहित इस प्रभावके आघातसे विचलित हो गये थे।

वैदिक धर्मकी मान्यताको अस्वीकार करनेवाले एक और वर्गका उल्लेख वेदोंमें आता है, जिन्हें 'पणि' कहा गया है। बादमें इनका नाम 'पणिक' और उसके बाद 'वणिक' हो गया मालूम होता है। ये लोग व्यापारी थे। हमारे साहित्यमें पणस् (बेचने योग्य वस्तु), पण्यशाला (दूकान या हाट), पण्यपति (व्यापारी) आदि शब्द इसी अर्थके द्योतक हैं। पणियों के सम्बन्धमें वेदमें जिस प्रकारका उल्लेख आता है, उससे धारणा बनती है कि ये लोग पूर्वी समुद्रके किनारेके आसपास रहते थे। बल इनका वीर नेता था। यह वैदिक देवता इन्द्रको नहीं मानते थे। ये धन कमाने तथा पशु-संग्रहमें निपुण थे।

व्यापारकुशल पणियोंने पूर्वी और दक्षिणी समुद्रके सुदीर्घ तटोंपर बस्तियां बसायी और अन्य देशोंसे व्यापार संबंध जोड़ा था। वेदमें एक मनोरंजक उल्लेख मिलता है कि जब पणि लोग वृहस्पतिकी गायें उठा ले गये, तो इन्द्रने सरमा नामक दूतीको पता लगानेके लिए भेजा।

सरमाने पता लगा लिया और पणियोंसे कहा–'इन्द्रने गायें मंगायी हैं, वापिस दो।' इसपर पाणियोंने उत्सुक होकर पूछा–

"कीदृक् इन्द्रः सरमे कादृशीका यस्येदं दूतीरसरः पराकात्।"

हे सरमे, जिस इन्द्रकी दूती बनकर तुम इतनी दूरसे आयी है, वह इन्द्र कैसा है और उसकी सेना कैसी है ?

अर्थात् पणि लोग इन्द्रको जानते ही नहीं थे। इसीलिए इन्हें 'अनिन्द्र' (इन्द्रको न माननेवाले) कहा है।

"दहामि संयहीरनिन्द्रा।"

जो अन-इन्द्र हैं, उन्हें जला देता हूं और उनका संहार कर देता हूँ।

पणि लोग यदि मूल रूपसे आर्य नहीं थे, तो भी इतना तो सिद्ध होता है कि आर्योंसे इनका सम्पर्क था। यह सम्पर्क अमैत्रीका था, जिसका प्रधान कारण पणियोंकी अवैदिकीय मान्यता और इन्द्रकी अवहेलना था। यह अवैदिकीय संस्कृति इन पणियोंको कहांसे मिली ?

इस प्रश्नका उत्तर हमें इस बातसे मिलेगा कि पणियोंका सम्पर्क आर्योंके अतिरिक्त अन्य किसी जातिसे था या नहीं। यह बात ध्यानमें रखनी होगी कि वेदमें जितना भूगोल मिलता है अथवा वैदिक जातिका क्रीड़ास्थल जितना क्षेत्र था, भारतवर्ष उतना ही नहीं था। पूर्वी और दक्षिणी समुद्रके आसपास विन्ध्यगिरिकी उपत्यकाओंमें और दक्षिण भारत में एक प्राचीनतर संस्कृतिका प्रचलन था, जिसके उत्तराधिकारी उस देश-खंडकी मूल जातियां यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, नाग और द्राविड़ आदि थीं। इन जातियों और उपजातियोंकी सभ्यताको आज 'द्रविड़ सभ्यता'के सामूहिक नामसे उपलक्षित किया जाता है। उस सभ्यताका कोई वेद जैसा प्राचीन ग्रन्थ प्रकाशमें नहीं आया है। शताब्दियोंसे उत्तर भारतका जो महत्त्व रहा है, उसने दक्षिण भारतके वैभवको उसकी विशाल संस्कृति को, उपेक्षाके तमिस्र पटसे आवृत रखा है। वैदिक कालमें इन जातियोंका प्रभाव उपेक्षणीय नहीं था, यह इसी बातसे प्रगट है कि वेदके सैकड़ों मंत्रोंमें अत्यन्त करुण रूपसे प्रार्थना की गयी है कि वेदमें आस्था न रखनेवाले, यज्ञ-विरोधी, 'व्रात्यों' 'अन्यव्रतों' और 'अनिन्द्रों'का विनाश हो, उनसे हमारी

रक्षा हो और वे हमारा अपमान न करें आदि। वेदेतर संस्कृतिके अनुयायी द्रविड़ोंका प्रभाव पणियोंपर पड़ा था और इसीलिए पणि भी 'अनिन्द्र' (इन्द्रको न माननेवाले) हो गये थे। श्रीसम्पूर्णानन्दने 'आर्योंका आदि देश'में लिखा है:—

"राजपूताना समुद्रके दक्षिणी-पश्चिमी तटपर इन पणियोंको वह द्रविड़ मिले होंगे, जो यहां पहलेसे बसे थे। इनके साथ मिलकर राष्ट्रमें भी संकरता आयी होगी और संस्कृतिमें भी।"

यह इतिहास-सम्मत है कि पणि लोग समुद्र पारकर दूर देशोंमें गये हैं और वहां अपनी आर्थिक और सांस्कृतिक प्रभुता स्थापित की है।

सुमेर, अक्काद्, ईराक, ईरान, यूनान और बैबिलोन आदि प्राचीन सभ्यताओंके संबंधमें गत एक शताब्दीमें यूरोपके विद्वानों, अन्वेषकों और पुरातत्त्वविदोंने जो अध्ययन किया है, उसका मूलाधार वह पुरातत्त्व-सामग्री है, जो उक्त देश-प्रदेशोंकी खुदाइयोंमें समय समयपर प्राप्त हुई है। यहांसे प्राप्त मूर्तियोंके गठन, आकृति और शैलीमें दक्षिण भारतकी आकृति और शैलीकी समानता देखकर विद्वान् विस्मित थे। समझमें नहीं आता था कि सुमेरु, अक्कादसे लेकर दक्षिण भारततक व्याप्त यह सांस्कृतिक प्रभाव और सम्पर्क कब कहांसे प्रारम्भ हुआ और कहां समाप्त हुआ। भारतवर्षमें जो स्तूप, मूर्तियां और स्थापत्यके भग्नावशेष मिले, वह दो ढाई हजार वर्षों से अधिक पुराने नहीं थे। यह सब मौर्यकालीन सामग्री थी, जब कि उक्त विदेशी प्रदेशोंमें प्राप्त पुरातत्त्व-सामग्री ४–५ हजार वर्ष पुरानी थी। बीचकी कड़ी हमें मिल नहीं रही थी।

दक्षिण भारत और सुमेर, अक्कादकी मूर्तियोंमें जो साम्य है, उसकी व्याख्या करनेवाली मध्यवर्ती कड़ी हमें महेंजोदरो और हरप्पाके भग्नावशेषोंमें मिल गयी। महेंजोदरो (सिन्धमें लरकाना जिला) की खोज और खुदाईने भारतीय इतिहासके मूर्त पुरातत्त्वपर लगभग ६ हजार वर्षों की प्राचीनताकी छाप लगा दी। महेंजोदरोके प्रकाशमें आनेसे पूर्व हमारा पुरातत्त्व–अध्ययन मौर्यकालीन कलासे प्रारम्भ होता था। अब हम भी

सुमेर, अक्काद और बैबिलोनियनोंके मुकाबलेमें अपने खंडहरोंकी बुजुर्गी से भी अपना बड़प्पन प्रमाणित कर सकते हैं।

सर जान मार्शलने महेंजोदरोकी खुदाइयोंका विस्तृत विवरण 'महेंजोदरो एण्ड इण्डस सिविलिजेशन' नामक ग्रन्थकी तीन जिल्दोंमें किया है। मार्शलने महेंजोदरोकी खुदाईके विभिन्न स्तरोंसे प्राप्त मूर्तियों और सिक्कोंके चित्र प्रकाशित किये हैं। यों तो ये सभी चित्र भारतीय संस्कृतिके अध्ययनके लिए अनिवार्य और अमूल्य हैं; किन्तु हमारे प्रयोजनके लिए वहांसे प्राप्त कुछ मूर्तियोंका उल्लेख करना अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी है। पहली जिल्दकी १२वीं प्लेटकी १३, १४, १५, १८, १९ और २२वीं टैब्लेट्स (टिकड़ों)में जो मूर्तिचित्र दिये गये हैं, वह ऐसे योगियोंके हैं, जो कायोत्सर्ग अर्थात् खड़ी मुद्रामें हैं, ध्यानमग्न हैं और नग्न दिगम्बर हैं। मूर्तियां जटा युक्त हैं। कहीं सिरपर, कहीं पार्श्वमें त्रिशूल बने हैं। हाथी, हिरण, बैल, सिंह आदि पशुओंकी मूर्तियां अंकित हैं। धर्मचक्र और विनीत भावसे बैठे उपासक, उपासिकाओंके चित्र भी अंकित हैं। मूर्तियोंके दिगम्बर अवस्थामें होनेके कारण तत्काल ही धारणा बनती है कि यह जैन-मूर्तियां हैं। इस धारणाकी पुष्टि इस बातसे भी होती है कि कायोत्सर्ग अर्थात् खड़ी अवस्थामें ध्यानमग्न मूर्तियां, जिनके आजानुबाहु नीचे लटके हुए हों, पलकें इस प्रकार नीचे झुकी हुई हों कि दृष्टिका केन्द्र नाकका अगला भाग हो, जैन-मूर्तियोंकी तक्षणशैलीकी विशेषता है। दक्षिण भारतमें श्रवण वेल्गोलामें ऋषभ-पुत्र भरतके छोटे भाई बाहुबलिकी विशाल कायोत्सर्ग दिगम्बर मूर्ति, जो 'गोमट्ट' नामसे प्रसिद्ध है, इस ध्यानमग्न मुद्राका उदाहरण है। महेंजोदरोसे प्राप्त मूर्तियोंकी एक और विशेषता यह है कि इन मूर्तियोंपर या तो फणधारी नाग अंकित हैं या इनके उपासकोंके सिरपर नागफण बनाकर यह लक्षित किया गया है कि ये उपासक नागवंशी हैं। जैनमूर्तियोंमें तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथकी मूर्तियोंके सिरपर नागफणका आच्छादन दिखाया जाता है, जिसका अभिप्राय यह है कि तपस्याके समय जब भगवान् पार्श्वपर उनकी अहिंसक संस्कृतिके विरोधी कमठ नामक

साधुने उपसर्ग किया था, तो नाग-जातिके राजा या नेता धरणेंद्रने रक्षा की थी। नागफण इसीका प्रतीक है। यह नागजाति, जिसे आज नागा कहा जाता है, भारतके प्राग्वैदिक कालके निवासियोंकी वंशज हैं, जिनकी संस्कृति वैदिक संस्कृतिसे भिन्न थी। हो सकता है, पार्श्वनाथ इसी नाग जातिकी विभूति हों। जैन-मूर्तियोंपर गन्धर्व, यक्ष, किन्नर आदि संस्कृति-रक्षक शासनदेवता और २४ तीर्थंकरोंके प्रतीक चिन्ह बैल, हाथी, घोड़ा, हिरण, सर्प, सिंह आदिके चिन्ह तथा उन चैत्य वृक्षोंका अंकन रहता है, जिनका संबंध प्रत्येक तीर्थंकरके ध्यानस्थलसे है अर्थात् उस वृक्षसे, जिसके नीचे ध्यान, धारणा करते हुए उन्होंने कैवल्य प्राप्त किया। महेंजोदरोकी मूर्तियोंमें इन प्रतीक-चिन्हों और चैत्य-वृक्षोंके अंकनकी बहुलता है। बहुत सम्भव है कि महेंजोदरोमें प्राप्त जटाजूटधारी दिगम्बर मूर्ति उन्हीं आदि ब्रह्मा ऋषभकी हो, जिनका उल्लेख श्रीमद्भागवतके आधारपर इस लेखमें अन्यत्र किया गया है। ऋषभ भगवान्का चिह्न वृषभ (बैल) है। यही बैल नन्दी रूपसे शिवका चिह्न है। ऋषभनाथके संबंधमें भारतीय साहित्यमें यह भी मान्यता है कि उन्होंने समाजकी व्यवस्था की और कृषिकर्मकी शिक्षा दी। कृषिके लिए बैलकी जो अद्भुत महत्ता है, उसके उपलक्षमें उसे देशका 'शिव' (कल्याण) मान लिया गया है और उस चिह्नको ऋषभ भगवान्की मूर्तिके साथ सम्बद्ध कर दिया गया है। ऋषभने जिस त्रिभेद-संयम अर्थात् मन, वचन, कायको वशमें रखनेका उपदेश दिया है, वहीं उनका त्रिदंड या त्रिशूल है। महेंजोदरोकी ध्यानस्थ योगी मूर्तियोंके सिरपर अवस्थित जिस त्रिकोणको जॉन मार्शलने सींग समझा है, वह उक्त त्रिशूल हो सकता है। यह बहुत सम्भव है कि कालान्तरमें ऋषभ और शिवके दो रूपोंकी अलग अलग मान्यता लेकर दो प्रकारकी मूर्तियां बन गयी हों और ऋषभके व्रात्य सम्प्रदायसे शिव या रुद्रका सम्प्रदाय भिन्न हो गया हो।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि महेंजोदरो जिस प्राचीनतम संस्कृतिका प्रत्यक्ष प्रमाण उपस्थित करता है, उसमें ध्यानस्थ दिगम्बर योगियोंकी या शिवकी प्रधानता है, उसमें यज्ञ और हवनकी अपेक्षा मूर्तिपूजाको

उपासनाका माध्यम माना है। वैदिक इन्द्रादिकी मुख्यता नहीं है। गायकी अपेक्षा बैलका अधिक महत्त्व है। मनुष्याकृतियों और मूर्तियोंका साम्य वैदिक आर्यकी अपेक्षा दक्षिणके द्राविड़ोंसे अधिक है। यह इस बातका प्रमाण है कि महेंजोदरोकी संस्कृति जिस सुमेर, अक्काद और चाल्डियन संस्कृतिका पूर्व रूप (अथवा वाड़ेलके अनुसार उत्तर रूप) है, उसका सीधा संबंध दक्षिण और पूर्व भारतकी मूल जातियोंकी संस्कृतिसे बैठता है, जिनकी सभ्यता वैदिक सभ्यतासे अधिक उन्नत और समृद्ध थी और जिनका सांस्कृतिक विकास अधिक वैज्ञानिक, प्रकृत और उच्च स्तरपर था। यह कैसे संभव है कि इस संस्कृतिने वैदिक संस्कृतिके ताने-बानेको अपने रँगमें न रंग लिया हो और यज्ञानुष्ठानके अतिरिक्त जो दार्शनिकता, नैतिकता और मानवता वेदोंमें ध्वनित होती है, वह इस संस्कृतिसे न प्रभावित हो। वैदिक कालमें कई सांस्कृतिक युग हुए होंगे और आचार-विचारमें गम्भीर परिवर्तन हुआ होगा।

आज हम पाते हैं कि स्वयं वैदिक धर्मको माननेवाले हिन्दुओंकी धार्मिक आस्था, आचार-विचार और दार्शनिक दृष्टिकोणमें वैदिककालीन संस्कृति के तत्त्वोंका अभाव है। कुछ उदाहरण लीजिये। वैदिक परम्पपरामें इन्द्रकी उपासना मुख्य है; आज शिव या दुर्गाकी पूजा होती है। वेदोंमें शिवपुत्र गणेश या विनायकको उपद्रवी कहा गया है; पर आज विना गणेश-वन्दनाके कोई मंगलकार्य प्रारम्भ ही नहीं हो सकता। आजकल गंगाको पतितपावनी और मोक्षदाग्निनी कहा जाता है, वैदिक कालमें गंगाका कोई महत्त्व ही नहीं था। उस जमानेमें सिन्धु और सरस्वतीकी धूम थी; आज हिमालय विश्वका महान् पर्वत है और शिवधाम है। वैदिक युगमें वह आंखों में ही नहीं चढ़ता था——उस समय विन्ध्यकी महत्ता थी। वैदिक लोग पुण्य करके यमपुरी जाते थे; आज वह पापियोंका नरक-धाम है। आज यदि कोई कुत्तोंपर बोझ लादे, गधोंसे रथ खिचवाये और घोड़ोंसे हल चलवाये, तो उसे लोग पागल कह दें और एक विनोदपूर्ण तमाशा लग जाय; किन्तु वैदिक आर्योंकी यह साधारण दिनचर्या थी। वैदिक युगमें उष्णीश (पगड़ी)

और द्रापी (बंडी)का फैशन था। आज हम टोपी और कुरता पहनते हैं; पर यह नहीं जानते कि टोपी और कुरता किस भाषाके शब्द हैं! और कहांसे आये।

कलाके क्षेत्रमें हम भारतीय संगीतको विश्व-संगीतमें बहुत ऊँचा स्थान देते हैं और अभिमानके साथ कहते हैं कि हमारा संगीत सामवेदसे उत्पन्न हुआ। स्वयं सामवेदकी इतनी महिमा है कि भगवान् कृष्णने अपने लिए उसे ही चुना––"वेदानां सामवेदोऽस्मि"–वेदोंमें मैं सामवेद हूँ––किन्तु आज हमारी संगीतपद्धति जिस षड्ज, ऋषभ, गंधार––सा रे ग म आदि सप्त स्वरोंपर अवलम्बित है, उन सात स्वरोंका सामवेदमें कहीं उल्लेख भी नहीं मिलता। जिस ॐ से संगीतकी उत्पत्ति हुई है, वह ॐ वैदिक संस्कृति में वेदेतर संस्कृतिसे आया, यह भी मान्यता है। नाटकके परदेके लिए जब हम सांस्कृतिक शब्दका प्रयोग करते हैं तो कहते हैं 'यवनिका'। यह यवनिका उन यूनानियोंकी देन है, जो यवन अर्थात् आयोनियाके निवासी थे।

इस तरह यह सिद्ध होता है कि भारतीय धर्म, दर्शन और संस्कृतिका वर्तमान रूप, आजके भारतीय समाजका संगठन और आजके आचार-विचार तथा व्यवहारका प्रचलन हजारों वर्षोंकी प्रागैतिहासिक तथा ऐतिहासिक क्रिया-प्रतिक्रियाओंका फल है। वैदिककालीन आर्य और उनसे पुराकालीन द्रविड़ जातियोंके वंश और उनकी विभिन्न मान्यताएँ अनेक धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक क्रान्तियोंके आवर्तनों और प्रत्यावर्तनोंमें घुल-मिलकर एक हो गयी हैं। सहस्राब्दियोंके अन्तर्जातीय सम्पर्क, चिन्तन और श्रमसे जिस संस्कृतिकी उपलब्धि हमें हुई है, उसे हम केवल भारतीय विशेषणसे ही व्यक्त कर सकते हैं। उसे मात्र हिन्दू संस्कृति कहना उसकी सीमाको संकुचित करना है। और उसे वैदिक संस्कृतिके अर्थमें समानार्थक बनाना तो सर्वथा ही असंगत है। राष्ट्रिय दृष्टिसे जैन, वैदिक और बौद्ध सब हिन्दू हैं; क्योंकि 'आसिन्धोः सिन्धुपर्यन्त' सबकी पुण्यभूमि और पितृभूमि समान है। सांस्कृतिक दृष्टिसे तीनों संस्कृतियां भिन्न हैं। तीनोंके योगदानसे निर्मित संस्कृतिको हिन्दू संस्कृति कहा जा सकता है। यह

संग्राहिका शक्ति ही हिन्दू संस्कृतिकी विशेषता है। वेदोंको अप्रमाण माननेवाले और हिंसामय वैदिक यज्ञके विधानके विरुद्ध विद्रोह करनेवाले तथागत बुद्धको भी हिन्दू संस्कृतिने अवतार-रूप माना है:—

"निन्दसि यज्ञविधेरहरहः श्रुतिजातं सदयहृदयदर्शितपशुघातम्,
केशव धृत-बुद्धशरीर, जय जगदीश हरे।" (गीतगोविन्द)

जिस दर्शनने हम भारतीयोंको यह उदार 'अनेकान्त' दृष्टि दी, उसका विकास प्राग्वैदिक कालसे लेकर अथर्ववेदमें वर्णित यम-नचिकेता-संवाद तक किस रूपमें हुआ, उपनिषदोंकी अनुपम आत्मगवेषणा द्वारा प्रस्फुटित होकर उसने आधुनिक चिन्तनको किस प्रकार समृद्ध बनाया, यह अध्ययन का एक और पहलू है, जिसकी ओर विद्वानोंका ध्यान आकृष्ट हुआ है।

वैदिक वाङ्मयको वैज्ञानिक ढंगसे अध्ययन करनेपर कितने ही अकल्पित तत्त्व हाथ लगेंगे। जिस सत्यको परंतप कहा है और जिसकी प्राप्ति के लिए भारतीय मनीषियोंने आजीवन साधना की है, उसकी खोजके लिए उद्यत सत्यान्वेषीको सबसे पहले वैदिक साहित्यके देव-द्वारपर आकर विनत होना होगा; क्योंकि आजके दिन मूर्त ज्ञानकी पहली किरण इसी प्राचीनतम उपलब्ध साहित्यसे प्रस्फुटित होती है।

इस वक्तव्यमें मैंने जो कुछ कहा है, उसकी मुख्य प्रेरणा मुझे प्रस्तुत ग्रन्थ और उसके साथ जानेवाली आमुखसे मिली है। इसके लिए मैं श्री पं० रामगोविन्द त्रिवेदी और श्रीसम्पूर्णानन्दजीके प्रति आभारी हूँ। जो दृष्टिकोण उक्त दोनों विद्वानोंने उपस्थित किया है, वह एक निश्चित प्रकारकी मान्यताओंका प्रतिनिधित्व करता है। वैदिक साहित्यके संबंध में दूसरे कुछ दृष्टिकोणोंकी ओर संकेत कर देना मैंने अपना कर्त्तव्य समझा। मेरा वक्तव्य पाठकोंको यदि किसी निष्कर्षकी ओर ले जाने लगे, तो मेरा निवेदन है कि वे वहां पहुँचनेसे पहले सतर्क हो जायँ। मैं स्वयं अभी निश्चित निष्कर्षोंपर पहुँचनेको तैयार नहीं हूँ।

डालमियानगर
१४-१०-५०

लक्ष्मीचन्द्र जैन;
सम्पादक, लोकोदय-ग्रन्थमाला

वैदिक साहित्य

विषय-प्रवेश

वेदोंपर हिन्दूजातिकी अनन्त कालसे अविचल श्रद्धा है। पृथिवीके किसी भी देशके किसी भी कोनेमें रहनेवाला कोई भी आस्तिक हिन्दू अपने धर्मका मूल ग्रन्थ वेदोंको बताता है। यह धारणा आजकी नही, जबसे आर्य-जातिका अस्तित्व है, तबसे है। अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थोंसे लेकर तन्त्रशास्त्रके ग्रन्थोंतकमें वेदोंकी अपार महिमाके अमर गीत गाये गये है। यहींतक नहीं, हिन्दुओंके अधिकांश प्राचीन ग्रन्थ वेदोंको उसी तरह नित्य मानते हैं, जिस तरह परमात्माको।

कौषीतकि-ब्राह्मण (१०.३०), **ऐतेरयब्राह्मण** (३.६) आदिका कहना है कि वेद-मन्त्र देखे गये हैं। सूक्तोंके ऊपर जो ऋषियोंके नाम रहते हैं, वे ऋषि मन्त्ररचयिता नहीं, मन्त्र-दर्शक हैं। निरुक्तकार यास्कने लिखा है—**"ऋषिर्दर्शनात्"** (**निरुक्त, नैगमकांड** •२.११) अर्थात् मन्त्रोंको देखनेवालेको ऋषि कहा जाता है। कात्यायनके **'सर्वानुक्रम-सूत्र'** में ऋषिको स्मर्त्ता वा द्रष्टा बताया गया है। याज्ञबल्क्यका भी यही मत है। श्रीशंकराचार्यने वेदान्तदर्शनके **शारीरक-भाष्य** (२.३.१) में वेद-नित्यता-प्रतिपादक अनेक वचनों और तर्कोंको उपन्यस्त किया है।

निरुक्तकी ही तरह आरण्यकों, उपनिषदों, कल्पसूत्रों, वेदांग-गन्थों और प्रातिशाख्योंने भी वेदोंकी नित्यता स्वीकार की है। सबसे बड़े तर्क-समुद्र दर्शनोंने भी वेदोंको नित्य और अपौरुषेय बताया है। और तो और, ईश्वर तकको न माननेवाले सांख्य-मीमांसकों आदिका भी यही सिद्धान्त

है। मनु महाराज तो वेद-नित्यताके प्रचण्ड समर्थक हैं ही। मनु-स्मृतिके टीकाकार कुल्लूक भट्टकी तो धारणा है कि प्रलयकालमें भी परमात्मामें वेद अवस्थित रहते हैं—"**प्रलयकालेऽपि परमात्मनि वेद-राशिः स्थितः।**" मनुजीने एक स्थानपर कहा है कि वेद शब्दोंसे ही सभी वस्तुओंके नाम रखे गये; इसलिये वस्तुओं और विषयोंके नामोंको वेदोंमें देखकर इतिहासकी कल्पना नहीं की जा सकती है। वेदोक्त नामोंको लेकर सांसारिक व्यक्तियों और पदार्थोंके नाम पीछेके ग्रन्थोंमें रखे गये तथा इन व्यक्तियों और पदार्थों-ने ही उत्तरकालीन ग्रन्थोंमें इतिहासकी सृष्टि की—वेदोंमें तो इतिहासकी गन्ध भी नहीं। इस तरह मनुजीने वेदोंको नित्य और ज्ञानभाण्डार बताया है और वेद-शब्दोंकी प्रामाणिकताके आगे प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणोंको भी तुच्छ बताया है। मनुजीने वेद न माननेवालेको ही नास्तिक बताया है, ईश्वर न माननेवालेको नहीं। असंख्य हिन्दुओंकी यह भी धारणा है कि वेद हिरण्यगर्भ (Cosmic Egg) से सम्भूत है। अधिकांश सनातनियों और आर्यसमाजियोंका तो कमसे कम ऐसा ही दृढ़ विश्वास है। उनके इस विश्वासको अधिकांश संस्कृत-साहित्य पुष्ट करता है। बौद्धों और जैनोंमें भी वेदज्ञाता बौद्धों और जैनोंकी बड़ी प्रतिष्ठा मानी गयी है। स्वयं बुद्ध और तीर्थंकर महावीर स्वामी वेदोंके विद्वान् थे। सिखोंमें भी वेदोंका यथेष्ट सम्मान है। गुरु गोविन्द सिंह वेदोंके अनन्य अनुरागी थे।

इस तरह देखा जाता है कि हिन्दूजातिके हृदयपर वेदोंका, अगम्य कालसे, अखण्ड साम्राज्य स्थापित है। वेदोंकी उच्छिन्नताकी सम्भावना देखकर हिन्दूजातिकी राजकुमारीतक "**को वेदानुद्धरिष्यति**" की विभीषिकामयी चिन्तामें मूर्च्छित हो जाती है और कुमारिल भट्टके समान महाविद्वान् हथेलीपर प्राणोंको रखकर विरोधियोंकी विकट वाहिनीके सामने कूद पड़ते हैं। "**वेदा विच्छिद्य वीथीषु विक्षिप्यन्ते**"की दारुण दुर्दशा देखकर शिवाजीके समान प्रतापी वीर तलवारोंकी नंगी धारोंपर नाचने लगते हैं और वेदोंकी उपेक्षा देखकर स्वामी दयानन्द जैसे त्यागी देशभक्त वेद-

प्रचारमें अपने जीवनको ही समर्पित कर देते हैं! सचमुच हिन्दू वेदोंको प्राणोंसे भी बढ़कर समझते हैं। धार्मिक हिन्दू वेदोंकी ज्ञान-गरिमापर मुग्ध हैं; ऐतिहासिक हिन्दू उनकी प्राचीनतापर आसक्त हैं। किसी भी दशामें हिन्दूजातिका हृदय टटोलिये, उसमें वेद—और वेदकी विमल और व्यापक, सुन्दर और सरस, मधुर और मंजुल ध्वनि मिलेगी।

वेद हिन्दूधर्मकी आशास्थली हैं, हिन्दूत्वकी सजल वाटिका हैं, हिन्दू सभ्यता और संस्कृतिके सुदृढ़ दुर्ग हैं। इसीलिये हिन्दूधर्मका लक्षण करते हुए **लोकमान्य तिलकने** ठीक ही कहा है—"**प्रामाण्यबुद्धिर्वेदेषु।**" वस्तुतः वेदोंको एकमात्र प्रमाण मानना ही हिन्दूधर्मको मानना है; क्योंकि वेद ही हिन्दूधर्मके मूल हैं।

वेदोंका निर्माण-काल

परन्तु सभी हिन्दू वेदोंकी नित्यताके कायल नहीं हैं। कुछ लोगोंका मत है, "भाषा-विज्ञानके अनुसार अपनी अभावपूर्तिके लिये मनुष्य भाषाएँ बनाया करते हैं और भाषाएँ बदलती रहती हैं। स्वयं वैदिक भाषा कितने ही रूपोंमें आ चुकी है। ऋग्वेदसंहिता और अथर्ववेदसंहिताकी भाषाओंमें पर्याप्त भिन्नता है। शतपथब्राह्मण और गोपथब्राह्मणकी भाषा-शैलीमें बड़ा भेद है। यजुर्वेदकी तैत्तिरीयसंहिता और माध्यन्दिनसंहिताकी भाषाओंमें भी मार्मिक भिन्नता है। इससे सिद्ध होता है कि वैदिक संहिताओंकी रचना समय-समयपर हुई है, एक साथ नहीं।"

भाषा-विज्ञान-वेत्ता (Philologists) कहते हैं कि 'मनुष्यकी स्वाभाविक ध्वनियोंकी नकलपर ही शब्दोंकी सृष्टि हुई है। जिस समय माता बच्चेको दूध पिलाने लगती है, उस समय यदि बच्चेकी इच्छा दूध पीनेकी नहीं होती, तो वह स्वभावतः "नि नि" करने लगता है। इसी "नि नि" की नकलपर ना, न, नो, नाट, नहीं आदि शब्दोंकी सृष्टि हुई है। मनुष्य श्लेष्मा फेंकते समय थू, पिचं आदि ध्वनि करता है; इसलिये इसकी

नकलपर थूक, पिचपिच आदि शब्दोंकी सृष्टि हुई। इसी प्रकार कुत्तेके भोंकनेपर भों-भों, घोड़ेके हिनहिनानेपर हिन-हिनाहट, मेढकके टर्रानेपर टरटराहट आदि शब्दोंकी सृष्टि हुई। एक ही विषयके लिये विभिन्न जातियोंमें विविध ध्वनियां भी हुआ करती हैं। अंग्रेजीमें पिचके लिये 'स्पिट' और माताके लिये 'मामा' ध्वनियां हैं। इस प्रकार विविध जातिगत ध्वनियोंकी विभिन्नता, विभिन्न समयोंके जल-वायुकी विभिन्नता और विविध अनुकरणोंकी विभिन्नताके कारण विविध संकेतों, शब्दों और भाषाओंकी सृष्टि हुई है। फलतः वैदिक भाषा हो या कोई भी भाषा हो, इसी अनुकरण-प्रणालीपर मनुष्यके द्वारा ही बनायी गयी है। मनुष्य ही भाषाको भी बनाता है और गायत्री, जगती आदि छन्दोंकी रचना करके उनमें वैदिक मन्त्रोंको निबद्ध करता है। इसलिये वेद, कुरान वा बाइबिल मानव-निर्मित ग्रन्थ हैं—इलहामी वा छन्दों, शब्दों और अक्षरोंके रूपोंमें समाधि-दशामें प्राप्त नहीं हैं।'

ऐतिहासिकोंका ऐसा ही दृष्टिकोण है और इसीके अनुसार उन्होंने वैदिक साहित्यके ग्रन्थोंका निर्माण-काल निश्चित किया है।

ब्रिटेनकी "Sacred Books of the East" पुस्तकमालामें मैक्समूलरने ऋग्वेद (**शाकल-संहिता**) को छपाया है। वे ऋग्वेदका रचना-काल १२०० बी० सी० अर्थात् ईस्वी सन्से १२०० वर्ष पहले बताते हैं। साथ ही वे यह भी कहते हैं कि 'यह आनुमानिक तिथि है। वेदोंके आरम्भिक कालका पता लगाना किसीके लिये सरल कार्य नहीं है। कदाचित् ही कोई इस बातका पता लगा सके कि वेदोंका बनना कबसे शुरू हुआ।' कोलब्रूक, विलसन, कीथ आदिकी राय मैक्समूलरसे मिलती है।

हाग, आर्कबिशप प्राट आदि ऋग्वेदका काल २००० बी० सी० मानते हैं। किन्तु कोई प्रामाणिक तर्क नहीं, कोई अखण्डनीय युक्ति नहीं। सम्भवतया इनकी युक्तिका आधार यह है कि 'बाइबिलके अनुसार ६

हजारसे ७ हजार वर्षोंके भीतर ही सृष्टि हुई है; इसलिये इसके भीतर ही कोई भी पदार्थ रचा गया होगा!'

कल्पसूत्रोंके विवाह-प्रकरणमें **"ध्रुव इव स्थिरा भव"** वाक्य आया है। इसपर प्रसिद्ध जर्मन ज्योतिषी जैकोबीने लिखा है कि 'पहले ध्रुव तारा अधिक चमकीला था और स्थिर था। इसकी इस अवस्थाकी तिथि ईसासे २७०० वर्ष पूर्वकी है।' इस तरह कल्पसूत्रोंका निर्माण-काल ४७०० वर्षोंका हुआ। ज्योतिर्विज्ञानसे अर्थात् नक्षत्रों और ग्रहोंकी आकशीय स्थितिके आधारपर जैकोबीने वेदोंका निर्माण-काल ६५०० वर्षोंसे अधिक सिद्ध किया है।

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकर, शंकर पाण्डुरंग पण्डित, शंकर बालकृष्ण दीक्षित आदिने विदेशियोंका अन्धानुकरण छोड़कर स्वयं वेदोंका कालान्वेषण किया है।

लो० तिलकने खोज की कि ब्राह्मण-ग्रन्थोंके समय कृत्तिका नामक नक्षत्रसे नक्षत्रोंकी गणना होतीं थी और कृत्तिका नक्षत्र ही सब नक्षत्रोंमें आदि गिना जाता था। उन दिनों कृत्तिका नक्षत्रमें ही दिन-रात बराबर (Vernal Equinox) होते थे। आजकल २१ मार्च और २३ सितम्बरको दिन-रात बराबर होते हैं और सूर्य अश्विनी नक्षत्रमें रहता है। खगोल और ज्यौतिषके सिद्धान्तोंके अनुसार यह परिवर्त्तन आजसे ४५०० वर्ष पूर्व हुआ। इसलिये ४५०० वर्ष पहले ब्राह्मण-ग्रन्थ बने।

मन्त्र-संहिताओंके समय नक्षत्रोंकी गणना मृगशिरासे होती थी, मृगशिरा ही सबसे पहला नक्षत्र गिना जाता था और इसी नक्षत्रके सूर्यमें दिन-रात बराबर होते थे। खगोल और ज्यौतिषके सिद्धान्तानुसार आजसे ६५०० वर्ष पहले यह स्थिति थी। फलतः संहिताएँ ६५०० वर्ष पहले बनीं। लोकमान्यके मतसे २००० वर्षोंमें सारे मन्त्र रचे गये। इस तरह

कुछ प्राचीन ऋचाएँ ८५०० वर्षोंकी हैं। मृगशिरामें वसन्त-सम्पात होना ही, इस दिशामें, लोकमान्यकी सबसे बड़ी युक्ति और आधार है।

श्रविष्ठा (धनिष्ठा) में रात-दिन बराबर होनेका उल्लेख पाकर लोकमान्यने मैत्रायणीय उपनिषद्का रचनाकाल आजसे प्रायः ३००० वर्ष पूर्वका माना है। लोकमान्य और शंकर बालकृष्ण दीक्षितने वेदांग ज्यौतिषका रचनाकाल ई० सन्से १४०० वर्ष पूर्व सिद्ध किया है।

अलेक्ज़ेंडर (सिकन्दर) के समय ग्रीक विद्वानोंने अनेक देशोंकी वंशावलियोंका जो संग्रह किया था, उसके अनुसार चन्द्रगुप्त तक १५४ राजवंश ६४५७ वर्ष भारतमें राज्य कर चुके थे। आरियानके मतसे चन्द्रगुप्त तक १५३ वंश ६०४३ वर्ष तक राज्य कर चुके थे। इन सारे राजवंशोंके बहुत पहले ऋग्वेद बन चुका था। इस तरह ऋग्वेदका रचना-काल ८००० वर्षका हुआ।

पूनाके नारायण भवनराव पावगीने भूगर्भशास्त्रके प्रमाणोंके आधार पर ऋग्वेदीय निर्माणकाल ९००० वर्षोंका सिद्ध किया है।

ऋग्वेद (१०.१३६.५) में पूर्व और पश्चिम समुद्रोंका उल्लेख है। पूर्व समुद्र पंजाबके ठीक पूर्वमें समस्त गांगेय प्रदेशको आच्छादित करके अवस्थित था। इसके भीतर ही पांचाल, कोसल, वत्स, मगध, विदेह, अंग और वंग लुप्त और गुप्त थे। ये सारे भूभाग समुद्र-गर्भमें थे। पश्चिम समुद्र कदाचित् अरब सागर था।

ऋग्वेदके दो मन्त्रों (१०.४७.२ और ९.३३.६) में चार समुद्रोंका उल्लेख है। इस प्रकार आर्य-निवासके पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण चार समुद्र थे। उत्तरी समुद्र बाह्लीक और फारसके उत्तरी भागमें तथा तुर्किस्तानके पश्चिमी प्रांत में था, जो प्राकृतिक कारणोंसे शुष्क होकर इन दिनों कृष्णह्रद् (Black Sea), कश्यपह्रद् (Caspean Sea), अरालह्रद् (Sea of Aral) और बल्काशह्रद् (Lake Balkash) के रूपोंमें अवस्थित है। भूगोल-वेत्ताओंने इसका नाम "**एशियाई**

भूमध्यसागर" रखा है। इसके उत्तरमें आर्कटिक महासागर था। इसके पास ही वर्तमान भूमध्यसागर था। एशियाई समुद्रका तल ऊंचा था और यूरोपवालेका नीचा। प्राकृतिक परिवर्तनोंने जब बास-फरसका मार्ग बना डाला, तब एशियाई समुद्रका पानी यूरोपीय समुद्रमें चला गया और एशियाई समुद्र नष्टसा हो गया। इसके अंश उक्त ह्रदोंके रूपमें हो गये। दक्षिणी समुद्रका नाम "राजपूताना समुद्र" था (Imperial Cazetteer of India. Vol. I)। इसीमें वह सरस्वती नदी गिरती थी, जिसके तटोंपर सैकड़ों वेद-मन्त्र बने थे। नैसर्गिक कारणोंसे राजपूताना समुद्र और सरस्वती सूख गये। आज भी राज-पूतानाके गर्भमें खारे जलकी सांभर आदि झीलें और नमककी तहें मरु-भूमिमें विलुप्त राजपूताना समुद्रका साक्ष्य दे रही हैं।

एच० जी० वेल्स ने अपने "The outlines of History" ग्रन्थमें पचीस हजारसे पचास हजार वर्षोंके संसारका नकशा दिया है। उसमें ऐसे समुद्रोंका अस्तित्व पचीस हजारसे लेकर पचास हजार वर्षोंके बीच माना गया है। गांगेय प्रदेश, सरस्वती और चारों समुद्रोंके सम्बन्धमें भूगर्भशास्त्रियोंका मत है कि पचीस हजार वर्षोंसे लेकर पचहत्तर हजार वर्षोंके भीतर ये सब लुप्त, गुप्त और रूपान्तरित हुए।

इन्हीं और ऐसे अन्य प्रमाणोंसे अमलनेरकरने ऋग्वेदका निर्माणकाल ६६००० वर्षोंका और अविनाशचन्द्र दासने ७५००० वर्षोंका माना है।

प्रोफेसर लौटूसिंह गौतमके समान कुछ कट्टर सनातनी ऐतिहासिक तो ऋग्वेदका रचना-काल ४ लाख ३२ हजार वर्षोंका बताते हैं। इनके प्रमाण आप्त-वचन ही अधिक हैं।

जिन यूरोपीयोंने वैदिक साहित्यके बारेमें लेखनी उठायी है, उन सबने काल-निर्णयपर बड़ी माथापच्ची की है। वेदोंके उपदेश क्या हैं, उनकी अपूर्वता क्या है, उनका प्रतिपाद्य क्या है, वैदिक संस्कृति क्या है—इन बातोंपर कम ध्यान दिया गया है और काल-निर्णयपर अधिक।

इसी उलझनको समझकर प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् श्लेगलने पहले ही लिख दिया कि "वेद संसारमें सबसे प्राचीन ग्रन्थ है और इनका समय नहीं निश्चित किया जा सकता। इनकी भाषा भारतीयोंके लिये भी उतनी ही कठिन है, जितनी विदेशियोंके लिये।" बिलकुल ठीक !

परन्तु सबसे मुख्य बात लिखी है प्रसिद्ध जर्मन वेद-विद्यार्थी वेबरने। उन्होंने कहा है–'वेदोंका समय निश्चित नहीं किया जा सकता। वे उस तिथिके बने हुए हैं, जहां तक पहुंचनेके लिये हमारे पास उपयुक्त साधन नहीं हैं। वर्त्तमान प्रमाण-राशि हम लोगोंको उस समयके उन्नत शिखरपर पहुंचानेमें असमर्थ है।' यह उन वेबर साहबकी राय है, जिन्होंने अनेक वैदिक ग्रन्थ सम्पादित कर छपाये हैं और अपने जीवनका अधिकांश भाग वेदाध्ययनमें बिताया है।

वेद और इतिहास

खोदाईके द्वारा पायी गयी पट्टिकाओं, अभिलेखों, शिलालेखों, ताम्र-पत्रों, प्रशस्तियों आदिसे पुरातत्त्ववेत्ता (Archaeologists) इतिहास-निर्णयका प्रयत्न करते हैं। भारतमें मोहन जो दड़ो (सिन्ध) और **हरप्पा** (पंजाब) में जो खोदाइयां हुई हैं, उनसे अनेक ऐतिहासिक तत्त्व विदित हुए हैं। पाटलिपुत्र, बसाढ़ (मुजफ्फरपुर), मथुरा, तक्षशिला (अटक), सहेटमहेट (गोंडा), सारनाथ, नालन्दा आदि स्थानोंकी खोदाइयोंसे तो विशेषतः बौद्ध इतिहासपर ही प्रकाश पड़ा है। भीटा (ग्वालियर), पहाड़पुर (राजशाही), अर्जुनीकोंड़प्पा (मद्रास) आदिकी खोदाइयोंसे हिंदूइतिहासपर अवश्य कुछ प्रकाश पड़ा है। परन्तु भारतके प्राचीनतम इतिहासके लिए अनेकानेक खोदाइयोंकी आवश्यकता है। उत्खनन-सामग्रीसे प्राचीन और प्रामाणिक इतिहासका कुछ पता चलता है। इसीलिये विदेशोंमें करोड़ों रुपये खर्च करके खोदाइयां करायी गयी हैं। थोड़ी बहुत खोदाईसे तो कुछ ही देश बचे हैं। मिश्र (ईजिप्ट) की

खोदाईमें सर्वाधिक अर्थ-व्यय किया गया है । हरनर साहबने मिश्रकी नाइल वा नील नदीके किनारे ६० फीट तक खोदाई करायी है। इसमें ईटें और जली हुई ठटरियां मिली हैं । जिस तरहकी मिट्टीपर यह खोदाई हुई है, वैसी ही पर जेनेवा झीलके पास खोदाई कराकर मोर्लो साहबने यह सिद्ध करनेकी चेष्टा की है कि १५०० वर्षोंमें चार फीट मिट्टी बैठती है । इस हिसाबसे तो हरनरको २२॥ हजार वर्षोंकी ईटें और ठटरियां मिली हैं । इससे उनका सिद्धान्त खंडित हो जाता है, जो २० हजार वर्षोंसे ही मनुष्य वा "**होमोसवाइंस**"की सृष्टि स्वीकार करते हैं। अत्यन्त प्राचीन कालके जीवोंकी ठटरियोंके साथ मिश्रमें मनुष्यकी ठटरियां भी मिली हैं। मेनाके बाद, हरसेसु राजाके समय, मिश्रमें एक ऐसा शिलालेख और बकरीके चमड़ेपर लिखी पुस्तक मिली थी, जो मेनाके हजारों वर्ष पहलेकी हैं । इनसे मिश्रकी अत्यन्त प्राचीन सभ्यता और इतिहासपर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है ।

अर्जेंटाइन और ब्राजिल (दक्षिण अमेरिका), प्रेडमर्थ (बोहेमिया), ओल्मो (इटली), शिपकर (बालकन प्रायद्वीप), स्पाई (बेलजियम) आदि आदिमें भी खोदाइयां हुई हैं । नियंडर्थल (जर्मनी) की खोदाईमें एक पशु-कपालके समान खोपड़ी मिली है, जिसे ५०हजार वर्षोंकी कहा जाता है। पिल्ट डाउनकी खोदाईमें प्रथम मानवकी खोपड़ियां मिली हैं, जिन्हें एक लाख वर्षकी कहा जाता है । हाइडलमें जो हड्डियां मिली हैं, वह अर्द्ध-मनुष्यकी और २॥ लाख वर्षोंकी मानी जाती हैं । १८९२ में ई० में डा० यूजीनने ट्रिनिल (जावा) की खोदाईमें कपाल, जंघास्थि, दांत आदि जो पाये थे, उनका काल, डा० डुबोइसके मतसे, लगभग ६ लाख वर्ष है और वे मानवाकार बानर और मनुष्यके बीचके हैं। बहुत लोग इन अस्थियोंको मनुष्यकी ही बताते हैं । परन्तु जिन लोगोंकी धारणा है कि गोरिल्ला बन्दरका मस्तिष्क १० छटाक और मनुष्यका १६ छटाकका है तथा मनुष्य और बन्दरके दोनों हाथोंकी हड्डियां समान हैं, वे जावा-कर्परको मनुष्यका

क्यों माननें लगे ! जो हो; परन्तु अनेक मानवतत्त्व-विज्ञाताओंके मतसे जावा-कपालसे पुराना कपाल अबतक नहीं मिला।

इन सारी खोदाइयोंके आधारपर यूरोपीयोंने प्रस्तर-युग, पीतलयुग, ताम्र-युग, लौह-युग, विद्युद्युग आदि कितने ही युगोंकी सृष्टि की है। इनके मतसे ५ लाख वर्ष पहले प्रथम हिम-युग, ३५ हजार वर्ष पहले प्रस्तर-काल और १५ हजार वर्ष पहले कृषि-काल था। परन्तु जब कि ऋग्वेदमें सरस्वती नदीका राजपूताना समुद्रमें गिरना लिखा है और भूगर्भ-शास्त्र-वेत्ताओंके मतानुसार राजपूताना समुद्रको सूखे ७५ हजार वर्ष तककी बात हो सकती है; और, जब कि ऋग्वेदमें स्वर्णाभूषणों और उन्नत कृषिका वर्णन है, तब ३५ हजार वर्षका प्रस्तर-युग और १५ हजारका कृषि-युग कैसे माना जाय ?

जो हो; किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि मिश्रके ६-६ कोस लम्बे स्थानोंकी खोदाईका आधा रुपया भी यदि भारतकी खोदाईमें खर्च किया जाय, तो कितनी ही मनोरंजक अस्थियां मिल जायें और भारतके प्राचीनतम इतिहासपर यथेष्ट प्रकाश भी पड़े। अभी भी भारतीय पुरातत्त्व वेत्ता कहते हैं कि 'विन्ध्याचलके परीक्षणसे विदित होता है कि वह २० हजार वर्ष पहले ठंडा हुआ था।' इसी बातको शास्त्रकी चमत्कारिणी भाषामें कहा गया है कि 'गोत्रभिद् इन्द्रने विन्ध्यगिरिके पंखोंको काट गिराया था। तबसे वह ठंडा, अग्निहीन वा शांत हुआ।'

अब तक भारतमें जितनी खोदाइयां हुई हैं, उनसे भारतीय इतिहासपर प्रकाश पड़ा है और यदि आगे खोदाइयां हों, तो अत्यधिक प्रकाश पड़नेकी संभावना है। अब तक न तो काफी खोदाई हुई है, न उत्खननसे इतनी सामग्री ही मिली है, जिससे भारतीय इतिहास सांगोपांग लिखा जा सके। अब तक भारतके जितने इतिहास लिखे गये हैं प्रायः सब एकदेशीय हैं। शास्त्रीय पद्धतिको छोड़कर यूरोपीयोंके दृष्टिकोणका ही अधिक अनुधावन किया गया है। यही कारण है कि भारतीय इतिहासके प्रति विदेशी ऐति-

हासिकोंकी विचित्र धारणाएँ हैं। वे कहते हैं, 'मिश्रके पिरामिडोंके बने ४००० बी० सी० तक हुए। वहांके प्रथम राजा मेनाने ५५०० बी० सी० (मतान्तरमें ५००४ बी० सी०)में राज्य किया था। वहांके राजा थटमीसिस तृतीयने १५५७ बी० सी० में पश्चिम एशियापर राज्य किया था। मिश्रकी चर्चा इलियड, बाइबिल, कुरान आदिमें भी है। वहांकी प्राचीन राजधानी 'मेमफिस' की ६ कोसोंमें उपलब्ध उत्खनन-सामग्रीसे मिश्रका इतिहास ६००० वर्षोका सिद्ध होता है।

'चीनका फोहो नामका सम्राट् २९५० बी० सी० में गद्दीपर बैठा था। हाया-वंशका शासनकाल २२०७ बी० सी० से शुरू हुआ।

'फिनिशियनोंने कार्थेज (उत्तर अफ्रीका) पर ८२२ बी० सी०में अधिकार किया था। असुर बनिपालकी चित्र-पट्टिकाओं आदिसे असीरियनों का इतिहास ४००० बी० सी० का सिद्ध होता है।

'सुमर लोगोंके निप्कुर और ईरियड शहरोंका इतिहास ५५०० बी० सी० का है।

'यूनानमें हिरोडोटस (४८४ बी० सी०) और थ्युकिडिडस (४७१ बी० सी०) तथा रोममें टसिटस (प्रथम शताब्दी) जैसे ऐतिहासिक हुए, जिन्होंने हजारों वर्षोका उन देशोंका क्रम-बद्ध इतिहास लिखा है। यूनानकी एकियन, ईजियन, डोरियन जैसी प्राचीनतम जातियोंका भी इतिहास है।

'इधर भारतमें न तो कोई प्राचीन इतिहास है, न आर्य लोग इतिहास लिखना ही जानते थे।'

ये ही पाश्चात्त्य विद्वानों और उनके एतद्देशीय अनुगामियोंकी बातें हैं। परन्तु जिस जातिमें पाणिनि जैसे वैयाकरण और कपिल जैसे दार्शनिक हो सकते हैं और जिस जातिमें **'नासदीय सूक्त'** जैसी विचार-धारा बह सकती है, उसमें इतिहास लिखनेकी क्षमता नहीं थी, यह असम्भव बात है।

यह हो सकता है कि आर्य लोग मनुष्यकी कहानियां लिखनेकी अपेक्षा मनुष्यके जन्मदाता विश्व-पिताकी कथाएँ लिखना ही अच्छा समझते रहे हों। तो भी वे इतिहासका महत्त्व अवश्य स्वीकार करते थे। प्राचीनतम कथाओं और कल्पनाओंमें जिन अलंकारों और रूपकोंके द्वारा इतिहास-वर्णन किया गया है, उनका ज्ञान आवश्यक है।

वैदिक साहित्यमें इतिहासकी यथेष्ट सामग्री है। **शतपथब्राह्मण** (१४.५.४.१०) और अथर्ववेदमें इतिहासको एक कला माना गया है। **मनुस्मृति** (२.७२) में इतिहासकी महिमा है। छान्दोग्योपनिषद् और कौटिल्यके अर्थशास्त्रमें इतिहासको स्पष्ट ही **'पंचम वेद'** माना गया है। इतिहासमें धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, पुराण आदि भी सम्मिलित थे। **महाभारत** (१.१.८३) में इतिहासको मोहान्धकार दूर करनेवाला बताया गया है। ऋग्वेद आदिकी संहिताओंमें विविध ऋषियों और राजाओंके वंशोंका विवरण दिया हुआ है। इसी प्रकार शतपथमें मिथिला, विदेह, दुष्यन्त, भरत, जन्मेजय, उग्रसेन आदिका वर्णन है। ताण्ड्य महाब्राह्मणमें भी विदेह आदिकी कथाएँ हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मणमें कालकंज असुर और वाराहावतारकी बातें हैं। ऐतरेय ब्राह्मण तथा तैत्तिरीय और शांखायन आरण्यकोंमें शुनःशेप, अहिल्या, खाण्डव, कुरुक्षेत्र, मत्स्य, काशी, पांचाल आदिकी स्पष्ट कथाएँ हैं। ऋग्वेदका **'दाशराज्ञ-युद्ध'** सूर्य-चन्द्र-वंशियोंका प्रसिद्ध युद्ध है—कुछ लोग इसे आर्य-अनार्य-युद्ध तथा देवासुर-संग्राम भी कहते हैं। ऋग्वेदके दो स्थानोंपर गंगा तथा कुभा (काबुल नदी), असिक्नी (चिनाव), परुष्णी (रावी), वितस्ता (झेलम), यमुना, विपाश् (व्यास), सिन्धु, शुतुद्री (सतलज), सुवास्तु (स्वात) आदि नदियोंका विवरण है। गोपथ, ऐतरेय, शतपथ, तैत्तिरीय, कौषीतकि आदि ब्राह्मणोंमें अंग, अन्ध्र, काशी, कुरु, कोसल, नैषिध, पंचाल, पुण्ड्र, मगध, मत्स्य, कौशाम्बी, त्रिप्लक्ष, प्लक्ष प्रास्रवण, विनशन आदि प्रान्तों, प्रदेशों, जातियों और नगरोंके नाम आये हैं। वंश-ब्राह्मणमें कम्बोज, बृहदारण्यकोपनिषद्में मद्र, तैत्तिरीय

आरण्यकमें तूर्घ्न और जैमिनीय ब्राह्मणमें विदर्भका नाम आया है। ऋग्वेदसंहितामें कीकट, गन्धार, चेदि आदि प्रदेशोंका उल्लेख है।

यजुर्वेद (३.६१) में शिवजीके धनुष्, हाथीकी छाल, उनका निवास-स्थान (पर्वत) आदिका पुराणोंकी तरह स्पष्ट उल्लेख है। **निरुक्त (२.४)** में शन्तनु और देवापिकी कथा है। सुदास, विश्वामित्र, कण्व, भार्म्यश्व आदिका भी विवरण निरुक्तमें है। वेदोंके कोष और व्याकरण निरुक्तमें ५-६ स्थानोंपर **"तत्रेतिहासमाचक्षते"** आया है।

इस तरह वैदिक साहित्यके सैकड़ों स्थानोंपर इतिहासकी बातें हैं। संस्कृत-साहित्यके अनेकानेक ग्रन्थोंमें इतिहास भरा पड़ा है। अवश्य ही यह इतिहास क्रमबद्ध नही है और आर्योंकी तरह उन्नत अध्यात्म-वादियोंके लिए ऐसा मानवेतिहास लिखना सम्भव भी नहीं था।

परन्तु यदि ऋग्वेदका रचना-काल १० ही हजार वर्षोंसे अधिक माना जाय, तो भी ऋग्वेदमें मानवजातिका आदिम इतिहास पाया जाता है। यह इतिहास ही कारण है कि हमने एशियाई तुर्किस्तानकी उईगुर, तुंगस आदि जातियों तथा चीन, बर्मा, सिलोन आदिको आर्यमय बना डाला और मारडोनियसके सेनापतित्वमें, भारतीय सैनिकोंने, प्लेटिया (ग्रीस) के रण-क्षेत्रमें ४७९ बी. सी. में यूनानियोंको परास्त कर अपने अजेय प्रतापको अमर कर दिया। हमारा गौरवमय प्राचीन इतिहास ही कारण है कि, जहां चाल्डियन, सुमेरियन, अक्कद, बेबीलोनियन आदि जातियां धरातलसे उठ-सी गयीं, वहां आर्यजाति हिमालयकी तरह अचल और प्रशान्त महा-सागरकी तरह गम्भीर बनी हुई है—सो भी लगभग उसी अनन्तकालकी वैदिक सभ्यताके प्रतापी रूपमें।

परन्तु जो लोग मीमांसाके **"परन्तु श्रुति-सामान्यमात्रम्"** के अनुसार कहते हैं कि वेदोक्त शब्दोंको ही लोकमें ग्रहण किया गया है, लोकोक्त विषय वेदोंमें नहीं हैं, उनकी तो बात ही दूसरी है। परन्तु कट्टर सनातनी और वेदभाष्यकार सायण, स्कन्द स्वामी, उदगीथ, वेंकट माधव, भट्ट-

भास्कर, महीधर आदिने और वेदोंके अनन्य भक्त शंकर, रामानुज, बल्लभ आदि आचार्योंने वेदोंमें इतिहास माना है ।

वेदोंके सारे ऐतिहासिक शब्दोंका आध्यात्मिक अर्थ करनेवाले भी कम लोग नहीं हैं । कहा जाता है कि वेदके वसिष्ठ, विश्वामित्र, भरद्वाज आदि नामोंके दूसरे अर्थ हैं । इन नामोंको वेदसे लेकर लोगोंने व्यक्तिविशेषमें प्रयुक्त किया । अच्छा, नामोंकी तो यह बात है, परन्तु उर्वशी, यमी, विश्वामित्र आदिकी कथाओंकी क्या गति हो ? उत्तर दिया जाता है कि ये कथाएँ रूपक हैं । परन्तु यदि वैदिक साहित्य रूपक है, तो विश्वामित्र, वसिष्ठ आदिकी रामायणीय, महाभारतीय और पुण्यकालीन कथाएँ भी क्यों नहीं रूपक हैं ? वेदोंमें निःसन्देह सीधा-सीधा ऐतिहासिक तथ्य है और जहां ऋषियोंकी कल्पनाने इतिहासको काव्यका परिधान दिया है, वहां हमें इस तथ्यको चुनकर ग्रहण करना होगा ।

वस्तुतः हमारा मुख्य बल वेद और उसमें उपनिबद्ध इतिहास ही हैं, जिन्हें पाकर हम युगोंसे गौरवान्वित हो रहे हैं । इसी बातका समर्थन लोक० तिलक, पावगी आदिने किया है[१] ।

वेदकी नित्यता

हम पहले लिख आये हैं कि हमारे शास्त्र और धर्माचार्य वेदकी नित्यता स्वीकार करते हैं । सनातनी और आर्य-समाजी वेद-नित्यत्वके प्रबल पक्षपाती हैं । कई तो छन्दोरूपमें ही, शब्दशः और अक्षरशः, वेदको नित्य मानते हैं । स्कन्दस्वामी, सायण आदि सभी प्राचीन भाष्यकार वेदकी

१ जिन्हें इस सम्बन्धमें अधिक जानना हो, वे डा० अविनाशचन्द्र दासकी "Rigvedic India" और "Rigvedic Culture", हरविलास शारदाकी "Hindu Superiority" और दुर्गादास लाहिड़ीकी "पृथिवीर इतिहास" (आठ भाग) नामकी पुस्तकोंका अवलोकन करें ।

नित्यता स्वीकार करते हैं । अनेक लोग शब्द-स्फोट, वाक्यस्फोट आदिकी नित्यता स्वीकार कर वेदको नित्य बताते हैं और अनेक वेदको ईश्वरका स्वाभाविक निःश्वास मानते हैं । ग्रामोफोनके रेकार्डमें भरे हुए शब्द महीनों और वर्षों बाद सुनाई देते हैं; इस लिये भी शब्द और शब्दरूप वेद नित्य माने जाते हैं ।

परन्तु यहां यह प्रश्न उठता है कि 'यदि शब्द मात्र नित्य हैं, तो शब्दरूप बाइबिल, कुरान और प्रतिदिन गढ़ी जानेवाली ठुमरी और कजलीको भी नित्य मानना पड़ेगा । वेदकी विशेषता ही क्या रही ? दूसरी बात यह भी विचारणीय है कि जब कि न्याय, वैशेषिक आदि शब्दके आधार आकाश (वैज्ञानिक मतसे वायु) को ही नित्य नहीं मानते, तब शब्द कैसे नित्य हुआ ? सांख्यके मतसे जब प्रकृतिकी साम्यावस्थामें आकाश और वायु ही नहीं रहते, तब गुण-रूप शब्द, शब्दरूप वेद, छन्दोरूपमें कैसे रहेंगे ? यह बात दूसरी है कि दैवी शक्तियोंकी उपासना और आवाहन, सत्य-सम्भाषण, तपस्याका आचरण, विविध विद्याओंका प्रचार आदि वेदमें हैं और ये सारे उपदेश जगन्नियन्ताके नित्य उपदेश हैं; इसलिये ज्ञान-रूप वेद नित्य है । वेदके जिन अंशोंमें ये उपदेश हैं, उनको उपदेश वा ज्ञानके आधार-रूपमें नित्य माननेमें वेद-नित्यता-विरोधियोंको कदाचित् कोई बड़ी आपत्ति नहीं; परन्तु अद्वैतवादियोंके लिए यह नित्यता भी व्यावहारिक रूपमें है, पारमार्थिक दशामें नहीं । इतना होने पर भी वेदके जिन अंशोंमें ऐतिहासिक बातें हैं, वे अंश तो किसी भी रूपमें नित्य नहीं । अभाव-पूर्तिके लिये मनुष्य भाषाएँ बनाया करता है और वे भाषाएँ बदला करती हैं। स्वयं वैदिक भाषा कितने ही रूपोंमें आ चुकी है। ऋग्वेदसंहिता और अथर्ववेदसंहिताकी भाषाओंमें, अनेक स्थलोंमें, भेद है । शाकलसंहिता और माध्यन्दिन-संहिताकी भाषाओंमें जमीन-आसमान का भेद है । तैत्तिरीय और मैत्रायणीय संहिताओंको देखकर क्या कोई कह सकता है कि दोनोंकी भाषा एक वा समकालीन हैं ?

'वस्तुतः ईश्वरीय शक्तिसे शक्तिमान् होकर तपःपूत ऋषियोंने वेदक बनाया । अभूतपूर्व वस्तुके उत्पादनके अर्थमें जन्, कृ, सृज्, तक्ष आर्ि धातुओंका प्रयोग, ऋग्वेदसंहिताके मंत्रोंमें, कई स्थानोंपर आया है। इ धातुओंका प्रयोग ऐसे ढंगसे आया है, जिससे विदित होता है कि ऋषि लो आवश्यकतानुसार बराबर नये-नये मंत्र बनाते थे। यह मत सायणभाष्या नुसार है। जिन्हें सायण-भाष्य देखना हो, वे इन मंत्रोंके भाष्य देखें—ऋग्वे १.३८.१४; १.२०.१; ७.६४.१; ६.११४.२; १०.८०.७; ४.१६.२१; १.६३.६; ७.१८.४; ६.८.५; ७.६७.६; १.१६६.१५; ८.८.१७; १०.२३.६; ७.२२.६; २.२६.८; १.१२.१२; १.१८४.५; ३.३०.२०; ४.६.११; १.४७.२; ५.२८.१; १०.१०.५ आदि आदि ।

'वस्तुतः वेदमें अनन्त कालके अनन्त ऋषियोंकी अनन्त उच्चतम चिन्ताएँ अनन्त गिरि-निर्झरोंको चीरती, भेदती और प्रतिध्वनि करती हुई, इकट्ठी की गयी हैं । वेदमें ऐसे दिव्य सन्देश, ऐसी अगम्य और मौलिक चिताएं भरी पड़ी है कि जिन (नासदीय सूक्तकी चिंताओं) से बढ़कर, लोक० तिलकके शब्दोंमें, सभ्यतम मनुष्य कोई चिन्ता ही नहीं कर सकता। वेद उन स्थितप्रज्ञ और परदुःखकातर मनीषियोंकी तेजस्विनी वाणी है, जो हमारे प्रातःस्मरणीय पूर्वज थे। वेद हमारे उन पूर्वजोंका विजयी निनाद है, जिन्होंने संसारके प्रायः सारे देशोंपर राज्य किया था । इन्हीं सब दृष्टियोंसे वेदकी महत्ता है और वेद हमारा पूजनीय ग्रंथ है।'

वेद-नित्यता-वादियोंका मत पहले दिया गया है और वेद-नित्यताविरोथियोंका यह मत है । पाठक विचार करके अपनी कोई धारणा बना सकते हैं । वेदका नित्यता-विरोधी मत जिन्हें अभीष्ट हो, वे अपनी वैसी धारणा बना सकते हैं; हमारा कोई दुराग्रह नहीं है ।

वेदधर्म और अन्य धर्म

संसारमें अनेकानेक धर्म प्रचलित हैं। यूरोपीय आर्य-धर्ममें इतने धर्म अन्तर्भूत मानते हैं—प्रत्येक प्रमुख भारतीय धर्म, यूनानी धर्म, रोमन धर्म,

वेंडिक धर्म, ट्यूटनिक धर्म, केल्टिक धर्म, स्लावोनियन धर्म और स्कांडेने-वियन धर्म। सेमेटिक धर्ममें भी कई धर्म हैं—ईजिप्सियन, बेबीलोनियन, असीरियन, फिनिशियन, जुडिइज्म, महम्मडनिज्म, क्रिश्चियानिटी। बहुत लोग बेबिलोनियन वा चाल्डियन धर्मसे असीरियन धर्मकी उत्पत्ति बताते हैं। कई इजिप्सियन और असीरियन धर्मोंको हेमेटिक मानते हैं। कुछ लोग इजिप्सियन धर्मसे ईथिओपियन वा अबीसीनियन धर्मकी उत्पत्ति मानते हैं।

बहुतोंका मत है कि हिब्रू धर्मसे क्रमशः मूसाई, इजराइली, यहूदी और ईसाई धर्म पैदा हुए। बेबीलोनियन धर्मपर ईजिप्सियन धर्मकी छाप पड़ी भी मानी जाती है। मंगोलियन धर्मोंमेंसे चीनमें कनफुसियानिज्म और ताओइज्म तथा जापानमें शितोइज्म प्रचलित हैं। इनके सिवा कई टापुओं की जातियां, अमेरिकी इंडियन और भारतकी टोडा, बदागा, कोल, भील, गोंड, खोंड, सन्ताल, काकी, नागा, मुंडा, उरांव, बादो, धीमल, कसिया, मिशमिस आदि जातियां भूत-प्रेत-पूजनको ही धर्म मानती हैं।

हिंदुओंके वेदग्रन्थों, पारसियोंकी अवस्ता-गाथाओं, चीनियोंके शीकिंग ली-की आदि पुस्तकों, मिश्रके बीजाक्षरों (Hieroglyphics), बेबी-लोनियाकी मृत्फलक-लिपि और असीरियाकी कोणाकार-लिपिका अध्ययन करके यूरोपीयोंने इन धर्मोंकी छोटाई-बड़ाईकी जांच करनेकी भी चेष्टा की है। बहुतोंके मतसे ईजिप्सियन (मिश्रदेशीय) धर्म प्राचीनतम धर्म है। ईजिप्सियनोंके धर्मोपदेष्टा और प्रथम राजा मेनस वा मेना (प्रथम फरोह) ५००४ बी० सी० में पैदा हुए थे। उनकी बनायी धर्म-पुस्तक भी है। ईजिप्सियनोंके मतसे मिश्रपर सत्ययुग में २४६०० वर्ष देव-राज्य था और त्रेतामें ६०० वर्ष। ईजिप्सियनोंकी "The Book of the Dead" पुस्तकसे विदित होता है कि वे मृतक-पूजक थे। वे ब्रह्मा (Ptah) को मानते थे। रवि या सूर्यको 'रा' कहते थे। सूर्यके अनन्य उपासक थे। दिनमें दो बार स्नान

करते, मांससे घृणा करते, मृगचर्मपर बैठते और पत्ते पहनते थे। उनमें वर्ण-धर्म था। व्यभिचारिणी स्त्रियोंकी नाक काट ली जाती थी। इस तरह वैदिक आचार-विचारोंके साथ मिश्रियोंका कुछ मेल था। ऐसी ही कई बातों को देखकर डा० अविनाशचन्द्र दासने सिद्ध किया है कि 'हिंदुओंने मिश्र या ईजिप्टमें जाकर अपनी सभ्यता और धर्मका प्रचार किया था।' एच० एच० विलसनका भी मत है कि 'मिश्र शब्द संस्कृतका है और भारतीय ब्राह्मणों द्वारा वहां पहुँचाया गया है। मेना ही मनु हैं और मेनाका ग्रन्थ मनुस्मृति।'

दूसरी संख्यामें चीनी रखे जाते हैं। उनके दो ग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं–शुकिंग और शीकिंग। पहला २४०० बी० सी० में और दूसरा १७६६ बी० सी० में बना। पहला ग्रन्थ "Sacred Books of the East" में लेग द्वारा छपा है और दूसरा १८९१ में जेनिंग्स द्वारा। अनालेक्टस, ली-की और चुंगयांग नामके ग्रन्थ भी चीनियों के पूज्य हैं। इनसे पता चलता है कि वैदिकधर्मी हिंदुओंकी ही तरह चीनियोंके भी धार्मिक नियम हैं। हमारी ही तरह चीनी भी १० दिशाएँ, १२ राशियां, श्राद्ध आदि मानते हैं। इस तरह ये भी वेदधर्मके परम्परया अनुयायी ही जान पड़ते हैं।

तीसरे ईरानी (पारसी) हैं। इनका मूल ग्रन्थ अवस्ता और गाथाएँ हैं। अवस्ताके २१ भाग थे। कहा जाता है कि इनमेंसे दोको शराबके नशेमें आकर सिकन्दरने नष्ट कर दिया और कुछको उसके अनुयायी ग्रीस उठा ले गये। शेष जेन्द टीकाके साथ छपी है। डर्मेस्टेटर द्वारा **"सेक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट"** में, १८९५ में, अवस्ता प्रकाशित की गयी। पारसियोंकी ५ गाथाएँ, १८९४ में, मीत्स साहबके द्वारा छपी हैं। इनसे पता लगता है कि ईरानी अग्निपूजक, गोरक्षक और यज्ञोपवीतधारक होते हैं। ये मित्र वा मिथ्रके पूरे भक्त होते हैं। मिथ्रकी मूर्त्तियां ग्रीक और रोमन स्तम्भोंपर भी मिलती हैं। अवस्तामें प्राचीन आर्यनिवासकी प्रशंसा है। अवस्तामें

वेदोंके सैकड़ों शब्द, तद्भव रूपोंमें, आये हैं। इन बातोंसे स्पष्ट है कि ये भी वेद-धर्मका अनुधावन करनेवाले हैं।

पहले ग्रीक और रोमन धर्म एक ही थे। ग्रीक और लैटिन भाषाओंमें संस्कृतके बहुत तद्भव शब्द हैं। इनके धर्म-ग्रन्थ '**साकुलर**' और '**मोमसेन**' हैं। कहते हैं, मोमसेन १६०० बी० सी० में बना। जो हो; परन्तु ग्रीक और लैटिन भाषाओंके वैदिक भाषासे प्रभावित होनेसे और ईरानके मिथ् (वैदिक मित्र) देवताकी स्तम्भोंपर प्राप्तिसे विदित होता है कि ये धर्म भी वैदिक धर्मकी नकलपर ही बने हैं। ग्रीकोंके जियस, मिनर्वा और हेलिओस देवता तो इन्द्र, उषा और सूर्यके नामान्तर भर हैं। ब्रह्मा ही ग्रीकों और रोमनोंके वलकन हैं।

स्लावोंके ग्रन्थ "**लुथियाना**" और ट्यूटनोंके धर्मग्रन्थ "**एड्डा**" से ज्ञात होता है कि ये धर्म भी वेद-धर्मके अनुकरणपर प्रचलित हैं।

बेबीलोनियन और चाल्डियन नक्षत्र-पूजक थे। इनके ग्रन्थ हैं "**डाइ-रेक्टिग बुल**" और "**इज्डुबर**"। कहते हैं, ये ग्रन्थ ४००० बी० सी० के हैं। इनमें दरायसके समय, छठी बी० सी० में, मूर्तिपूजा प्रचलित थी। सूर्यके ये परम उपासक थे। सूर्यको ये "**सुरस**" कहते थे। सेफरवेन स्थानमें एक सूर्य-मन्दिरका ध्वंसावशेष मिला है, जिसे ३८०० बी० सी० में नष्ट हुआ बताया जाता है—बना न मालूम कबका होगा! बेबीलोनियाकी (मिट्टीके नीचेके पुस्तकालयकी) मृत्फलक लिपिमें और कस्साइट लेखमें सूर्य-विवरण है। "Aryan witness" में रेवरेंड के० एम० बनर्जीने लिखा है कि **ऋग्वेद (१.११.५)** का '**बल**' ही बेबीलोनाधिपति '**बेल**' था। बेबीलोनियाकी भाषामें कितने ही वैदिक शब्द भी आये हैं।

असीरियन और फिनिशियन धर्म इसी धर्मकी नकलपर चले हैं। इन सबका प्रधान आराध्य "**अस्सुर**" है। यही अस्सुर ऋग्वेदका असुर है। दक्षिण मेसोपोटामियावाला अक्कद जातिका सुमेरियन धर्म भी वैदिक सिद्धान्तोंके अनुकरणपर है। मोहनजोदड़ो और हरप्पाकी खोदा-

इयोंसे सुमेरियन देवताओंका जो पता लगा है, उससे ऐसा ही सिद्ध होता है।

मिश्री, ग्रीक, रोमन, पारसी, ट्यूटन, बेबीलोनियन आदि सबने आर्योंसे ही सूर्योपासना सीखी थी और सबकी भाषाएँ वैदिक भाषासे उत्पन्न-सी हैं। कमसे कम वैदिक धर्म और वैदिक भाषाकी छाप तो सभी धर्मों और भाषाओंपर पड़ी है।

भारतके द्रविड़ लोग प्रसिद्ध व्यापारी थे। वे ५००० बी० सी० में एशिया माइनर गये और वहां सुमर लोगोंकी सभ्यताको जन्म दिया। हालका यही मत है। बहुत लोगोंने तो मूल आस्ट्रेलियावालोंकी सभ्यताका भी द्रविड़ों द्वारा प्रादुर्भाव बताया है। सुमर लोगोंकी तरह उनकी भाषामें भी द्रविड़ शब्दोंकी भरमार है। अफगानिस्तानकी ब्राहुई जातिकी भाषा भी द्रविड़ भाषासे मिलती है; इसलिये वह जाति द्रविड़ों की शिष्या मानी जाती है। हाल और दासके मतसे चाल्डियन भी द्रविड़ हीं थे। यहां यह ध्यान देनेकी बात है कि द्रविड़ शब्द आधुनिक है। यह देशज शब्द है। द्रविड़ आर्य ही हैं। हां, कुछ लोग इन्हें अवश्य ही वैदिक "**दस्यु**" और "**अनार्य**" कहा करते हैं। परन्तु यह मत सन्दिग्ध है।

जो हो, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि संसारके सभी प्राचीन धर्म वैदिक धर्मसे किसी न किसी रूपमें प्रभावित तो अवश्य हैं। वैदिक गायत्रीकी सूर्योपासनासे सभीने सूर्योपासना सीखी और अन्य वैदिक देवताओंको भी ग्रहण किया। बोगाजकुई (मेसोपोटामिया) के प्राप्त लेखसे सिद्ध है कि मेसोपोटामियाकी मित्तनी और हिताइत जातियां वैदिक देवताओंकी भक्त थीं। सबने वैदिक भाषासे असंख्य शब्द लिये और वैदिक संस्कृतिकी नकल की। यह सब होते हुए भी इन धर्मोंमें जादू-टोना, नर-बलि, पशु-बलि आदिका बोलबाला है। इन सभी धर्मोंमें कुछ ऐसे थोड़ेसे नियम हैं, जिन्हें इनके अनुयायियोंको अवश्य मानना पड़ता है; परन्तु वैदिक धर्ममें अधिकारानुसार विविध साधन हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि

ये सारे धर्म वैदिक धर्मके एक-एक अगको लेकर चले हैं; पूर्ण नहीं हैं। लोकमान्य तिलक महोदयके शब्दोंमें वेद-धर्ममें ऐसी विशेषताएँ हैं, जो संसारके किसी भी धर्ममें नहीं हैं। कुछ विशेषताएँ ये हैं—

१—वैदिक धर्ममें अधिकारि-भेद है। जो जिस रुचिका व्यक्ति है, वह वैसा ही साधन पसन्द करता है। ज्ञान, भक्ति, कर्म आदि रुचि-वैचित्र्यके अनुसार साधन हैं। अद्वैतवादसे लेकर आत्मबहुत्व-वादतकके साधन हैं। यह बात किसी धर्ममें नहीं है।

२—वैदिक धर्ममें उपास्य देवताका नियम नहीं—कोई भूतभावनका उपासक है, कोई रण-चण्डिकाका, कोई विघ्नहर गणेशका सेवक है, कोई निराकार निरंजनका, कोई मूर्तिपूजा करता है, कोई भूत-प्रेतकी आराधना। यह प्रक्रिया अन्य धर्ममें नहीं है।

३—हिन्दू धर्मका कोई प्रवर्त्तक नहीं। जैसे बुद्धने बौद्धधर्म, ईसाने ईसाईधर्म, जरतुष्टने पारसीधर्म और महम्मदने मुसलमानधर्म चलाया, वैसे किसीने वैदिक धर्म नहीं चलाया। उपर्युक्त आचार्योंके पहले इन धर्मों का संसारमें कोई नाम भी नहीं जानता था; परन्तु वैदिक धर्म सदासे चला आता है; इसका कोई प्रवर्त्तक वा जन्मदाता नहीं है।

४—वैदिक धर्मके व्यापक अर्थके अन्तर्गत सभी धर्म हैं। वैदिक धर्मके मानसिक तप (अहिंसा) से जैन और बौद्धधर्म, वाचनिक तप (प्रेम) से ईसाई धर्म और शारीरिक तप (साहस) से मुसलमानधर्म अनुप्राणित हैं। इसी प्रकार वैदिक धर्मके सदाचारको लेकर कनफुसी (चीनी) धर्म, अग्नि-पूजाको लेकर पारसीधर्म और सूर्य-पूजनको लेकर ईजिप्सियन, बेबीलोनियन आदि धर्म प्रचलित हैं।

५—वैदिक धर्म किसीसे विरोध नहीं करता। मूर्तिपूजा न माननेवालों का, मुसलमानधर्म माननेवालोंका और वर्णधर्म न माननेवालोंका वा ईसाई धर्मका भी वैदिक धर्म विरोध नहीं करता। वैदिक धर्मके ही

ऐसे लाखों अनुयायी हैं, जो मूर्तिपूजा नहीं मानते; परन्तु वैदिक धर्म उन्हें भी अपनी अभय गोदमें लिये हुए है।

वेदोंका स्वाध्याय, परिशीलन और मनन करनेपर वैसे तो वेदधर्ममें अगणित विशेषताएँ मिलेंगी; परन्तु उक्त विशेषताएँ ऐसी हैं, जिन्हें हम यों ही, सरलतासे, समझ सकते हैं। वैदिक धर्मकी इन्हीं विशेषताओंको लक्ष्य कर लोकमान्य तिलक महाराजने यह कारिका बनायी है—

"प्रामाण्यबुद्धिर्वेदेषु साधनानामनेकता।
उपास्यानामनियम एतद्धर्मस्य लक्षणम्॥"

प्रथम अध्याय

ऋग्वेद-संहिता

छन्दों और चरणोंसे युक्त मन्त्रोंको ऋक् वा ऋचा कहा जाता है। वेद शब्द विद् धातुसे बना है, जिसका अर्थ **ज्ञान** है। ऋचाओंका जो ज्ञान है, उसे ऋग्वेद कहते हैं। गुप्त कथनका नाम मन्त्र है। किसी देवताकी स्तुतिमें प्रयुक्त होनेवाले अर्थका स्मरण करानेवाले वाक्यको भी मन्त्र कहा जाता है। संहिता मन्त्रोंके संग्रहका नाम है।

अनेक पुराणों और पातंजल महाभाष्य (पस्पशाह्निक) आदिके अनुसार ऋग्वेदकी २१ संहिताएँ अथवा शाखाएँ हैं; परन्तु इन दिनों केवल एक **शाकल-संहिता** ही उपलब्ध है। देश-विदेशमें यही छपी है। इसके विभाग दो तरहसे किये गये हैं–(१) मण्डल, अनुवाक और वर्ग तथा (२) अष्टक, अध्याय और सूक्त। सारी संहितामें १० मण्डल, ८५ अनुवाक और २००८ वर्ग (बालखिल्यके १६ सूक्तोंको छोड़कर) हैं तथा ८ अष्टक, ६४ अध्याय और १०१७ सूक्त हैं। १४ छन्दोंमें समस्त मन्त्र गाये गये हैं। सब १०४६७ मन्त्र हैं। केवल दो चरणवाले १७ और एक चरणवाले ६ मन्त्र हैं। स्वरपर ३५८६, कवर्गपर ४०७, चवर्गपर १४२, तवर्गपर १८३३, पवर्गपर १३७७, अन्तःस्थ अक्षरोंपर १७६३ और ऊष्म-अक्षरोंपर १३५६ मन्त्र हैं। **शौनक-ऋषिकी 'अनुक्रमणी'** के अनुसार तो १०५८०॥ मन्त्र, १५३८२६ शब्द और ४३२००० अक्षर हैं। औसतसे प्रत्येक सूक्तमें १० मन्त्र और प्रत्येक मन्त्रमें ५ अक्षर हैं; परन्तु शाकल-संहिताके कितने ही संस्करणोंके मन्त्रोंकी गणना करनेपर उक्त 'अनुक्रमणी' के मन्त्रों, शब्दों और अक्षरोंकी संख्या कम मिलती है। सम्भव है, कुछ

मन्त्र लुप्त हो गये हों। **ऋग्वेद १० मण्डल**, ११४ **सूक्त**, ८ **मन्त्रमें** जो ऋग्वेदकी १५००० मन्त्र-संख्या मानी गयी है, उससे भी कुछ मन्त्रोंके लोप होनेका अनुमान होता है।

ऋग्वेद संसारकी सबसे प्राचीन पुस्तक है—ऐसा विश्वके चोटीके ऐतिहासिक भी मानते हैं। कुछ ऐतिहासिक कहते हैं कि 'कोणाकार लिपिमें लिखी असीरियाकी खण्डित धर्म-पुस्तक ऋग्वेदके समयकी है।' परन्तु अब तो इस मतका प्रामाणिक खण्डन हो चुका है। ऋग्वेदकी भाषा ऐसी है कि केवल लौकिक संस्कृतका ज्ञाता मन्त्रोंका अर्थ नहीं समझ सकता।

वेदार्थ समझनेके साधन ब्राह्मण-ग्रन्थ, प्रातिशाख्य, बृहद्देवता, सर्वानु-क्रमणी, कल्पसूत्र, निरुक्त, जैमिनीय मीमांसा आदि हैं—सायण, स्कन्द स्वामी, उद्गीथ, वेंकट माधव, उव्वट और महीधरके भाष्य भी हैं; परन्तु शाकल-संहितापर सायणाचार्यके सिवा किसीका भी भाष्य पूर्ण नहीं है। इसलिये एक मात्र आधार सायण ही हैं। सन् १३५० से १३७९ ई० तक सायणने वेदों (शाकल, तैत्तिरीय, काण्व, कौथुम, शौनक आदि संहिताओं), ब्राह्मणों (ऐतरेय, तैत्तिरीय, शतपथ, ताण्ड्य, सामविधान, गोपथ आदि), आरण्यकों (ऐतरेयारण्यक, तैत्तिरीयारण्यक आदि) और साम-प्राति-शाख्यपर भाष्य लिखा था। इस महाकार्यमें हरिहर आदि अनेक विद्वान् सत्पुरुष सायणाचार्यके सहायक थे। विजयनगराधिपति बुक्करायके समयमें भाष्यलेखन समाप्त हुआ और विजयनगरमें ही ऋग्वेद-भाष्य सर्वप्रथम प्रकाशित भी हुआ।

वेदाध्ययनसे विमुख हो केवल वाणीसे वेद-भक्त बननेवाले कुछ लोग कहते हैं कि 'अनेक जन्म तपस्या किये विना और जीवन्मुक्ति प्राप्त किये विना कोई भी न तो वेदोंका अर्थ ही समझ सकता है और न उनके बारेमें कोई राय ही दे सकता है।' किन्तु इन पंक्तियोंके लेखकमें न तो ये गुण ही हैं, न लेखक इस मतका समर्थक ही है। यह बात तो अवश्य है कि नैरुक्त, नैदान, ऐतिहासिक, ब्रह्मवादी, याज्ञिक, परिव्राजक, स्वरमुक्तिवादी

आदि कितने ही ऐसे सम्प्रदाय हैं, जो वेदार्थके सम्बन्धमें विभिन्न मत रखते हैं। औपमन्यव, कौत्स, यास्क, उद्गीथ, स्कन्दस्वामी, भरतस्वामी, रावण, भट्टभास्कर, वेंकट, उव्वट, महीधर, सत्यव्रत सामश्रमी, स्वा० दयानन्द, लो० तिलक, अविनाशचन्द्र दास, राथ, ग्रिफिथ, मैक्डानल, मैक्समूलर, लुड्विग, लांलोआ, ग्रासमान, रेले, दाराशिकोह आदि-आदि वेद-समीक्षकों की वेदार्थ-सम्बन्धिनी अनेक सम्मतियां भी हैं। परन्तु सारे वर्ग इन तीन वर्गों में ही आ जाते हैं—आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक। ये तीनों ही मत वेदोंमें यथास्थान विन्यस्त हैं। इनमेंसे किसी एकको लेकर और सारे मन्त्रोंकी खींचतान करके एक-सा ही अर्थ निकालना साम्प्रदायिक वा एकपक्षीय मनोवृत्तिका परिचायक है—निरपेक्षता, उदारता और दृष्टिव्यापकताका नहीं। प्रयोग, निरीक्षण, व्यवहार, निर्वचन, अभ्यास, समनुगमन आदिका विचार किये विना केवल अध्यात्मवादकी काल्पनिक उड़ान उड़ने और ग्रीक, लैटिन भाषाओंका कोरा अभ्यास करनेसे कोई भी वेदार्थ नहीं समझ सकता।

वेदोंमें आध्यात्मिक आदि तीनों ही अर्थ हैं और सायणाचार्यने निरपेक्ष होकर तीनों ही अर्थोंको यथास्थान लिखा है। वेदोंमें समाधिभाषा, परकीय भाषा और लौकिक भाषा—तीनों ही भाषाओंका प्रयोग है और सायणने यथास्थान तीनोंका ही रहस्य बताया है। इसीलिये उन्होंने इन्द्रका अर्थ ईश्वर, देव, ज्ञान, विद्युत्तक लिखा है और वृत्रका अर्थ असुरराज, असुर, अज्ञान और मेघतक। जहां जिस भाषा और जिस वादका कथन है, वहां उसीका उल्लेख करके सायणने अर्थ-समन्वय किया है।

यह सब होते हुए भी देश और विदेशमें सायणके विरुद्ध मत रखनेवालों की कमी नहीं है। विदेशी वेदाभ्यासियोंमें "Los von Sayana" (सायणका बहिष्कार करो) की आवाज कई बार उठायी गयी। 'वैदिक कोष' लिखनेवाले राथ और ग्रासमानका सायणमतखंडन तो विश्व-विदित है ही। परन्तु लेखकके मतसे ये सारे मतभेद और खंडन निरर्थक हैं; क्योंकि—

१—वेदार्थ-निर्णय करनेमें सायणने आर्यजातिकी प्राचीन मर्यादा और परम्पराका पालन किया है।

२—स्कन्दस्वामी, वेंकट माधव और उद्गीथ आदि ऋग्वेदके प्राचीन टीकाकारोंका सायणने अनुगमन किया है।

३—सायण-भाष्यका समर्थन सारे वैदिक साहित्य, प्राचीन इतिहास और आर्यजातिके आचार-विचारसे होता है।

४—विश्वकी विविध भाषाओंमें प्रकाशित वेद-सम्बन्धी ग्रन्थोंके प्रणेता प्रायः सायणानुयायी हैं।

५—सनातनधर्मानुयायी सदासे सायण-भाष्यको आर्य-जातिकी संस्कृति, सभ्यता और रीति-नीतिका अनुयायी मानते हैं।

६—सायण-भाष्यके सिवा ऋग्वेदपर किसीका भी पूर्ण भाष्य नहीं है। इसलिये सायण-भाष्यके अभावमें ऋग्वेदका न तो सम्यक् अर्थ-ग्रहण होता, न रोठराचार्य (राथ) की '**पीटर्सबर्ग लेक्जिकन**' नामक कोष-पुस्तक ही बन पाती और न ग्रासमानका वैदिक-कोष ही लिखा जाता।

फलतः जिन विद्वानोंकी धारणा है कि ग्रीक और लैटिन भाषाओंका ज्ञान और साधारण संस्कृत-ज्ञान रहनेसे ही मनुष्य वेदार्थ समझ सकता है, वे भारी भ्रममें हैं। हिन्दू-संस्कृति, हिन्दू-धर्म और हिन्दू-शास्त्रोंका मर्म समझनेवाले सायणके भाष्यसे वेदार्थ समझनेमें जो सहायता मिलेगी, उसकी टुकड़ी सहायता भी ग्रीक और लैटिनके ज्ञानसे अथवा लांलोआ (फ्रेंच), लुड्विग (जर्मन) और ग्रिफिथ (इंगलिश) के किये वेदार्थसे नहीं मिलेगी। इसीलिये वैदिक साहित्यका परिचय पानेके लिये सायण-भाष्य प्रधान सहायक है। इन पंक्तियोंका लेखक सायण-भाष्यके अनुकूल वेद-परिचय देना उत्तम समझता है। इसीलिये यहां सायणके सम्बन्धमें थोड़ीसी चर्चा की गयी।

ऋग्वेदकी यह **शाकल-शाखा** वैदिक साहित्यमें रत्न है। यद्यपि **अनुवाकानुक्रमणीमें** लिखा है कि 'शाकलासे वाष्कलामें केवल ८ सूक्त

अधिक है;' परन्तु 'वाष्कल-संहिता' का पता नहीं चलता। यह कहीं भी नहीं छिपी। कहते हैं, 'र्बालन लाइब्रेरी' (जर्मनी) में संस्कृतकी ४० हजार और 'इंडिया हाउस' (लंदन) में ३० हजार हस्त-लिखित पुस्तकें हैं। पता नहीं, इनमें वाष्कल-संहिता है या नहीं। जबतक वाष्कला नहीं छपती, तबतक तो शाकला ही वैदिक साहित्यका खजाना और विराट् पुस्तक मानी जायगी। इसके सामने सामवेदकी **कौथुम-संहिता**का प्रायः अस्तित्व ही नहीं है; क्योंकि कौथुममें शाकलाके ही सारे मन्त्र हैं—केवल ७५ मन्त्र ही कौथुमके अपने हैं। अथर्ववेदकी **शौनक-संहिता**में शाकलाके १२०० मन्त्र पाये जाते हैं। शौनकके बीसवें काण्डके सारे मन्त्र (कुन्ताप-सूक्त और दो अन्य मन्त्रोंको छोड़कर) शाकलाके हैं। कृष्ण यजुर्वेदकी **तैत्तिरीय संहिता**में भी शाकलाके बहुत मन्त्र हैं। इसलिये ऋग्वेद-संहिता (शाकल-शाखा) के अन्तर्गत ही प्रायः तीनों वेद हैं और इसके सविधि अध्ययनसे प्रायः चारों वेदोंका स्वाध्याय हो जाता है। इसीलिये ऋग्वेद सबसे महत्त्व-पूर्ण माना जाता है। अनेक लोगोंने तो इसके अध्ययनमें अपना सारा जीवन ही खपा डाला है।

'विषय-प्रवेश'में कहा गया है कि वेद ईश्वरका श्वास है; इसलिये वेद ईश्वरकी ही तरह नित्य है, शाश्वत है, अपौरुषेय है और ऋषियोंने समाधि-दशामें अपने विशुद्धान्तःकरणमें वेदको उसी रूपमें प्राप्त किया था, जिस रूपमें—छन्द, वाक्य, शब्द और अक्षरके रूपमें—वह इन दिनों पाया जाता है। अनन्त हिन्दुओंकी धारणा है कि वेद ईश्वर-कृत है। बहुतोंका विश्वास है—"**वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ**"। अर्थात् 'वेदसे ही धर्म निकला है।' इसीलिये अनन्त कालसे लाखों हिन्दू वेद-विद्याकी रक्षाके लिये अपने प्राणतक देते आये हैं।

लोग पूछते हैं, 'क्या वेदकी नित्यतामें प्रत्यक्ष या अनुमान प्रमाण हैं?' परन्तु हमारे यहां शंकराचार्य आदिने प्रत्यक्ष और अनुमानका खण्डन कर शब्द-प्रमाणको ही स्थापित किया है (शारीरक-भाष्य २.३.१।)। क्षुद्रतम

मानव-मस्तिष्क अज्ञेय कालके तत्त्वोंका कैसे प्रत्यक्ष करेगा और अनन्त समयकी बातोंकी कैसे अनुमिति करेगा ? इसीलिये भगवान्‌की इस उक्ति पर हिन्दुओंका दृढ़ विश्वास है कि—

"तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।"

—गीता १६.२४ ।

'इसलिये कार्य और अकार्यकी व्यवस्थिति अर्थात् कर्त्तव्य और अकर्त्तव्यका निर्णय करनेके निमित्त तेरे लिये शास्त्र प्रमाण हैं ।'

हिन्दुओंके समस्त शास्त्र वेदको नित्य मानते हैं । जैमिनीय मीमांसामें ऐसे ऐसे अनेक प्रमाण हैं, जिनसे वेदकी नित्यता सिद्ध होती है । कोषीतकि ब्राह्मणके मतसे (१०.३०) वेद-मन्त्र देखे गये हैं, बनाये नहीं । ऐतरेय ब्राह्मण (३.९) से मालूम होता है कि गौरवीतने सूक्तों वा मन्त्रसमूहों को देखा था । ईश्वरतकका खण्डन करनेवाले सांख्यने भी लिखा है—

"न पौरुषेयत्वं तत्कर्तुः पुरुषस्याभावात् ।"

(वेद अपौरुषेय है ; क्योंकि वेद-कर्त्ताका अभाव है ।) बृहदारण्यकका कहना है—

"अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतत् ऋग्वेदो यजुर्वेदः ।"

इत्यादि । अर्थात् वेद भगवान्‌का श्वास है ।

श्वेताश्वतर (६।८) का कहना है—

"यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।"

(ब्रह्माको पहले उत्पन्न कर ईश्वर उनको लोक-शिक्षाके लिये वेद देते हैं ।) स्मृतिग्रन्थोंमें तो वेदकी नित्यताके अनेक प्रमाण हैं । सायणाचार्य भी वेदको नित्य मानते ही हैं ।

यही नहीं, वेद हिन्दुओंकी प्रायः समूची कलाओं और विद्याओंका मूल भी है—

"सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति" —मनु ।

मनुष्य-जातिके प्राचीनतम इतिहास, सामाजिक नियम, राष्ट्रधर्म, सदाचार, कला, त्याग, सत्य आदिका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये एकमात्र साधन वेद ही है। वैदिक ग्रन्थोंमें ऋग्वेद, सभी दृष्टियोंसे, सर्व-मान्य और विशाल है।

शाकल-संहिताके प्रत्येक सूक्तके ऊपर उसके ऋषि, देवता, छन्द और विनियोग लिखे रहते हैं। वेदार्थ जाननेके लिये इन चारोंका ज्ञान रखना आवश्यक है। शौनककी अनुक्रमणी (११) में लिखा है कि, "जो ऋषि, देवता, छन्द और विनियोगका ज्ञान प्राप्त किये विना वेदका अध्ययन, अध्यापन, हवन, यजन, याजन आदि करते हैं, उनका सब कुछ निष्फल हो जाता है और जो ऋष्यादिको जानकर अध्ययनादि करते हैं, उनका सब कुछ फलप्रद होता है तथा ऋष्यादिके ज्ञानके साथ जो वेदार्थ भी जानते हैं, उनको अतिशय फल प्राप्त होता है। याज्ञवल्क्य और व्यासने भी अपनी स्मृतियोंमें ऐसा ही लिखा है।

जैसा कि कहा गया है, **'ऋषिर्दर्शनात्'** अर्थात् मन्त्रको देखनेवाले या साक्षात्कार करनेवालेको ऋषि कहा जाता है (**निरुक्त, नैगमकाण्ड** २.११)। महर्षि कात्यायनने **'सर्वानुक्रमसूत्र'**में ऋषिको स्मर्ता वा द्रष्टा बताया है। याज्ञवल्क्यने भी ऐसा ही लिखा है। जिन ऋषिने जिस सूक्तका आविष्कार किया, उनका वा उनके वंशका सूक्तके ऊपर नाम रहता है।

ऋग्वेद (शाकल-संहिता) के दस मण्डलोंमेंसे द्वितीय मण्डलके गृत्समद, तृतीयके विश्वामित्र, चतुर्थके वामदेव, पंचमके अत्रि, षष्ठके भारद्वाज और सप्तमके वसिष्ठ और इनका परिवार ऋषि हैं। अष्टम मण्डलके ऋषि कण्व और उनके वंशज तथा गोत्रज हैं। आश्वलायनने प्रगाथ-परिवारको अष्टमका ऋषि माना है; परन्तु षड्गुरुशिष्यने प्रगाथ को कण्व ही माना है। नवम मण्डलके ऋषि अनेक हैं। आश्वलायनने लिखा है कि 'दशम मण्डलके ऋषि क्षुद्रसूक्त और महासूक्त हैं।' परन्तु

वस्तुतः दशम मण्डलके ऋषि और उनके वंशज अनेकानेक हैं। प्रथम मण्डलके तो २३ ऋषि हैं।

सब ऋषि ब्राह्मण थे; परन्तु ऐतिहासिक कहते हैं कि 'दशम मण्डल' के इन सूक्तोंके बनानेवाले ये राजर्षि भी थे—सूक्त ३१ कवष, ६१ आरुण वैतहव्य, १३३ सुदास पैजवन और १३४ मान्धाता यौवनाश्व। ४६ वें सूक्तके ऋषि वत्सप्रि भालन्दन वैश्य थे और १७५ सूक्तके ऋषि ऊद्ध्र्व-ग्रावा शूद्र थे। परन्तु यह विषय अभी सन्दिग्ध है।

निरुक्तकारने लिखा है—

"देवो दानाद् द्योतनाद् दीपनाद् वा।"—दैवतकाण्ड १.५।

'लोकोंमें भ्रमण करनेवाले, प्रकाशित होनेवाले या भोज्य आदि सारे पदार्थ देनेवालेको देवता कहा जाता है।' तीन प्रकारके देवोंको निरुक्तकारने माना है—पृथिवी-स्थानीय अग्नि, अन्तरिक्ष-स्थानीय वायु वा इन्द्र और द्युस्थानीय सूर्य। इन्हींकी अनेक नामोंसे स्तुतियां की गयी हैं। जिस सूक्त वा मन्त्रके ऊपर जो देवता लिखे रहते हैं, उस सूक्त वा मन्त्रके वे ही प्रतिपादनीय और स्तवनीय हैं। जहां औषधि, जल, शाखा आदि जड़ पदार्थोंको देवता लिखा गया है, वहां औषधि आदि वर्णनीय हैं और उनके अधिष्ठाता देवता स्तवनीय हैं। आर्य लोग प्रत्येक जड़ पदार्थका एक अधिष्ठाता देवता मानते थे। इसीलिये उन्होंने जड़की स्तुति चेतनकी ही तरह की है। मीमांसक कहते हैं, जिस मन्त्रमें जिस देवताका वर्णन है, उसमें उसीकी-सी दिव्य शक्ति अनादि कालसे निहित है। मीमांसा मन्त्रमें ही देवत्व-शक्ति मानती है।

ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त १३६, मन्त्र ११ से मालूम पड़ता है कि पृथिवी-स्थानीय ११, अन्तरिक्षस्थानीय ११ और द्युस्थानीय ११—सब ३३ देवता हैं। कृष्ण-यजुर्वेदकी **तैत्तिरीय-संहिता** (१.४.१०१) में भी यही बात है। ऋग्वेदके अनेक स्थानों (१.३४.११; १.४५.२; ९.९३.२; १०.५५.३ आदि) में तथा **शतपथ-ब्राह्मण** (४.५.७.२) और **ऐतरेय-**

ब्राह्मण (२.२८) में ३३ देवोंका उल्लेख है। शतपथमें ८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, आकाश और पृथिवी—ये ३३ देवता हैं और ऐतरेयमें ११ प्रयाजदेव, ११ अनुयाजदेव और ११ उपयाजदेव—३३ देवता हैं। विष्णु-पुराणके मतसे ११ रुद्र, १२ आदित्य, ८ वसु, प्रजापति और वषट्कार—ये ३३ देवता हैं। परन्तु ऋग्वेदके दो स्थानों (३.९.९ और १०.५२.६) में ३३३९ देवताओंका कथन है। सायणाचार्यने लिखा है कि देवता तो ३३ ही हैं; परन्तु देवोंकी विशाल महिमा बतानेके लिये ३३३९ देवोंका उल्लेख किया गया है।

जो मनुष्योंको प्रसन्न करे और यज्ञादिकी रक्षा करे, उसे छन्द कहा जाता है। (निरुक्त, दैवतकाण्ड १.१२)। मुख्य छन्द २१ हैं। २४ अक्षरसे लेकर १०४ अक्षरतक ये सब छन्द होते हैं।

जिस कामके लिये मन्त्रका प्रयोग होता है, उसे विनियोग कहा जाता है। मन्त्रमें अर्थान्तर वा विषयान्तर होनेपर भी विनियोगके द्वारा अन्य कार्यमें उस मन्त्रको विनियुक्त किया जा सकता है—पूर्वाचार्योंने ऐसा माना है। इससे ज्ञात होता है कि शब्दार्थसे भी अधिक आधिपत्य मन्त्रोंपर विनियोगका है। ब्राह्मण-ग्रन्थों और कल्पसूत्रोंसे ऋषि, देवता आदि जाने जाते हैं।

विदेशी, अन्य-धर्मी और स्वच्छंद विचारधाराके पोषकोंका मत है कि 'आर्योंको परमात्माका ज्ञान नहीं था। उनकी पहुँच देवोंतक ही थी। प्राकृतिक शक्तियों (अग्नि, वायु आदि) में अद्भुत शक्ति देखकर वे उन्हें ही चेतन शक्तिवाले देवता समझते थे। इसीलिये उन्होंने अग्नि, इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा, वायु, पूषा, सरस्वती, विष्णु, मरुत्, स्वर्ग, सोम, रुद्र, अदिति, ब्रह्मणस्पति, भग, बृहस्पति, त्वष्टा, ऋभुगण आदि आदिको देवता मान लिया (ऋग्वेद १०.६५.१)। प्रकृतिकी लोल-लीलाओंको न समझनेके कारण आर्योंने इन्हें देवता समझ लिया।' परन्तु उनका कथन निराधार है— देवता-रहस्य न समझनेका फल है। देवताका रहस्य

"**बृहद्देवता**" बताती है। उसके प्रथमाध्यायके पांच श्लोकों (६१-६५) से पता चलता है कि इस ब्रह्माण्डकी जड़में एक ही शक्ति विद्यमान है, जिसे ईश्वर कहा जाता है। वह **'एकमेवाद्वितीयम्'** है। उसी एकको नाना रूपोंमें—विविध शक्तियोंके अधिष्ठातृ-रूपमें—स्तुति की गयी है। नियन्ता एक है; इसी मूल सत्ताके विकास सारे देव हैं। इसी बातको यास्कने (निरुक्त, दैवतकाण्ड, ७ अध्यायमें) कितनी सुन्दरतासे कहा है—

"महाभाग्याद् देवताया एक एव आत्मा बहुधा स्तूयते।
एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति।"

इसी तरह—

"तस्या महाभाग्यादेकैकस्या अपि बहूनि नामधेयानि भवन्ति।"
—नि०, दै० १.५।

ऐतरेयारण्यक (३.२; ३.१२) ने भी कहा है कि 'ऋग्वेदी लोग एक ही सत्ताकी उपासना ऋग्वेदीय मन्त्रों (उक्थों) में करते हैं।' यदि ऋग्वेदको देखें, तो इस बातके अनेकानेक प्रमाण मिलेंगे।

ऋग्वेद, तृतीय मण्डलके ५५वें सूक्तमें २२ मन्त्र हैं और सबके अन्तमें "**महद्देवानामसुरत्वमेकम्**" वाक्य आया है। तात्पर्य यह है कि देवोंकी शक्ति एक ही है, दो नहीं, अर्थात् महाशक्तिका विकास होनेके कारण देवोंकी शक्ति पृथक् नहीं—स्वतंत्र नहीं है।

ऋषियोंने जिन प्राकृत शक्तियोंकी स्तुति वा प्रशंसा की है, उनके स्थूल रूपकी नहीं की है, प्रत्युत उनकी शासिका वा आधिष्ठात्री चेतन-शक्तिकी की है। इस चेतन-शक्तिको वे परमात्मासे पृथक् वा स्वतंत्र नहीं मानते थे—परमात्मरूप ही मानते थे। उन्होंने ऋग्वेदके प्रथम मन्त्रमें ही अग्निकी स्तुति की है; परन्तु अग्निको परमात्मासे स्वतन्त्र मानकर नहीं। वे स्थूल अग्निके रूपके ज्ञाता होते हुए भी सूक्ष्म अग्नि—परमात्म-शक्ति—रूपके स्तोता और प्रशंसक थे। वे मरणशील अग्निमें व्याप्त अमरता के उपासक थे। इसीलिये उन्होंने गाया है—

"अपश्यमहं महतो महित्वममर्त्यस्य मर्त्यासु विक्षु।"
(ऋ० १०.७९.१)

'मरणशील प्रजामें मैंने अमर अग्निकी महिमाको देखा है।' इसी तरह वे इन्द्रको देवता मानते हुए भी इन्द्रकी सूक्ष्म शक्तिको परमात्म-शक्तिसे पृथक् नहीं समझते थे—परमात्म-स्वरूप समझते थे। तभी तो उन्होंने कहा है—'इन्द्र मनुष्योंके धारक हैं। उनकी महिमा समुद्रोंसे भी अधिक है।' इन्द्र तेजसे सारे संसारको पूर्ण कर देते हैं' (ऋ० १०.८९.१)। 'स्तुत्य, नाना मूर्त्तियोंवाले, दीप्तियुक्त, अनुपम प्रभु और श्रेष्ठ आत्मीय इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूँ' (ऋ० १०.१२०.६)। 'जो इन्द्र सृष्टिकर्ताओंके भी कर्त्ता हैं, जो भुवनोंके अधिपति हैं, जो रक्षक और शत्रु-विजेता हैं, उनकी मैं स्तुति करता हूँ' (ऋ० १०.१२८.७)।

भला परमात्माके सिवा किसकी महिमा समुद्रोंसे भी अधिक हो सकती है? कौन संसारको तेजसे पूर्ण कर सकता है? कौन नाना मूर्तियोंवाला, और अनुपम प्रभु हो सकता है? दूसरा कौन भुवनाधिपति और सृष्टिकर्ता का भी कर्त्ता है?

सूर्य, विष्णु, वाग्देवी, अदिति वा जितने देवता हैं, सबको वे उसी तरह परमात्मरूप समझते थे, जिस तरह एक ही धागेमें मालाकी सारी मनियां ओतप्रोत रहती हैं और केवल माला ही कहाती हैं।

यह कहना तो बिलकुल व्यर्थ है कि 'आर्योंको परमात्माका ज्ञान नहीं था।' परमात्मतत्त्वका जैसा गहन-गम्भीर ज्ञान उनको था, वैसा तो आँजतक प्रायः किसी भी मनुष्य-जातिको नहीं हुआ। लो० तिलकने (गीतारहस्यमें) ठीक ही लिखा है कि 'ऋग्वेदके नासदीय सूक्तमें जितनी स्वाधीन और उच्चतम चिन्ता है, उतनी आजतक मनुष्य-जाति नहीं कर सकी।' नासदीय सूक्तमें ही नहीं, ऋग्वेदके अनेक स्थानोंमें ऐसी ही गम्भीर चिन्ताएँ हैं। दो-चार उदाहरण देखिये—

ऋग्वेद १ मण्डल, १६४ सूक्तके ६ और २० मन्त्रोंमें परमात्माका स्पष्ट निर्वचन है। ३.५५.३ और ५.८५.१ में ईश्वरीय सत्ताका स्पष्ट अनुभव है। १०.२७.६ में ऋषि समाधिदशाका अनुभव करते हुए कहते हैं–"संसारमें घास और अन्न खानेवाले जितने मनुष्य हैं, सब मैं ही हूँ। हृदयाकाशमें जो अन्तर्यामी ब्रह्म अवस्थित हैं, वह मैं ही हूँ।" भला इससे बढ़कर अद्वैतवादकी अनुभूति क्या होगी ? १०.३१.८ में कहा गया है–'ईश्वर प्रजाका बनानेवाला और द्यावापृथिवीका धारण करनेवाला है।' इससे अधिक स्पष्ट ईश्वरत्वका ज्ञान किस धर्मको है ?

कुछ मन्त्र और देखिये–'परमात्मा एक हैं; परन्तु क्रान्तिदर्शी विद्वान् उनकी अनेक प्रकारसे कल्पना करते हैं।' (१०.११४.५)। जो देवता-तत्त्व नहीं जानते, वे इस मन्त्रको बार-बार पढ़नेका कष्ट करें। १० वें मण्डलका ९०वां सूक्त **'पुरुषसूक्त'** कहाता है। यह सारा सूक्त ही ईश्वरमय है। नमूने के तौरपर इसका दूसरा मन्त्र देखिये–'जो कुछ हुआ है और जो कुछ होनेवाला है, वह सब ईश्वर है। ईश्वर देवताके स्वामी हैं। प्राणियोंके भाग्यके निमित्त वे अपनी कारणावस्थाको छोड़कर जगदवस्थाको प्राप्त होते हैं।' इसमें स्पष्ट ही **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** का उद्घोष है। इसमें यह भी बता दिया गया है कि जैसे जीवात्माके स्वामी होते हुए भी परमात्मा और जीवात्मा एक हैं, वैसे ही देवोंके स्वामी होते हुए भी ईश्वर और देवता एक हैं। इससे यह भी सूचित होता है कि जीवोंके कर्मफलभोगके लिये ईश्वर सृष्टिकी रचना करते हैं। आगे देखिये–'उस समय–प्रलयावस्थामें–मृत्यु नहीं थी, अमरता भी नहीं थी, रात और दिनका भेद भी नहीं था। वायु-शून्य और आत्मावलम्बनसे श्वास-प्रश्वासयुक्त केवल एक ब्रह्म थे। उनके अतिरिक्त और कुछ नहीं था' (१०.१२९.२)। 'चूंकि सृष्टिकालमें कर्मफल-बीज था; इसलिये परमात्माके मनमें प्रथम सिसृक्षा उत्पन्न हुई' (१०.१२९.४)। जिनसे ज्योतिर्मय सूर्य उत्पन्न हुए हैं, वे ही सबसे ज्येष्ठ हैं। उनके पहले कोई नहीं था' (१०.११४.७)।

'परमात्माके चौदह भुवन हैं' (१०.११४.७)। दसवें मण्डलका एक सौ इक्कीसवां सूक्त **'हिरण्यगर्भसूक्त'** कहाता है। यह भी ईश्वरमय है। इसके दसों मन्त्र कण्ठस्थ करने योग्य हैं।

इन समस्त उद्धृत मन्त्रोंपर विचार करनेसे विदित होता है कि कदाचित् ऋग्वेदसे बढ़कर ईश्वरवादका स्पष्ट विवरण किसी भी धर्म, धर्मशास्त्र वा पुराणमें नहीं है। जिनकी अन्तर्दृष्टि जागरित है, वे सभी लेखकके इस मतका समर्थन करेंगे।

अनेक संस्कृत-ग्रन्थोंमें ऋक्, यजु: और साम वेदोंका नाम 'त्रयी' है। इसलिये कि तीन (अग्नि, वायु और सूर्य) ईश्वरीय शक्तियोंमेंसे अग्निका ऋग्वेदमें, वायुका यजुर्वेदमें और सूर्यका सामवेदमें विशेष कथन है।

महाभारत (१.२) श्रीमद्भागवत (१२.६) और विष्णुपुराण आदिसे पता चलता है कि 'ब्रह्माकी आज्ञासे वेद-व्यासने वैदिक संहिताओंको कई खण्डोंमें विभक्त किया—विविध-विषयक मन्त्रोंको पृथक्-पृथक् करके प्रत्येक विषयको क्रमबद्ध किया। वे पराशरके पुत्र कृष्णद्वैपायन व्यास थे और वेदोंका बँटवारा करनेके कारण ही उन कृष्णद्वैपायनका नाम व्यास पड़ा—

"वेदान् विव्यास यस्मात्स वेदव्यास इतीरितः।
तपसा ब्रह्मचर्येण व्यस्य वेदान् महामतिः॥"

(महाभारत १.२)

व्यासजीने पैलको ऋग्वेद, वैशम्पायनको यजुर्वेद, जैमिनिको सामवेद और सुमनाको अथर्ववेद पढ़ाया। पैल ऋषिने ऋग्वेदके दो भाग करके उन्हें इन्द्रप्रमति और वाष्कलको पढ़ाया। इन्द्रप्रमतिने अपना भाग अपने पुत्र माण्डुकेयको पढ़ाया। माण्डुकेयके बाद उनके पुत्र शाकल, शिष्यदेव और सौभरिने वेदाध्ययन किया। शाकलने अपने अधीत अंशका अध्ययन मुद्गल, गालव, शालीय और शिशिर आदिको कराया। इन्द्रप्रमतिके शिष्य शाकपूणि थे। इन्होंने वेदका जो भाग पढ़ा था, उसके तीन भाग

करके उन्हें अपने शिष्य क्रौञ्च, वैताल और बलाकको पढ़ाया। शाकपूणि ने अपने **'निरुक्तकृत्'** नामक शिष्यको निरुक्त बनाकर दिया। वाष्कलने अपनी संहिताके तीन भाग करके उन्हें कालायनि, गार्ग्य और कथाजवको पढ़ाया।' इस तरह ऋग्वेदकी कितनी ही शाखाएँ हो गयीं। परन्तु पांच की ही प्रधानता मानी गयी है—'शाकला, वाष्कला, माण्डुका, शांखायनी और आश्वलायनी।' इनमें अब पहली ही पायी जाती है, यह लिखा जा चुका है। अवश्य ही उपर्युक्त कथानक सर्वसम्मत नहीं है।

उव्वटने इन तेरह प्रकारके मन्त्रोंका उल्लेख किया है—विधिवाद, अर्थवाद, याच्ञा, आशीः, स्तुति, प्रैष, प्रवहलिका, प्रश्न, व्याकरण, तर्क, पूर्वानुकीर्त्तन, अवधारण और उपनिषद्। ये सब पाये जाते हैं।

यास्कने ऋकोंको तीन भागोंमें विभक्त किया है—प्रत्यक्षकृत, परोक्षकृत और आध्यात्मिक। शाकलने पदपाठकी और गालव या बाभ्रव्य ने क्रमपाठकी रचना की।

ऋग्वेदके पद्योंके शब्दोंमें जो स्वर मिलते हैं, उनके नाम उदात्त, अनुदात्त और स्वरित हैं। पाणिनिने जैसे बहुत कुछ वैदिक व्याकरण लिखा है, वैसे ही वैदिक भाषाके उच्चारणों और स्वरोंके बारेमें भी लिखा है। परन्तु पाणिनिके सब प्रयोग अब लागू नहीं होते। स्वरोंकी सर्वाधिक झलक शतपथ और तैत्तिरीय ब्राह्मणोंमें दीख पड़ती है। वैदिक पद्य-पाठ तो इनमें ओत-प्रोत हैं। द्राविड़ भाषामें आज भी वैदिक स्वरोच्चारणोंकी झलक देखी जाती है। स्वरोंके साथ वेद-पाठकी विधि है। स्वरोंके कारण अर्थभेद भी होता है।

पाठ-प्रणालीके भेदसे संहिता दो तरहसे पढ़ी जाती है। पहलीको निर्भुज-संहिता और दूसरीको प्रतृण-संहिता कहते हैं। मूलके अविकल पाठको निर्भुज कहते हैं। ऋग्वेदके प्रथम मन्त्र **"अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्"** को ज्योंका त्यों पढ़ा जाय, तो निर्भुज कहलायगा। जहां मूलको विकृत-रूपसे पढ़ा जाय, वहां प्रतृण कहा जाता है। प्रतृणके

पद-संहिता, क्रम-संहिता आदि बहुत भेद हैं। पद-पाठमें पदच्छेद करके पढ़ा जाता है–

"अग्निम्, ईले, पुरः, हितम्, यज्ञस्य, देवम्, ऋत्विजम्।"

क्रम-पाठ इस तरह पढ़ा जायगा–

"अग्नि ईले ईले पुरोहितम्, पुरोहितं यज्ञस्य यज्ञस्य देवम्, देवं ऋत्विजम्।"

जटा-पाठ इससे विचित्र है–

"अग्नि ईले, ईले अग्निम्, अग्नि ईले, ईले पुरोहितम्, पुरोहितं ईले, ईले पुरोहितम्, पुरोहितम् यज्ञस्य, यज्ञस्य पुरोहितम्, पुरोहितम् यज्ञस्य यज्ञस्य देवम्, देवं यज्ञस्य, यज्ञस्य देवम्, देवं ऋत्विजम्, ऋत्विजं देवम्, देवं ऋत्विजम्।"

घनपाठ तो और भी विचित्र है–

"अग्निं ईले ईले, अग्निं अग्नि ईले, पुरोहितं पुरोहितं ईले, अग्नि अग्नि ईले, पुरोहितं ईले पुरोहितम्, पुरोहितं ईले ईले, पुरोहितं यज्ञस्य यज्ञस्य, पुरोहितं ईले ईले, पुरोहितं यज्ञस्य पुरोहितम्, यज्ञस्य यज्ञस्य पुरोहितम्, पुरोहितं यज्ञस्य देवम्, देवं यज्ञस्य पुरोहितम्, पुरोहितं यज्ञस्य देवम्, यज्ञस्य देवं देवम्, यज्ञस्य यज्ञस्य देवम्, ऋत्विजं ऋत्विजं देवम्, यज्ञस्य यज्ञस्य देवम्, ऋत्विजम्।" इत्यादि।

ये शब्द बार-बार इसलिये भी दोहराये जाते हैं कि वेदका मूल-पाठ सदा शुद्ध रहे, कहीं भी कोई ऊपरसे प्रक्षिप्त घुला-मिला न दे। ये पाठ-क्रम और भी कई प्रकारके हैं–माला, शिखा, लेखा, ध्वजा, दण्ड, रथ आदि। विस्तार-भयसे अन्य पाठ नहीं दिये जा रहे हैं। इन पाठोंको देखकर अपने पूर्वजोंकी असाधारण प्रतिभा, दुर्द्धर्ष परिश्रम और अदम्य धैर्यपर विस्मित और विमुग्ध होना पड़ता है। 'छापाखाना' तो अभी उस दिन चला है–हजारों हजार वर्षोंसे ब्राह्मणजाति इन पाठों,

वेदोंके विशाल साहित्य और शास्त्रोंके विराट् वाङ्मयको केवल कण्ठस्थ करके सुरक्षित रखती आ रही है! वाह री अद्भुत प्रतिभा और वाह री ऋतम्भरा प्रज्ञा! क्या इन पूर्वज ब्राह्मणोंसे संसार, विशेषतः हिन्दू-जाति कभी '**उऋण**' हो सकती है? ये ब्राह्मण विद्वान् नहीं रहते, तो क्या अगाध संस्कृत-साहित्य, हिन्दू-संस्कृति, हिन्दू-धर्म और आर्य-सभ्यताका नाम भी दुनिया सुनती? इस महत्कार्यके लिये ब्राह्मणोंने भारतवर्षका राज्य छोड़ दिया, लक्ष्मीको लात मार दी, स्वेच्छया दरिद्रताका वरण किया और सरस्वतीकी अनन्य उपासना की। यदि व्यास, वसिष्ठ, परशुराम, द्रोण, चाणक्य और समर्थ रामदासकी सोलह आनेमें एक पैसा भी कामना रहती, तो आज तक भारतपर केवल विद्वान् ब्राह्मणोंका राज्य रहता, दूसरे किसीका भी नहीं। परन्तु—

"**ब्राह्मणस्य तु देहोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते।**
स तु कृच्छ्राय तपसे प्रेत्यानन्तसुखाय च॥"

अर्थात् 'ब्राह्मणका यह शरीर छोटे-मोटे कामके लिये नहीं है; यह तो जीवनमें घनघोर तपके लिये और शरीरपात होनेपर सच्चिदानन्दकी प्राप्तिके लिये है।'

वेदका प्रतिपाद्य यज्ञ है। यज्ञके प्रधान प्रसारक सनातन-धर्मी हैं। सायणका तो नाम ही '**याज्ञिक भाष्यकार**' पश्चिमी वेद-विद्यार्थी रखे हुए हैं। परन्तु यज्ञके सम्बन्धमें लोगोंमें काफी भ्रम भी फैला हुआ है। यज्ञका वाच्यार्थ पूजन, हवन, याग आदि है। भगवान्ने यज्ञकी महिमा गीतामें गायी है—

"**यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।**"

यज्ञ, दान, तप और कर्मका त्याग नहीं करना चाहिये; इनको करना ही चाहिए।'

"**यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।**"

'यज्ञसे बचे हुए अमृतका उपभोग करनेवाले शाश्वत ब्रह्मको पाते हैं।'

"**यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते।**'

'केवल यज्ञ ही के लिये कर्म करनेवाले पुरुषके समस्त कर्म विलीन हो जाते हैं।'

ऐसे ऐसे अनेक वचनोंसे भगवान्‌ने यज्ञका विराट् रूप बताया है। इसके सिवा गीतामें ब्रह्मयज्ञ, द्रव्ययज्ञ, तपोयज्ञ, योगयज्ञ, स्वाध्याययज्ञ और ज्ञानयज्ञ आदि लाक्षणिक यज्ञोंका भी वर्णन किया गया है। गीताके तीसरे अध्यायमें भगवान्‌ने यह भी कहा है कि ब्रह्माने यज्ञ और प्रजाको एक साथ उत्पन्न करके प्रजासे कहा कि 'यज्ञ इच्छित फल-दाता है। इससे तुम देवोंको सन्तुष्ट करो और देवता तुम्हें तुष्ट करें। यज्ञतुष्ट होकर देवता तुम्हें इच्छित फल देंगे।' इस तरह गीतामें यज्ञका व्यापक अर्थ है। भगवान्‌ने तीन तरहके यज्ञोंका उल्लेख, १७ वें अध्याय में, किया है। ये हैं—सात्त्विक, राजस और तामस। व्यक्तिगत फलाशा त्याग कर किया जानेवाला यज्ञ सात्त्विक वा निष्काम, फलाकांक्षा-वाला यज्ञ राजस वा सकाम और शास्त्र-श्रद्धा-मंत्रहीन यज्ञ तामस वा अधम है।

वैदिक साहित्यमें तामस यज्ञका पता तो नहीं चलता, परन्तु सकाम और निष्काम यज्ञोंका तथा लाक्षणिक यज्ञोंका प्रयोग बहुत पाया जाता है। तरह-तरहके यज्ञ, अपने लिये फलाभिलाषा लेकर भी, किये जाते थे और फलत्याग करके समाज, देश और संसारके कल्याणके लिये भी सैकड़ों यज्ञ किये जाते थे। निष्काम यज्ञको नियामकतक माना जाता था। यज्ञको विष्णुका रूप भी बताया गया है—"**विष्णुर्वै यज्ञः**" । विष्णुके नाम ही हैं यज्ञपुरुष और यज्ञेश्वर। जो यज्ञकी दार्शनिक व्याख्या और यज्ञरहस्य की विशद और यथार्थ मीमांसा देखना चाहें, वे वैदिक वाङ्मयके आरण्यक-

ग्रन्थोंको पढ़ देखें। अनेकानेक ऋषियोंके मतसे तो यज्ञका अर्थ ही है **'परोपकार'**।

यों तो ऋग्वेदके प्रायः सभी सूक्तोंमें शौर्यवीर्यकी बातें हैं—परन्तु ऋग्वेदका सबसे बड़ा युद्ध **'दाशराज्ञ-युद्ध'** है। यह भी महाभारतकी ही तरह कदाचित् आपसमें ही हुआ था। इसका उल्लेख ऋग्वेदके ७.१८,१९ और ३३ सूक्तों तथा ७.८३.७ में है। इसमें दश प्रधान योद्धा थे। सूर्यवंशी राजा सुदासकी ओर इन्द्रकी सहायता थी। उन्होंने शत्रुओंके (यज्ञविरोधी लोगोंके) ९९ नगरोंको ध्वस्त-विध्वस्त कर डाला था (१.५४.६)। इसमें पक्थ, भलान, भनन्तालिन, विषाणिन आदि अनार्य राजा भी सम्मिलित थे। इसमें ६६०६६ मनुष्य काम आये थे (७.१८.१४)।

पाश्चात्त्य वेदाभ्यासियोंने ऋग्वेदका काल-निरूपण करनेमें बहुत समय और श्रम लगाया है। अधिक यूरोपीय विद्वानोंके मतसे १२०० ईसा पूर्व, हाग और आर्कविशप प्राटके मतसे २००० ईसा पूर्व, लोक० तिलकके मतसे ४५०० ईसा पूर्व, वि० चि० वैद्यजीके मतसे ३१०० ईसा पूर्व, जैकोबीके मतसे ४५०० ईसा पूर्व, पावगीके मतसे ७००० ईसा पूर्व और अविनाशचन्द्रदासके मतसे २५००० से ७५००० वर्ष पूर्व ऋग्वेद बना था।

यद्यपि हवन-यज्ञ-कार्योंके लिये स्तुतिबहुल मन्त्र-समुदायका संकलन ऋग्वेदमें किया गया है, तथापि आर्योंके धर्म, समाज, इतिहास, संस्कृति, सभ्यता आदिके सम्बन्धके भी हजारों मन्त्र हैं। इनसे अनेकानेक मूल्यवान् विषय ज्ञात होते हैं।

कहा गया है, सोमलता मूजवान् पर्वतपर मिलती थी (१०.३१.१)। सोमकी रखवाली गन्धर्व करते थे (९.८३.४)। सोम पीकर आर्य अपने-

को अमर बनाते थे (८.४८.३)। सोम एक पौधा था; परन्तु आध्यात्मिक भाषामें सोम ब्रह्मद्रव था। इसे पीकर आर्य मुक्त होते थे।

रथको ढाकने (६.४७.२६) और घोड़ेकी लगाम आदि बनानेके काम में आर्य लोग चमड़ेको लाते थे (१०.१०२.२)। वे ऊनका कपड़ा बनाते थे (१०.२६.६)। स्त्रियां कपड़े बुनती थीं (२.३.६)। जुलाहे (तन्तु-वाय) भी कपड़े बुनते थे (१०.१०६.१)। वस्त्र दान किया जाता था (१०.१०७.२)। वे हाथोंमें सोनेका कड़ा पहनते थे (५.५८.३)। सोनेकी माला पहनते थे (५.५३.४)। सोनारको निष्कं-कृण्वान् कहते थे (८.४७.१५)। सौ दरवाजोंका भी मकान बनाते थे (७.८८.५)। कारागारमें शत्रु रखे जाते थे (१.११६.८)। लोहे और सोनेका भी घर होता था (७.३.७; ७.१५.१४)। दरवाजेपर दरवान रहता था (२.१५.९)। पायेदार दोतल्ला मकान होता था (५.६२.६)। पिंजड़े-में बाघ रखे जाते थे (१०.२८.१०)। घुड़दौड़में बाजी जीतकर अश्विनी-कुमारोंने सूर्याको पाया था (१.११६.१७)। रथमें घोड़ोंके सिवा कभी कभी गधा जोता जाता था (१.१६.२)। रथ स्वर्ण और काठके होते थे (३.६१.२; १०.८५.२)। भृगुवंशीय रथ-निर्माणमें निपुण थे (१०.३९.४)। घोड़े स्वर्णालङ्कारोंसे सजाये जाते थे (४.२.८)। आर्य तलवार और भालेसे लड़ते थे। धनुर्वाण प्रधान हथियार थे। कवच पहनते थे। लोहे और सोनेका टोप पहनते थे। दस्ताना भी पहनते थे। वाण तरकसमें रखे जाते थे (छठे मण्डलका पूरा ७५ सूक्त और ८.९६.३ मंत्र)। छुरी और तलवार भी चलाते थे (५.५७.२)। लौहास्त्र पर सान चढ़ाते थे (६.३.५)। ऋषियोंके पास गौ, घोड़े, सुवर्ण, जौ और बाल-बच्चे होते थे (९.६९.८); इसलिये वे भी युद्ध करते थे (६.२०.१)। साधारणतः लोग सौ वर्ष जीते थे (१०.८५.८)। क्षौर-कर्म नापित (नाई) करता था (१०.१४२.४)।

पुनर्जन्म, स्वर्ग, नरक और पाप-पुण्यपर आर्योंका पूर्ण विश्वास था

(१०.१७७.३)। अश्वमेध-यज्ञसे स्वर्ग मिलता था (१०.१६७.१)। अश्व देनेवाला सूर्यलोक जाता था। स्वर्णदानी अमर होता था और वस्त्र-दानी दीर्घायु प्राप्त करता था (१०.१०७.२)। **"त्र्यम्बकं यजामहे"** (मृत्युञ्जय)का जप करनेसे दीर्घायुकी प्राप्ति होती थी (७.५९.१२)। मूर्खकी निन्दा की गयी है और पढ़ने पर बड़ा जोर दिया गया है (१०.७१ भाषासूक्त)। भुने हुए जौ, सत्तू और आटेका उपयोग किया जाता था (३.५२.१)। भड़भूजेकी दूकानें थीं (१.११२.३)।

आर्योंको ज्योतिर्विद्याका पूर्ण ज्ञान था। सूर्यका रथ ५०५९ योजन चलता था। रथकी गति एक दण्डमें ७९ योजन मानी गयी है। उषा सूर्यसे आधा दण्ड पहले आती थी (१.१२३.८)। आर्य लोग बारह राशियाँ और पांच ऋतु मानते थे। हेमन्त और शिशिरको एक ही ऋतु मानते थे (१.१६४.११—१३)। वे मलमास वा मलिम्लुच् भी मानते थे (१.२५.८)। सूर्य-ग्रहणकी रीति जानते थे (५.४०.५९)। उन्हें सूर्यके दक्षिणायन होने पर वर्षा होनेका ज्ञान था (६.३२.५)। उन्हें मुद्रानीतिकी भी जानकारी थी (५.२७.२)।

वे शकुन्त, मयूर, विच्छू, सांप आदि विषधर जीवोंके विष-वेगको दूर करनेके लिये प्रार्थना करते थे (१.१९१.७—१६)। पक्षिध्वनिके अशकुन-को हटानेके लिये २.४२ और ४३ सूक्त जपनेकी विधि है। वे समुद्रयात्रा करते थे (७.८८.३)। तुग्र-पुत्र भुज्यु समुद्र-यात्रा करते थे (१.११६.३ और १.१५८.३)।

घोड़े, कुत्ते और ऊंटकी पीठपर अन्न ढोया जाता था (८.४६.२८)। एक बार एक राजाने ऋषियोंको ६० हजार घोड़े, दो हजार ऊंट, एक हजार काली घोड़ियां और एक हजार गायें दानमें दी थीं (८.४६.२२)। चेदि-वंशी राजाने ब्राह्मणोंको बहुतसी गायें और ऊंट दानमें दिये थे (८.५.३७)। ऋग्वेदमें दो बार (६.४५.३१; १०.७५.५) गंगाका उल्लेख

है। शव जलाया जाता था (१०.१६.१)। द्युलोक और भूलोककी सृष्टि साथ ही हुई थी ; सृष्टि जलाकृति थी ; सृष्टिकर्त्ता अज्ञेयसे हैं ; प्रलयके बाद सृष्टि होती थी (१०.११९ सृष्टिसूक्त)। नासिका-शून्य और शब्द-रहित जाति भी थी (२.३०.८)। हिरण्यकशिपुके पुरोहित शण्डामर्ककी चर्चा आयी है (२.३०.८)। चारों वर्णोंके सिवा पांचवा वर्ण भी था (१.८९.१० ; १.७.९ ; १.१००.१२)।

ऋग्वेद (३.५४.४ ; १.२२.१७ ; १.१९०.९ और १.१५४.१) में वामनावतारकी कथा आयी है। खेत जोतनेकी बात है (१.२३.५)। ऋषि दधीचिकी हड्डियोंसे इन्द्रके द्वारा ८१० बार असुरोंका मारा जाना लिखा है (१.८४.१३)। सूर्यकी ही किरणसे चन्द्रमामें दीप्तिका होना लिखा है (१.८४.१५), जिससे विदित होता है कि आर्य ही ज्यौतिषके इस बातके आदि ज्ञाता हैं।

आर्य लोग सोने और लोहे—दोनोंका कवच पहनते थे (१.२५.१३ ; १.५६.३)। वे इक्कीस यज्ञ करते थे—अग्न्याधान, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, आग्रहायण, चातुर्मास्य, निरूढ़-पशुबन्ध और सौत्रामणि नामके सात हवि-र्यज्ञ, अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्याम नामके सात सोमयज्ञ एवं पितृयज्ञ, पार्वणयज्ञ, अष्टकायज्ञ, श्रावणी यज्ञ, आश्वयुजी यज्ञ, आग्रहायणी यज्ञ और चैत्री यज्ञ (१.७२.६) नामके सात पाकयज्ञ। प्रथम मण्डलके १६२वें सूक्तमें अश्वमेध यज्ञका बहुत ही मार्मिक वर्णन है। सूर्यके सात घोड़ोंकी बात वे जानते थे (१. १६४.२) ; बारह राशियों, ३६० दिनों और ३६० रात्रियोंका विवरण उन्हें मालूम था (१.१६४.१३)। बारह महीने भी आर्य मानते थे (१.१६४. १२)। इसी मंत्रमें दक्षिणायन और उत्तरायणकी भी चर्चा है। नकुल और चक्रवाक् होते थे (१.१९१.१५ ; २.३९.३)। विषधर प्राणी अनेक प्रकारके थे (१.१९१ सूक्त)। उच्चैःश्रवा घोड़ा समुद्रमें ही जनमा था

(२.३५.६)। प्रसिद्ध गायत्री-मंत्रका उल्लेख है (३.६२.१०)। आर्य लोग सोनेका अलंकार कण्ठमें धारण करते थे (५.१९.३)। अरुण राजर्षिने अत्रि ऋषिको दस हजार सोनेकी मुद्राएँ (निष्क) दी थीं (५.२७.१)। वे उनचास पवनोंको जानते थे (५.५२.१७)। वे धनुष्, ज्या, धनुष्कोटि, वाण, लगाम, चाबुक, वर्म और विषाक्त वाणका व्यवहार करते थे (६.७५ सम्पूर्ण सूक्त)। शहरके शहर लोहे और सोनेके बनते थे (७.३.७)। महर्षि वसिष्ठके पास पांच हजार गायें थी (७.८.६)। केवल लोहेके बने सौ नगर थे (७.१५.१४)। वे सिंहको मार डालते थे (७.१८.१७)। वसिष्ठ-वंशीय लोग सिरके दाहिने भागमें चूड़ा धारण करते थे (७.३३.१)। पिंगल वर्णके अश्व होते थे (७.४४.३)। नील वर्णके हंस होते थे (७.५९.७)। रथपर सारथियोंके बैठनेके तीन स्थान होते थे (७.६९.२)। धूपसे वृष्टि होनेका उल्लेख है (७।७०।२)। बहुत तरहके मेढ़क होते थे (७.१०३ सूक्त)। उल्लू, कुक्कुर, बाज और गिद्ध होते (७.१०४.२२)। प्रतिदिन चालीस कोस चलनेवाले घोड़े होते थे (८.१.९)। सोनेका चर्मास्तरण होता था (८.१.३२)। यदुवंशी आसंग नामक राजाने दस हजार गायें दान दी थीं (७.१.३३)। विभिन्दु नामके राजाने चालीस हजार निष्कका एक बार और आठ हजार निष्क (स्वर्णमुद्रा) का एक बार दान दिया था (८.२.४१)। चेदिवंशीय कशु नामके राजाने सौ ऊंट और दस हजार गायें दान दी थीं (८.५.३७)। वज्र सौ धारोंवाला भी होता था (८.६.६)। वैश्यका पृथक् भी उल्लेख है (८.४५.१८)। एक बार ७० हजार अश्वों, २ हजार ऊंटों, १ हजार काली घोड़ियों, १० हजार गायों और सोनेका रथ दानमें दिया गया था (८.५६.२२–२४)।

आर्य ४९ ही नहीं ६३ वायु भी मानते थे (८.४५.८)। जड़ी-बूटीसे चिकित्सा की जाती थी (८.२८.२६)। शुक, हारीत, भैंस, हंस, बाज आदि बहुत थे (८.४५.७–९)। तीन तल्लोंवाले मकान भी बनते थे (८.५०.१२)। तीस दिनों और तीस रातोंका महीना होता था (९.५४.

२)। जौ का दान बहुत दिया जाता था (६.५५.१)। ध्वस्र और पुरुषन्ति नामके राजाओंने तीस हजार कपड़ोंका दान दिया था (६.५८.४)। राजा वेन और नहुषके वंशजोंका उल्लेख किया गया है (६.८५.१० ; ६.६१.२)। नौकर और वेतनकी चर्चा भी है (६.१०३.१)। बच्चे गहने पहनते थे (६ १०४.१) कुरुक्षेत्रके पास शर्यणावान् तड़ागमें सोम होता था (६.११३.१)। जुड़वें बच्चे भी होते थे (१०.१३.२)। पितृलोक और यमपुरीका वर्णन मिलता है (१०.१४ सूक्त)। इसी सूक्तमें लिखा है कि 'श्मशान घाटपर पिशाच रहते हैं और यमद्वारके रक्षक दो भयंकर कुत्ते हैं।' १०वें मण्डलके १५ वें सूक्तमें पितरोंका पूरा विवरण पाया जाता है। पितृयान और देवयानकी चर्चा पायी जाती है (१०.१८.१)। १०वें मण्डलके पूरे १९वें सूक्तमें गायोंकी स्तुति की गयी है। मेष-लोमका कम्वल बनता था (१०.२६.६)। गायत्रीको स्तोत्रोंकी माता कहा गया है (१०.३२.४)। द्यूत-क्रीड़ा और तिरपन तरहके पाशोंका उल्लेख मिलता है (१०.३४ सूक्त)। हाथीको अंकुशसे वशमें किया जाता था (१०.४४.६)। जौको कोठीमें भी रखा जाता था (१०.६८.३)। ब्राह्मणोंके साथ जो यज्ञ और स्तुति नहीं करते थे, वे हल जोतते थे (१०.७१.६)। नदीसूक्त (१०.७५) में गंगा, यमुना आदि नदियोंका उल्लेख मिलता है। चादर, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी और मघाका उल्लेख पाया जाता है (१०.८५.१३)। वाराह भी होता था (१०.८६.४)। इसी मण्डलका ९० वां सूक्त पुरुष-सूक्त है।

पांच-पांच सौ रथ एक साथ चलते थे (१०.९३.१४)। राजा राम और राजा वेनकी बात एक ही मन्त्रमें पायी जाती है (१०.९३.१४)। ९५ वें सूक्तमें उर्वशी और पुरूरवाकी प्रसिद्ध कथा है। ९७ वें सूक्तमें औषधों, रोगों और वैद्यकी बात है। अग्निमें ९९ हजार आहुतियां देनेका विवरण है (१०.९८.१०)। जोताई, हल, सीत, जुआठ, हँसिया, तंग (चर्म-रज्जु), खेत, गाड़ी, नाद, गोशाला, काठके पात्र, प्रस्तर-कुठार,

लौह-पात्र आदिका विवरण पाया जाता है (१०.१०१.२–११)। मेघोंके समान वाण-वर्षण किया जाता था (१०.१०२.११)। इसी मण्डलका २०७ वां सूक्त दान-सूक्त है, १२१ वां हिरण्यगर्भसूक्त है और १२९ वां नासदीय सूक्त है। ये तीनों ही कण्ठस्थ करने योग्य हैं। १४६ वां सूक्त अरण्यानीसूक्त है, जिसमें प्राकृतिक दृश्योंका हृदयग्राही वर्णन है। १५१ वां श्रद्धासूक्त, १५५ वां दरिद्रता-नाशक सूक्त, १५८ वां चक्षुः-प्राप्ति सूक्त, १६२ वां गर्भ-रक्षण सूक्त, १६६ वां शत्रु-विनाशक सूक्त और १७३ वां राजसूक्त है। इन सबमें अनेकानेक ज्ञातव्य बातें हैं।

आर्य लोग पूषासे कमनीय कन्या मांगते थे (९.६७.१०–११)। दौहित्रको अपना उत्तराधिकारी बनाते थे (३.३१.१–२)। कन्याएँ कसीदा काढ़ती थीं (२.३.६)। वे घड़े भरती थीं (१.१९१.१४)। स्त्री गृहमें प्रभुता करती थी (१०.८५.३०)। वीरप्रसविनी नारीके लिये प्रार्थना की जाती थी (१०.८५.४४)। स्त्रियां यज्ञकार्यमें नियुक्त की जाती थीं (१०.४०.१०)। स्त्रियोंने ऋचाओंका आविष्कार किया था। १० वें मण्डलके ३९–४० सूक्तोंका स्मरण घोषाने किया था। प्रथम मण्डलके १७९ सूक्तका आविष्कार लोपामुद्राने किया था। इसी प्रकार १.१२६.६–७ मन्त्रोंकी लोमशा, ५.२८ की विश्वावारा, १०.१५९ की पुलोम-पुत्री शची और १०.१०९ की जुहू ऋषिकाएँ थीं।

वस्त्रों और आभूषणोंसे सजा कर कन्याका दान दिया जाता था (१०.३९.१४; ९.४६.२)। औरस पुत्रके लिये प्रार्थना की जाती थी (७.१.२१)। अनौरससे दूर रहा जाता था (७.४.७)। स्त्री-पुरुष साथ-साथ यज्ञ करते थे (१.१३१.३)।

ऋग्वेदके अन्तिम एकता-सूक्तके अन्तिम मन्त्रको देकर यह चर्चा समाप्त की जाती है–

"समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥"

अर्थात् यजमान-पुरोहितो, तुम्हारा अध्यवसाय एक हो, तुम्हारे हृदय एक हों और तुम्हारा मन एक हो। तुम लोगोंका पूर्ण रूपसे संघटन हो।*

---

* ऋग्वेदकी शाखाओं वा संहिताओंकी संख्याके सम्बन्धमें बड़ा मतभेद है। भर्तृहरिने अपने 'वाक्यपदीय'में पंद्रह और पातञ्जल महाभाष्यने इक्कीस शाखाएँ मानी हैं। अणु-भाष्य (१.१.१) में उद्धृत स्कन्द-पुराण और आनन्दसंहिता (२) के अनुसार २४ तथा श्रीभगवद्दत्तजीके अनुसार सत्ताईस शाखाएँ हैं। परन्तु तैत्तिरीय प्रातिशाख्य, इसीके माहिषेय भाष्य, पातञ्जल महाभाष्य, काशिकावृत्ति, अष्टाध्यायी, कल्पसूत्रों, पुराणों आदिमें ऋग्वेदकी २७ से भी अधिक ये शाखाएँ मिलती हैं—

१. शाकल, २. मुद्गल, ३. गालव, ४. शालीय, ५. वात्स्य, ६. शैशिरि, ७. वाष्कल, ८. बौध्य, ९. अग्निमाठर, १०. पराशर, ११. जातूकर्ण्य, १२. आश्वलायन, १३. शांखायन, १४. कौषीतकि, १५. महाकौषीतकि, १६. शाम्बव्य, १७. माण्डुकेय, १८. बह्वृच, १९. पैङ्ग्य, २०. उद्दालक, २१. गोतम, २२. शतवलाक्ष, २३. हौस्तिक, २४. भारद्वाज, २५. ऐतरेय, २६. वसिष्ठ, २७. सुलभ, २८. शौनक, २९. आश्मरथ्य, ३०. काश्यप, ३१. कार्मन्द, ३२. कार्शाश्व, ३३. क्रौड और ३४. काङ्कत।

अभीतक वैदिक साहित्य और लौकिक संस्कृत साहित्यके शोध और अन्वेषणका कार्य बाकी है। दोनों साहित्योंके अप्रकाशित ग्रन्थ भी सैकड़ों इतस्ततः पड़े हैं; इसलिये सम्भव है, शोध, अन्वेषण और प्रकाशन हो जाने

पर इन नामोंमें और वृद्धि हो या न्यूनता हो या शुद्धता हो और ठीक संख्या की निश्चयता हो। पहले तो विविध ग्रन्थोंमें एक ही नाम इतने रूपोंमें मिलता है कि देखकर आश्चर्य होता है। उदाहरणके रूपमें शाम्बव्य शब्द को लीजिये। इसको कहीं शांवत्य लिखा है, कहीं साम्बाख्य, कहीं संभाव्य, कहीं शांभव्य, कहीं शांवाश्य, कहीं शाकाभ्य, कहीं शांबव्य, कहीं सांबाख्य, कहीं संबाख्य और कहीं कुछ और कहीं कुछ। ऐसी दशामें नामोंकी शुद्धता म ही पहले तो भारी सन्देह है। दूसरे कहीं एक ही नामको शाखामें गिना गया है, कहीं उपशाखामें और कहीं प्रशाखामें।

वैदिक साहित्यमें सौत्र-(श्रौत्र-धर्म-गृह्यादि-सूत्र-सम्बन्धिनी) शाखा भी प्रसिद्ध है। भारद्वाज, हिरण्यकेशी, सत्याषाढ़, बाधूल आदि सौत्र शाखाएं वर्तमान ही हैं। बहुत सम्भव है, इन चौबीस नामोंमेंसे कुछ नाम सौत्र-शाखाओंके हों। इसी तरह सम्भव है, इन चौंतीस नामोंमेंसे कई नाम संहिता-भाष्यकारों, निरुक्तकारों, प्रातिशाख्यकर्त्ताओं, पदपाठकारों और अनुक्रमणीकारोंके हों। इनमें ब्राह्मण-कुलोंके भी नाम हो सकते हैं। वैदिक साहित्यको कंठस्थ करनेवालों और लिपिकारोंके कारण भी इन नामोंमें अनिश्चिति और अशुद्धि आ गयी है। फलतः जोर देकर यह नहीं कहा जा सकता कि ये चौंतीसों नाम शाखा-प्रवचन-कर्त्ताओंके ही हैं या ऋग्वेदकी चौंतीस शाखाएँ थीं। जिस शाखाकी संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक या उपनिषद् नहीं मिलती, उसकी निश्चयताके सम्बन्धमें कुछ नहीं कहा जा सकता। हां, भारतवर्षमें ऐसे सैकड़ों घर हैं, जिनमें खोज करनेपर वैदिक-साहित्यके अनेकानेक ग्रन्थ मिल सकते हैं। इन ग्रन्थोंसे शाखा-निर्णयमें बड़ी सहायता मिलेगी।

इसी अनिश्चयताके कारण इस लेखमें लेखकने ऐसे ही शाखा-नाम लिखे हैं, जो अनेकानेक ग्रन्थोंमें अत्यन्त विख्यात हैं। शाखा-संख्या-निर्णय के लिये विद्वानोंको प्रयत्न करना चाहिये।

द्वितीय अध्याय

ऋग्वेद और नारीजाति

जैसे धनकी देवी लक्ष्मी, शक्तिकी दुर्गा और विद्याकी सरस्वती हैं, वैसे ही अदिति, उषा, इन्द्राणी, इला, भारती, होत्रा, सिनीवाली, श्रद्धा, पृश्नि आदि वैदिक देवियां अनेक तत्त्वोंकी अधिष्ठात्री है। ये कही देवमाताएँ और कहीं देवकन्याएँ मानी गयी हैं। इनमें अदितिका उल्लेख सर्वाधिक है। सब मिलाकर ऋग्वेदमें ८० बार अदिति देवीका उल्लेख है। जिस तरह मिश्रवाले 'मात' (Maat) को पूजते थे और यूनानी थेमिस (Themis) को पूजते थे और देवमाता मानते थे, वैसे ही आर्य लोग अदितिको मानते थे। वे अदितिको मित्र, वरुण, रुद्र, आदित्य, इन्द्र आदिकी माता मानते थे। (सौरीघरमें ही अदितिने इन्द्रको स्तनपान करानेके पहले सोमरस पिलाया था।) अदितिको सर्वशक्तिमती मानकर कहीं उन्हें आठ वसुओंकी पुत्री और कही आदित्योंकी भगिनी भी कहा गया है। (अदिति शब्दसे ही आदित्य शब्द बना है।) ऋग्वेदके १० मण्डल, सूक्त १००, मन्त्र १ में अदितिको 'सर्वतातिम्' (सर्वग्राहिणी) कहा गया है। अदिति शब्दका अर्थ ही है 'बन्धनमुक्त', 'स्वाधीन'। अदिति को '**विश्वजन्या**' (७.१०.४) अर्थात् विश्वहितैषिणी कहा गया है। १.८९.१० में कहा गया है—'अदिति आकाश, अन्तरिक्ष, माता, पिता, पुत्र और समस्त देव हैं। अदिति पञ्चजन (गन्धर्व, पितर, देव, असुर और राक्षस) है। अदिति जन्म और जन्मका कारण है।' अदिति पापोंसे बचानेवाली देवी भी थीं। कहा गया है—'धनी मित्र और वरुणकी माता अदिति देवी हमें पापोंसे बचावें' (१०.३६.३)। एक अन्य मन्त्र (७.८२.१०) में कहा गया है—'यज्ञवर्द्धिका अदितिका तेज हमारे लिये सुखकर हो'। १०.७२.५ में अदितिको दक्ष-पुत्री कहा गया है।

पुराणोंमें जिन 'दिति' को दैत्योंकी माता कहा गया है, उनका भी ऋग्वेदमें उल्लेख है। कहा गया है–

"हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टवयः स्थूणमुदिता सूर्यस्य।
आरोहथो वरुण मित्र गर्तमतश्चक्षाथे अदितिं दितिं च॥"

अर्थात् हे मित्र और वरुण, तुम उषः-कालमें सूर्यके उदित होनेपर लौह-कीलसे युक्त सुवर्णमय रथपर यज्ञमें जानेके लिये आरोहण करो और अदिति तथा दितिका अवलोकन करो।

अदितिके साथ दितिका ऋग्वेदमें केवल तीन ही बार उल्लेख है, परन्तु सर्वत्र दिति देवी ही मानी गयी हैं, दैत्य-माता नहीं।

देवीके रूपमें ही द्यावा और पृथिवीका वर्णन ऋग्वेदमें कई स्थानपर है। १ मण्डल १५९ और १६० दो सूक्तों (दस मन्त्रों) में इन दोनोंका पूरा विवरण है। इन मन्त्रोंमें इन दोनोंको यज्ञवर्द्धिका, महती, यजमान-माता, उदारा, सदया, माता, पिता, अमृतदात्री, सहोदरा, भगिनी, प्रज्ञा-युक्ता, चैतन्य-स्वरूपिणी, सुखदायिनी, सुजाता, निपुणा, जीवरक्षिणी, फलदात्री आदि कहा गया है।

हल द्वारा चिह्नित भूमि-रेखाका नाम सीता है (शुक्ल यजुर्वेद, महीधर); परन्तु ऋग्वेदमें कई स्थानोंपर सीताकी स्तुति देवी कहकर की गयी है। कहा गया है–

'सौभाग्यवती सीता, हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम हमें धन और सुन्दर फल दो। पूषा सीताको नियमित करें' (४.५७.६–७)।

उषाका अर्थ प्रभात है; परन्तु ऋग्वेदमें उषाका देवी रूपसे प्रायः ३०० बार उल्लेख है। सूक्तके सूक्त उषाकी स्तुतिसे भरे पड़े हैं–१.४८–४९,२३,२४; ३.६१; ४.३०,५१,५२; ५.७९,८०; १०.१७२ आदि। उषाको आकाश-पुत्री, सत्यभाषिणी, दीप्तिमती आदि कहा गया है (१.९२.१३–१४)। उषामें सारे प्राणियोंकी इच्छा और जीवन बताया गया है (१.४८.१०)। उन्हें नित्य यौवन-सम्पन्ना, शुभ्रवसना और धना-

धीश्वरी कहा गया है (१.१३.७)। यूनानियोंमें हओस, दहना, एथेना आदि उषाके कई नाम हैं। लैटिन भाषा-भाषी उषाको 'मिनर्वा' कहते हैं। यूनानी आदिकोंमें उषाकी कितनी ही कहानियां प्रचलित हैं और वे उषाके पूरे भक्त हैं।

सूर्यकी पुत्रीका नाम सूर्या है। सूर्याको ऋग्वेदमें देवी और ऋषिका भी कहा गया है। उन्होंने १० मण्डलके ८५ सूक्तको बनाया या स्मरण किया है। इस सूक्तमें उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपकके द्वारा तथा आध्यात्मिक वा समाधि-भाषामें सूर्याका अनेक प्रकारसे वर्णन है। विवाहके अनन्तर सूर्याको अश्विनीकुमार एक रथपर ले गये थे। यह समस्त सूक्त पढ़ने लायक है। इसमें अनेक ज्ञातव्य विषय हैं।

इन्द्राणी इन्द्रदेवकी पत्नी हैं। उनका एक नाम शची भी है। ऋग्वेद १० मण्डल, १४५ सूक्तकी ऋषिका इन्द्राणी हैं और १५९ की पुलोमपुत्री शची हैं। दोनों सूक्तोंसे मालूम पड़ता है कि इन्द्रकी अनेक पत्नियां थीं और उन सबसे शचीका भारी द्वेष था। १४५ में लिखा है—'सपत्नीके नाशके लिये शची एक औषध खोद निकालती हैं।' यह बात पहले मन्त्रमें है। तीसरेमें शचीने अपनी सौतको नीचातिनीच बताया है और वे सपत्नी से बहुत दूर भागती हैं। इस औषधको इन्द्राणीने इन्द्रके सिरहाने रख दिया, ताकि सौतोंकी ओरसे इन्द्रका मन फिर जाय। १५९ सूक्तमें कहा गया है कि शचीने सौतोंका तेज उड़ाकर उन्हें परास्त किया।

वाक्को भी देवी माना गया है। वाक्को प्रदीपिका, देवानन्दकारिणी, अन्न-जलदात्री, हर्षकारिणी आदि कहा गया है (८.९९.१०-११)। ये ही अम्भृण ऋषिकी पुत्री वाग्देवी १० मण्डलके १२५ वें सूक्तकी ऋषिका हैं। इस सूक्तमें आठ मन्त्र हैं और सबमें वाक्की बड़ी महिमा बतायी गयी है। वाग्देवीको मित्र और वरुणको धारण करनेवाली कहा गया है। राज्याधीश्वरी, धनदात्री, ज्ञानवती, प्राणव्यापिनी, उपदेशिका, आकाशजननी आदि भी कहा गया है। अन्तिम मन्त्रमें कहा गया है—'मैं ही (वाग्देवी

ही) भुवनका निर्माण करते-करते वायुके समान बहती हूं। मेरी महिमा ऐसी बड़ी है कि मैं द्यावापृथिवीका अतिक्रम कर चुकी हूँ।'

इलाको घृतहस्ता, अन्नरूपिणी और हविर्लक्षणा देवी कहा गया है (७.१६.८)। उन्हें मनुके यज्ञमें हविका सेवन करनेवाली भी बताया गया है (१०.७०.८)। एक स्थानपर (५.४१.१६) इला या इड़ाको गो-संघकी निर्मात्री कहा गया है। १.३१.११ में इलाको मानवजातिका पौरोहित्य करानेवाली उपदेशिका बताया गया है*।

सरस्वती देवीको पतितपावनी, धनदात्री, सत्यप्रेरिका, शिक्षिका और ज्ञानदात्री कहा गया है (१.३.१०-१२)। इसमें सन्देह नहीं कि सरस्वती नामकी एक नदी भी थी, जिसके तटपर आर्योंने अनेक यज्ञ किये थे। इस नदीका उल्लेख भी ऋग्वेदमें अनेक स्थानोंपर है। परन्तु ये देवी मन्त्रोंकी अधिष्ठात्री और वाक्प्रेरयित्री भी मानी गयी हैं। अनेक मन्त्रोंकी आविष्कर्त्री भी सरस्वती देवी हैं।

भारतीको मनुके यज्ञमें हविका सेवन करनेवाली कहा गया है (१०.७०.८)। एक स्थानपर (१.२२.१०) भारती देवीको देवोंको यज्ञमें बुलानेवाली और सत्यवादिनी कहा गया है। इसी मन्त्रमें होत्रा देवीको देवरमणी बताया गया है।

सरण्यूको यमकी माता और विवस्वान्‌की पुत्री बताया गया है। सरण्यूके पिता त्वष्टा थे। कहा गया है, सरण्यूके विवाहमें सारा संसार आया

---

* संसारके कई देशोंमें स्त्रियां पौरोहित्य करानेवाली हो गयी हैं। ब्रिटेनके मन्दिरोंमें पूजा करानेवाली स्त्रियां प्रसिद्ध ही हैं। यूनानमें डीमेटर और पर्सीफोनकी पुजारिनें भी ऐसी ही थीं। बोर्नियोकी कयान स्त्रियां भी धान बोनेके समय पूजा कराती हैं। अमेरिकाके रेड इंडियनोंमें भी यही बात है। बर्मामें तो स्त्रियां ही धर्मकी जड़ हैं।

था। ये ही देवी दोनों अश्विनीकुमारोंकी माता हैं। अश्विनीकुमार यमज, विद्वान् और वैद्य थे (१०.१७.१-२)।

२.३२.५–८ में सिनीवाली, राका और गुंगु देवियोंका उल्लेख है। सिनीवालीको सुबाहु, सुन्दर अंगुलियोंवाली, लोकरक्षिणी और बहुप्रसविनी कहा गया है। राकाको धनदात्री और शोभना कहा गया है। आठवें मन्त्रमें कुहू, सरस्वती, इन्द्राणी और वरुणानीका भी आह्वान किया गया है। छठे मन्त्रमें सिनीवालीको देवभगिनीकी संज्ञा दी गयी है। १०.१८४ सूक्तका नाम गर्भरक्षण-सूक्त है। इसमें सिनीवाली और सरस्वतीको गर्भधारण करनेके लिये कहा गया है।

१०.५९.५-६ में प्राणनेत्री एक असुदेवीका उल्लेख है। देवीसे प्रार्थना की गयी है कि हमें परमायु दो, नेत्र दो, चिरकालतक सूर्योदय देखने दो और हमें सुखी करो। १०.१५१ सूक्तमें श्रद्धाका वर्णन है। श्रद्धा ही इस सूक्तकी ऋषिका और देवता या वर्ण्य विषय है। कहा गया है–'श्रद्धासे अग्नि जलता है, श्रद्धासे हविका हवन किया जाता है। मनमें कोई भी संकल्प होनेपर लोग श्रद्धाकी शरणमें जाते हैं। श्रद्धासे ही मनुष्य धन पाता है। श्रद्धा, हमें इस संसारमें श्रद्धावान् करो।' वस्तुतः श्रद्धा ही सब कुछ करती है–**'यो यच्छ्रद्धः स एव सः' (गीता)**। बिना श्रद्धाके क्षुद्र-बुद्धि मनुष्य इस अनन्त विश्वको न समझ ही सकता है और न जीवनमें कोई सफलता ही प्राप्त कर सकता है। परन्तु 'विश्वास या श्रद्धा या तो भगवान्‌की दयासे प्राप्त होती है या हृदयकी दृढ़ भावनासे' (शतपथ-ब्राह्मण १२.७.३.११)।

पृश्नि देवीको मरुतोंकी माता कहा गया है। उन्हें सोमरस दूहनेवाली बताया गया है (८.७.१०)। एक मन्त्रमें (१.२३.१०) पृश्नि-पुत्र मरुतोंको यज्ञमें बुलाया गया है।*

*** सायणने पृश्निका अर्थ पृथ्वी किया है। ईसासे कई सौ वर्ष पहले निर्मित 'निघण्टु' में पृश्निका अर्थ आकाश है। 'निरुक्त' के टीकाकार राथ**

अरण्यानी या वनदेवीका भी उल्लेख है। कहा गया है—

"न वा अरण्यानिर्हन्त्यन्यश्चेन्नाभिगच्छति।
स्वादो फलस्य जग्ध्वाय यथाकामं नि पद्यते॥"

अर्थात् 'अरण्यानी देवी किसीका प्राणवध नहीं करती। यदि व्याघ्र, चोर आदि न आवें तो कोई भय नहीं है। वनमें स्वादिष्ट फल खा-खाकर आनन्दसे समय बिताया जा सकता है' (१०.१४६.५)।

"आञ्जनगन्धि सुरभि बह्वन्नामकृषीवलाम्।
प्राहं मृगाणां मातरमरण्यानिमशंसिषम्॥"

अर्थात् 'कस्तूरीके समान अरण्यानीका सौरभ है। वहां आहार भी है। वहां प्रथम कृषिका अभाव रहता है। अरण्यानी हरिणोंकी मातृ-रूपिणी है। इस प्रकार मैंने अरण्यानी देवीकी स्तुति की' (१०.१४६.६)।

१.२२.१२ में लिखा है—'अपने मंगलके लिये और सोमपानके लिये हम इन्द्राणी, वरुणानी और अग्नायी (अग्न्यानी) को इस यज्ञमें बुलाते हैं।'

मुख्य देवियां ये ही हैं। खोजनेपर कुछ अप्रसिद्ध देवियां और भी मिल सकती हैं। ऋग्वेदमें कई स्थानोंपर नदियों और स्वर्गवासिनी अप्सराओं की भी स्तुति की गयी है।

आर्योंका यह उचित ही विचार था कि कोई भी जड़ पदार्थ स्वयं कार्य करनेमें असमर्थ है। हां, यदि उसका कोई चेतन अधिष्ठाता हो, तो वह कार्य करनेमें समर्थ हो सकता है। इसी विचारसे आर्य लोग अग्नि, वायु, नदी आदिके सिवा उनके अधिष्ठातृ-रूपसे एक-एक चेतन अग्नि, वायु, नदी आदि भी मानते थे। ऐसे देव तो अनन्त हैं; परन्तु चूंकि परमात्मा सबके अधिष्ठाता, शासक और नियामक हैं; इसलिये इन सब

ने पृश्निका अर्थ मेघ लिखा है। ऋग्वेदके फ्रेंच टीकाकार लांलोआने भी मेघ ही अर्थ लिखा है। लांलोआका कहना है—"Le nuafe, on I'air charge de nuafes." **इन अर्थोंमें बहुत कुछ खींचतान है।**

देवोंको ईश्वरका अंश भी माना जाता है। फलतः शासक-रूपसे उन-विषयोंके अनेक देव हैं; परन्तु चेतन-रूप होनेसे सामुदायिक रूपसे सब देव एक हैं और वही एकत्व-केन्द्र परमात्मा हैं। हां, यह बात अवश्य है कि ऋग्वेदके मन्त्रोंमें देवियोंको छोड़कर मुख्य देवता तैंतीस ही माने गये हैं।

दैवी जगत्के अनन्तर मानव जगत्का विचार करनेपर विदित होता है कि आर्य लोग नारियोंका बड़ा सम्मान करते थे। ऋषि, महर्षि आदि प्रायः सभी आर्य विवाह करते थे। वे नारीको ही घर मानते थे। '**गृहिणी गृहमुच्यते**' आर्य लोग मानते थे (३.५३.४)। नारीके विना वे घरका अस्तित्व ही नहीं समझते थे। वे पूषा देवतासे कमनीय कन्या मांगते थे (९.६७.१०-११)। वे कन्याओंका बहुत आदर तो करते ही थे, उनके पुत्र अर्थात् अपने दौहित्रको अपना उत्तराधिकारी भी बनाते थे (३.३१.१-२)। कन्याका एक नाम दुहिता भी है। यह शब्द 'दुह' धातुसे बना है, जिसका अर्थ है दूहना। इस शब्दको देखकर अनेक देशी और विदेशी वेदाभ्यासी कहते हैं कि पहले कन्याओंका मुख्य कार्य गौका दूध दूहना था। ये कन्याएँ गो-रक्षा करती थीं, दूध दूहती थीं और घी निकालती थीं। जिस घरमें घी रहता है, उस घरमें देवताके आगमनकी बात कही गयी है (१.१३५.७)। वे कपड़े बुनती थीं, कसीदा काढ़ती थीं (२.३.६; २.३८.४)। वे घड़े भरती थीं (१.१९१.१४)। मां-बापको पानी नहीं भरने देती थीं। वे खेतोंकी रखवाली भी करती थीं। कन्याकी रक्षा पिता करते थे और पिताकी मृत्यु हो जानेपर भाई अपनी बहनकी रक्षा करता था। जिसके भाई नहीं रहता था, उसको दूसरी चिन्ता करनी पड़ती थी (४.५.५)। आमरण अविवाहिता रहनेवाली कन्या अपने पिताके धनमें हिस्सा पाती थी (२.१७.७)। कक्षीवान्की पुत्री घोषा बुढ़ापेतक अपने पिताके घरमें ही थी; परन्तु अन्तमें विवाह कर लिया था (८.३९.३)। जबतक वह पितृगृहमें थी, तबतक पितृधनमें अपना अंश पाये हुई थी।

वृद्धावस्थातक नारी अपने गृहमें प्रभुता करती थी (१०.८५.२७)। पशु-रक्षिणी और वीर-प्रसविनी नारीके लिये, देवोंसे बार-बार प्रार्थना की गयी है (१०.८५.४४)। नारी स्त्री-धनसे भी ब्राह्मणोंको दान देती थी (१०.८५.२९)।

इस तरह मालूम पड़ता है कि आर्य लोग कन्याका बड़ा सम्मान करते थे, उन्हें सुयोग्य गृहिणी बनाते थे और उन्हें यथेष्ट धन और अंश भी देते थे। यह बात आर्योंकी ही है। अन्य जातियोंमें यह बात नहीं थी। संसारकी अन्य प्राचीन जातियोंमें नारियां 'पैरकी जूती' समझी जाती थीं और जो चाहता था, वह मनमानी सौ-दो-सौ स्त्रियां रख लेता था। महम्मद साहबके पहले अरबमें जनमते ही लड़कियां जला दी जाती थीं। महम्मदने बड़े परिश्रमसे यह राक्षसी प्रथा उठायी थी (कुरान, सिपारा १७)। एथेन्स और स्पार्टामें स्त्रियोंकी जैसी नारकीय दशा थी, वह इतिहासके विद्यार्थियोंसे छिपी नही है।

ऋग्वेदसे मालूम पड़ता है कि स्त्री-शिक्षाका यथेष्ट प्रचार था। स्त्रियां वेदाध्ययन करती थी, कविताएँ बनाती थीं और मन्त्रोंका आविष्कार या रचना भी करती थीं। ऋग्वेदके अनेक सूक्तोंका आविष्कार स्त्रियोंने किया था। ऋग्वेद १० मण्डलके ३९ और ४० सूक्तोंकी सृष्टि घोषा नामकी ब्रह्मवादिनी नारीने की थी। दो एक नमूने देखिये।

"इयं वामह्वे श्रृणुतं मे अश्विना पुत्रायेव पितर। मह्यं शिक्षितम्।
अनापिरज्ञा असज्यात्यामतिः पुरा तस्या अभिशस्तेरवस्पृतम्॥"

अर्थात् 'अश्विद्वय, मैं तुम दोनोंको बुलाती हूँ, सुनो। जैसे पिता पुत्र को शिक्षा देता है, वैसे ही मुझे शिक्षा दो। मेरा कोई यथार्थ बन्धु नहीं है। मैं ज्ञानशून्य हूँ। मेरा कुटुम्ब नहीं है; बुद्धि भी नहीं है। मेरी कोई दुर्गति आनेके पहले ही उसे दूर करो' (१०.३९.६)।

"युवं रथेन विमदाय शुन्ध्युवं न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषणाम्।
युवं हवं वध्रिमत्या अगच्छतं युवं सुषुतिं चक्रथुः पुरन्धये॥"

तात्पर्य यह है कि 'पुरुमित्र राजाकी 'शुन्ध्युव' नामक कन्याको तुम लोग रथपर चढ़ाकर ले गये थे और विमदके साथ उसका विवाह करा दिया था। तुम लोगोंने उसकी बात सुनकर और उसकी प्रसववेदनाको दूरकर सुखसे प्रसव कराया था' (१०.३९.७)।

"एतं वा स्तोममश्विनावकर्म तक्षाम भृगवो न रथम्।
न्यमृक्षाम योषणां न मर्ये नित्यं न सूनु तनयं दधानाः॥"

'जैसे भृगु-सन्तानें रथ बनाती हैं, वैसे ही हे अश्विनीकुमारद्वय, तुम लोगोंके लिये यह रथ प्रस्तुत किया गया है। जैसे जामाताको कन्या देनेके समय लोग उसे वस्त्राभूषणसे अलंकृत करके देते हैं, वैसे ही हमने इस स्तोत्र को अलंकृत किया है। हमारे पुत्र-पौत्र सदा प्रतिष्ठित रहें।'

"जीवं रुदन्ति विमयन्ते अध्वरे दीर्घामनु प्रसितिं दीधियुर्नरः।
वामं पितृभ्यो य इदं समेरिरे मयः पतिभ्यो जनयः परिष्वजे॥"

'अश्विद्वय, जो लोग अपनी स्त्रीकी प्राण-रक्षाके लिये रोदनतक करते हैं, स्त्रियोंको यज्ञ-कार्यमें नियुक्त करते हैं, उनका अपनी बाहोंसे बहुत देरतक स्पर्श करते हैं तथा सन्तान उत्पन्न कर पितृयज्ञमें नियुक्त करते हैं, उनका स्त्रियां सुखपूर्वक समादर करती हैं' (१०.४०.१०)।

इन चारों मन्त्रोंसे विदित होता है कि उन दिनों स्त्री-शिक्षा प्रचलित थी। अश्विनीकुमार चिकित्सा भी करते थे। स्त्रियां रथ भी बनाती थीं। लोग वस्त्र और अलंकारसे सुसज्जित करके कन्याका दान करते थे। स्त्रियां यज्ञकार्यमें नियुक्त होती थीं। स्त्रियोंका अत्यधिक प्यार-दुलार किया जाता था।

अगस्त्य ऋषि और उनकी पत्नी लोपामुद्राने एक सूक्त बनाया था। इस सूक्तमें कामशास्त्रकी अत्यन्त उच्च कोटिकी बातें भी हैं (१.१७९ सूक्त)।

८ वें मण्डलके ९० वें सूक्तकी रचना अत्रिकी पुत्री अपालाने की है। इसमें सब सात मन्त्र हैं। सबमें इन्द्रकी स्तुति है।

प्रथम मण्डल १२६ वें सूक्तके छठे और ७ वें मन्त्रोंको बनानेवाली रोमशा या लोमशा हैं।

पंचम मण्डलके २८ वें सूक्तकी रचयित्री या आविष्कर्त्री विश्वावारा नामकी नारी हैं। इसमें सब ६ मन्त्र हैं और सबमें अग्निकी स्तुति है।

दशम मण्डलके ८५ वें सूक्तको बनानेवाली सूर्या नामकी ऋषिका हैं। इसमें ४७ मन्त्र हैं, जो अनेकानेक ज्ञातव्य तथ्योंसे भरे पड़े हैं। इस सूक्तके २० वें मन्त्रसे जाना जाता है कि पलाश और शाल्मलीके वृक्षोंसे भी रथ बनते थे। रथ नानारूप, सुवर्णमय, उत्तम और शोभनचक्र वाले होते थे। २६ वें से मालूम पड़ता है कि नारी पतिके वशमें रहती थी; परन्तु घरके नौकर आदिपर उसीका शासन चलता था। २७ वेंमें पतिके साथ स्त्रीको विलीन होनेको लिखा है और यह भी लिखा है कि स्त्री वृद्धावस्थातक पति-गृहमें स्वामित्व करनेकी अधिकारिणी है। ३३ वां मन्त्र है—

"सुमंगलोरियं बधूरिमां समेत पश्यत।
सौभाग्यमस्यै दत्वा याथास्तं वि परेतन॥"

अर्थात् 'यह बधू शोभन कल्याणवाली है। सभी आशीर्वादकर्त्ता आवें और इसे देखें। इसे स्वामीका प्रियपात्री बननेका आशीर्वाद देकर सब लोग अपने-अपने घर चले जायें।'

स्त्री-जातिके सम्बन्धमें इससे बढ़कर कोई भी वैदिक सूक्त नहीं है। पूरा सूक्त कण्ठस्थ करने योग्य है।

दशम मण्डलके ८६ वें सूक्तके २,४,७,९,१०,१५,१८,२२ और २३ मन्त्रोंकी बनानेवाली इन्द्राणी हैं। इसी मण्डलके १४५ और १५९ सूक्तोंकी रचयित्री भी यही हैं। यहीं १५३ वां सूक्त इन्द्र-माताका बनाया हुआ है।

इसी मण्डलके १०९ वें सूक्तकी रचयित्री ब्रह्मवादिनी और बृहस्पति-पत्नी जूहू हैं। इस सूक्तका चौथा मन्त्र है—

"देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्त ऋषयस्तपसे ये निषेदुः।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन्॥"

अर्थात् 'तपस्यामें प्रवृत्त सप्तर्षियों और प्राचीन देवोंने इन पत्नीकी बात कही है। ये अत्यन्त शुद्ध-चरित्रा हैं। इन्होंने वृहस्पतिसे व्याह किया है। तपस्या और सच्चरित्रतासे निकृष्ट पदार्थ भी उत्तम स्थानपर स्थापित हो सकता है।'

इसी मण्डलका १५४ वां सूक्त विवस्वान्की पुत्री यमीका बनाया हुआ है।

इसी मण्डलका १५१ वां सूक्त कामगोत्रीय श्रद्धाका रचा हुआ है। प्रथम मन्त्र है—

"श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धां भगस्य मूर्द्धनि वचसा वेदयामसि॥"

अर्थ यह है कि 'श्रद्धाके द्वारा अग्नि प्रज्वलित होता है और श्रद्धाके द्वारा ही यज्ञ-सामग्रीकी आहुति दी जाती है। श्रद्धा ऐश्वर्यके सिरके ऊपर रहती है। यह सब मैं स्पष्ट रूपसे कहती हूँ।'

१० वें मण्डलके १८९ वें सूक्तकी कर्त्री सर्पराज्ञी हैं। दीर्घतमा ऋषि की माता ममताने दशम मण्डलके १० वें सूक्तके द्वितीय मन्त्रकी रचना की है। इसी मण्डलके १५ वें सूक्तके २,५,७,९,११,१३,१५,१६ और १८ मन्त्र उर्वशी नामकी अप्सराके बनाये हुए हैं।

इसी मण्डलके १२५ वें सूक्तकी ऋषिका वाग्देवी मानी गयी हैं।

स्त्रियां कविताएँ भी बनाती थीं। उनके बनाये सब सूक्त कवितामय हैं। गानविद्यामें वे निपुण होती थीं। साम-गानसे ही संगीत-शास्त्रकी उत्पत्ति हुई है। कदाचित् वे नृत्य-कला भी जानती थी; क्योंकि एक मन्त्र में (१.९२.४) उषाकी उपमा नर्त्तकीसे दी गयी है।

मालूम होता है, पतियोंके साथ स्त्रियां युद्धमें भी जाती थीं। अगस्त्य के पुरोहित खेल ऋषिकी पत्नी विश्पला अपने पतिके साथ युद्धमें गयी

थीं और वहां उनकी जांघ टूट गयी थी। अश्विनीकुमारोंने विश्पलाकी जांघ बनायी थी (१.११२.१० और १.११८.८)।

दशम मण्डल, १०२ सूक्त, २ मन्त्रमें कहा गया है कि मुद्गलानी शत्रुओंसे लड़कर १००० गायोंको जीत लायीं। ५.३०.९ में लिखा है–'दास नमुचिने भी स्त्री-सेना बनायी थी।'

वृत्रासुरकी माता 'दनु' पुत्रके साथ युद्धमें गयी थीं। इन्द्रने उन्हें मार डाला था (१.३२.९)।

यहां यह प्रश्न उठता है कि यदि ऋग्वेदके समय स्त्रियां वेद पढ़ती थीं, यज्ञ करती थीं और पुरुषोंके अधिकांश कार्य करती थीं, तब इन दिनों लोग स्त्रियोंके लिये वेदाध्ययन आदिका निषेध क्यों करते हैं? इसका उत्तर यह है कि ऋग्वेदमें ही नहीं, उपनिषदोंमें भी सुलभा, मैत्रेयी, गार्गी वाचक्नवी आदि ऐसी स्त्रियां हो गयी हैं, जो वेद पढ़ती थीं, हवन करती थीं और वैदिक उपदेश भी देती थीं। वाल्मीकि-रामायण (५.१५.४८) में भी लिखा है कि सीता वैदिक प्रार्थना करती थीं। परन्तु यह बात सबके लिये नहीं थी, सभी वेदज्ञात्री नहीं होती थीं। जो ब्रह्मज्ञानिनी थीं और "**तस्मिन् विज्ञाते सर्वं विज्ञातं भवति**" के अनुसार जिन्हें परमात्म-ज्ञान हो चुका था, उनके लिये कुछ अविदित नहीं था, वे सबकी अधिकारिणी होती थीं। इसीसे वीरमित्रोदय (संस्कार-प्रकाश) में लिखा है–"**द्विविधाः स्त्रियो ब्रह्मवादिन्यः सद्योद्वाहाश्च। तत्र ब्रह्मवादिनीनां अग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे च भैक्षचर्येति।**" तात्पर्य यह है कि स्त्रियां दो प्रकारकी थीं–एक ब्रह्मवादिनी, दूसरी तुरत विवाह करनेवाली। जो ब्रह्मवादिनी थीं, वे हवन करती थीं, घरमें ही वेद पढ़ती थीं और भिक्षा मांगकर खाती थीं। इसी बातको 'आपस्तम्ब-धर्मसूत्र" (१.५.१–८) में भी विस्तृत रूपसे लिखा गया है। हारीत-स्मृति (२१.२०-२३) में तो और भी विस्तृत लिखा है। यम-स्मृतिमें लिखा है–

"पुराकल्पे कुमारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते।
अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवचनं तथा।
पिता पितृव्यो भ्राता वा नैनामध्यापयेत्परः॥"

अर्थात् 'पुराने समयमें कन्याओंका उपनयन होता था, वे वेद पढ़ती थीं और गायत्री भी पढ़ती थीं; परन्तु उन्हें पिता, चाचा वा भाई ही पढ़ाते थे, दूसरे नहीं।' फलतः सर्वसाधारण स्त्रियोंके लिये वेदाध्ययनादि उचित नहीं समझे जाते थे।

स्त्रियां सुन्दर वस्त्र पहनती थीं (१०.११४.३)। ऋग्वेदमें सूती वस्त्रोंका स्पष्ट उल्लेख नहीं है। ऊनी वस्त्र पहना जाता था (१०.२६.६)। स्त्रियां ही कपड़े बुनती थीं (२.३.६)। तन्तुवाय (आर्य जुलाहा) भी ताना-बाना करके कपड़े बुनता था (१०.१०६.१)। हाथोंमें कड़ा पहना जाता था (५.५८.२)। आभूषण, आयुध, माला, हार, वलय आदि सोनेके होते थे (५.५३.४)। गहनोंसे बच्चोंको लोग खूब सजाते थे (९.१०४.१)।

वस्त्रों और आभूषणोंसे सजाकर कन्या जामाताको दी जाती थी (१०.३९.१४ और ९.४६.२)। विवाहावस्थाकी ठीक बात तो स्पष्ट कहीं नहीं लिखी है; परन्तु यह अवश्य ही कहा गया है कि युवा युवतीसे ही मिलते हैं और पूर्ण युवतियां भी युवासे मिलना चाहती हैं (१०.३०.५-६)। कदाचित् कुछ अधिक अवस्थामें विवाह होता था। कदाचित् विवाहके लिये कुमारियोंको बहुत कुछ स्वतंत्रता प्राप्त थी। एक मन्त्रमें कहा गया है—"**भद्रा बधूर्भवति यत्सुपेशाः स्वयं सा वनुते जने चेत्**" (१०.२७.१२)।

तात्पर्य यह है कि सभ्य स्त्री अनेक पुरुषोंमेंसे अपने मनके अनुकूल प्रियपात्रको पति स्वीकृत करती है। एक स्थानपर यह भी लिखा है कि स्वयंवरमें विमद ऋषिने स्त्री प्राप्त की थी (१.११६.१)। विवाहमें

कन्याको सौभाग्यवती और सुपुत्रवती होनेका आशीर्वाद दिया जाता था (१०.८५.२५)।

विवाहके अनन्तर कन्या जो मलिन वस्त्र छोड़ती थी, उसे ब्राह्मणोंको दे देनेको कहा गया है (१०.८५.२९ और ३४)।

पतिको स्त्रीके वस्त्रसे शरीर ढकनेकी मनाही की गयी है; क्योंकि इससे श्री नष्ट हो जाती है (१०.८५.३०)।

विवाहमें पत्नीका हाथ पकड़ कर पति कहता था—

"गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः॥"

(१०.८५.३६)।

अर्थात् 'तुम्हारे सौभाग्यके लिये मैं तुम्हारा हाथ पकड़ता हूँ। मुझे पति पाकर तुम वृद्धावस्थामें पहुँचना, यही मेरी प्रार्थना है। भग, अर्यमा और पूषाने तुम्हें गृह-कार्य चलानेके लिये मुझे दिया है।'

इसी सूक्तके ३९ वें मन्त्रमें वरको सौ वर्ष जीनेका आशीर्वाद दिया गया है। ४० वां मन्त्र है—

'सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः॥"

अर्थात् 'सोमने सबसे प्रथम तुम्हें पत्नीके रूपमें प्राप्त किया। तुम्हारे दूसरे पति गन्धर्व हुए और तीसरे अग्नि। मनुष्यवंशज तुम्हारे चौथे पति हैं।' तात्पर्य यह है कि सोम, गन्धर्व और अग्निने तुम्हें पहले आशीर्वाद दिया और इस विवाह-यज्ञमें साक्षित्व किया, तब तुम्हें मनुष्य-पति मिला।'

४२ वें मन्त्रमें कहा गया है—'तुम दम्पती परस्पर कभी पृथक् मत होना।' ४३ वेंमें पति कहता है—'प्रजापति हमें सन्तति दें और अर्यमा बुढ़ापेतक हमें साथ रखें। बधु, तुम मंगलमयी होकर पति-गृहमें रहना। मनुष्यों और पशुओंके लिये कल्याणवाहिनी बनना।' ४४ वेंमें कहा गया

है– 'तुम वीरप्रसविनी और देवोंकी भक्तिमती बनो।' अन्तमें इन्द्रसे प्रार्थना की गयी है–

"इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु।
दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि॥"

तात्पर्य यह है कि 'इन्द्र, इस नारीको उत्तम पुत्रवाली और सौभाग्य-वती करो। इसके गर्भमें दस पुत्र स्थापित करो, पतिको लेकर इसे ग्यारह मनुष्यों वाली बनाओ।'

"सम्राज्ञी श्वसुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु॥"

(१०.८५.४६)

अर्थात् 'बधु, तुम सास, ससुर, ननद और देवरोंकी महारानी बनो– सबके ऊपर प्रभुत्व करो।' भावार्थ यह है कि ऐसा सद्व्यवहार करना, जिससे सारा परिवार तुमसे प्रसन्न रहे।

ये पवित्र मन्त्र अबतक हिन्दुओंके विवाह-मण्डपोंमें पढ़े जाते हैं। इन मन्त्रोंके अर्थोंसे विदित होता है कि कन्या विवाहके समय कुछ अधिक अवस्थावाली और शिक्षिता रहती थी। बिलकुल नादान बच्ची इन सब बातोंको नहीं समझ सकती और न कोई बुद्धिमान् व्यक्ति अबोध बालिका को ऐसे उपदेश ही दे सकता है।

कल्पसूत्रोंमें तो पुत्रोत्पत्तिके लिये "पुंसवन" नामका संस्कार करनेके लिये लिखा गया है। परन्तु ऋग्वेदमें पुत्र-प्राप्तिके लिये बड़ी प्रार्थनाएँ की गयी हैं। ५.२३.१ में ऐसी ही प्रार्थना की गयी है। ६.२०.१ में भी यही बात है। औरस पुत्रकी रक्षाके लिये अग्निकी स्तुति की गयी है (७.१.२१)। अन्यजात या अनौरस पुत्रसे आर्य दूर भागते थे (७.४.७)। इसी सूक्तका अगला मन्त्र है–

"न हि ग्रभायारणः सुशेवोऽन्योदर्यो मनसा मन्तवा उ।
अधा चिदोकः पुनरित्स एत्या नो वाज्यभीषालेतु नव्यः॥"

अर्थात् 'दत्तक पुत्र सुखावह होनेपर भी उसे पुत्र कहकर ग्रहण नहीं किया जा सकता; क्योंकि वह फिर अपने ही स्थानपर (पितृस्वभावमें) जा पहुँचता है। इसलिये अग्निदेव, अन्नदाता, शत्रुहन्ता और नवजात शिशु हमें प्राप्त हो।'

घोषा नामकी नारीको कोढ़ रोग हो गया था। उसे दूरकर अश्विद्वय ने घोषाका बुढ़ापेमें विवाह कराया था (१.११७.७)। इन्हीं घोषाके बनाये ऋग्वेदके १० म मण्डलके ३६ वें और ४० वें सूक्त हैं। घोषाने स्वयं कहा है कि पितृगृहमें मैं वार्द्धक्यको पहुँच चुकी थी (१०.३६.३)। घोषाने यह भी कहा है कि अश्विद्वयने विश्पलाको लोहेका चरण दिया था (१०.३६.८)। यही विश्पला युद्धमें लड़ने गयी थी। घोषाने अपनेको 'राजपुत्री' बताया है (१०.४०.५)। यह भी कहा है कि, 'मैं नारी-लक्षण से युक्त हूँ। मेरा वर आ गया है।' (१०.४०.६)।

वृद्ध कक्षीवान् राजाको वृचया नामकी युवती स्त्री व्याही गयी थी १.१५१.१३)। १.५१.१२ के भाष्यमें सायणाचार्यने लिखा है कि कौषी-तकि-शाखाध्यायी कहते हैं कि भृगु-वंशीय च्यवन ऋषिने राजर्षि शर्या-तिकी कन्याका पाणिग्रहण किया था। ५.६१.१ के भाष्यमें सायणाचार्यने एक ऐसी कथा लिखी है, जिससे मालूम पड़ता है कि श्यावाश्व ऋषिसे 'तरन्त' नामके राजा और उनकी महिषीने अपनी राजकन्या ब्याही थी। इस प्रसंगमें रानीने यह भी कहा था कि 'मेरे कुलमें राजकन्याएँ ऋषियों को ब्याही जाती हैं।' इन दोनों उदाहरणोंसे मालूम होता है कि ऋषि लोग राज-कन्याओंसे सदा ब्याह करते आये हैं।

परावृज ऋषि पंगु और अन्धे थे। उन्होंने यज्ञ करके इन्द्रको प्रसन्न किया। इन्द्रने ऋषिको पैर और आंखें दे दीं। परावृजने अन्तको कई कन्याओंके साथ ब्याह किया। (२.१५.७)।

१.१२५.१ के भाष्यमें सायणने लिखा है कि 'गुरुकुलमें अध्ययन समाप्त कर रात्रिमें घर आते हुए कक्षीवान् ऋषि मार्गमें सो गये। वहां स्वनय

नामक राजा घूमते हुए आये और ऋषिका रूप देखकर मुग्ध हो गये। राजा उन्हें घर लाये और अपनी दस कन्याओंके साथ उन्हें ब्याह दिया। १.१२६.२–४ में लिखा है–(विवाहके अनन्तर दहेजके रूपमें) 'स्वनय (सिन्धवासी) राजाके ग्रहणके लिये कहनेपर मैं (कक्षीवान्) ने उनसे १०० निष्क (तौल) सुवर्ण, १०० घोड़े और १०० बैल ले लिये। स्वनय द्वारा भूरे रंगके अश्ववाले १० रथ मेरे (कक्षीवान्के) पास आये, जिनपर वधुएँ आरूढ़ थीं। १०६० गायें भी पीछेसे आयीं। मैं (कक्षीवान्) ने ग्रहण करनेके पश्चात् ही सब कुछ अपने पिताको दे दिया।' 'गायोंके सामने दसों रथोंमें चालीस (एक-एक रथपर चार-चार) लोहित-वर्ण अश्व पंक्तिबद्ध होकर चलने लगे। कक्षीवान्के अनुचर घोड़ोंके लिये घास आदि लाकर मदमत्त, स्वर्णाभरण-विशिष्ट और सतत गमनशील अश्वो को मलने लगे।'

इन तीनों मन्त्रोंसे पता चलता है कि ब्राह्मण राजकन्याओसे विवाह करते थे, बहुविवाह भी होता था, घोड़ोंको भी सोनेके आभूषण पहनाये जाते थे और आर्य लोग धनाधिपति होते थे। १०.१०१.११ में दो स्त्रियोंका एक ही पुरुषके साथ ब्याह होना लिखा है। सपत्नियोसे नारियो को दुःख भी उठाना पड़ता था (१०.३३.२)। सपत्नियोके नाशके लिये इन्द्राणीने दो सूक्त बनाये थे (१०.१४५ और १५६)।

अनेक नारियां विवाहके अनन्तर पतियोंके साथ यज्ञमें उपस्थित रहती थीं (१.२२.८–६)। स्त्री-पुरुष यजमान बनकर बराबर यज्ञ करते थे (१.१३१.३)। ५.४३.१५ में भी यही बात है। इसके भाष्यमें सायणने लिखा है कि पतिके साथ नारीको भी अग्न्यधिकार है।

गर्भ-रक्षण बड़ी सावधानीसे किया जाता था। इसके लिये बड़ी ही पूजा-अर्चा होती थी। बड़ी प्रार्थनाएँ और स्तुतियां भी की जाती थी इसके लिये दो सूक्त ही हैं (१०.१६२ और १८४)।

दस मास गर्भमें रहनेके अनन्तर शिशुका जन्म होता था (५.७८.७-६ और १०.१८४.३)। १०.६५.१२ से जाना जाता है कि अश्विनीकुमारों के आशीर्वादसे वध्रिमती नामकी स्त्रीको पिंगलवर्ण पुत्र उत्पन्न हुआ था।

जुड़वें (यमज) भी होते थे (१०.१३.२)। मनुकी पुत्री पर्शुको बीस पुत्र उत्पन्न हुए थे (१०.८६.२३)। स्त्रियोंके साथ जो युद्ध करते थे, उनका धन ले लिया जाता था (१०.२७.१०)।

यह संसार त्रिगुणमय है। देवासुर-संग्रामकी तरह भलों और बुरोंमें सदा युद्ध होता आया है और विश्वमे भले-बुरे सदासे रहे हैं। इस नीतिके अनुसार ऋग्वेदमें भी भले-बुरे, दोनोंका उल्लेख मिलता है। १०.५५ सूक्त में राजा पुरूरवा और अप्सरा उर्वशीका कथोपकथन है। १५ वें मन्त्रमें उर्वशीने कहा है–'स्त्रियोंका प्रेम वा मैत्री स्थायी नहीं होती।' एक स्थान पर इन्द्रने स्वयं कहा है–'स्त्रियोंके मनपर शासन करना असम्भव है। स्त्रीकी बुद्धि छोटी होती है' (८.४३.१७)। 'लज्जाहीना युवती' का भी उल्लेख है (७.८०.२)। ८.४३.१६ में इन्द्रने कहा है–

"अधः पश्यस्व मोपरि सन्तरां पादकौ हर।
मा ते कश-प्लकौ दृशन्त्स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ॥"

अर्थात् 'तुम नीचे देखा करो, ऊपर नहीं (स्त्रियोंका यही धर्म है)। पैरोंको संकुचित रखो (मिलाये रखो)। (इस प्रकार कपड़े पहनो कि) तुम्हारे कश (ओष्ठप्रान्त) और प्लक (नारी-कटिके निम्न भाग) को कोई देखने नहीं पावे।'

इससे मालूम पड़ता है कि स्त्रीका नीचे देखना और घूंघट काढ़ना उसका धर्म माना जाता था। एक स्थानपर ऐसी स्त्रियोंका भी उल्लेख है, जो वाहनपर सोनेवाली हैं। इसी मन्त्रमें आंगनमें सोनेवाली स्त्रियोंका भी उल्लेख है (७.५५.८)।

१० वें मण्डलका ३४ वां सूक्त द्यूत-(अक्ष)-सूक्त कहलाता है। इसमें जुए या पाशेके कारण स्त्रीका छोड़ना लिखा गया है। यह लिखा

है कि जुआड़ीकी स्त्री व्यभिचारिणी हो जाती है। जुआड़ीका सब निरादर करते हैं। अपनी स्त्रीकी दशा देखकर जुआड़ीका हृदय फटा करता है। अन्यान्य स्त्रियोंका सौभाग्य ओर सुन्दर अट्टालिका देखकर जुआड़ीको सन्ताप होता है। जो जुआड़ी प्रातःकाल घोड़ेकी सवारी कर आता है, वही सन्ध्या-समय दरिद्रके समान, जाड़ेसे बचनेके लिये, आग तापता है। उसके शरीरपर वस्त्र भी नही रहता (२.४.और ११ मन्त्र)।

असती स्त्रीकी एक स्थानपर उत्प्रेक्षा की गयी है (१०.४०.६)। जारों वा उपपतियोंका उल्लेख भी कहीं उपमा, कहीं उत्प्रेक्षा और कही रूपकके रूपमें किया गया है (१.११७.१८; ९.३२.५; ९.३८.४; ९.१०१.१४; १०.१६२.५)।

एक स्थलपर यह भी कहा गया है—विपथगामिनी और पति-विद्वेषिणी नरक तैयार करती है (४.५.५)। गुप्तप्रसविनी स्त्रीकी भी चर्चा है (२.२९.१)। १०.४०.२ में लिखा है—'विधवा स्त्री, शयनकालमें, देवरका और कामिनी अपने पतिका समादर करती है।' इस मन्त्रसे यूरोपीयोंने ऋग्वेदमें नियोगकी बात निकाली है; परन्तु सायणाचार्यने ऐसा कुछ नहीं लिखा है।

पतिके साथ चितामें जलनेकी कही चर्चा नहीं है। एक मन्त्र है—

"उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि।
हस्त-ग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि संबभूथ॥"

(१०.१८.८)

तात्पर्य यह है कि 'मृत व्यक्तिकी पत्नी, पुत्रादिके गृहका विचार करके यहांसे उठो। यह तुम्हारा पति मरा हुआ है। इसके पास तुम (व्यर्थ) सोयी हो। चलो; क्योंकि पाणिग्रहण और गर्भधारण करानेवाले पतिके साथ तुम स्त्री-कर्त्तव्य कर चुकी हो। तुमने इसके प्राण-गमन (मरने) का निश्चय कर लिया है; इसलिये तुम लौट चलो।'

इसमें कहीं भी सहमरणकी बात नहीं है। इसके पहले जो पथ-भ्रष्टा स्त्रियोंकी बातें लिखी गयी हैं, वे एक तो आलंकारिक भाषामें हैं; दूसरे सम्भव है, ऐसी कुमार्गगामिनी स्त्रियां दस्युओं, अनार्यो तथा असुरोंकी रही हों।

सारांश यह है कि ऋग्वेदमें नारीकी जो शिक्षा-दीक्षा लिखी है, जैसे कार्य-कलाप बताये गये है और जैसा स्वरूप वर्णित है. वह सभी अत्यन्त उच्च और उदात्त हैं। सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह है कि अनन्त कालका ऋग्वेदीय नारी-रूप आजतक हिन्दू-जातिमें ज्योंका त्यों बना हुआ है!

तृतीय अध्याय

यजुर्वेदकी संहिताएँ

यजु: शब्दका अर्थ पूजा है—यज्ञ भी है। कही कही गद्यको भी यजु: कहा जाता है। ऋग्वेदका होता (पुकारनेवाला) प्रशंसात्मक मन्त्रोंको कहकर विशिष्ट देवताका आह्वान करता है और यजुर्वेदका अध्वर्यु यज्ञ वा यागका विधिवत् सम्पादन करता है; इसलिये स्वभावत: यजुर्वेदमें यज्ञों और कर्म-काण्डका प्राधान्य है। विभिन्न यज्ञोंमें जो विशेष मंत्र आवश्यक है और जिन विशेष नियमोंका पालन करना पड़ता है, उनकी समष्टिका नाम यजुर्वेद-संहिता है। किस मन्त्रके साथ किस क्रियाके अनन्तर किस क्रिया-का सम्पादन करके विभिन्न यज्ञानुष्ठान किये जाते है, इसका विधान यजुर्वेदमें देखा जाता है। फलत: यजुर्वेदके विभाग क्रियामूलक हैं। इसके विभिन्न अध्यायोंमें विविध यज्ञ-क्रियाओके मन्त्र और विधियां संगृहीत हैं।

यज्ञोंके कारण देवता प्रसन्न होते थे, वृष्टि होती थी, अन्न और फल होते थे तथा जनता सुख-शान्तिका जीवन बिताती थी। परन्तु यज्ञोंसे इतने ही लाभ नहीं होते थे—यज्ञोंके कारण, अन्यान्य लाभोंके अतिरिक्त, विविध कलाओंकी उत्पति भी हुई। यज्ञ-सम्पादनके लिये सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रों-की गतिका निरीक्षण करते-करते **ज्यौतिष-विद्या**की उत्पत्ति हुई। यज्ञोंमें विशुद्ध मन्त्रोच्चारणके विचारसे आर्य लोग जिन नियमोंकी समीक्षा करते थे, उनसे **दैवविद्या, ब्रह्मविद्या** और **व्याकरण-शास्त्र**की उत्पत्ति हुई। यज्ञ-सम्पादनके लिये जो चिति, यज्ञ-वेदी, रेखा आदिका निर्माण किया जाता था, उसके नियमोंसे संसारमें **ज्यामिति-शास्त्र**का आविष्कार हुआ।

सूतसंहिता, ब्रह्माण्ड-पुराण, स्कन्द-पुराण आदिके अनुसार यजुर्वेदकी १०७ शाखाएं हैं, मुक्तिकोपनिषद्के अनुसार १०९ हैं, पातञ्जल महाभाष्य के अनुसार १०० हैं और शौनकके "चरण-व्यूह" के अनुसार ८६ हैं। इससे मालूम पड़ता है कि जिस ग्रन्थ-कर्त्ताके समय जितनी शाखाएं उपलब्ध थीं, उसने अपने ग्रन्थमें उतनीका उल्लेख किया। हमारे दुर्भाग्यसे इन दिनों यजुर्वेदकी केवल पांच शाखाएं वा संहिताएँ (मन्त्र-संग्रह-ग्रन्थ) मिलती हैं। कई अन्य संहिताओंके नाम अवश्य मिलते हैं।

यजुर्वेदके दो भाग है—कृष्ण और शुक्ल। कृष्ण यजुर्वेदकी १२ शाखाओं-के नाम कई पुराणोंमें मिलते हैं। वे ये हैं—तैत्तिरीय, मैत्रायणी, कठ, चरक, आहरक, प्राच्यकठ, कपिष्ठलकठ, औपमन्यव, वार्त्तान्तवेय, श्वेताश्वतर, चारायणीय और वारायणीय। पहली तीन छप चुकी हैं। चौथी चरकसंहिता का प्रचार पतञ्जलिके समयमें, विक्रमसे दो सौ वर्ष पूर्व, गांव गांवमें था, ऐसा महर्षि पतञ्जलिने लिखा है। इन दिनों यह भी विलुप्त हो गयी है। इसकी दो श्रेणियां भी लिखी मिलती है—औक्ष्य वा औखीय और खाण्डिकेय। खाण्डिकेय उपशाखाकी पांच प्रशाखाएं ये थीं—आपस्तम्बी, बौधायनी, सत्याषाढ़ी, हिरण्यकेशी और शाट्यायनी। मैत्रायणी शाखाकी छः उपशाखाएँ थीं—मानव, वाराह, दुन्दुभ, छागलेय, हारिद्रवीय और श्यामायनीय। शुक्ल यजुर्वेदकी सत्रह शाखाओंके ये नाम पाये जाते हैं—माध्यन्दिन, कण्व, गालव, जाबाल, कापाल, औधेय, वैधेय, वैनेय, वैरेय, वैजव, पौण्ड्रवत्स, शापीय, पाराशरीय, ताप्यायनीय, कात्यायनीय, आवटिक और परमावटिक। परन्तु इनमें केवल माध्यन्दिन वा वाजसनेय और कण्व—ये दो ही इन दिनों पायी जाती हैं।

जिस तरह ऋग्वेदकी २१ शाखाओंमें केवल एक शाखा मिलती है, उसी तरह यजुर्वेदकी १०० शाखाओं, उपशाखाओं और प्रशाखाओंमें केवल ५ शाखाएं उपलब्ध हैं। शेष शाखाएं क्या हुई ? इसमें सन्देह नहीं कि विदेशियों-विधर्मियोंने अनेक अमूल्य ग्रन्थ नष्ट कर दिये। धारेश्वर

महाराजा भोजने "**कामधेनु**" नामक एक स्मृति-ग्रन्थ बनाया है। उसकी उपक्रमणिकामें लिखा है कि उज्जैनके राजा मतादित्यने भारतवर्षके हजारों ब्राह्मणोंको निमन्त्रण देकर बुलवाया और उनकी सारी पुस्तकें ले-लेकर जलवा दीं। मरहठोंके अभ्युदयके समय बौद्धोंने "**सहचाद्रिखण्ड**" (पुस्तकालय) को विनष्ट कर दिया था। मुसलमानों द्वारा अलेक्जेंड्रिया के पुस्तकालयका भस्मीभूत किया जाना प्रसिद्ध ही है। महमूद और नादिर-शाहके द्वारा भी अनेकानेक ग्रन्थ विनष्ट किये गये। कितने ही मुसलमान बादशाह तो संस्कृत-पुस्तकें जला-जलाकर "हमाम" गर्म कराया करते थे ! इस तरह, बहुत सम्भव है, बौद्धों और मुसलमानोंने ही वैदिक संहिता-ओंको विनष्ट कर डाला हो।

परन्तु जो संहिताएँ मिलती हैं, उनके अनुयायियों तकमें उनका प्रचार नहीं है। कान्यकुब्ज ब्राह्मणोंमें अनेक ऋग्वेदी हैं, परन्तु कदाचित् एक भी ऐसा कनौजिया नहीं मिलेगा, जिसे सम्पूर्ण **शाकल-संहिता** कण्ठस्थ हो। हां, विन्ध्यगिरिके दक्षिणमें कुछ ऐसे ब्राह्मण अवश्य हैं, जो ऋग्वेदके अनन्य भक्त हैं। महाराष्ट्र (कोंकण और दक्षिणी) ब्राह्मणोंमें इस शाकल-शाखाका प्रचार है। यों तो सारे भारतमें कुछ न कुछ ऋग्वेदी मिलेंगे। यही बात सभी वेदोंके सम्बन्धमें है। आगे चलकर सभीका उल्लेख मिलेगा।

हां, तो यजुर्वेदकी जो पांच शाखाएँ उपलब्ध हैं, उनमें **तैत्तिरीय, मैत्रायिणी** और **कठ** नामकी तीन संहिताएँ कृष्ण यजुर्वेदकी हैं और **वाजसनेय** तथा **कण्व** संहिताएँ शुक्ल यजुर्वेदकी हैं। तैत्तिरीय संहिताके नामकरणके सम्बन्धमें विष्णुपुराणमें एक कथा है। वैशम्पायन अपने शिष्य याज्ञवल्क्य से एक बार क्रुद्ध होकर बोले—"मैंने जो तुम्हें वेद पढ़ाया है, उसे लोटा दो।" 'याज्ञवल्क्यने विद्याको मूर्त्तिमती कर वमन कर दिया। गुरुकी आज्ञासे अन्य शिष्योंने उस 'वान्त' को तित्तिर बनकर चुग लिया; इसीसे इसका नाम तैत्तिरीय-संहिता पड़ा।' परन्तु पाणिनिके मतसे तित्तिरी ऋषिके नाम

पर इस शब्दकी उत्पत्ति हुई है। आत्रेय-शाखाकी अनुक्रमणिकामें भी यही बात लिखी है।

कृष्ण यजुर्वेदकी संहिताओंमें गद्य और पद्य—दोनों भाग हैं। इसकी उपलब्ध तीनों संहिताओंमें मन्त्र-भाग और ब्राह्मण-भाग मिले हुए हैं। किसी-किसी काण्ड और प्रपाठकमें दोनों भाग एक साथ ही वर्णित हैं और कहीं-कहीं पृथक् रूपसे। तैत्तिरीय-संहिताके तो दोनों भाग अलग दिये हुए हैं; परन्तु कहीं मन्त्र-भागमें ब्राह्मण हैं और कहीं ब्राह्मण-भागमें मन्त्र समाविष्ट हैं।

तैत्तिरीय-संहितामें सात काण्ड, चौआलीस प्रपाठक वा अध्याय, छः सौ इक्यावन अनुवाक और २१९८ कण्डिकाएँ (मन्त्र) हैं। साधारणतया ५० शब्दोंकी एक कण्डिका है। अक्षर ११०२९६ हैं। सायणाचार्य ने इसपर भाष्य लिखा है—बालकृष्ण दीक्षित और भट्टभास्करके भी इसपर भाष्य हैं।

ऋग्वेदकी कात्यायनीय "सर्वानुक्रमणी" की भांति कृष्ण यजुर्वेदका कोई विवरण-ग्रन्थ नहीं मिलता; इसलिये इसके ऋषि आदिका स्पष्ट ज्ञान नहीं होता। काण्डर्षियोंके पूजे जानेका वर्णन कहीं-कहीं अवश्य मिलता है। इन्हींके नामपर कदाचित् काण्डोंके ६ नाम इस प्रकार रखे गये हैं—प्राजापत्य, सौम्य, आग्नेय, वैश्वदेव, स्वायम्भुव और आरुण। इनके अतिरिक्त तीन नाम और मिलते हैं—सांहिती देवता, वारुणी देवता और याज्ञिकी देवता। गोपीनाथ भट्टके द्वारा विनिर्मित सत्याषाढ़-सूत्रकी टीकासे मालूम पड़ता है कि प्राजापत्य काण्डमें ही प्रथम और दूसरे कांडों (अष्टकों) के मन्त्र हैं। अश्वमेध-यज्ञकी समाप्तिपर जिन मन्त्रोंका पाठ होता है, वे राष्ट्रिय भावोंसे ओत-प्रोत हैं। राष्ट्रोन्नतिके लिये देवोंसे प्रार्थना करना आवश्यक माना गया है। इस सम्बन्धके इसके कई मन्त्र वाजसनेय-संहितामें भी (२६.२२) पाये जाते हैं। तैत्तिरीयके अधिकांश देवता ऋग्वेद

के ही हैं। रुद्र देवताका इसमें प्राधान्य अवश्य है–रुद्रपर एक "रुदाध्याय" ही है। गद्य और पद्य–दोनों ही तैत्तिरीयमें हैं।

इसके क्रमपाठके रचयिता शाकल्य हैं और पद-पाठके गालव। परन्तु हिरण्यकेशी सूत्रके अनुसार पद-पाठके रचयिता आत्रेय हैं। इसके सातवें काण्डमें वसिष्ठ और सूर्यवंशी राजा सुदासका आख्यान भी है। तैत्तिरीयके किसी-किसी संस्करणमें धृतराष्ट्र, पाञ्चालों और कौन्तेयोंका उल्लेख मिलता है। वाराहवतार और कालकञ्ज असुरकी बातें इसके ब्राह्मण वाले भागमें हैं।

तैलंग और द्रविड़ ब्राह्मण इसी तैत्तिरीय संहिताको आपस्तम्ब-शाखा कहते हैं। इन ब्राह्मणोंमें इस संहिताका अत्यधिक प्रचार है। काशीमें भी आपस्तम्ब ब्राह्मण बहुत हैं। इनका उच्चारण माध्यन्दिनोंसे कहीं-कहीं मिलता है और कहीं कहीं नहीं। ये कभी 'ष' को 'ख' कहते हैं, कभी नहीं।

इसके और ऋग्वेदके कई मन्त्रोंमें विलक्षण साम्य है। जिसको शाकल और तैत्तिरीय सहिताएँ कण्ठस्थ नहीं हैं, उसके सामने तैत्तिरीयका एक मन्त्र रखकर पूछा जाय कि 'यह मन्त्र कृष्ण यजुर्वेदका है वा ऋग्वेदका ?' तो उत्तर देना जटिल मालूम पड़ेगा। ऋग्वेदकी ही तरह तैत्तिरीयमें भी ३३ देवोंका उल्लेख है (१.४.१०.१)। ऋग्वेदकी तरह इसकी भी सिनी-वाली देवी सौपशा (आलंकारिक पट्ट पहननेवाली) हैं (४.१.५.३)। इसमें भी शण्डामर्क (हिरण्यकशिपुके पुरोहित)की चर्चा है (६.४.१०)। लम्बी-लम्बी रात्रियोंका उल्लेख मिलता है और उनसे पार पानेके लिये प्रार्थनाकी बात मिलती है (१.५.५ और तै० ब्रा० १.५.७)। इस तरह तैत्तिरीयकी शाकलसे अनेक स्थलोंमें समता है। यहां विशेष लिखनेका स्थान नहीं है।

कृष्ण यजुर्वेदकी मैत्रायणी संहितामें ४ काण्ड, ५४ प्रपाठक और ६३४ मन्त्र हैं। मैत्रायणीके मन्त्रोंमें उच्चारण-चिह्न नहीं है। यह एक विलक्षण बात है। चरण-व्यूहमें इस संहिताको प्रधान शाखा माना गया है। इसका

एक नाम कलापशाखा भी है। पतञ्जलिने जो **"अध्यगात् कठ-कालापम्"** उदाहरण दिया है, इससे ज्ञात होता है कि कृष्ण यजुर्वेदकी कलाप और कठ संहिताओंका उनके समयमें बड़ा प्रचार था। चरणव्यूहमें मैत्रायणी शाखाके ६ भेद दिये हुए हैं। इन्हींमें एक मानव-शाखा थी। मनुस्मृतिका मूल मानव-धर्म-सूत्र है और इस सूत्रका आधार यही शाखा थी। वाराह-शाखा भी इन छः में ही थी, जिसका वाराह-सूत्र है।

काठक संहिता (कठशाखा) में विभिन्न याज्ञिक विषयोंके अनुसार १८ विभाग वा प्रपाठक हैं। इस संहितामें प्रपाठकोंको **'स्थानक'** कहा जाता है। स्थानक प्रपाठकोंसे बहुत छोटे होते हैं। 'स्थानक' शब्द वैदिक साहित्य में अन्यत्र नहीं है। मैत्रायणी और काठक—दोनों संहिताओंमें बहुत ही कम भिन्नता है। दोनोंके अनुवाक (मन्त्र-समूह) प्रायः बराबर ही हैं। दोनोंके अन्तमें अश्वमेध यज्ञका विवरण है। हां, काठकमें उच्चारण-चिह्न हैं। वस्तुतः कृष्ण यजुर्वेदकी इन तीनों ही संहिताओंमें सादृश्य है। क्रममें अन्तर है। काठक शाखावाले ब्राह्मण कश्मीरमें पाये जाते हैं। मैत्रायणी शाखावाले ब्राह्मण गुजरात और दक्षिणमें पाये जाते हैं। जर्मन विद्वान् प्रो० वेबरने तैत्तिरीयको और एल० श्रोदरने काठक और मैत्रायणीको प्रकाशित किया है।

यों तो तीनोंमें रुद्रकी प्रधानता है; परन्तु मैत्रायणी और काठकमें शैव-सम्प्रदायका स्पष्ट विवरण मिलता है। दोनोंमें (मैत्रायणी २.९.१ और काठक १७.११ में) यह मन्त्र आया है—

"तत्पुरुषाय विद्महे, महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥
तद् गाङ्गौच्याय विद्महे, गिरिसुताय धीमहि। तन्नो गौरी प्रचोदयात्॥
तत्कुमाराय विद्महे, कार्त्तिकेयाय धीमहि। तन्नः स्कन्दः प्रचोदयात्॥
तत्कराटाय विद्महे, हस्तिमुखाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥"

शुक्ल यजुर्वेदकी १७ शाखाओंमें जो वाजसनेय और कण्व संहिताएँ छपी हैं, उनमें वाजसनेयका देशमें सर्वाधिक प्रचार है। इतना प्रचार किसी

वेद-शाखाका नहीं है—उत्तरसे दक्षिणतक सारे भारतमें इसका अत्यधिक प्रसार है। वाजी (घोड़े) का रूप धारण करके सूर्यदेवने इसे याज्ञवल्क्यको वरमें दिया था; इसलिये इसका एक नाम वाजसनेय है और मध्य दिनमें दिया था; इसलिये इसका दूसरा नाम माध्यन्दिन है। सूर्य (प्रकाश) से प्राप्त होनेसे एकका शुक्ल नाम पड़ा और दूसरेका कृष्ण। इसमें ४० अध्याय, ३०३ अनुवाक और १९७५ कण्डिकाएँ वा मन्त्र हैं। चरण-व्यूहके अनुसार १८०० और सी० वी० वैद्यके अनुसार १९०० मन्त्र हैं। शब्द २९६२५ हैं और अक्षर ८८८७५। गद्य और पद्य—दोनोंमें मन्त्र हैं। प्रजापतिको प्रथम अध्यायका और दध्यङ् आथर्वणको अन्तिम अध्यायका ऋषि कहा गया है। सर्वानुक्रममें इसके ऋषिको ब्राह्मण लिखा गया है और अजमेरके संस्करणमें ऋषिका नाम दीर्घतम दिया गया है।

इसके प्रथम अध्यायमें दर्शपूर्णमास, द्वितीयान्तमें पिण्डपितृयज्ञ और तृतीयमें अग्निहोत्र तथा चातुर्मास्य हैं। अग्निहोत्रके प्रसंगमें प्रसिद्ध गायत्री-मन्त्र है। चतुर्थसे अष्टमतक अग्निहोत्र, नवममें राजसूय, दशममें सौत्रामणि और एकादशसे अष्टादशतक अग्नि-चयनका प्रसंग है। अग्नि-चयन आर्य-जीवनका प्रधान कार्य था। युवक विद्याध्ययन समाप्त करके जब विवाह कर लेते थे, तव अग्निका आधान करते थे। यह अग्नि घरमें सदा प्रतिष्ठित रहता था और इसीसे गृहस्थके सारे यज्ञ सुसम्पादित होते थे।

इन अठारहो अध्यायोंके अधिकांश मन्त्र तैत्तिरीयमें भी पाये जाते हैं। १९ वें अध्यायसे 'परिशिष्ट' आरम्भ होता है। २१ अध्यायोंतक सोम बनाने आदिकी बातें हैं। २२ से २५ अध्यायोंतक अश्वमेधयज्ञकी बातें हैं। शेषमें पुरुषमेध, सर्वमेध, पितृमेध आदिकी विवृति है। ४० वां अध्याय सुप्रसिद्ध "**ईशावास्योपनिषद्**" है। ऋषियोंने सब कुछ कहकर अन्तमें सबको ईश्वरमय बता दिया है—"**ईशावास्यमिदं सर्वम्**"—मानो ब्रह्म-प्राप्ति ही इस संहिताका लक्ष्य है।

इस शाखाके अनुयायी 'ष' का 'ख' उच्चारण करते हैं–ऐसी ही उनकी परम्परा है। ये कभी भी "**सहस्रशीर्षा पुरुषः**" नहीं पढ़ेंगे; जब पढ़ेंगे, तब '**सहस्रशीरेखा पुरुखः**" ही पढ़ेंगे !

ऋग्वेदकी शाकल-संहिताकी ही तरह वाजसनेय-संहिताके भी देश-विदेशमें अनेकानेक संस्करण और प्रकाशन हो चुके हैं। शुक्ल यजुर्वेद-सम्बन्धी साहित्य भी अच्छा पाया जाता है। इसका शतपथ ब्राह्मण विशाल ग्रन्थ है। शाकल संहिताको छोड़कर इतना बड़ा ग्रन्थ वैदिक साहित्यमें नहीं है। इसमें सौ अध्याय हैं।

शुक्ल यजुर्वेदकी काण्वसंहितामें २०८६ मन्त्र माने जाते हैं, परन्तु इनमें '**खिल्य**' और '**शुक्रीय**' मन्त्र भी सम्मिलित हैं। तैत्तिरीय और वाजसनेय-संहिताके ही विषय इसमें हैं। इसका अपना शतपथ-ब्राह्मण है। इसका बहुत ही कम प्रचार है। इस संहिताको माननेवाले ब्राह्मण केवल इने-गिने दाक्षिणात्य हैं। इसे १८५२ में जर्मन विद्वान् ए. वेबरने प्रकाशित किया था।

वाजसनेय और काण्व संहिताओंके यज्ञानुष्ठानों, यज्ञ-विधानों, याज्ञिक क्रियाओं और तत्सम्बन्धी नियमोंमें इतनी समता है कि देखकर आश्चर्य होता है। वाजसनेयके शतपथमें, नौ काण्डोंतक, संहिताके अनुसार ही ब्राह्मणका भी क्रम है, केवल पिण्डपितृयज्ञको छोड़कर; क्योंकि संहिता में इस यागके मन्त्र दर्शपूर्णमासके अनन्तर कहे गये हैं और ब्राह्मणमें आधान के अनन्तर। काण्वसंहितामें पहले दर्शपूर्णमास-सम्बन्धी मन्त्र पढ़े गये हैं और ब्राह्मणका आरम्भ आधानसे होता है। बस, यत्र-तत्र ऐसे ही भेद हैं।

वाजसनेयके द्वितीय अध्यायके अन्तमें पिण्ड-पितृ-यज्ञका कथन है। यह यज्ञ आजतक हिन्दू-जातिमें सम्पादित होता है। इसके दो-एक नमूने देखिये–

"अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वम् ॥"

(३१ कण्डिकाका प्रथमार्द्ध)

अर्थात् इस पितृ-यज्ञमें पितृ-गण हृष्ट हों और अंशानुसार अपना अपना भाग ग्रहण करें।

"नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरः शोषाय।।" इत्यादि।
(३२ कण्डिकाका प्रथमांश)

तात्पर्य यह कि 'पितरो, नमस्कार। वसन्त ऋतुका उदय होनेपर सभी पदार्थ रसवान् हों अर्थात् तुम्हारी कृपासे देशमें सुन्दर वसन्त हो। पितरो, नमस्कार। ग्रीष्म ऋतु आनेपर सभी पदार्थ शुष्क हों अर्थात् देशमें भली भांति ग्रीष्म ऋतु हो।' इत्यादि।

इसी तरह छहो ऋतुओंके सुन्दर होनेकी कामना की गयी है। इसके अनन्तर कहा गया है–"पितरो, हमें तुम लोगोंने गृहस्थ (विवाहित) बना दिया है; इसलिये अब हम भी तुम्हें देनेके लिये दातव्य वस्तु अर्पण कर रहे हैं।" **(३२ कण्डिकाका सर्वान्त)**

तैत्तिरीयकी तरह माध्यन्दिन (वाजसनेय) में भी (११.५६) सिनीवाली देवी सुन्दर केशों, मनोहर केश-गुच्छों और अभिराम चूड़ावाली हैं। एक स्थान (८.१) पर कहा गया है कि 'ब्रह्मचारिणी और शिक्षिता कन्याका विवाह होना चाहिये।' इससे मालूम पड़ता है कि कन्या-शिक्षापर आर्योंका बड़ा ध्यान था। वे अपनी कन्याओंको अवश्य ही शिक्षिता करते थे। हां, ऋग्वेदमें तो नहीं, परन्तु यजुर्वेदमें गेहूँ चावल आदिका उल्लेख मिलता है।

यजुर्वेद भी ऋग्वेदकी ही तरह ३३ देवोंका पूजक है। याग-यज्ञोंमें देव, गृहमें देव, जप-हवनमें देव, सब संस्कारोंमें देव, सब तरफ देव ही देव हैं। सदा देवोंका साथ है। यह कल्पना करके आश्चर्य होता है कि हमारे पूर्वज जब अपनेको देवोंसे घिरा पाते होंगे, तब यह संसार कितना आनन्दमय, स्वर्णमय मालूम पड़ता होगा! यदि आप क्षण भर भी देवोंसे घिर जायं तो आपका सारा जीवन ही दिव्य और भव्य बन जाय। यदि हम और आप अन्दर बाहर–सब तरफ अकृत्रिम आत्मनियमानुसार चलनेवाली अद्भुत शक्तियों और गुणोंवाली इन 'दिव्य' विभूतियोंको देखें, इन्हींमें बिचरें, इन्हींके साथ सोवें और जागें, इन्हींके साथ पढ़ें और लिखें

तो क्या जीवन 'दिव्य' नहीं बन जायगा ? तब क्या हमारा प्रत्येक कार्य देवों द्वारा सिद्ध नहीं होगा ? तब क्या हम भव्य भावनामें निमग्न नहीं रहेंगे ? तब क्या हमें कभी पाप-ताप और दैन्य-दुःख छू भी सकेंगे ? कभी नहीं।

यजुर्वेदमें भी शाखा, मिट्टी, औषधि आदिसे चेतनकी तरह व्यवहार किया गया है। इसका कारण है आर्योमें वेदानुगत चेतनवादकी प्रधानता। अब भी कितने ही अध्यात्मवादी महात्मा हर एक जड़ वस्तुमें उसी चेतनको देखते हैं। जहां कहीं भी आत्मानुभवी अध्यात्मतत्त्व-वेत्ता हैं, वे तद्भात्र-भावितं होकर जड़ वस्तुओंसे चेतनवत् व्यवहार करते हैं। बनावटी नहीं, वे सचमुच ऐसा अनुभव करते हैं। वे सबमें शक्ति देखते हैं, सबको आत्मवत् समझते हैं। वे आत्मीयतामें इतने डूब जाते हैं कि प्रत्येक वस्तुको पूज्य और शक्तिमान् समझने लगते हैं, प्रत्येक पदार्थको अपना हितैषी और सहायक मानने लगते हैं और हर एकसे अपनी कहानी कहने लगते हैं !

यही कारण है कि किसान अपने बैलोंसे बातें करते हैं और वैद्य अपनी औषधियोंसे सलाह करते हैं। वह देशभक्त ही कैसा, जो अपनी मातृ-भूमिकी पुकार कानोंसे नहीं सुनता और वह वीर ही कैसा, जो अपनी तलवारसे बातें नहीं करता ? फिर वह ऋषि ही कैसा, जो अपनी समिधा और स्रुवासे नहीं बोलता ?

जो अनात्मवादी हैं, वे तो मनुष्यको भी जड़ समझते हैं और उससे वैसा ही व्यवहार करते हैं। यूरोपमें एक समय ऐसा था, जब स्त्रियों में चेतनताका ही अभाव समझा जाता था ! परन्तु चैतन्यवादमें ओत-प्रोत ऋषियोंके सामने तो चेतन और चेतनाधिष्ठित पदार्थके अतिरिक्त किसी पदार्थकी सत्ता ही नहीं !

यजुर्वेदकी जो उक्त पांच संहिताएँ प्राप्त हैं, उनमेंसे तैत्तिरीय और काण्व संहिताओंपर ही सायणाचार्यका भाष्य है। वैदिक साहित्यकी सबसे

प्रसिद्ध पुस्तक वाजसनेय-संहितापर तो उव्वट और महीधरके भाष्य हैं। यों माधव, अनन्तदेव और आनन्द भट्टके भी इसपर भाष्य हैं; परन्तु उव्वट और महीधरके ही भाष्य प्रचलित हैं। परन्तु इन दोनोंने "**गणानां त्वा गणपतिम्**" मन्त्रसे प्रारम्भ करके दर्जनों मन्त्रोंके भाष्य ऐसे किये हैं, जिनमें मर्यादा-विरुद्ध अश्लीलता है—ऐसी बहुतोंकी राय है। हो सकती है; परन्तु वेद-मन्त्रोंका तो ऐसा अभिप्राय नहीं है। जब कि तुलसीदासकी एक चौपाईकी दर्जनों तरहकी टीकाएँ हो सकती हैं और रवीन्द्रनाथकी एक कविताके बीसियों अर्थ हो सकते हैं, तब वैदिक मन्त्रोंके ही अनेकानेक अर्थ क्यों नहीं किये जा सकते? परन्तु जैसे तुलसीदास और रवीन्द्रनाथका अभिप्राय एक पद्यका एक ही होगा, दर्जनों तरहके नहीं, वैसे ही वेद-मन्त्रों का भी अभिप्राय एक ही होगा और वह अत्यन्त उदात्त और सात्त्विक होगा।

पद, क्रम आदिसे आवेष्टित रहनेपर भी वेद-मन्त्रोंमें पाठ-भेद है। क्यों? वेदके आम्नाय, समाम्नाय, आगम, निगम, छन्द, त्रयी, स्वाध्याय, श्रुति, अनुश्रव आदि नामोंमेंसे अन्तिम दोके शब्दार्थपर ध्यान दीजिये। इससे मालूम पड़ता है कि वेद-मन्त्रोंको परम्परया सुन-सुनकर आर्य लोग कण्ठस्थ करते थे और सुने हुए भागको शिष्य-प्रशिष्योंको सुना-सुनाकर कण्ठस्थ कराते थे। काल-भेद, देश-भेद, व्यक्तिभेद और उच्चारण-भेदसे भी पाठ-भेद हो गये। अध्यापकोंके प्रकृति-वैभिन्यके कारण अनुष्ठान-भेद हुए और अनुष्ठान-भेद तथा प्रयोग-भेदके कारण भी पाठ-भेद हो गये। इस तरह भी शाखाओंका बाहुल्य हो गया। यह अवश्य है कि पद, क्रम आदिके कारण वेदोंमें अवैदिक प्रयोग अबतक नहीं मिल सके।*

***यहां लेखकने यजुर्वेदकी उन शाखाओंके ही नाम लिखे हैं, जो बहुत ही प्रसिद्ध हैं। यों तो "प्रपञ्च-हृदय"के अनुसार यजुर्वेदकी ३६, महाभाष्यके अनुसार १०१ और "दिव्यावदान" के मतसे १०५ शाखाएँ हैं। शुक्ल यजुर्वेदीय संहिताओंके ये १७ नाम बहुत ग्रन्थोंमें मिलते हैं—१माध्यन्दिन,**

२ जाबाल, ३ बौधेय, ४ कण्व, ५ शापीय, ६ स्थापायनीय, ७ कापार, ८ पौण्ड्रवत्स, ९ आवटिक, १० परमावटिक, ११ पाराशर्य, १२ वैधेय, १३ वैनेय, १४ औधेय, १५ गालव, १६ वैजव और १७ कात्यायन। "प्रतिज्ञा-परिशिष्ट", वायुपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, चरण-व्यूह और सायणने इनमेंसे १५ ही नाम माने हैं। "प्रतिज्ञा-परिशिष्ट" में कण्वके स्थानमें काण्व, शापीयके स्थलमें शापेय, स्थापायनीयके स्थानमें तापायनीय, कापारके स्थानमें कापोल, पाराशर्यके स्थानमें पाराशर, वैनेयके स्थानमें वैनतेय और वैजवके स्थानमें वैजवाप है। वायुपुराणमें माध्यन्दिनके स्थानमें मध्यन्दिन, शापीयके स्थानमें शापेयी, स्थापायनीयके स्थानमें ताम्रायण, पौण्ड्रवत्सके स्थानमें वात्स्य, आवटिकके स्थानमें आटवी, पाराशर्यके स्थानमें परायण, वैनेयके स्थानमें वीरणी आदि तो हैं ही, इन १५ मेंसे कई नाम छोड़कर शालिन, विदिग्ध, उद्दल, गालव, शैषिरी, पर्णी आदि नाम भी इनमें जोड़ दिये गये हैं। यही दशा ब्रह्माण्डपुराण, चरण-व्यूह आदिकी भी है। और तो और, किसी चरण-व्यूहमें शाफेय है, किसीमें शाबीय, किसीमें कपोल है, किसीमें कापाल, किसीमें वैणेय है, किसीमें नैनेय और किसीमें अद्धा है, किसीमें औधेय आदि। इस तरह सुन-सुनाकर कण्ठस्थ करनेवालों और लिपिकारोंने इस क्षेत्रमें अद्भुत गोलमाल मचा रखा है। कहीं जाबालोंके २६ भेद और किये हुए हैं और कहीं गालवोंके २४! कुछ लोगोंके मतसे शुक्ल यजुर्वेदकी ये १५ शाखाएँ हैं—१कण्व, २ कठ, ३ पिञ्जुलकठ, ४ जृम्भककठ, ५ औदलकठ, ६ सपिच्छलकठ, ७ मुद्गलकठ, ८ शृगलकठ, ९ सौभरकठ, १० मौरसकठ, ११ चञ्चुकठ, १२ योगकठ, १३ हसलककठ, १४ दौसलकठ और १५ घोषकठ।

इनमें सारे नाम संहिताओंके ही नहीं हैं—कुछ शाखाओं, कुछ ब्राह्मण-कुलों, कुछ भाष्यकारों और कुछ निरुक्तकारों, कुछ प्रातिशाख्यकर्त्ताओं और कुछ सौत्र-संहिताओंके हैं। कुछ नाम तो अत्यन्त भ्रष्ट हैं।

कृष्ण यजुर्वेदकी इतनी शाखाओंके नाम गिनाये गये हैं–१तैत्तिरीय, २ काण्डिकेय, ३ आपस्तम्बी, ४ बौधायनीय, ५ सत्याषाढ़ी, ६ हिरण्यकेशी, ७ औधेयी, ८ चरक, ९ आह्वरक, १० कठ, ११ प्राच्यकठ, १२ कपिष्ठल-कठ, १३ चारायणीय, १४ वार्त्तलवेय, १५ श्वेत, १६ श्वततर, १७ औप-मन्यव, १८ पाताण्डनीय, १९ मैत्रायणीय, २० मानव, २१ दुन्दुभ, २२ ऐकेय, २३ वाराह, २४ हारिद्रवेय, २५ शाम और २६ शामायनीय। आयर्वण-परिशिष्ट (४९ वें) के मतसे तो शुक्ल यजुः की दस और कृष्ण यजुः की चौदह ही शाखाएँ हैं। जो हो, इनमें संख्या ३,४,५,६,२० और २३ तो सौत्र-संहिताओंके नाम हैं। इनमें कुछ शाखाओं, कुछ ब्राह्मण-कुलों आदिके भी नाम हैं। अनेक ग्रन्थोंके मतसे कृष्ण यजुर्वेदकी ये शाखाएँ भी हैं–१ आलम्बिन, २ पालंगिन, ३ कामलायिन, ४ आर्चाभिन, ५ आरु-णिन, ६ ताण्डिन, ७ कालाप, ८ छागलेय, ९ तुम्बरु, १० वारायणीय, ११ वार्त्तान्तवेय (वार्त्तलवेय?), १२ श्वेताश्वतर, १३ औखेय (औधेय?), १४ आत्रेय, १५ वैखानस, १६ खाण्डकीय, १७ बाधूल, १८ पौष्पञ्जि, १९ कौण्डिन्य और २० हारीत। इनमें भी संख्या १५, १७, १९ और २० सौत्र-संहिताओंके ही नाम हैं। वायु और ब्रह्माण्ड-पुराणों के अनुसार तो कृष्ण यजुः की ८६ संहिताएँ थीं।

जो हो; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि जबतक वैदिक साहित्यकी पूरी खोज, शोध और प्रकाशन नहीं हुए हैं, तबतक यजुर्वेदकी संहिताओंकी प्रामाणिक संख्या निश्चित नहीं की जा सकती–नामोंकी शुद्धि और विविध उल्लेखों तथा उच्चारणोंका परिमार्जन भी नहीं हो सकता। जिस शाखाके ब्राह्मणादि भी मिल जायं, उसका निश्चय किया जा सकता है।

खोज-ढूंढ़ करनेपर कृष्ण यजुर्वेदकी संहिताओंके और भी नाम मिल जायंगे; परन्तु यह निर्णय करना असम्भव है कि ये शाखाओंके ही नाम हैं वा दूसरोंके।

चतुर्थ अध्याय

सामवेदकी संहिताएँ

वेदका जो एक नाम 'श्रुति' है, उससे सिद्ध होता है कि ऋषियोंने यह ज्ञान अपनी बुद्धिसे नहीं उत्पन्न किया; प्रत्युत परमात्मासे इसे 'श्रवण' किया। अवश्य ही परमात्मा हृदयका अन्तर्यामी है। **'हृद्देशेऽर्जुन, तिष्ठति'**। वह अन्तरमें रह कर ही कहता है। यह आन्तरिक ध्वनि ऋषियोंको समाधि-दशामें प्राप्त हुई और इस ध्वनि वा ज्ञानको उन्होंने, संसारके कल्याणके लिये, विश्वमें प्रसारित किया।

जिस 'विद्' धातुसे वेद बना है, वह लैटिन भाषामें Videre धातु है। अंग्रेजी Idea शब्द भी उसी धातुसे निकला है। फलतः वेद शब्दके लिये यथार्थ अंग्रेजी शब्द Vision है, जिसका अर्थ 'दर्शन' है। जिन पुरुषोंको यह महान् दर्शन हुआ, उन्हें द्रष्टा, देखनेवाला वा ऋषि कहते हैं। इसीसे नैगमकाण्ड (२.११) में **निरुक्तकार**ने लिखा है—**"ऋषिर्दर्शनात् स्तोमान् ददर्श।"** अर्थात् ऋषियोंने मन्त्रोंको देखा; इसीलिये उनका नाम ऋषि पड़ा। सर्वानुक्रमसूत्रमें कात्यायनने भी लिखा है—**"द्रष्टार ऋषयः स्मर्त्तारः"** यानी ऋषि द्रष्टा वा स्मर्त्ता हैं, कर्त्ता नहीं।

पहले कहा गया ही है कि जैसे आकाशमें व्याप्त नित्य शब्दोंको मनुष्य कण्ठ, जिहवा, तालु आदिसे अभिव्यक्त करता है, वैसे ही शब्दमय नित्य वेदको ऋषियोंने समाधि द्वारा अभिव्यक्त किया। दूसरा पक्ष कहता है कि ज्ञान वा ध्वनिके रूपमें नित्य वेदको ऋषियोंने प्राप्त किया और अपनी तत्कालीन वैदिक भाषामें उसका उपदेश दिया। पहला पक्ष यह भी मानता है कि वेद-शब्दों और उनके अर्थोंका सम्बन्ध भी नित्य है और मन्त्रों

का छन्दोमय रूप भी नित्य है। परन्तु दूसरा पक्ष कहता है कि वेद-भाषा नित्य नहीं है; क्योंकि भाषा तो ध्वनिको प्रकट करनेकी प्रणाली मात्र है और ऐसी प्रणालियां वा भाषाएँ विविध देशोंमें, विभिन्न रूपोंमें, हैं। देश-कालके अनुसार विभिन्न उच्चारण-शैलियां होती हैं। इनके अनुसार शब्द बनते हैं और मनुष्य इन विविध शब्दोंके विविध अर्थ, अपनी प्रकृति और रुचिके अनुसार, निश्चित करता है। इसलिये कोई भी भाषा नित्य नहीं हो सकती—सारी भाषाएँ और उनके अर्थ मनुष्य-कृत संकेत मात्र हैं। व्याकरणमें शब्दकी प्रकृति और विकृति होती है और इस तरह जो शब्द परिवर्त्तनशील है, वह नित्य हो भी नहीं सकता।

कुछ वेद-भक्तोंका मत है कि "वेदोंकी ११३१ शाखाओंमें शाकल, राणायणीय, माध्यन्दिन और शौनक शाखाएँ, शाखाएँ नहीं, मूल ऋग्वेद सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद हैं। शेष ११२७ शाखाएँ इन्हीं चारोंकी व्याख्याएँ हैं।"

सनातनधर्मी ऐसा नहीं मानते। वे पातञ्जल महाभाष्यके अनुसार वेदोंकी ११३० शाखाएँ मानते हैं और प्रत्येकको स्वतन्त्र ग्रन्थ मानते हैं। जैसे रामायणके सात काण्ड हैं और सातों रामायणके अवयव हैं तथा एकसे एक अनुबद्ध और सापेक्ष हैं, वैसे शाखाएँ न तो अवयव हैं, न परस्पर अनुबद्ध वा सापेक्ष हैं। इक्कीस शाखाओंके समुदायका नाम ऋग्वेद नहीं है; प्रत्युत प्रत्येक शाखा स्वतन्त्र रूपसे ऋग्वेद है। इसीलिये किसी एक वेदकी एक शाखाका अध्ययन करनेसे ही समग्र वेदका अध्ययन माना गया है। "**स्वाध्यायोऽध्येतव्यः**" का अर्थ करते हुए जैमिनिने लिखा है, 'अपनी परम्परागत किसी भी एक शाखाका अध्ययन करना चाहिये।' प्रत्येक शाखा स्वतन्त्र नहीं रहती, तो एक शाखाका अध्ययन ही वेदाध्ययन क्यों माना जाता? जब कि अनुवाकानुक्रमणीके अनुसार ऋग्वेदीय शाकला शाखासे वाष्कलामें आठ मन्त्र अधिक हैं, तब शाकलाकी व्याख्या वाष्कला कैसे हुई? जब कि ऐतिहासिकोंके मतानुसार माध्यन्दिनसे

तैत्तिरीयकी भाषा प्राचीनतर है, तब माध्यन्दिनकी व्याख्या तैत्तिरीय कैसे हुई ?. माध्यन्दिनमें १९७५ ही मन्त्र हैं और तैत्तिरीयमें २१९८। दोनों सर्वथा स्वतन्त्र हैं। किसी प्रकारकी भी सापेक्षता नहीं है। अतः माध्यन्दिनकी व्याख्याके रूपमें तैत्तिरीयको मानना हास्यास्पद है। सामवेदकी राणायणीय शाखामें १५४९ मन्त्र ही हैं और कौथुममें १८२४ मन्त्र हैं तथा एकसे दूसरी अनुबद्ध नहीं है। फिर भी कहा जाता है कि 'राणायणीय की व्याख्या ही कौथुम है।' विचित्र सिद्धान्त है !

मन्त्रोंके दो भेद माने गये हैं—कण्ठाप्त और कल्प्य। जिन मन्त्रोंको ऋषियोंने प्रत्यक्ष किया था, उन्हें कण्ठाप्त और जिनका स्मृति द्वारा अनुमान किया था, उन्हें कल्प्य कहा जाता है। ये विभाग पौराणिक हैं। यास्कने तो मन्त्रोंको तीन भागोंमें विभक्त किया है—परोक्षकृत, प्रत्यक्षकृत और आध्यात्मिक।

ऐतिहासिकोंके मतसे अठारहो पुराणोंमें सर्वाधिक प्रामाणिक विष्णु-पुराण है। इसके अनुसार वेदव्यासके शिष्य काण्डर्षि जैमिनिने सामवेद पढ़कर उसे दो भागोंमें बांटा। जैमिनिने एक भाग अपने पुत्र सुमन्तुको पढ़ाया और एक भाग अपने पौत्र सुकर्माको पढ़ाया। इन दोनोंने अपने-अपने पठित भागको अनेक शिष्योंको पढ़ाया। सुकर्माके शिष्य **हिरण्यनाभ** ने अपनी संहिताके पन्द्रह भाग करके एक एक भाग एक-एक शिष्यको पढ़ाया। इनका नाम "**उदीच्य-सामग**" पड़ा। पौष्यञ्जि ऋषिके लोकाक्षि, कुथुमि, कुसीदि, लांगलि आदि शिष्योंने हिरण्यनाभसे सामवेदके कुछ भाग पढ़े। इनका नाम "**प्राच्य-सामग**" पड़ा। हिरण्यनाभके प्रसिद्ध शिष्य कृतिनाभने जो संहिता-भाग पढ़ा, उसे पचीस शिष्योंको पढ़ाया। उन लोगों ने अपने-अपने अधीत अंशोंको अनेक शिष्योंको पढ़ाया।

पातञ्जल महाभाष्य, सूतसंहिता, मुक्तिकोपनिषद्, स्कन्दपुराण आदिमें जहां कहीं सामवेदका प्रसंग आया है, वहां सामवेदकी हजार शाखाएँ बतायी गयी हैं। परन्तु आजकल आसुरायणीय, पासुरायणीय,

वार्त्तान्तवेय, प्राञ्जल, ऋग्वर्ण-भेद, प्राचीन-योग्य, ज्ञान-योग्य और राणायणीयके नाम मिलते हैं। विष्णुपुराणमें राणायणीयके नौ भाग हैं—शाट्यायनीय, सात्वल, मौद्गल, खल्वल, महाखल्वल, लांगल, कौथुम, गौतम और जैमिनीय।

परन्तु जब कि मुक्तिकोपनिषद् आदि वैदिक ग्रन्थोंमें वेदोंकी ११३० शाखाओंका उल्लेख है और जब कि ये सारी शाखाएँ, उनके विभाग, उनके मन्त्र, शब्द, अक्षरतक नित्य हैं, तब ऋषियों द्वारा विभागोंका किया जाना सम्भव ही कैसे है? स्वयं यजुर्वेद ही कहता है कि स्वतन्त्र रूपसे विभक्त चारों वेद सृष्टिके आदिमें ही प्रकट हुए—"**ऋचः सामानि जज्ञिरे, छन्दांसि जज्ञिरे। तस्माद्यजुस्तस्मादजायत।**" ऋचः, सामानि आदि बहुवचन प्रयोगोंसे विदित होता है कि चारों वेदोंके साथ ही उनकी शाखाएँ भी सृष्टि के आदिमें प्रकट हुई और वे सब नित्य हैं। तब व्यासजी या किन्हीं ऋषियों के द्वारा विभाग वा वेदकी विकृति करनेका प्रश्न ही नहीं है। हो सकता है कि उक्त ऋषियोंने विभिन्न संहिताओंका अध्ययन और विशेष प्रसार किया हो और इसी बातको पुराण-कर्त्ताने विभाग करना, लौकिक भाषामें, लिख दिया हो।

साम शब्दका अर्थ है प्रिय वा प्रीतिकर वचन। कहीं गानको भी साम कहा गया है। वैदिक साहित्यके कई ग्रन्थोंमें ऋक् और यजुःके बाद सामका नाम आया है; परन्तु ऋग्वेदके एक मन्त्र (१.५.८) में ऋग्वेदसे भी पहले सामवेदका नाम आया है; इसलिये यह कल्पना व्यर्थ है कि ऋक् और यजुःके बाद सामका आविर्भाव वा ऐतिहासिकोंके मतसे निर्माण हुआ। वस्तुतः सब वेद स्वतन्त्र हैं; उत्पत्ति वा किसी विषयमें किसीकी अपेक्षा नहीं।

यज्ञमें मन्त्र पढ़कर होता देवोंको बुलाता है। उसके कार्यको "हौत्र" कहते हैं। यज्ञमें होम आदि आवश्यक कृत्योंका संचालन करनेवालेको "अध्वर्यु" कहते हैं। अध्वर्युके कार्यको "आध्वर्यव" कहा जाता है। देवों

को प्रसन्न करनेके लिये सामगान करनेवालेको "उद्गाता" और उसके कार्यको "औद्गात्र" कहा जाता है।

सामवेदकी प्रसिद्ध **कौथुम-संहिता**पर ही सायणका भाष्य है। गुजरातके श्रीमाली और नागर ब्राह्मणोंमें इसका अत्यधिक प्रचार है—वंगीय ब्राह्मणोंमें भी है। बंगालके स्व० पं० सत्यव्रत सामश्रमीके समान सामवेदीय साहित्य (संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, सूत्र आदि) पर भारतके किसी भी विद्वान्ने परिश्रम नहीं किया है। आपने इन सबपर टीकाएँ लिखनेमें अपना जीवन ही अर्पण कर दिया था। हिन्दू-जातिका ऐसा दुर्भाग्य है कि सामश्रमीजीके कितने ही दुर्लभ ग्रन्थ अब प्राप्य नहीं हैं और ऊल-जुलूल उपन्यास, बरसाती मेढकोंके समान, सामने आते जा रहे हैं!

हां, तो इस संहिताके दो भाग हैं—पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक। पूर्वार्चिकको छन्दः, छन्दसी और छन्दसिका भी कहा जाता है। पूर्वार्चिकके चार भाग हैं—आग्नेय, ऐन्द्र, पवमान और आरण्यक पर्व। ये विषयानुसार विभाग हैं। उत्तरार्चिकके भी विषयानुसार सात भाग हैं—दशरात्र, संवत्सर, एकाह, अहीन, सत्र, प्रायश्चित्त और क्षुद्र। ऋचाओंको भी आर्चिक कहा जाता है। आर्चिकको "योनि-ग्रन्थ" भी कहते हैं।

सामगानके चार भाग हैं—गेय, आरण्यक, ऊह और ऊह्य। पूर्वार्चिकमें "गेय" और "आरण्यक" गान हैं तथा उत्तरार्चिकमें "ऊह" और "ऊह्य"। दोनों आर्चिकोंमें ऋचाएँ हैं और तन्मूलक उक्त चार गान हैं। परन्तु इन चारों गानोंकी ऋचाएँ क्रम-बद्ध सजायी हुई नहीं हैं।

इसके पूर्वार्चिकमें छः और उत्तरार्चिकमें तीन प्रपाठक हैं। सब २६ अध्याय और १८२४ मन्त्र हैं। ७५ को छोड़कर इसकी सारी ऋचाएँ (मन्त्र) ऋग्वेदमें हैं।

कौथुम-शाखासे **राणायणीय** छोटी है। इसमें १५४६ मन्त्र हैं। अंग्रेजी अनुवादके साथ १८४२ ई० में जे० स्टीवेन्सनने इसे छापा था। इस

राणायणीयका प्रचार महाराष्ट्र और द्रविड़में है। इसको गानेवाले अत्यल्प हैं। कुछ उद्‌गाता सेतुबन्ध रामेश्वरकी तरफ भी हैं।

सामवेदकी **जैमिनीय शाखा** भी छपी है। डब्ल्यू० कैलेंडने इसे छापा था। इसका प्रचार कर्णाटकमें है।

सामवेदकी ये ही तीन संहिताएँ उपलब्ध हैं। तीनोंकी बातें प्रायः एक-सी हैं–नाम मात्र की ही भिन्नता है। उपलब्ध तीनों संहिताओंमें मन्त्रोंकी न्यूनताधिकता है–विषय एकसे हैं, यह बात बराबर ध्यानमें रखनेकी है। सामश्रमीजीके मतसे सामवेदकी १३ संहिताओंके ही प्रामाणिक नाम पाये जाते हैं।

इस बातका स्पष्ट वर्णन नहीं पाया जाता कि सामवेद कैसे गाया जाता था। हां, सामवेदके उत्तरार्चिक-सूक्तोंसे इस विषयपर कुछ-कुछ प्रकाश पड़ता है। तो भी आजकलके षड्‌ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद, सातो स्वर साम-गानमें लगते थे कि नहीं, इसका ठीक पता नहीं चलता। ओ३म् वा ॐ को कुछ देरतक स्थिर रूपसे उच्चारण करनेपर एक प्रकारका गीति-स्वर निकलता है। कदाचित् इसीलिये सामवेदमें ॐकी बड़ी महिमा कही गयी है। सामवेदकी छान्दोग्यो-परिषद्‌में ॐकी विस्तृत व्याख्या है। संगीतरस-रसिक भगवान् कृष्ण भी सामवेदके बड़े प्रेमी थे। उन्होंने गीतामें स्पष्ट कहा है–"**वेदानां सामवेदोऽस्मि।**" छान्दोग्य (तृतीय प्रपाठक) में लिखा है कि घोर आंगिरसने देवकी पुत्र श्रीकृष्णको वेदान्तमतकी शिक्षा देते समय सामवेदके गान-तत्त्वको बताया था। इसके अनन्तर भगवान्‌ने एक नवीन रीतिके गानका आविष्कार किया। इसका नाम "छालिक्य" पड़ा और यादवोंन इसे खूब अपनाया। इसी छालिक्यको मंगलात्मा मुरलीधर वंशीमें टेरते-बजाते थे। इसमें ओंकार तो था ही, सातो स्वर भी थे। एक भक्तने इसका सुन्दर विवरण यों दिया है–

"लोकानुद्धरयन् श्रुतीर्मुखरयन् क्षोणीरुहान् हर्षयन्
शैलान् विद्रवयन् मृगान् विवशयन् गोवृन्दमानन्दयन्।
गोपान् सम्भ्रमयन् मुनीन् मुकुलयन् सप्तस्वरान् जृम्भयन्
ओंकारार्थमुदीरयन् विजयते वंशीनिनादः शिशोः ॥"

छान्दोग्योपनिषद्से ज्ञात होता है कि सामगान पांच भागोंमें विभक्त है–हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार और निधान (Coda)। इनमेंसे प्रथम तीन वर्त्तमान कालके स्थायी, अन्तरा और आभोगके अभि-व्यंजक हैं। निधानसे "तान" की सूचना मिलती है।

स्ट्रैंगवेने "Music of Hindustan" नामकी एक पुस्तक लिखी है। उसमें उन्होंने लिखा है–'उदात्त आरोहको, अनुदात्त अवरोहको और स्वरित स्थायीको सूचित करता है।' उनका मत है कि 'आजकलकी राग-रागिनियोंमें साम-गान नहीं होता था। सामगान सोम बनानेके समय और चन्द्रलोकमें निवास करनेवाले पूर्वजोंकी पूजाके समय विशेषतया गाया जाता था।' परन्तु अपनी धारणाकी पुष्टिमें स्ट्रैंगवेने कोई जबर्दस्त प्रमाण नहीं दिया है। महाभारत (शान्तिपर्व १६) में तो स्पष्ट ही लिखा है कि 'भीष्मकी शवदाह-क्रियाके समय साम-गान गाया गया था। भगवद्भक्तिमें तल्लीनता प्राप्त करनेके लिये भी साम-गान गाया जाता था–"**गायन्ति यं सामगाः**"।

ऋग्वेद (६.१६.१०) में एक मन्त्र आया है–

"अग्न आयाहि वीतये, गृणानो हव्यदातये। निहोता सत्सि बर्हिषि ॥"

यह मन्त्र सामवेदका प्रथम मन्त्र है। यह इस तरह गाया जाता है–

"**ॐ ओग्न इ (प्रस्ताव); ॐ आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये (उद्गीथ); नि होता सत्सि बर्हिषि ओम् (प्रतिहार)।**" इस अन्तिम भागको तोड़कर "**निहोता सत्सि ब (उपद्रव)–र्हिषि ओम् (निधान)**" -इस प्रकार किया जाता है। एक स्तोमकी पूर्त्तिके लिये ये तीन तीन बार दोहराये जाते हैं। गाये जानेवाले मन्त्र छन्दोंके बन्धनोंसे मुक्त

रहते हैं। साम-गानके लयोंके नाम ये हैं—क्रुष्ट, प्रथमा, द्वितीया, चतुर्थी, मन्द और अतिस्वार्थ।

तीन प्रधान वाद्य बजते थे—दुन्दुभि, वेणु और वीणा।

शतपथ-ब्राह्मणमें कहा गया है कि 'विना सामगानके कोई भी यज्ञ नहीं हो सकता' (**"नासाम यज्ञो भवति"**) और हिंकारके बिना सामगान भी नहीं होता (**"न वाहिंकृत्य साम गीयते"**)।

इस सम्बन्धमें विशेष जाननेकी इच्छावाले सज्जन इन ग्रन्थोंको देखें तो उन्हें बड़ी सहायता मिलेगी—ऋक्प्रातिशाख्य, बृहद्देवता, तैत्तिरीय ब्राह्मण, सामविधान-ब्राह्मण, पुष्पसूत्र, सामतन्त्र और नारद-शिक्षा। पूनाके वकील श्री एन० के० पटवर्द्धनने सामगानका पूरा अध्ययन कर कई बड़ी ही महत्त्वपूर्ण बातें खोज निकाली हैं।

सामवेदका ही उपवेद गन्धर्ववेद वा गान्धर्ववेद है, जिससे सोलह हजार राग-रागिनियां निकलीं। पहले ये सबकी सब गायी जाती थीं। वाद्यों और नृत्योंका मूल भी गान्धर्ववेद ही है। इसीके आधारपर संस्कृत भाषामें एकसे एक संगीत-ग्रन्थ बनाये गये हैं।

एक दिन राणायणीय शाखाके एक काशीवासी उद्गाता इन पंक्तियों के लेखकसे कह रहे थे—"मैंने कितने ही विद्यार्थियोंको रखा, पढ़ाया और इस काममें पैंतीस सौ रुपयेका खर्च भी किया, ताकि कोई राणायणीयका योग्य उद्गाता हो जाय। परन्तु एक भी नहीं हुआ। उलटे गरीब ब्राह्मण का खा-खाकर सब भाग गये!" जो हिन्दू-संस्कृतिकी दोहाई दिन-रात दिया करते हैं, वे इसे ध्यानसे पढ़ें और इस दिशामें कुछ कर सकें, तो करें।

सामवेदकी सारी संहिताओंमें सोमलता और सोमरसकी बड़ी महिमा बतायी गयी है। सोमयाग करनेके पहले सोमबल्ली खरीदनेकी विधि है। सोम बेचना भी एक प्रकारका व्यापार था। अध्वर्यु, यजमान आदि खरीदते थे। ३६ अंगुल लम्बे और १८ अंगुल चौड़े अभिषवण-फलकपर बिछाये कृष्णाजिनपर इसे रखकर और अभिमन्त्रित जलसे बीच-बीचमें

सींचकर चार पत्थरोंके यन्त्रसे इसे कूटा जाता था। अनन्तर आहवनीय पात्रमें इसे डालकर उसमें जल छोड़ते थे और बल्लीको मल-मलकर पानीमें मिला देते थे। तलछट बाहर निकाल देते थे। ऐसी बल्लीको वेदमें "ऋजीष" कहा गया है। इसे दशापवित्र वस्त्रके द्वारा छानते थे। वस्त्रमें नीचे छेद करके और उसमें ऊनका डोरा डालकर इस तरह बांध देते थे कि सोमरसकी धार छनती हुई नीचे गिरती थी। देवता-प्रीत्यर्थ पहले इससे हवन करते थे और बचे हुए भागको सदोमण्डपमें होम करनेवाले, वषट्कार कहनेवाले, उद्गाता, यजमान, ब्रह्मा और सहस्रक पीते थे। सोमरसमें दूध, दही, सुवर्ण-रज और घृत, देव-भेदसे, मिलाकर देवार्पण करनेकी भी विधि है। यह दिनमें तीन बार तैयार किया जाता था।

इस लताका रंग हरा लिखा है। भांगकी तरह इसकी पत्तियां हरी होती थीं। इसके अभावमें "पूतिक-तृण" वा "फाल्गुन" नामकी वनस्पति के प्रयोगकी आज्ञा है। आश्वलायन-श्रौतसूत्रके मतसे यह अनुकल्प है। सोमलता तो इन दिनों कहीं देखनेमें नहीं आती; इसलिये आजकल सोम-यागके समय इस अनुकल्पका ही व्यवहार किया जाता है।

सोमरसके गुणोंका बड़ा वर्णन है। यह उत्साहदाता है, बुद्धि-वर्द्धक है, वाक्पाटव-प्रदाता है और रोग-विनाशक है। इसकी मादकताका भी उल्लेख है। युद्धमें इसका खूब उपयोग किया जाता था। इन्द्र तथा अन्य देवता इसे पीते थे।

सोमरसमें दूध, दही, घृत, मधु, जल, सत्तू, आटा मिलानेसे यह विशेष मधुर हो जाता था। इसलिये इसके नाम मधुमत्, मधु, पीयूष आदि भी हैं। उक्त विविध वस्तुएँ मिलाये हुए सोमरसको आशिर, गवाशिर, यवाशिर आदि कहते थे। सोमकी छननी और तलछटका भी बड़ा वर्णन मिलता है।

इस भ्रममें नहीं रहना चाहिये कि सोमरस भी सुरा वा शराब ही है। ऋग्वेद (८.२.१२) में सुराको 'दुर्मद' कहा गया है। शराब

क्रोध और पाशा पापकी ओर ले जानेवाले बताये गये हैं (ऋग्वेद ७.८६.६)। परन्तु सोमका वर्णन इससे उलटा है। सौत्रामणि-यागमें सोमके अतिरिक्त सुराका विधान भी है। तब दोनों एकसे कैसे हुए? सोमरस पीनेसे तो आर्य बलिष्ठ और अमर होते थे (८.४८.३)।

सोमके 'पर्वतावृध' और 'गिरिष्ठ' नामोंसे विदित होता है कि यह पर्वतके ऊपर, समतल भूमिमें, होता था। मूजवान् (हिमालयके पास), शर्यणावत् (कुरुक्षेत्र), आर्जीकीया (व्यास) आदि सोम-प्राप्तिके स्थान कहे गये हैं। नदीके किनारेकी काईकी तरह पानीमें वा पानीके आस-पास भी सोमबल्ली होती थी। चन्द्रमासे इसकी उपमा दी गयी है—कहीं-कहीं चन्द्रको ही सोम कहा गया है। इसकी रक्षा गन्धर्व करते थे (९.८३.४)। सोमाहरण-प्रतिपादक सूक्तोंका नाम "सौपर्ण" है।

सुश्रुतमें लिखा है कि सोमरसके लिये सुवर्ण-पात्र चाहिये। इसमें सोमके चौबीस प्रकार "वेदोक्त" कहे गये हैं। इसे कन्द कहकर केलेके कन्दकी तरह इसका वर्णन किया गया है। कहा गया है, सोमलतामें १५ पत्ते होते हैं। इसे "पानीपर तैरनेवाली, वृक्षोंपर लटकनेवाली और भूमि पर उगनेवाली" कहा गया है। धर्म-द्रोही, ब्राह्मण-द्वेषी और कृतघ्नके लिये इसे दुर्लभ बताया गया है। चन्द्रमाकी तरह इसके पत्तोंका घटना-बढ़ना लिखा है।

सोमलताके बारेमें देशी-विदेशी वेदाभ्यासियोंके विभिन्न मत हैं। डा० राजेन्द्रलाल मित्र इसे एक वनस्पति मानते हैं, जुलियस एगलिंग और ए० बी० कीथ इसे एक प्रकारकी सुरा कहते हैं, रागोजिन "दैवी सुरासव" बताते हैं, वाट साहब "अफगानी अंगूरोंका रस" कहते हैं, राइस "ईखका रस" बताते हैं, मैक्समूलर "आंवलेका रस" कहते हैं और हिले-ब्रान्त इसे "मधु" मानते हैं! इस तरह "मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना" की उक्ति चरितार्थ हो रही है।

ऐतरेय-ब्राह्मणकी अनुक्रमणिकामें मार्टिन हागने लिखा है कि उन्होंने सोमरस तैयार कराकर पान किया था। ईरानी लोग सोमको "हउमा" कहते थे। वे इसका कच्चा ही पान करते थे। अवस्तामें "हउमा" की बड़ी प्रशंसा लिखी है। 'स' को 'ह' कहनेकी ईरानियोंकी "पुरानी आदत" है ही। थियासोफिकल सोसाइटीकी संस्थापिका मैडम ब्लावस्कीकी राय है कि वेदका सोम ही बाइबिलका ज्ञानवृक्ष (Tree of Knowledge) है। कलकत्तेके बेलगछिया नामक स्थानमें एक बार "बनियालाल बाबाजी" नामके एक संन्यासीने एक ऐसी लता दिखायी थी, जो परीक्षार्थ लंदन भेजी गयी थी। परीक्षा करके हुटिनविड कम्पनीने इसे सोमलता बताया था। प्रसिद्ध वेदज्ञ पं० दुर्गादास लाहिड़ीने तो सोमलताको विशुद्ध बुद्धि और सोमरसको निष्कलंक ज्ञान बताया है। लाहिड़ी महाशय आध्यात्मिक अर्थके पूर्ण पक्षपाती थे। परन्तु कर्मकाण्डकी दृष्टिसे आपका अर्थ ठीक नहीं है। इसी प्रकार जो लोग पूनाके पास होनेवाली "रानशेर" वनस्पतिको ही सोमलता मानते हैं, वह भी ठीक नहीं है; क्योंकि सोमलताका कोई लक्षण उसमें नहीं मिलता।

वस्तुतः इन दिनों सोमलता कहीं भी नही पायी जाती; इसलिये लोगोंने इस सम्बन्धमें अनल्प कल्पनाका विराट् जाल फैला रखा है। श्रौतसूत्रोंके ही समय यह अद्भुत जड़ी अप्राप्य हो गयी थी; इसीलिये सूत्रोंमें इसके अनुकल्पकी विधि लिखी गयी है।*

---

* पातञ्जल महाभाष्यके अनुसार १००० और "दिव्यावदान" के मतसे १०८० शाखाएँ सामवेदकी हैं; परन्तु "प्रपञ्च-हृदय" के अनुसार

सामवेदकी सहस्र शाखाओंमेंसे केवल बारह ही बची हुई हैं। तो भी खोज-ढूंढ़ करनेपर इतनी साम-शाखाओंके आनुमानिक नाम पाये जाते हैं—१ कौथुम, २ जैमिनीय, ३ राणायणीय, ४ सात्यमुग्र, ५ नैगेय, ६ शार्दूल, ७ वार्षगण्य, ८ गौतम, ६ भाल्लविन, १० कालबविन, ११ शाट्यायनिन, १२ रौरुकिण, १३ कापेय, १४ माषशराव्य, १५ करद्विष, १६ शाण्डिल्य, १७ ताण्ड्य, १८ गार्गक, १६ वात्सक, २० बाल्मीक, २१ शैत्यायन, २२ कोहलीपुत्र, २३ पौष्करसाद, २४ प्लाक्ष, २५ प्लाक्षायण, २६ वाडभीकार, २७ सांकृत्य आदि। २० से २७ तकके नाम तैत्तिरीय-प्रातिशाख्यके माहिषेय-भाष्यमें आये हैं। मालूम पड़ता है, ये नाम कृष्ण-यजुर्वेदीय सौत्र-संहिताओंके हैं। १ से १६ संख्याओंके नामोंमें अनेक नाम ब्राह्मण-कुलों, निरुक्त-कारों, प्रातिशाख्य-कर्त्ताओं आदिके हो सकते हैं। ऐसी अनिश्चित दशामें लेखकने इस लेखमें उन्हीं शाखा-नामोंका उल्लेख किया है, जो अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। वेद-प्रेमी विद्वानोंको साम-शाखाओंके नाम निश्चित करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

पञ्चम अध्याय

अथर्ववेदकी संहिताएँ

अंगिरोवंशीय **अथर्वा ऋषि**के द्वारा परिदृष्ट और आविष्कृत होनेके कारण इस वेदका नाम अथर्व-वेद पड़ा। अंगिरा ऋषिके वंशज होनेके कारण अथर्वाको आंगिरसकी संज्ञा दी गयी है और अथर्व-वेदका एक नाम अथर्वांगिरस-वेद भी पड़ा है। इसका एक नाम भृग्वांगिरस-वेद भी इसलिये पड़ा कि भृगु ऋषि अंगिराके शिष्य थे और आंगिरस कहलाते थे। अथर्व-वेदके प्रचारमें भृगु ऋषिका बहुत बड़ा हाथ है। अथर्ववेदमें इस वेदका नाम अथर्वांगिरस लिखा है (१०.७.२०)। इसके प्रसिद्ध ब्राह्मण '**गोपथ**' में भी यही नाम है (३.२)। परन्तु इस ब्राह्मण (२.१६) में इसका एक नाम ब्रह्मवेद भी ह। इस वेदमें ब्रह्मका अत्यधिक विवरण रहनेके कारण ही कदाचित् इसका ब्रह्मवेद नाम पड़ा।

महाभाष्य, चरण-व्यूह आदिके अनुसार इसकी नौ शाखाएँ थीं, जिनमें इन दिनों दो ही उपलब्ध हैं—**शौनक** और **पैप्पलाद**। विष्णुपुराण के अनुसार सुमन्तु ऋषिने अथर्ववेद अपने शिष्य कबन्धको पढ़ाया। कबन्ध ने अपने देवदर्श और पथ्य नामके शिष्योंको यह वेद पढ़ाया। देवदर्शने मौद्गल, ब्रह्मबलि, शौक्लायनिन और पिप्पलादको पढ़ाया। पथ्यने जाजलि, कुमुदादि और शौनकको पढ़ाया। शौनकने ब्रभ्रु और सैन्धवायन को पढ़ाया। पश्चात् अथर्ववेदके सैन्धव और मंजुकेश नामके दो भेद हुए। काल पाकर इनमें नक्षत्रकल्प (नक्षत्रादि-पूजाविधि), वेदकल्प (वैतालिक-ब्रह्मत्वादि-विवरण), शान्तिकल्प (अष्टादश-महाशान्ति विधि), आंगिरःकल्प (अभिचारादिविधि) और संहिताकल्प आदि विभेद हुए।

अथर्ववेदकी ये नौ शाखाएं हैं–पैप्पल, दान्त, प्रदान्त, स्नान, सौत्र, ब्रह्मदावन, शौनक, देवदर्शती और चरणविद्या। परन्तु अनेक पुराणोंमें अनेक रूपोंमें ये नाम मिलते हैं। बहुत स्थलोंमें ये नाम पाये जाते हैं–पैप्पलाद, तोद, मोद, शौनक, जाजल, जलद, ब्रह्मवद, देवदर्श और चारण-विद्या। पुराणों में इनके भी अनेक भेदोपभेद किये हुए हैं। परन्तु आजकल उक्त दो संहिताओं के अतिरिक्त कोई भी संहिता प्राप्य नहीं है। जैसे कृष्ण यजुर्वेदकी अधूरी कठ-कापिष्ठल-संहिता मिली है, वैसे भी इस वेदकी कोई तीसरी संहिता नहीं मिली है। संहिताओंके नाम अनन्त कालसे सुने-सुनाये चले आ रहे हैं; इसलिये अक्षर-विन्यासमें गड़बड़ मालूम पड़ रही है।

इसके गोपथब्राह्मणमें लिखा है कि 'ब्रह्मासे भृगु उत्पन्न हुए और भृगुसे अथर्वण हुए, जो अंगिरा कहलाये। अथर्वणके बीस पुत्र हुए, जिन्होंने अथर्ववेदके एक-एक काण्डका स्मरण किया।'

इस सम्बन्धमें अनेक स्थलोंमें अनेक प्रकारके विवरण पाये जानेसे अनुमान होता है कि कहीं किसी कल्पकी बात लिखी है और कहीं दूसरे कल्पकी।

एक सन्देह यह भी है कि वेदका एक नाम 'त्रयी' है। त्रयीसे ऋक्, यजुः और सामका ही बोध होता है। ऐतरेय ब्राह्मण (५.२२), शतपथ-ब्राह्मण (४.६.७.१३), बृहदारण्यकोपनिषद् (१.५.५), छान्दोग्योपनिषद् (३.१ और ७.१), गौतमधर्मसूत्र (१६.११), वसिष्ठधर्मसूत्र (१३.३०), बौधायनधर्मसूत्र (४.५.२९) और मनुस्मृति (३.१४५; ४.१२४; ११.२६३; १२.११२) आदिमें त्रयी (ऋक्, यजुः, साम) का ही उल्लेख है, अथर्वका नहीं। इससे सन्देह होता है कि क्या वेद तीन ही हैं? परन्तु प्रसिद्ध वेदज्ञाता पं० सत्यव्रत सामश्रमीजी कहते हैं कि 'नहीं, वेद चार हैं। इन सब ग्रन्थोंमें प्रसंगतः अथर्ववेदका अस्तित्व है; क्योंकि इनमें प्रयुक्त ऋक्, यजुः और साम शब्द तीनों वेदोंके बोधक नहीं हैं, प्रत्युत पद्य, गद्य और गीतिके रूपोंमें, त्रिविध रचनाओंमें, मन्त्रोंके बोधक हैं।

अथर्वमें पद्य अधिकांश हैं; गद्य भी हैं। उसका अपना गीतिस्वर भी है। इसलिये उक्त ग्रन्थोंमें अथर्वके अस्तित्वकी अस्वीकृति नहीं है।'

वैदिक साहित्यमें अथर्ववेदका उल्लेख है। ऋग्वेदके १० म मंडल का ९७ वां सूक्त अथर्वाके पुत्र भिषक् ऋषिके द्वारा और इसी मण्डलका १२० वां सूक्त अथर्वाके दूसरे पुत्र बृहद्दिव ऋषिके द्वारा दृष्ट है। इसी मण्डलका १०७ वां सूक्त आंगिरस दिव्य ऋषि द्वारा और ११७ वां आंगिरस भिक्षु ऋषि द्वारा दृष्ट है। इतना ही नहीं, आंगिरसोंके द्वारा दृष्ट सूक्त ऋग्वेदमें इतने हैं कि सबके उल्लेखका यहां स्थान तक नहीं है। इधर अथर्वका एक नाम ही आंगिरस वेद है। तैत्तिरीय संहितामें ऋक्, यजुः, सामके साथ आंगिरस नाम आया है। शतपथ ब्राह्मणके १३ वें, १४ वें और तैत्तिरीय आरण्यकके २ रे और ८ वें अध्यायोंमें अथर्ववेदका उल्लेख है। ऐतरेय ब्राह्मण (५.३३) का कहना है कि "वाणी और मनसे यज्ञ होता है। तीनों वेद वाणी हैं, चौथा अथर्ववेद मन है। प्रथम तीन वेदोंसे एक पक्षका संस्कार होता है और ब्रह्मवेदका ज्ञाता मनके द्वारा यज्ञके दूसरे पक्षका संस्कार करता है।" यही बात गोपथ (३.२) में भी है। शौनकके चरण-व्यूह और पतंजलिके महाभाष्यमें भी अथर्वका उल्लेख है। छान्दोग्य, बृहदारण्यक, श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र आदि आदिमें भी अथर्वका विवरण है। इसलिये मालूम पड़ता है कि जहां कहीं केवल ऋक्, यजुः और सामका उल्लेख है वा केवल त्रयीका कथन है, वहां वेदोंसे तात्पर्य नहीं है—पद्य, गद्य और गीतिसे है। प्रायः सभी वेदोंमें सभीका नाम आया है। सभी वेदोंमें सभीके मन्त्र पाये जाते हैं।

ह्विटनेने अथर्ववेदका जो अनुवाद किया है, उसमें सूक्तोंके ऋषियोंके नाम उच्छोचन, उन्मोचन आदि लिखे हैं, जो आनुमानिक हैं। इनका अनुमान यह भी है कि अथर्वणकी लिखी १७५, ब्राह्मणकी १००, अथर्वांगिरस की १७ और आंगिरसकी लिखी १५ ऋचाएँ ही अथर्वमें हैं। परन्तु सारी संहितामें वा कहीं भी इस अनुमानका समर्थन नहीं किया गया है। ऐसे

ही चित्र-विचित्र अनुमान लगा-लगाकर कई विधर्मियोंने वैदिक साहित्यको गड़बड़झालेमें डाल रखा है, जिसकी एतद्देशीय विद्वानोंको परवाह तक नहीं है। वस्तुतः अथर्ववेदीय ऋषियोंके नाम ये हैं—कण्व, बादरायण, विश्वामित्र, कश्यप, कक्षीवान्, पुरुमीढ़, अगस्त्य, जमदग्नि, वामदेव आदि।

अथर्ववेदमें २० काण्ड, ३४ प्रपाठक, १११ अनुवाक, ७७३ वर्ग, ७६० सूक्त, ६००० मन्त्र और ७३८२६ शब्द हैं। ह्विटनेके मतसे ५९८, ब्लूमफील्डके मतसे ७३०, एस० पी० पण्डितके मतसे ७५९ और अजमेरके संस्करणमें ७३१ सूक्त हैं। ह्विटनेके मतसे ५०३८, ब्लूमफील्डके मतसे ६०००, पण्डितके मतसे ६०१५ और गुजरातके एक संस्करणमें ६६८० मन्त्र हैं। हस्तलिखित पुस्त[illegible] सारी वेद-संहिताएँ छपी हैं। कदाचित् लिपिकर्त्ताओंके प्रमादके कारण सूक्तों और मन्त्रोंकी संख्यामें न्यूनताधिकता हो गयी। इनमेंसे १२०० मन्त्र ऋग्वेदसंहिताके १ म, ८ म और १० म आदि मण्डलोंमें पाये जाते हैं। अथर्ववेदका बीसवां काण्ड (कुन्ताप-सूक्त और दो अन्य मन्त्रोंको छोड़कर) ऋग्वेदके मन्त्रोंसे भरा हुआ है।

यह गणना **शौनक-संहिता**की है। इस शाखाके कुछ ब्राह्मण महाराष्ट्र और गुजरातमें हैं। परन्तु ये इतने ही हैं कि अंगुलियोंपर गिने जा सकते हैं। यही कारण है कि आजकल भी इस वेदका प्रचार सबसे कम है।

अथर्ववेदकी **पैप्पलाद-संहिता** भी मिली है। यह काश्मीरमें डा० बूलरको मिली थी। यह काश्मीरकी शारदालिपिमें है। ब्लूमफील्ड और गार्बेने भोजपत्रपर लिखी हुई इसकी अतीव जीर्ज-शीर्ण प्रतिके ५४० फोटो और प्लेट तैयार करके इसे १९०१ में जर्मनीमें छपवाया। यह फोटो होनेसे हस्तलिखित प्रतिकी हूबहू नकल है। यहां तक कि इसके कागजका रंग भी ज्योंका त्यों दिखाई देता है। ज्ञात होता है कि मानों मूल प्रतिके पन्ने कागज पर चिपका दिये गये हैं! यदि यह संस्करण नहीं होता, तो संसारमें एकमात्र उपलब्ध मूल प्रतिके विनष्ट हो जानेपर संसारसे यह शाखा भी, अन्य शाखाओंकी भांति, सदाके लिये विलुप्त हो गयी होती। इसीसे

प्रतीत होता है कि पाश्चात्त्य विद्वानोंने किस प्रेम और लगनसे, व्यय और श्रमकी परवाह न करके, हमारी विद्या-निधिकी रक्षामें सहायता की है।

पतञ्जलिके समयमें यह पैप्पलाद-शाखा खूब प्रचलित थी। महाभाष्यमें अथर्व वेदका पहला मन्त्र "**शन्नो देवीरभीष्टये**" दिया हुआ है, जो पैप्पलादका ही प्रथम मन्त्र है, शौनकका नहीं। इस पैप्पलाद-संहिताके ब्राह्मण, आरण्यक, सूत्र आदि नहीं मिलते, केवल प्रश्नोपनिषद् मिलती है।

ऋक्, यजु: और सामके यज्ञोंमें अथर्ववेदके मन्त्रोंका व्यवहार नहीं होता। इसी तरह अथर्ववेदीय यज्ञोंमें तीनों वेदोंके मन्त्रोंका उपयोग नहीं होता। अथर्ववेदके यज्ञ भिन्न प्रकारके होते हैं। इसके मन्त्र भी ऋग्वेदकी तरह क्रम-बद्ध सजाये हुए नहीं पाये जाते।

जैसे सामवेदमें उद्गाता प्रधान है, उसी तरह अथर्ववेदमें ब्रह्मा है। ब्रह्मा प्रधान पुरोहित कहलाता है। यही समस्त याज्ञिक कर्मोंका निरीक्षण और संचालन करता है। इसलिये ब्रह्माको चारों वेदोंका विद्वान् होना पड़ता है; लौकिक और पारलौकिक विषयोंका भी विज्ञाता होना पड़ता है; साथ ही व्यवहार-निपुण भी होना पड़ता है। इतना ज्ञान प्राप्त किये विना ब्रह्मा न तो सारे याज्ञिक कृत्योंका निरीक्षण कर सकता है, न त्रुटियों का निर्देश कर सकता है, न विविध प्रश्नोंका उत्तर ही दे सकता है। इसीलिये ब्रह्माकी ज्ञान-राशि विशाल होती है। अथर्ववेद पढ़नेपर इस ज्ञान-राशि का विशाल होना भी निश्चित है; क्योंकि इसमें रोग-निवारण, उपद्रव-शमन, दुर्दैव-रक्षा, शत्रु-नाश, मोहन, वशीकरण आदिसे लेकर देश-भक्ति, ब्रह्मज्ञान, मोक्षप्राप्ति तकके उपदेश हैं।

अथर्ववेद (**शौनक-संहिता**) के प्रथम और द्वितीय काण्डोंमें श्वेत-कुष्ठ, पलित रोग आदिकी शान्तिके उपाय बताये गये हैं। तृतीय काण्डमें बालग्रह, यक्ष्मा, वशीकरण आदिकी बातें हैं। चौथेमें धूमकेतुकी उत्पात-शान्तिके लिये वरुण-देवकी स्तुति है। पांचवेंमें गायोंके चोरको दबानेके और शत्रुको दबानेके मन्त्र हैं। इसी काण्डके एक मन्त्रसे ज्ञात होता है कि

शूद्रोंमें शीतज्वर रहता था (५.२२.७)। ब्राह्मणोंको सन्ताप पहुँचानेवाले को राजा दण्ड देता था—समाजमें भी वह घृणित समझा जाता था (५.१९)। यह भी कहा गया है कि जिस राष्ट्रमें ब्राह्मण सताये जाते हैं, वह कभी भी उन्नति नहीं कर सकता (५.६—९)। आजकल जो ब्राह्मण-द्वेषी हैं, वे इन चारों मन्त्रोंको पढ़ देखें। छठे काण्डमें कास, श्लेष्मा आदि रोगोंकी शान्ति, अग्निदाहकी निवृत्ति आदिके मन्त्र हैं। सातवेंमें सभामें जय-प्राप्ति करानेवाले मन्त्र हैं। आठवेंके एक मन्त्रसे (८.१.१.४) विदित होता है कि मृत्युको जीतनेके लिये यह मन्त्र पढ़ा जाता था। आठवेंमें (५—९) ऋग्वेदके सात छन्दोंके वर्णोंकी संख्या दी हुई है। नौवें काण्डमें **मधुकशा** ओषधिका वर्णन है। दसवें काण्डमें ईश्वरवाद है। ग्यारहवेंमें ब्रह्मचर्य और ब्रह्मचारीकी महिमा है। बारहवेंमें देश-भक्तिसे ओत-प्रोत पृथिवी-सूक्त है। तेरहवेंमें अनेक फुटकल बातें हैं। चौहदवेंमें विवाह-विषयक मन्त्र हैं। पन्द्रहवें और सोलहवें काण्डोंमें विविध विषय हैं। सत्रहवेंमें दार्शनिक बातें हैं। अठारहवां काण्ड श्राद्ध-विषयक है। इसी (१८.३.१) में सती स्त्रियोंको अपने पतिकी चितासे उतर आनेकी बातका उल्लेख है। इस काण्डसे यह भी ज्ञात होता है कि अन्त्येष्टि-क्रियाके अवसरपर यमकी स्तुति की जाती थी। उन्नीसवें काण्डमें ऋग्वेदके मुख्य सात छन्दोंकी नामावली दी हुई है। इसी काण्डमें नक्षत्रोंका भी वर्णन है। नक्षत्रोंकी गणना कृत्तिकासे की गयी है, अश्विनीसे नहीं (१९.८)। अगले मन्त्रमें उल्काओंकी भी बात है। राज-तिलकके समय राजाकी पगड़ीमें मणि बांधी जाती थी। छोटे-छोटे राज्योंको राष्ट्र और बड़े-बड़े राष्ट्रोंको साम्राज्य कहा जाता था (१९.२४)। इसी काण्डके अन्तमें राजसूय यज्ञका वर्णन है। बीसवें काण्डमें सोमयागका विवरण है।

अत्यन्त संक्षेपमें कहा जा सकता है कि अथर्ववेदमें तीन प्रकारकी बातोंका प्राधान्य है—मन्त्रों, औषधों, तरह-तरहके टोटकों और यन्त्रोंके प्रयोगसे इस लोकमें सर्व-विध दुःख-दारिद्र्य, विघ्न-बाधा और रोग-शोक

का निवारण करके कल्याणकी प्राप्ति, यज्ञों द्वारा स्वर्गलोकके सुख और ब्रह्मविद्याके बलसे मोक्षकी उपलब्धि। नमूनेके तौरपर कुछ मन्त्र पढ़िये।

१ म काण्ड, ५ अनुवाकके दो सूक्तोंका प्रयोग श्वेतकुष्ठ और पलित रोगकी शान्तिके लिये किया गया है। कहा गया है—पहले सफेद दागको सूखे गोमयसे इतना घिसे कि लाल हो जाय। फिर उसपर मन्त्रों द्वारा चार औषधियों (भँगरैया, हल्दी, न्यवारी और नीलिका) को पीसकर लेप करे। रोग अच्छा हो जायगा। मन्त्र यह है—

"नक्तं जातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च।
इदं रञ्जनि रजय किलासं पलितं च यत्॥"

अर्थात् 'तुम रातको उपजी हो, हे हल्दी, भँगरैये, इन्द्रवारुणि, नीलिके। ऐ रंगनेवालियो, यह जो श्वेत कुष्ठ और पलित हैं, इन्हें अपने रंगमें रंग दो।'

४.४.१ का पांचवां मन्त्र है—

"सर्वं तद् राजा वरुणं विचष्टे यदन्तरा रोदसी यत् परस्तात्।
संख्याता अस्य निमिषो जनानामक्षानिव श्वघ्नी निमिनोतितानि॥"

अर्थात् 'राजा वरुण सभी कुछ देखते हैं—चाहे वह आकाश और भूमिके बीचमें हो, चाहे उसके भी परे हो; मनुष्योंके पलक-पलक गिन डालते हैं और जैसे जुआड़ी पासे फेंकता है, वैसे ही पापियोंके पापानुसार उन्हें सीख देते हैं।'

इसी शौनक-संहिताके ५ वें काण्डमें कई ज्ञातव्य बातें हैं। लिखा है कि 'ब्राह्मणमें इतनी शक्ति होती है कि वह क्षत्रिया, वैश्या आदिसे भी विवाह कर सकते हैं (५.१७.८.६)।' स्त्रियां चादर ओढ़ती थीं, जिसका नाम 'द्रापी' है (५.७.१०)। 'स्वर्ण-खचित' रेशमी वस्त्र स्त्रियां पहनती थीं (५.७.१०)। नवोढ़ा बधुएँ सौ-सौ गायें मायकेसे ससुरालमें ले जाती थीं (५.१७.१२)। अंग और मगधका भी नाम एक मन्त्रमें आया है (५.२२)।

६.११.२ का यह मन्त्र खांसीकी शान्तिके लिये पढ़ा जाता है—

"यथा सूर्यस्य रश्मयः परापतन्त्याशुमत् ।
एवा त्वं कासे प्रपत समुद्रस्यानु विक्षरम् ।।"

अर्थात् 'ऐ खांसी, जैसे सूर्यकी किरणें जल्द जल्द निकलती जाती हैं, वैसे ही तू इस रोगीको छोड़कर झट समुद्रकी लहरीमें चली जा।'

इस काण्डमें एक स्थलपर (६.२.३) पुत्र-प्राप्तिके लिये प्रार्थना की गयी है। यह भी कहा गया है कि कन्याके लिये वर चुननेमें मां-बाप ही मुख्य हैं (६.६१.६)।

सभामें विजय प्राप्त करनेके लिये यह मन्त्र पढ़ा जाता था—

"विद्म ते सभे नाम नरिष्टा नाम वा असि।
ये ते के चे सभासदस्ते मे सन्तु सवाचसः।।" (७.२.५)

'ऐ सभे, मैं तेरा नाम जानता हूँ। तेरा नाम नरिष्टा (अजेया) है। इसलिये जितने तेरे सभासद् हों, सब मेरी हांमें हां मिलावें।'

इस सातवें काण्डके एक स्थानपर यह भी लिखा है कि 'कन्याकी उत्पत्ति सुख-कारक नहीं है।' (७.१६.२५)।

दीर्घायु प्राप्त करनेके लिये यह मन्त्र पढ़ा जाता है—

"उत्क्रामातः पुरुषमावपत्था मृत्योः षड्वीशमवमुञ्चमानः।
माच्छित्था अस्माल्लोकादग्नेः सूर्यस्य संदृशः।।" (८.१.१.४)

'ऐ पुरुष, इस मृत्युके पाशसे बाहर निकल आओ; गिरो मत। मृत्यु की बेड़ीको काट डालो और इस लोकसे अलग मत हो; चिरंजीवी होकर सूर्य और अग्निके दर्शन करते रहो।'

इसी काण्डमें स्त्रियोंकी पोशाकका भी उल्लेख है (८.२.१६)।

नौवें काण्डमें एक "मधुकशा" नामकी औषधिका उल्लेख है, जिसमें ये सात गुण बताये गये हैं—मस्तिष्क-नन्दन, हृदय-शक्ति-नन्दन, प्रीतिकर, वाजीकरण, रक्त-जनक, शीतल और वजन बढ़ानेवाली। एक स्थान (४र्थ मन्त्र) में कहा गया है—

"हिरण्यगर्भा मधुकशा घृताचो महान् गर्भश्चरति मर्त्येषु।"

अर्थात् 'मधुकशाका रंग सोनेके समान है, उसका रस चिकना है। मनुष्यके उदरमें जाकर यह गर्भ-जननका कारण होती है।' इसका सेवन करनेसे मनुष्यमें गर्भ उत्पन्न करनेकी शक्ति आ जाती थी।

दसवें काण्डमें तो अध्यात्मवादकी ऐसी-ऐसी अद्भुत बातें हैं कि इसके समस्त सूक्त कण्ठस्थ करने योग्य हैं।

ग्यारहवें काण्डमें ब्रह्मचर्यकी महिमा बताते हुए कहा गया है—

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत्॥" (११.३.२)

'ब्रह्मचर्यकी ही तपस्यासे देवोंने मृत्युको मारा था। ब्राह्मचर्यके ही साधनसे देवोंके लिये इन्द्र स्वर्ग ले आये।'

ऋग्वेदमें जैसे पुरुषसूक्त, हिरण्यगर्भसूक्त और नासदीय सूक्त चराचर का गहन रहस्य बतानेवाले हैं, वैसे ही अथर्ववेदके स्कम्भ-सूक्त (१० वां काण्ड, ७ वां, ८ वां सूक्त), उच्छिष्ट-सूक्त (११.९) और पृथिवी-सूक्त (१२ वां काण्ड) प्रसिद्ध है। प्रथम दो सूक्तोंमें जड़-चेतनका गूढ़ रहस्य है और पृथिवी-सूक्तमें देशभक्तिकी महत्त्वपूर्ण बातें हैं। ब्रह्मको स्कम्भ (आधार) कहा गया है। इसीके आश्रयमें सारे जागतिक पदार्थ निवास करते हैं और अपनी सत्ता बनाये हुए हैं। स्कम्भ ही विश्वका कारण है। कहा गया है—'जिसमें भूमि, अन्तरिक्ष और आकाश समाहित हैं, जिसमें अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा और वायु रहते हैं, वही स्कम्भ है। स्कम्भ भूत, भविष्य और वर्त्तमानका अधीश्वर है (१०.७.१२ और ३५ तथा १०.८.१)।' आगे चलकर (१०.८.४४) स्कम्भ और आत्माकी एकता बतायी गयी है। इन कई मन्त्रोंमें उपनिषदोंका मार्मिक रहस्य विवृत है।

दृश्य प्रपंचका निषेध करते-करते जो अवशिष्ट बचता है, वही ब्रह्म है। ब्रह्म-स्वरूपके निर्देशके लिये बृहदारण्यकोपनिषद् (२.३.११ और ४.२.११) 'नेति नेति' पुकारती है। यही अवशिष्ट ब्रह्म उच्छिष्ट

है और इसीके ऊपर सारे विश्व-पदार्थ अवलम्बित हैं। कहा गया है– 'उच्छिष्टपर ही नाम-रूप अवलम्बित हैं (११.६.१)। वेदों और पुराणों की भी उत्पत्ति उच्छिष्टसे हुई है (२४)। प्राण, अपान, चक्षु, श्रोत्र, स्थिति, प्रलय–सब उच्छिष्टसे उत्पन्न हैं (२५)।' वस्तुतः सत्, स्कम्भ, उच्छिष्ट, प्रजापति, पुरुष, हिरण्यगर्भ, ब्रह्म, आत्मा–सब एक हैं और इसी बातका रहस्य बताना उपनिषदों और वेदान्तका प्रधान लक्ष्य है।

१२वें काण्डके पृथिवीसूक्तके मन्त्र देशभक्तिके लिये बड़े ही जागरूक और प्रोज्ज्वल हैं। इसके ये तीन मन्त्र हैं–

"यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैऽलवाः।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां नदति दुन्दुभिः।
सा नो भूमिः प्रणुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु॥"

अर्थात् 'जिस भूमिपर विनाशी मनुष्य शोर-गुल मचाते, नाचते और गाते हैं, जिसपर युद्ध करते और नगाड़ा पीटते हैं, वह धरित्री हमारे शत्रुओं को मार भगावे और हमें निष्कण्टक करे।'

"अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम्।
अभीषाडस्मि विशाषाडाशामाशां विषासहिः।"

'मैं अपनी मातृभूमिके लिये और उसके दुःख-विमोचनके लिये सब प्रकारके कष्ट सहनेको तैयार हूँ। वे कष्ट जिस ओरसे आवें, चाहे जिस समय आवें, मुझे इसकी परवाह नहीं है।'

"यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा।
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान् हन्मि दोहतः॥"

'अपनी मातृभूमिके लिये जो मैं कहता हूँ, वह उसकी भलाईकी बात है, जो देखता हूँ, वह उसकी सहायताके लिये है। मैं ज्योतिःपूर्ण, तेजस्वी और बुद्धि-सम्पन्न होकर मातृ-भूमिका दोहन करनेवाले शत्रुओंका विनाश करता हूँ।'

इन मन्त्रोंसे मालूम पड़ता है कि हमारे पूर्वज देशमाताके लिये प्राण तक देनेको तैयार रहते थे और देशका दुःख दूर करनेके लिये नाना प्रकारके कष्ट झेला करते थे। अन्तिम मन्त्रमें चोरों, डाकुओं, भ्रष्टाचारियों, स्वार्थी शासकों और आक्रामकोंसे देशकी रक्षा करनेका उपदेश है। क्या इन मन्त्रों से भी बढ़कर देश-सेवाका उपदेश संसारकी किसी अन्य जातिमें है? इतना महत्त्वपूर्ण और प्राचीनतम उपदेश संसारकी किसी दूसरी जातिके भाग्यमें बदा है?

इसी काण्ड (१२.४) में लिखा है कि 'गायोंकी पूजा करनी चाहिये।' एक मन्त्र (१२.३.१७.१८) में यह भी कहा गया है कि 'ब्रह्मचारिणी और सुशिक्षिता कन्याका विवाह उसका पिता करता था।'

चौदहवां काण्ड विवाह-सम्बन्धी मन्त्रोंसे पूर्ण है। ऋग्वेदके १० वें मण्डलका ८५ वां सूक्त सूर्या-सूक्त है। इसमें नारीजातिके सम्बन्धमें बड़ी ही महत्त्वपूर्ण बातें हैं। यह सूक्त भी इस वेदमें है। कहा गया है, 'कन्याकी बिदाईमें उसके पिता उसे पलंग, गद्दा और कोच आदि देते थे' (१४. २.३१.४१)। 'खजानेकी सन्दूक कन्याको दी जाती थी' (१४.२.३०; १४.२०.३)। स्त्री ही घरका सारा प्रबन्ध करती थी। घरके सब छोटे लोगोंपर उसका शासन रहता था—

"यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा।
एवा त्वं सम्राज्ञ्येधि पत्युरस्तं परेत्य च॥" (१४.१.४३)

काण्ड १७, अनुवाक १, सूक्त २, मन्त्र ९ में तो ऐसी बातें कही गयी हैं, जो सांख्य, योग, वेदान्त, बौद्ध आदि दर्शनोंकी मूल भित्ति हैं। मन्त्र गद्यमें है—

"असति सत् प्रतिष्ठितं सति भूतं प्रतिष्ठितम्। भूतं ह भव्य आहितं भव्यं भूते प्रतिष्ठितं तदेव विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि। पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योऽमन्॥"

तात्पर्य यह है कि 'असत्, अभाव, शून्यमें—निरस्त-समस्तोपाधिक नाम-रूप-रहित अप्रत्यक्ष ब्रह्ममें—ही सत्, भाव या प्रत्यक्ष मायाका प्रपंच प्रतिष्ठित वा अध्यस्त है। इसी सत् अर्थात् प्रत्यक्ष मायाके प्रपंचमें सारी सृष्टि (भव्य) के उपादानभूत पृथिव्यादि पंच महाभूत निहित हैं; इसीसे उत्पन्न होते हैं। वे ही पांचो महाभूत समस्त कार्योंमें विद्यमान रहते हैं। समस्त सृष्टि (कार्यजात) उन्हीं महाभूतोंमें—पीपलके बीजमें पीपलके वृक्षकी तरह—वर्त्तमान रहती है। यही, आत्माके प्रपंच-रूपकी महिमा, हे विष्णो, आपका अनन्त बल-वीर्य है। आप हम लोगोंको इस लोकमें सब तरहके पशुओंसे भरा-पूरा रखिये और (शरीर-पात होनेपर) परम कल्याण-धाम पहुँचाकर हमें अमृतमें सुरक्षित कर दीजिये।'

क्या ही उदात्त उपदेश है! सैकड़ों ग्रन्थोंका सार एक ही मन्त्रमें रख दिया गया है—गागरमें सागर भर दिया गया है। वेदोंके ऐसे ही एक-एक मन्त्रको लेकर उत्तर कालमें अनेकानेक ग्रन्थ रचे गये हैं।

इस शौनक-शाखापर भी आचार्य सायणका भाष्य है।

विभिन्न वेदोंकी स्वर-लहरी विभिन्न होती है। कहीं हस्तचालन करना पड़ता है और कहीं शिरः-संचालन। वसन्त-पूजा और यज्ञ-विशेषके अवसरोंपर जो विविध स्वर-निर्घोष और मेघ-मन्द्र-निनाद सुनाई देता है, वह बड़ा ही दिव्य और भव्य, मृदुल और मंजुल तथा महनीय और स्तवनीय जान पड़ता है। मनःप्राण परिप्लुत हो जाते हैं और हृदय चाहता है कि यह पावन निनाद वह सदा सुना करे।*

---

*"अहिर्बुध्न्य-संहिता" (१२ और २०)में अथर्ववेदकी पांच शाखाओं की ही बात लिखी हुई है। अधिकांश ग्रन्थोंके मतसे अथर्ववेदकी नौ शाखाएँ हैं; परन्तु आज कल इतने नाम पाये जाते हैं—१ पैप्पलाद, २

शौनक, ३ तोद, ४ मोद, ५ जाजल, ६ जलद, ७ ब्रह्मवेद, ८ देवदर्श, ९ चारणवैद्य, १० दामोद, ११ तोत्तायन, १२ जाबाल, १३ कुनखी, १४ ब्रह्मपलाश, १५ त्रिखर्व, १६ ततिल, १७ शैखण्ड, १८ सौकरसद्म, १९ शांर्गरव, २० अश्वपेय आदि आदि। पाणिनीय व्याकरणके गण-पाठमें भी ऐसे कितने ही नाम आये हैं। इस दशामें यह निश्चय करना विकट कार्य है कि अथर्ववेदकी वस्तुतः कितनी शाखाएँ हैं। नाम तो और भी भ्रष्ट हो गये हैं। कहीं तोद है, कहीं दामोद है, कहीं दान्त है, कहीं योद है! कहीं पिप्पल है, कहीं पिप्पलाद है, कहीं पैप्पल है, कहीं पैप्पलाद है। कहीं देवदर्श है, कहीं वेददर्श है, कहीं देवर्षि है! इस तरह प्रायः सभी नामों के अक्षर-विन्यासमें गोलमाल है। पता नहीं, इन नामोंमें कितने शाखा-नाम हैं और कितने अन्योंके हैं। ऐसी परिस्थितिमें लेखकने उन्हीं नौ नामोंको लिखा है, जो विशेष विख्यात हैं।

षष्ठ अध्याय

ब्राह्मण-ग्रन्थ

वेदभाष्यमें आपस्तम्ब ऋषिका एक वचन उद्धृत किया गया है—"**मन्त्र-ब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्।**" अर्थात् वेदके दो विभाग हैं—मन्त्र और ब्राह्मण। दोनोंमें ही मुख्यतया यज्ञोंका प्रतिपादन किया गया है। दोनोंसे ही दोनों सम्बद्ध हैं।

ब्रह्म शब्दका एक अर्थ यज्ञ है। यज्ञका प्रतिपादन करनेके कारण इन ग्रन्थोंका नाम "ब्राह्मण" पड़ा। कुछ लोगोंका मत है कि 'याज्ञिक कृत्योंके प्रधान संचालक ब्राह्मण पुरोहित थे; इसलिये इनका नाम ब्राह्मण पड़ा।' इसमें सन्देह नहीं कि यज्ञों और समूचे कर्मकाण्डके आधार ये ब्राह्मण-ग्रन्थ ही हैं। कर्मकाण्ड ही, क्रियात्मक रूप ही, किसी भी धर्मकी विशेषता है। किसी भी धर्मसे उसका क्रियात्मक रूप निकाल दीजिये, वह निःसत्त्व और जड़ हो जायगा। इसलिये हिन्दूधर्मका जीवित रूप ब्राह्मण-ग्रन्थ है मन्त्रभाग वा संहिताभागका यथार्थ रहस्य ब्राह्मण-भागके विना समझमें ही नहीं आ सकता। इसीसे मन्त्र और ब्राह्मण—दोनोंको वेद कहा गया है—"**मन्त्रब्राह्मणात्मको वेदः**" (आपस्तम्बपरिभाषा ३१)। इन दोनोंका सम्बन्ध इतना विजड़ित है कि कहीं-कहीं दोनोंको अलग-अलग करना भी कठिन हो जाता है। कृष्ण यजुर्वेदकी जो तैत्तिरीय, मैत्रायणी और काठक संहिताएँ उपलब्ध हैं, उनको ही उदाहरणके रूपमें ले लीजिये। अन्तकी दोनों संहिताओंमें मन्त्र और ब्राह्मण सम्मिलित हैं, पृथक्-पृथक् नहीं। संहितामें कुछ मन्त्र कहकर उसी प्रपाठक में ब्राह्मण भी कहा गया है। किसी-किसी प्रपाठकमें दोनों भाग एक साथ

ही वर्णित हैं और कहीं-कहीं भिन्न रूपसे। तैत्तिरीयमें मन्त्र और ब्राह्मण अलग-अलग कहे गये हैं; परन्तु अनेक मन्त्र ब्राह्मण-भागमें और अनेक ब्राह्मण मन्त्र-भागमें पाये जाते हैं। माध्यन्दिनशाखाके शतपथ-ब्राह्मण में नौ काण्डोंतक संहिताके अनुसार ही ब्राह्मणका भी क्रम है—पितृ-पिण्ड-यज्ञको छोड़कर। संहितामें इस यज्ञके मन्त्र दर्श-पौर्णमासके अनन्तर कहे गये हैं और ब्राह्मणमें आधानके अनन्तर। बस, इतना ही भेद है। शुक्ल यजुर्वेदकी दूसरी शाखा काण्वसंहितामें पहले दर्शपूर्णमास-सम्बन्धी मन्त्र पढ़े गये हैं और ब्राह्मणका प्रारम्भ आधानसे होता है। सच बात तो यह है कि उपनिषदेंतक संहिता-भागमें संबद्ध हैं। माध्यन्दिन-संहिताका अन्तिम अध्याय ही "ईशावास्योपनिषद्" है। श्वेताश्वतरोपनिषद् भी श्वेताश्वतर-संहिताका ही भाग है। इसलिये यह प्रश्न उठाना ही व्यर्थ है कि मन्त्र-भाग ही वेद है, ब्राह्मण और उपनिषद् नहीं। वस्तुतः सभी एकमें मिले हुए हैं—सभी वेद हैं। ये बातें पहले भी लिखी ही गयी हैं। यह दूसरी बात है कि कोई नकली उपनिषद् और ब्राह्मण गढ़नेकी निरर्थक चेष्टा करे। कहते हैं, "अल्लोपनिषद्"की तरह कुछ नकली उपनिषदें गढ़ी भी गयी हैं।

ब्राह्मण-भागमें विधि, अर्थवाद और उपनिषद् नामके तीन भाग हैं। विधि शब्दसे कर्म-विधायक, अर्थवादसे प्ररोचनात्मक और उपनिषद् शब्दसे तत्त्वविचारात्मक प्रकरण विवक्षित हैं।

कुछ ब्राह्मणोंमें "कृत्तिका"से नक्षत्र-गणना की गयी है और कुछ संहिताओंमें "मृगशिरा" से। आजकल "अश्विनी"से नक्षत्र-गणना की जाती है।

ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें मन्त्रोंकी अर्थ-मीमांसा, यज्ञानुष्ठानके सम्बन्धमें विस्तृत विवरण तथा आलोचना, नाना विषयोंके उपाख्यान, शब्दोंकी व्युत्पत्ति एवम् प्राचीन राजाओं और ऋषियोंकी कथाएँ हैं। इस प्रकार वेदांगों और सम्पूर्ण संस्कृत-साहित्यका बीज ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें निहित है।

जैसे ११३० संहिताओंमें ११ संहिताएँ ही उपलब्ध हैं, वैसे ही ११३० ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें १८ ही मिलते हैं–शेष कालके गालमें समा गये ! उपलब्ध ब्राह्मण प्रायः गद्यमें हैं।

ऋग्वेदके दो ब्राह्मण छपे हैं–**ऐतरेय और कौषीतकि** (शाङ्खायन)। ऐतरेय अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसे १८६३ ई० में, अंग्रेजी अनुवादके साथ, मार्टिन हागने, १८७९ में थ्यूडोर आउफरेस्टने, १८९६ में काशीनाथ शास्त्रीने और १९२० में ए० बी० कीथने प्रकाशित किया। इसपर सायण-भाष्य है, जिसे उक्त शास्त्रीजीने भी अपने संस्करणमें छापा है।

ऐतरेय-ब्राह्मणमें ४० अध्याय हैं। यह सोमयज्ञके विवरणसे परिपूर्ण है। इसके एकसे लेकर सोलह अध्यायोंमें एक ही दिनमें होनेवाले "अग्निष्टोम" नामक सोमयागका, अनन्तर दो अध्यायोंमें ३६० दिनोंमें पूर्ण होनेवाले "गवामयन"का और बादके ६ अध्यायोंमें "द्वादशाह"का प्रतिपादन किया गया है। आगेके अध्यायोंमें अग्निहोत्रादिका वर्णन है। अन्तके आठ अध्यायोंमें राज्याभिषेक-महोत्सवोंमें राजपुरुहितोंके अधिकारका वर्णन है। अन्तिम दस अध्यायोंमें उपाख्यान और इतिहास विशेष हैं। ५ अध्यायोंकी एक "पंचिका" कहाती है। सब आठ "पंचिकाएँ" हैं। इसकी सप्तम "पंचिका" (३ अध्याय) राजा हरिश्चन्द्रके उपाख्यानके लिये प्रसिद्ध है। इक्ष्वाकु-वंशीय राजा हरिश्चन्द्रके कोई सन्तान नहीं थी; इसलिये उन्होंने वरुणदेवकी उपासना की। वरुणने प्रसन्न होकर वर दिया–"सन्तान तो होगी; परन्तु बलि देनी होगी।" कदाचित् वरुण परीक्षा ले रहे थे। राजाको रोहित नामका लड़का तो हुआ; परन्तु लड़केकी बलि देनेकी बात राजा टालने लगे। अन्तको राजाको रोगने पकड़ लिया। तब राजाने अजीगर्त्त ऋषिके पुत्र शुनःशेपको खरीदकर उसकी बलि देना तै किया। यज्ञ-समारम्भ हुआ। उस यज्ञमें चार पुरोहित थे–होता विश्वामित्र, अध्वर्यु जमदग्नि, उद्गाता अयस्य और ब्रह्मा वसिष्ठ। वरुणकी स्तुति कर शुनः-शेपने मुक्ति पा ली। हरिश्चन्द्र भी नीरोग हो गये।

शुनःशेपने लोभी पिताका त्याग कर दिया और विश्वामित्रने उसे पुत्र मानकर रख लिया।

(ऐतरेयके अन्तिम तीन अध्यायोंमें जो ऐतिहासिक विवरण हैं, उनसे विदित होता है कि भारतवर्षकी पूर्वी सीमामें विदेह आदि जातियोंका राज्य था। दक्षिणमें भोज-राज्य, पश्चिममें 'नीच्य' और 'अपाच्य' लोगोंका राज्य, उत्तरमें उत्तर-कुरुओं और उत्तर-मद्र लोगोंका राज्य तथा मध्य देशमे कुरु, पांचाल लोगोंका राज्य था। इस ब्राह्मणमें परीक्षित-पुत्र जनमेजय, मनुपुत्र शार्यात, उग्रसेन-पुत्र युधांश्रौष्ठि, पिजवन-पुत्र सुदास, दुष्यन्त-पुत्र भरत आदि तथा काशी, मत्स्य, कुरुक्षेत्र, खाण्डव आदिका भी उल्लेख है।

ऐतरेय-ब्राह्मण (१.२७) में सोमाहरणकी कथा भी है। गायत्रीने पक्षीका रूप धारण किया और श्येन-रूपमें पैरोंसे पकड़कर सोमको देवोंके पाससे ले आयी। यहीं यह भी कहा गया है कि "एक बार यज्ञमें सोम-पान के लिये देवोंमें झगड़ा हो गया। जो चलनेमें बाजी मारे, वही सोम-पान करे, यह निश्चित हुआ। अन्तको वायु और इन्द्र पहले आये, मित्रावरुण पीछे आये। सोमाहरणके लिये ईशान्य दिशा उत्तम है; कारण इसी दिशामे असुरोंने देवोंपर विजय पायी थी।" सोमाहरण—प्रतिपादक सूक्तोंको इसी स्थलपर **"सौपर्ण"** संज्ञा दी गयी है।

ऐतरेय (२.२८) ने मुख्य देवता ३३ ही माने हैं। इसके ३.४४ मे आत्माकी उपमा सूर्यसे दी गयी है। आत्माको अमर माना गया है और पुनर्जन्मका भी उल्लेख है। स्पष्ट ही कहा गया है—"आत्मा एक शरीरसे अस्त होकर दूसरे शरीरमें उदित होती है।" यह प्रसंग भी कण्ठस्थ करने योग्य है।

इससे थोड़ा आगे चलकर (३.२३) कहा गया है—"सन्तानोत्पत्ति कर देव-ऋण, पितृ-ऋण आदिके परिशोधके लिये पुरुष अनेक विवाह कर सकता है।" एक स्थान (४.२७. ५–६) पर यह भी लिखा है—"न्यायत विवाह वही है, जो उचित प्रेमपूर्वक किया जाता है।" ५.३३ से ज्ञात

होता है कि "तीनों वेद वाणी हैं, मन अथर्ववेद है।" कहा गया है–"ऋक्, यजुः, सामसे यज्ञके एक पक्षका संस्कार होता है–अकेला ब्रह्मवेद (अथर्ववेद) ही मनके द्वारा दूसरे पक्षका संस्कार करता है।" यह स्थल देखने योग्य है। जो लोग अथर्ववेदको "नवीन रचना" मानते हैं, उन्हें तो इस ऋग्वेदीय ब्राह्मणके इस स्थलको बार-बार देखना चाहिये। ऐतरेयने (७.३.१३) नारीको सखा कहा है–"**सखा ह जाया।**" इसी ब्राह्मण (७.९–१०) में कहा गया है कि "जिसके नारी नहीं है अर्थात् मर गयी है, वह भी वैदिक यज्ञ कर सकता है। उसकी श्रद्धा ही उसकी उत्तम नारी है"–"**अपत्नीकः कथमग्निहोत्रं जुहोति? श्रद्धा पत्नी सत्यं यजमानः श्रद्धा सत्यं तदित्युत्तमं मिथुनम्।**" परन्तु कन्योत्पत्तिको सुखकर नहीं माना गया है (७.१३)।

इन्द्रको सभी देवोंमें श्रेष्ठ माना गया है। लिखा है–"देवोंमें इन्द्र सबसे अधिक ओजस्वी, बली और साहसी हैं, वही वास्तव हैं और सबसे दूरतक पार लगानेवाले हैं"–("**स (इन्द्रः) वै देवानामोजिष्ठो बलिष्ठः सहिष्ठः सत्तमः पारयिष्णुतमः**" (७.१६)।)

उपलब्ध ऋग्वेदीय शाकल-शाखाका **ऐतरेय ब्राह्मण** है और अनुपलब्ध शाङ्खायन-शाखाका **कौषीतकि-ब्राह्मण** है। कौषीतकिको १८८७ ई० में बी० लिंडनरने और १९२० में ए० बी० कीथने सुसम्पादित कर प्रकाशित किया था।

कौषीतकि (शाङ्खायन) में ३० अध्याय हैं। इसमें प्रथम अग्न्याधान, तब अग्निहोत्र, तदनन्तर दर्शपौर्णमास और सबसे अन्तिम अध्यायोंमें चातुर्मास्यका वर्णन है। इसमें भी सोमयागकी प्रधानता है। इस ग्रन्थमें यज्ञका सम्पूर्ण विवरण मिलता है।

यज्ञको वैदिक साहित्य (विशेषतः ब्राह्मण-ग्रन्थों) में विश्वके नियामकके रूपमें ग्रहण किया गया है। ब्राह्मणोंने सारे विश्वको ही यज्ञ-रूप कहा है। यज्ञके कारण देवता लोग अपने-अपने अधिकारोंका निर्वाह करते

हैं। यज्ञकी निष्पत्तिसे निखिल जगत्का कल्याण होता है। यज्ञको विष्णुका रूप बताया गया है–"**विष्णुर्वै यज्ञः।**"

यज्ञकी शास्त्रीय व्याख्या आरण्यकोंमें है–साथ ही याज्ञिक तत्त्वोंका यथार्थ निर्णय भी है।

हां, तो कौषीतकि-ब्राह्मणकी बातें हम लिख रहे थे। इसमें नैमिषारण्यमें किये गये प्रसिद्ध यज्ञका विवरण पाया जाता है। कुषीतक ऋषिके पुत्र कौषीतकि इस ब्राह्मणके प्रधान उपदेशक हैं। इनके वंशधरों तथा शिष्योंमें इसका यथेष्ट प्रचार था। ऐतरेयारण्यक और ऐतरेयोपनिषद्की तरह कौषीतकि–आरण्यक और कौषीतकि-उपनिषद् भी मिलती हैं। इस ब्राह्मणका ऐतरेय-ब्राह्मणसे सभी दृष्टियोंसे बहुत कुछ साम्य है; इसलिये अधिक लिखकर पुनरुक्ति करनेकी यहां आवश्यकता नहीं। इसपर माधव-पुत्र विनायकका भाष्य है।

ऋग्वेदके अन्य ब्राह्मण न तो अखण्डित रूपमें मिले ही हैं, न छपे ही हैं।

यह सभी जानते हैं कि यजुर्वेदके दो भाग हैं–कृष्ण और शुक्ल। कृष्णमें छन्दोबद्ध मन्त्रों और गद्यात्मक विनियोगोंकी मिलावटके कारण **कृष्ण यजुर्वेद** संज्ञा हुई और शुक्लमें केवल मन्त्रोंका संग्रह रहने और विनियोग-वाक्योंके अभावके कारण **शुक्ल यजुर्वेद** नाम पड़ा। याज्ञवल्क्य ऋषिको सूर्यके द्वारा दिनमें प्राप्त होनेके कारण शुक्ल यजुर्वेद नाम पड़ा–ऐसा भी माना जाता है।

कृष्ण यजुर्वेदकी **मैत्रायणी** और **काठक** संहिताओंके ब्राह्मण तो संहिताओंमें ही सम्बद्ध हैं; परन्तु **तैत्तिरीय** संहिताका **तैत्तिरीय ब्राह्मण** पृथक् छपा है। इसपर सायणाचार्यका भाष्य है। भट्ट भास्करका भी इसपर भाष्य है। परन्तु पूर्ण नहीं है। तैत्तिरीय ब्राह्मण १८९९ ई० में पूनामें और १८९० में कलकत्तामें प्रकाशित किया गया।

तैत्तिरीयमें सब तीन भाग वा काण्ड, २५ प्रपाठक और ३०८ अनुवाक हैं। इस ब्राह्मणके एक स्थल (१.३.७) पर लिखा है कि 'यज्ञारम्भके

पहले पुरुषोंकी शुद्धि की जाती थी।' इसमें दीर्घकालीन रात्रि और रात्रिकी प्रार्थनाका उल्लेख है (१.५.७)। इसके अश्वमेध-प्रकरणमें यज्ञीय मांसकी चर्चा है। कालकंज असुर और ऋग्वेदकी ही तरह वाराहावतारकी बातें भी हैं। एक स्थान (२.३.११) पर लिखा है कि 'प्रजापतिने सोम और तीन वेद प्रकट किये। सोमने तीनों वेदोंको मुट्ठीमें छिपा रखा। प्रजापतिके दो कन्याएँ थीं—श्रद्धा और दूसरी 'सीता-सावित्री'। सोम श्रद्धासे विवाह करना चाहता था और 'सीता-सावित्री' सोमसे विवाह करना चाहती थी। परन्तु प्रजापति जानते थे कि सोम इससे विवाह नहीं करेगा; इसलिये उन्होंने "स्थागर" नामकी औषधिको घिसकर सीता-सावित्रीके भालमें गन्ध-लेप किया। इस वशीकरण लेपको लगाये हुए कन्या सोमके पास गयी। सोम वशमें आ गया और उसने तीनों वेद सीता-सावित्रीको देकर उससे विवाह कर लिया।' यह कथानक प्ररोचनात्मक है और सोमकी महिमा बतानेके लिये कहा गया है। इसमें सीता-सावित्री एक ही नाम हैं। इसे देखकर ही संस्कृत-सांहित्यमें दो नाम रखे गये जान पड़ते हैं—सीता और सावित्री। इस ब्राह्मण (३.१२.३) में चारो वर्णोंके साथ चारो आश्रमोंके कर्त्तव्योंका सुन्दर वर्णन है। उदात्त, अनुदात्त और स्वरित नामके स्वरोंका भी विवरण है। संक्षेपमें यह समझिये कि हेतु, निर्वचन, निन्दा, प्रशंसा, संशय, विधि, परकृति, पुराकल्प, व्यवधारण, कल्पना, उपमान आदि जितने विषय ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें रहते हैं, वे सबके सब इसमें भी हैं।

कहीं कहीं लिखा है कि अध्वर्यु-ब्राह्मण (मैत्रायणी-ब्राह्मण), बल्लभी-ब्राह्मण और सत्यायनी-ब्राह्मण कृष्ण यजुर्वेदके हैं; परन्तु इन दिनों तीनोंमें एक भी नहीं मिलता।

शुक्ल यजुर्वेदके ब्राह्मणका नाम शतपथ-ब्राह्मण है। शुक्ल यजुर्वेदकी माध्यन्दिन और काण्व नामकी दो संहिताएँ मिलती हैं तथा दोनोंके ब्राह्मणों का नाम शतपथ है। सौ अध्याय होनेके कारण शपपथ नाम पडा। अभी

केवल २२ ही वर्ष हुए डब्ल्यू० कैलेंडने काण्वशाखीय शतपथको छपाया है। यह तो कुछ छोटा है; परन्तु माध्यन्दिन-शाखीय शतपथ इतना विशाल-काय है, जितना ऋग्वेदको छोड़कर वैदिक साहित्यमें कोई भी ग्रन्थ नहीं है। अंग्रेजी अनुवादके साथ, ५ भागोंमें, जे० एगलिंगने इसे छपाया है। इस संस्करणका अच्छा प्रचार है। सायण-भाष्य तथा हरिस्वामी और द्विवेदगंगकी टीकाओंके साथ १८५५ में ए० वेबरने तथा सायण-भाष्यके साथ १९१२ में सत्यव्रत सामश्रमीजीने शतपथ-ब्राह्मणका प्रकाशन किया था। इसका एक नाम **वाजसनेय-ब्राह्मण** भी है। इसपर कवीन्द्राचार्य सरस्वतीकी भी टीका है।

शतपथमें सब १४ काण्ड हैं। इसके नौ काण्डोंमें यज्ञ-विवरण है। दसवेंमें अग्नि-रहस्य है। दसवें और ग्यारहवें काण्डोंमें अग्नि-चयनके सम्बन्धमें अनेक बातें हैं। १२ वां काण्ड प्रायश्चित्त-विषयक है। तेरहवेंमें अश्वमेध और नरमेधकी बातें हैं। इसी काण्डमें दुष्यन्त, शकुन्तला-पुत्र भरत, भरतोंके राजा सत्राजित्, इनके प्रतिद्वन्द्वी काशीराज धृतराष्ट्र, परीक्षित्पुत्र जनमेजय और इनके भाई (भीमसेन, उग्रसेन और श्रुतसेन) आदिका उल्लेख है।

इसके १४ वें काण्डको आरण्यक कहते हैं। ऋग्वेदके मन्त्र भी इस ब्राह्मणमें यथेष्ट हैं।

शतपथ (१.१.१) से विदित होता है कि अप्सराएँ नाचने और गानेका कार्य करती थीं। १३ वें काण्डमें अप्सराओंका सौन्दर्य-वर्णन है। इसके १.१.१.६ में कहा गया है—"देवोंकी सृष्टिसे उजाला और असुरोंकी सृष्टिसे अन्धेरा हो गया। इसीलिये अन्धकारमें असुरोंका बल बढ़ता है। दिन देवोंका है, रात्रि असुरोंकी है।" एक स्थल (१.१.२.३) पर कहा गया है—"**अथ ब्रह्मैव परार्द्धमगच्छत्। तत्परार्द्धं गत्वा ऐक्षत कथं न्विमांल्लोकान् प्रत्यवेयामिति। तद् द्वाभ्यामेव प्रत्यवैद् रूपेण चैव नाम्ना**

च।" अर्थात् ब्रह्मका त्रिपाद, अमृत वा परार्द्ध भाग तीनों लोकोंसे अतीत है। उसने सोचा—'किस प्रकार मैं इन लोकोंमें पैठूं?' तब वह नाम और रूपसे इन लोकोंमें पैठा।

इसीके अनुसार शंकराचार्यने बार-बार इस नाम-रूपात्मक मायाके आवरणका वर्णन किया है। आचार्यकी मूल भित्ति कदाचित् यही है।

शतपथमें ये तैंतीस देवता माने गये हैं—८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, आकाश और पृथिवी (१.५.७.२)। कितने ही वेदज्ञ कहते हैं—'यहां शिवको रुद्रोंमें और विष्णुको आदित्योंमें सम्मिलित कर लिया गया है।'

रेत या वीर्यको सोम कहा गया है—"**रेतो वै सोमः**" (१.९.२.९)। रेत समस्त शरीर—प्राणों और इन्द्रियोंको प्रसन्न रखता है। मस्तिष्कको शक्ति देनेके लिये रेतसे बढ़कर कोई दिव्य पदार्थ नहीं है। इसीलिये इसकी रक्षाका इतना उपदेश दिया गया है और इसकी प्रशंसामें इसे सोमतक कहा गया है।

शतपथ (४.४.२.१३) में स्त्रियोंके उत्तराधिकारको अस्वीकृत किया गया है। हिंन्दू-धर्म स्त्रियोंकी पृथक् सत्ता नहीं मानता—उसके गोत्र, प्रवर आदि पतिके गोत्रादिमें विलीन हो जाते हैं। उसका सर्वस्व उसका पति ही माना गया है।

आगे चलकर (५.१.६.१०) कहा गया है कि 'पुरुष शरीरका अर्द्ध भाग है। वह तबतक पूर्ण नहीं होता, जबतक उसकी पत्नी नहीं होती और उसको लड़का नहीं उत्पन्न होता—"**अर्द्धो ह वैष आत्मनस्तमाद्यावज्जायां न विन्दते। अर्द्धो ह तावद्भवति। अथ यदैव जायां विन्दतेऽथ तर्हि सर्वो भवति।**" यहीं यह भी कहा गया है कि "**अयज्ञीयो वैष योऽपत्नीकः।**" अर्थात् 'जो मनुष्य नारी-रहित है, वह यज्ञ नहीं कर सकता।' इसीलिये भगवान् रामचन्द्रने सीताके अभावमें सीताकी सोनेकी प्रतिमा बनाकर यज्ञ किया था।

५.२.१.८ में स्त्रियोंकी चादरका उल्लेख है। यहीं यह भी लिखा है कि 'यज्ञमें सम्मिलित होनेके पहले नारीकी शुद्धि की जाती थी।' ५.२.१. १० में कहा गया है कि 'पत्नीके विना पुरुष स्वर्ग नहीं जा सकता'; इसलिये स्वर्गार्थ-विहित यज्ञमें पुरुष स्त्रीके साथ ही यज्ञ करता था—"**स रोक्ष्यञ्जायामामन्त्रयते, जाये, एहि स्वो रोहावेति। रोहावेत्याह जाया। तस्माज्जायामामन्त्रयते। अर्द्धो ह वैष आत्मनो यज्जाया।**"

अन्नसे ही प्राणका धारण होता है, अन्नसे ही सूक्ष्म विद्युत् स्वरूपवाली शक्ति शरीरमें उत्पन्न होती है; इसलिये अन्नकी प्रशंसामें अन्नको सोम कहा गया है—"**अन्नं वै सोमः**" (३.९.१.८)। प्राणके विना मनुष्य एक क्षण भी नहीं जी सकता—प्राण ही शरीरका सर्वस्व है; इसलिये प्राणको प्रजापति कहा गया है—"**प्राणः प्रजापतिः**" (६.३.१.९)।

काण्ड १०, अध्याय ४, प्रपाठक २ और ब्राह्मण १८ से जाना जाता है कि "प्रजापतिने १२ हजार बृहतीमें ऋग्वेदीय मन्त्रों, ८ हजारमें यजुर्वेदीय मन्त्रों और ४ हजारमें सामवेदीय मन्त्रोंका व्यूहन या संग्रह किया था।" परन्तु इन तीनों वेदोंमें इतने मन्त्र नहीं मिलते। सभी वेदोंके कितने ही मन्त्र लुप्त हो गये।

१३.३.६ से ज्ञात होता है कि प्रत्येक चौथे वर्षमें संवत्सरको पूर्ण करनेके लिये २१ दिन अधिक लिये जाते थे और उसी वर्ष अश्वमेध-यज्ञ किया जाता था।

१४.३.१.३५ से ज्ञात होता है कि स्त्रियां भी यज्ञोंमें साम-गान करती थीं—"**पत्नी-कर्मैव एतेऽत्र कुर्वन्ति यदुद्गातारः।**"

१४.५.४.१० में इतिहासको एक कला माना गया है। जो लोग कहते हैं कि 'आर्य लोग इतिहासकी उपेक्षा करते थे', उन्हें इस मन्त्रपर ध्यान देना चाहिये। माध्यन्दिनीय शतपथमें और अनेकानेक ज्ञातव्य बातें हैं; परन्तु स्थानाभावसे विशेष बातें नहीं लिखी जा सकतीं।

काण्व-शाखाके शपतथमें भी इसीके अनुकूल बातें हैं—कहीं-कहीं कुछ भेद है। इसमें ऋषि-वंशावलीका जो वर्णन है, वह विशेषतः गौतम-वंशका है।

सामवेदीय **कौथुमशाखाका** ब्राह्मण ४० अध्यायोंमें विभक्त है। प्रथम पचीस अध्यायोंको '**पंचविंश-ब्राह्मण**' **वा** '**ताण्ड्य-महाब्राह्मण**' कहा जाता है। २६—३० अध्यायोंको '**षड्विंश-ब्राह्मण**' और ३१ तथा ३२ अध्यायोंको '**मन्त्र-ब्राह्मण**' कहा जाता है। 'षड्विंश-ब्राह्मण' के अन्तिम अध्यायको '**अद्भुत-ब्राह्मण**' कहते हैं। अन्तके आठ अध्यायोंको '**छान्दोग्य-ब्राह्मण**' भी कहा जाता है; परन्तु वस्तुतः यही छान्दोग्योपनिषद् है; क्योंकि इसमें क्रिया-प्रतिपादक अंश बहुत ही थोड़ा है। इसीका एक अंश '**देवताध्याय**' वा '**दैवत-ब्राह्मण**' है। सामवेदके '**आर्षेय-ब्राह्मण**' '**वंश-ब्राह्मण**', '**संहितोपनिषद्-ब्राह्मण**' और '**सामविधान-ब्राह्मण**' भी प्रकाशित हो चुके हैं। सामवेदीय **जैमिनीय-संहिताके** '**जैमिनीय-ब्राह्मण**' और '**जैमिनीय-उपनिषद्-ब्राह्मण**' भी छप चुके हैं। **राणायणीय** शाखाका कोई ब्राह्मण नहीं प्रकाशित हुआ है। इस शाखाके अनुयायी **कौथुमीय** शाखावाले ब्राह्मणोंको ही मानते हैं। 'जैमिनीय-ब्राह्मण' को '**जैमिनीय-आर्षेय-ब्राह्मण**' और '**छान्दोग्य-ब्राह्मण**'को '**छान्दोग्योपनिषद्-ब्राह्मण**' भी कहते हैं। 'जैमिनीय-ब्राह्मण' को ही '**तलवकार-ब्राह्मण**' भी कहा जाता है

'तण्डि' ऋषिके वंशजों और शिष्योंके द्वारा प्रचारित और पूजित होनेके कारण वा तण्डि शाखावाला होनेके कारण 'पंचविंश-ब्राह्मण' का नाम 'ताण्ड्य-ब्राह्मण' पड़ा। सामवेदके ब्राह्मणोंमें यही प्रधान है; इसलिये इसका एक नाम '**महाब्राह्मण**' और दूसरा नाम '**प्रौढ़-ब्राह्मण**' भी है। इसे दो भागोंमें, १८७४ ई० में, सायण-भाष्यके साथ, ए० सी० वेदान्त-वागीशने कलकत्तासे प्रकाशित किया। इसमें अत्यल्प कर्मसे लेकर सौ दिनों तथा अनेक वर्षों तक होनेवाले सोमयाग-सम्बन्धी क्रिया-विशेषका क्रमानुसार वर्णन है। 'सरस्वती' और 'दषद्वती' नदियोंके बीचके प्रदेशों

का भी वर्णन है। सोम-यज्ञके विवरणसे परिपूर्ण होनेपर भी इसमें कितनी ही ज्ञातव्य बातें हैं। व्रात्य-स्तोममें व्रात्योंका विवरण मिलता है। नैमिषारण्यके यज्ञ और कुरुक्षेत्रका उल्लेख है। कोशलराज 'पर आत्मा' और विदेहराज 'निमि साप्य'की भी कथा है। इसके ४.१.१ और १३.४.३ में स्त्रियोंके वेणी-बन्धनकी चर्चा है। इसको कोई-कोई 'आलङ्कारिक पट्ट' भी कहते हैं। इसके एक स्थान (१८.१.२) पर प्रजापतिके दो पुत्र कहे गये हैं—देव और असुर। एक स्थल (१९.३) पर सन्ततिकी प्राप्तिके लिये अप्सराओंकी स्तुति की गयी है।

इसके सब यज्ञ श्रौत यज्ञ हैं।

षड्विंश-ब्राह्मणमें अनेक प्रकारके प्रायश्चित्त कहे गये हैं। दुर्दैव, पीड़ा, कृषि-नाश, भूकम्प आदिके विनाशके लिये अनुष्ठान बताये गये हैं। षड्विंशके भी सब यज्ञ श्रौत हैं। गृहस्थके लिये गृह्य-क्रियाका विवरण "मन्त्र-ब्राह्मण" में पाया जाता है। यह बहुत ही छोटा ग्रन्थ है। षड्विंश के दो संस्करण हैं—एकको के० क्लेमनने १८९४ में निकाला और दूसरेको एच० एफ० एलसिंगने १९०८ में छपाया। मन्त्र-ब्राह्मणको सत्यव्रत सामश्रमीजीने १८९० में प्रकाशित किया।

अद्भुत-ब्राह्मणको प्रो० वेबरने १८५८ में बर्लिनसे निकाला। यह भी बहुत छोटा है। छान्दोग्योपनिषद्-ब्राह्मणको १८८९ में ओ० बोट्लिंग्क ने छपाया। देवताध्याय-ब्राह्मणको १८७३ में ए० सी० बर्नेलने और बंगानुवादके साथ सत्यव्रत सामश्रमीने भी निकाला। इसमें प्रधानतया सामवेदीय देवताओंकी स्तुति की गयी है। आर्षेय-ब्राह्मणको १८७६ में उक्त बर्नेल साहबने ही छपाया था। आर्षेयको डब्ल्यू० कैलेंडने भी प्रकाशित किया है। इसके पांचवें काण्डमें सामद्रष्टा ऋषिके वंशका वर्णन है। वंश-ब्राह्मणको वेबरने भी छपाया है और बंगानुवादके साथ सामश्रमीजीने भी छपाया है। इसपर भी सायण-भाष्य है। इसमें वेदको ब्रह्मासे उत्पन्न बताया है। इसमें सामवेदीय आचार्योंके वंशोंका भी विवरण है। बर्नेलने भी १८७३

में वंश-ब्राह्मणको छपाया था। संहितोपनिषद्-ब्राह्मणको १८७७ में बर्नेलने प्रकाशित किया। इसमें ऐतरेयारण्यकके तृतीय काण्डकी तरह वेदाध्ययनकी रीति बतायी गयी है। सामविधान-ब्राह्मणको १८७३ में वर्नेलने, सायण-भाष्यके साथ, छपाया। भाष्यके साथ ही १८९६ में इसका एक भारतीय संस्करण निकला। इसमें ताण्ड्यके समान ही साम-वेदीय प्रतिपाद्य विषयोंका रोचक वर्णन है। प्रो० कोनोने १८९३ में इसका एक संस्करण निकाला था।

सामवेदकी जैमिनीय-शाखाके जैमिनीय-आर्षेय-ब्राह्मणको बर्नेलने १८७८ में और जैमिनीय-उपनिषद्-ब्राह्मणको १९२१ में एच० एर्टलने प्रकाशित किया। डब्ल्यू० कैलेंडने जैमिनीय-तलवकार-ब्राह्मणको, डच अनुवादके साथ, छापा है। ताण्ड्य-ब्राह्मणसे जैमिनीय-ब्राह्मणोंका बहुत कुछ मेल है।

अथर्ववेदका ब्राह्मण **गोपथ** है। इसमें दो काण्ड वा खण्ड हैं। प्रथममें ५ अध्याय हैं और द्वितीयमें ६। अध्यायोंको प्रपाठक भी कहा गया है। शतपथ और ताण्ड्यसे अनेक वाक्य इसमें उद्धृत किये गये हैं। इसके प्रथम काण्डमें ब्रह्मा नामके अथर्ववेदीय चतुर्थ पुरोहितकी बड़ी प्रशंसा की गयी है। द्वितीय काण्डमें यज्ञ-क्रियाका प्रतिपादन है। यूरोपीय वेदाभ्यासियोंकी धारणा है कि सम्पूर्ण गोपथ-ब्राह्मण अबतक नहीं प्राप्त हुआ है।

डी० गास्ट्राने १९१९ में तथा राजेन्द्रलाल मित्र और हरचन्द विद्या-भूषणने १८७२ में गोपथको प्रकाशित किया था।

तैत्तिरीय-संहिता (६.६.४.३) और ऐतरेय-ब्राह्मण (३.२३) की तरह ही गोपथ (२.३.१९) का भी मत है कि 'सन्तानोत्पत्ति कर देव-ऋण, पितृ-ऋण आदिके परिशोधके लिये पुरुष अनेक विवाह कर सकता है।' इस (२.१६) में अथर्ववेदको ब्रह्मवेद कहा गया है। एक स्थल (३.२) पर कहा गया है कि 'ब्रह्माने चारों वेदोंका कार्य क्रमशः होता,

अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मासे लिया। इस प्रकार तीन वेदोंसे एक पक्षका संस्कार होता है और ब्रह्मा मनसे अकेला ही दूसरे पक्षका संस्कार करता है।'

आर्यसमाजी विद्वानोंने भी कई ब्राह्मणोंको छपाया है। श्रीभगवद्दत्तजी ने तो "वैदिक वाङ्मयके इतिहास"में अपने मतानुसार ब्राह्मण-ग्रन्थोंका सुन्दर इतिहास भी लिखा है।

दुःख है कि प्राचीन यज्ञोंमेंसे अनेक लुप्त हो गये हैं और अनेक रूपान्तर प्राप्त कर चुके हैं। यज्ञसे अभ्युदय और मोक्षकी प्राप्ति होती है—विश्व भी सुखी होता है। परन्तु स्थूल-बुद्धि मनुष्य यज्ञका अद्भुत रहस्य नहीं समझता। यही कारण है कि उपनिषदोंका कोरा ज्ञान बघारनेवाले तो देशमें बहुत मिलेंगे; परन्तु ब्राह्मण-ग्रन्थोंका स्वाध्याय करनेवाले नहींके बराबर मिलेंगे! *

---

* मैत्रायणी और काठक संहिताओंकी तरह अनेक संहिताओंमें अबतक ब्राह्मण मिले हुए हैं। जैसे तैत्तिरीय-संहितासे ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् पृथक् किये गये हैं और उनके नाम तैत्तिरीय-ब्राह्मण, तैत्तिरीयारण्यक और तैत्तिरीयोपनिषद् हैं, वैसे ही अनेक संहिताओंसे ब्राह्मणादि निकालकर उनके नाम रखे गये हैं। यही कारण है कि ब्राह्मणों, आरण्यकों और उपनिषदोंको भी वेदकी तरह ही नित्य माना जाता है। यह ठीक ही है; क्योंकि सभी एक मन्त्र-भागके ही अंग वा अंश हैं। कुछ लोग कहते हैं कि ब्राह्मण वेद नहीं हैं। परन्तु यह बात ठीक नहीं है; क्योंकि सारा संस्कृत-साहित्य और वेद-टीकाकार आदि ब्राह्मणोंको वेद मानते हैं। आपस्तम्ब-श्रौतसूत्र (२४.१.३१), सत्याषाढ़-श्रौतसूत्र (१.१.७)

बोधायनगृह्य-सूत्र (२.६.३), कौशिकसूत्र (१.३), चरण-व्यूह (२ य कण्डिका), आपस्तम्ब-परिभाषा-सूत्र (३४), मीमांसा-दर्शन-भाष्य (२.१.३३), तन्त्रवार्तिक (१.३.१०), मनुस्मृति-टीका (२.६), गौतम-धर्मसूत्र-भाष्य (१.१), तैत्तिरीय-संहिता-सायण-भाष्य (पृष्ठ ७) आदि आदिमें स्पष्ट ही ब्राह्मणोंको वेद कहा गया है।

जिन ब्राह्मणोंका परिचय दिया जा चुका है, उनके सिवा नीचे लिखे ऋग्वेदीय ब्राह्मणोंके नाम भी वैदिक साहित्यमें पाये जाते हैं—१ बाष्कल, २ माण्डूकेय, ३ पैङ्ग्य, ४ कंकति, ५ सुलभ, ६ पराशर, ७ शैलाली और ८ गालव। इतस्ततः ग्रन्थोंमें ये नाम पाये तो जाते हैं; परन्तु यह बात प्रामाणिक रूपसे नहीं लिखी जा सकती कि ये आठो ऋग्वेदीय ब्राह्मण हैं। गालव ब्राह्मण तो शुक्ल यजुर्वेदका भी हो सकता है; क्योंकि शुक्ल यजुर्वेदकी एक शाखाका गालव नाम पाया जाता है। शुक्ल यजुर्वेदके एक जाबाल-ब्राह्मणका नाम भी कई ग्रन्थोंमें पाया जाता है।

कृष्ण यजुर्वेदके इतने ब्राह्मणोंके नाम पाये जाते हैं—१ चरक, २ श्वेताश्वतर, ३ काठक, ४ मैत्रायणी, ५ औखेय, ६ खाण्डिकेय, ७ हारिद्रविक, ८ आह्वरक, ९ तुम्बरु, १० आरुणेय और ११ अन्वाख्यान ब्राह्मण। किन्तु ऐसा कोई अखण्डनीय प्रमाण नहीं है, जिससे ये ग्यारहो कृष्ण-यजुर्वेदीय ब्राह्मण समझ लिये जायं।

सामवेदके भी इतने ब्राह्मणोंके नाम पाये जाते हैं—१ भाल्लवि, २ शाट्यायन, ३ कालबवि, ४ रौरुकी, ५ माषशरावि, ६ कापेय, ७ करद्विष आदि। ये सब सामवेदके ही हैं, इसका कुछ भी निश्चय नहीं है।

अथर्ववेदके एक त्रिखर्ब नामक ब्राह्मणका भी उल्लेख पाया जाता है; भले ही यह ब्राह्मण अन्य वेदका ही हो।

ब्राह्मणोंके अतिरिक्त अनुब्राह्मणोंका भी उल्लेख पाया जाता है। "त्रिशतालोचन"में सत्यव्रत सामश्रमीजीने ताण्ड्य-ब्राह्मणको छोड़कर

सामवेदके सभी ब्राह्मणोंको "अनुब्राह्मण" लिखा है। इन्होंने "आर्षेय-ब्राह्मण"को तो अनुब्राह्मण कहकर छपाया ही है। वेदभाष्यकार भट्ट-भास्कर, माधव आदि तथा "निदानसूत्र" आदिने ब्राह्मणोंको अनुब्राह्मण कहकर ही उद्धृत किया है। परन्तु ब्राह्मणोंको केवल अनुब्राह्मण लिख देनेसे कोई भेद नहीं आता।

ब्राह्मण दो तरहके बताये गये हैं—कर्म और कल्प। कर्म-ब्राह्मणमें कर्म-विधान और मन्त्र-विनियोग होते हैं तथा कल्प-ब्राह्मणमें विनियोग नहीं होते, केवल मन्त्र रहते हैं।

सप्तम अध्याय

ब्राह्मण-ग्रन्थोंके अपूर्व उपदेश

यद्यपि ब्राह्मण-ग्रन्थ-राशिमें शब्दोंके निर्वचन, राजाओं, आचार्यों और ऋषियोंकी वंशावली तथा विविध आख्यान-उपाख्यान भी हैं; परन्तु प्रधानतया (ब्रह्म) यज्ञका प्रतिपादन करनेके कारण इनका नाम ब्राह्मण-ग्रन्थ है।

पहले चारों वेदोंकी ११३० शाखाएँ थीं और प्रत्येक शाखाका एक ब्राह्मण था; इसलिये ब्राह्मण भी ११३० थे; परन्तु इन दिनों प्रायः १८ ब्राह्मण मिलते हैं, जिनमें कई वेदज्ञोंके मतसे सामवेदीय ७ अनुब्राह्मण भी सम्मिलित हैं। इनके अतिरिक्त अनेक प्राचीन और प्रामाणिक ग्रन्थोंमें प्रायः तीस ऐसे ब्राह्मण-ग्रन्थोंके नाम मिलते हैं, जो अप्राप्य हैं। परन्तु नहीं कहा जा सकता कि ये तीसो ठीक ब्राह्मण ही हैं वा इनमें कुछ अन्य विषयोंके भी ग्रन्थ हैं।

मन्त्रभाग (संहिताएँ) और ब्राह्मणभाग—दोनों ही वेद हैं; यद्यपि कुछ लोग मन्त्र-भागको ही वेद मानते हैं। परन्तु यह मत प्राचीन वैदिक परम्पराके विरुद्ध है। आपस्तम्ब-श्रौत-सूत्र (२४.१.३१), सत्याषाढ़-श्रौतसूत्र (१.१.७), बोधायनगृह्य-सूत्र (२.६.३), बोधायनधर्म-सूत्र (२.६.७), कौशिकसूत्र (१.३.), आपस्तम्ब-परिभाषासूत्र (३४), कात्यायन-परिशिष्ट-प्रतिज्ञासूत्र, शबरस्वामी (जैमिनीयमीमांसा, २.१.३३), तन्त्रवार्त्तिक (१.३.१०), मनुस्मृति (मेधातिथि (२.६), शंकर-भाष्य (वेदान्तदर्शन १.३.३३), मस्करी-भाष्य, सायण-भाष्य आदि सभी ने मन्त्र और ब्राह्मण—दोनोंको वेद माना है। फलतः दोनों ही वेद हैं।

ब्राह्मणोंमें यज्ञकी बड़ी महिमा बतायी गयी है। कहा गया है–'यज्ञ सभी कर्मोंमें श्रेष्ठ कर्म है'–"**यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म**" (**शतपथ-ब्राह्मण १.७.१.५**)। ब्राह्मणोंके अतिरिक्त काठक-संहिताका भी यही कथन है (३०.१०)। यज्ञको सूर्यके समान तेजःस्वरूप कहा गया है–"स **यः स यज्ञोऽसौ स आदित्यः**" (**शतपथब्राह्मण १४.१.१.६**)।

ब्राह्मणोंमें प्रजापतिको परमात्मा माना गया है और यज्ञको प्रजापति कहा गया है–"**एष वै प्रत्यक्षं यज्ञो यत्प्रजापतिः**" (**शतपथ ४.३.४.३**)। अग्निहोत्रसे लेकर अश्वमेध तक प्रजापतिके आराधनके लिये हैं। प्रजापति प्रजाका रक्षक है और यज्ञ भी रक्षक है। अग्निमें दी गयी हवि वायुके सहारे सूर्यकी ओर जाती है। पुनः समस्त अन्तरिक्षमें व्याप्त होती है। सूर्यके प्रभावसे मेघ-मण्डलके साथ मिश्रित होकर हवि नीचे उतरकर वर्षा करती है, जिससे अन्न उत्पन्न होता है और अन्नसे प्रजाकी रक्षा होती है। इसके अतिरिक्त हविसे पार्थिव पदार्थ, आकाशस्थ वायु और सूर्य-रश्मि आदि शुद्ध होते हैं। यही नहीं, हविसे देवता तृप्त होते ह और तृप्त देवता मनुष्य का कल्याण करते हैं। यज्ञरूप महापुण्यके फलसे स्वर्ग आदिकी भी प्राप्ति होती है। प्रत्येक यज्ञसे देवों (परम्परया परमात्मा) का अर्चन होता है; इसलिये यज्ञ-कर्त्ता मोक्ष-मार्गकी ओर अग्रसर होता है।

जो कुछ सृष्टिमें हो रहा है, उसका **उत्तमांश यज्ञ** कहा गया है। जैसे सूर्य संसारकी दुर्गन्धको दूर करता और जलको पवित्र करता है, उसी तरह यज्ञ भी करता है। जैसे वर्षमें ३६० दिन होते हैं और मानव-शरीरमें ३६० हड्डियां होती हैं, वैसे ही अग्नि-चयनमें ३६० ईंटें चुनी जाती हैं। फलतः यज्ञोंसे सृष्टि-नियमका भी ज्ञान होता है।

इस तरह अनेकानेक मार्गोंसे यज्ञ मानव-कल्याण करता और विश्वकी शान्ति और सुव्यवस्थामें पूरी सहायता पहुँचाता हैं। ये ही कारण हैं कि यज्ञको ब्राह्मण-ग्रन्थोंने सर्व-श्रेष्ठ कर्म बताया है। यही स्तवनीय ब्राह्मण-संस्कृति है।

यज्ञके द्वारा मनुष्य सारे पापोंसे छूट जाता है-"**सर्वस्मात्पाप्मनो निर्मुच्यते य एवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति**" (शतपथ २.३.१.६)। अर्थात् 'जो जानकार अग्निहोत्र (यज्ञ) करता है, वह सारे पापोंसे छूट जाता है।' दूसरे स्थानपर (शतपथ १३.५.४.१) लिखा है-"**सर्वां ह वै पापकृत्यां सर्वां ब्रह्महत्यामपहन्ति योऽश्वमेधेन यजते।**" अर्थात् 'अश्वमेध-यज्ञ करनेवाला सारे पापों और ब्रह्महत्याको विनष्ट कर डालता है।' "**पाप्मानं हैव हन्ति यो यजते**" (**षड्विंशब्राह्मण** ३.१.३) अर्थात् 'जो यज्ञ करता है, वह पापको मारता है।'

एक तो मन्त्र-पाठसे चित्त शान्त होता है, मन सबल होता है; साथ ही पाप नष्ट होते हैं। ऐतरेयब्राह्मण (१.४.३) से यह भी विदित होता है कि 'यज्ञ और मन्त्रोच्चारणसे सारे वायुमण्डलमें ही परिवर्त्तन हो जाता है, निखिल विश्वमें धर्म-चक्र चलने लगता है।' इस तरह सारी पृथिवी, आकाश और मनुष्य-जातिको उन्नत और पावन बनानेका साधन यज्ञ है।

यज्ञोंके प्रधान भेद २१ हैं (गोपथ-ब्राह्मण, पूर्व० ५.२५)। इनमें ७ गृहाग्नि-यज्ञ हैं और १४ श्रौताग्नि-यज्ञ। इनके अतिरिक्त पूर्णाहुति, पुत्रेष्टि, राजसूय, पुरुषमेध, सर्वमेध आदि अनेक यज्ञोंका उल्लेख भी ब्राह्मणोंमें मिलता है।

यज्ञोंमें बलि-प्रदानकी जो विधि है, वह बहुतोंके मतसे क्षेपक है। अनेक वेदज्ञ वनस्पतियोंकी बलि देते हैं। शतपथ (३.२.२.९) में वनस्पतियोंको "यज्ञिय" कहा गया है। यहां तो इतनी दूरतक कहा गया है कि "यदि वनस्पतियां न होतीं, तो मनुष्य यज्ञ नहीं कर सकते थे।" इससे ज्ञात होता है कि जीवके बदले वनस्पतियोंका अनुकल्प उत्तम है।

वृष्टि-विज्ञानका जैसा रहस्य ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें मिलता है, वैसा कदाचित् ही किसी संस्कृत-पुस्तकमें हो। शतपथ (५.३.५.१७) का कहना

है–"**अग्नेर्वै धूमो जायते, धूमादभ्रमभ्राद्वृष्टिः।**" अर्थात् 'अग्नि (ताप)से धूम उत्पन्न होता है, धूमसे बादल बनते हैं और बादलसे वृष्टि होती है।' ऐतरेयब्राह्मण (२.४१)का मत है–"**विद्युद्धीदं वृष्टिमन्नाद्यं संप्रयच्छति।**" मतलब यह कि 'विद्युत् (अग्नि) का ताप ही वर्षा करता और खाने योग्य पदार्थोंको देता है।' तैत्तिरीय-संहिता (२.४.६.१०), मैत्रायणी-संहिता (२.४.८) और काठक-संहिता (११.१०) में भी ऐसी ही बातें हैं। शतपथ (१.८.३.१२) में कहा गया है–'वायुके प्रतापसे बादल बनते हैं।' इसीलिये कहा गया है–'मरुत् (मानसून) ही वृष्टिपर राज्य करते हैं'–"**मरुतो वै वर्षस्येशते**" (**शतपथ ६.१.२.५**)। फलतः जिधर वायु जाता है, उधर ही वर्षा भी जाती है–"**तस्माद्यां दिशां वायुरेति तां दिशां वृष्टिरन्वेति**" (**शतपथ ८.२.३.५**)।

यज्ञोंके द्वारा विशुद्ध वर्षा-जल अन्य जलको और अन्नको शुद्ध करता है और शुद्ध अन्न-जलसे ही शरीर भी शुद्ध और स्वस्थ रहता है। इसलिये "**वृष्टिकामो यजेत**" अर्थात् 'वर्षाकी इच्छावाला पुरुष यज्ञ करे'– ऐसी आज्ञा है।

अपने जीवनमें दृढ़ निश्चयके साथ अक्लांत रूपसे सदा आगे बढ़ते चलनेका महत्त्वपूर्ण उपदेश ऐतरेयब्राह्मण (३३.३.१५)देता है–

"**चरन्वै मधु विन्दति चरन्स्वादुमुदुम्बरम्।**
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरँश्चरैवेति॥"

('गतिशील व्यक्ति मधु पा लेता है और आगे बढ़नेवाला स्वादिष्ट उदुम्बर आदि फल भी प्राप्त कर लेता है। अविश्रान्त रूपसे दिन-रात गतिशील रहनेके ही कारण सूर्य विश्व-वन्द्य है। इसलिये जीवनमें दृढ़ निश्चयके साथ कदम बढ़ाये चल।')

स्वर्गलोकके सम्बन्धमें कहा गया है कि 'एक तेज घोड़ा हजार दिनोंमें जितना चलता है, उतनी ही दूर यहांसे स्वर्ग है'–"**सहस्राश्वीने वा इतः**

स्वर्गो लोकः" (**ऐतरेयब्राह्मण २.१७**)। इस 'स्वर्गको देवोंने यज्ञ, श्रम, तपस्या और आहुतियोंसे प्राप्त किया'–"**देवा वै यज्ञेन श्रमेण तपसाऽहुतिभिः स्वर्गं लोकमायन्**" (ऐतरेय ३.४२)। 'जो मनुष्य पुण्यकर्मा हैं, वे स्वर्गको प्राप्त करते हैं–"**ये हि जनाः पुण्यकृतः स्वर्गं लोकं यन्ति**" (**शतपथ** ६.५.४.८)।

लोक कितने हैं? इसका उत्तर ब्राह्मण देता है—'तीन लोक हैं'—"**त्रयो वा इमे लोकाः**" (**शतपथ** १.२.४.२०)। ये तीनों कौन कौन हैं?—'पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौं'–"**पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौः**" (**शतपथ** ११.५.८.१)।

इन सब लोकोंका रक्षक प्रजापति है। ब्राह्मणोंके मतसे प्रजापति ही परमात्मा है। 'प्रजापति अमर और अनादि है'–"**प्रजापतिर्वा अमृतः**" (**शतपथ** ६.३.१.१७)। प्रजापति ही पहले था; वह अकेला था; उसने (सृष्टिकी) कामना की'–"**प्रजापतिर्वा इदमग्र आसीत्। एक एव सोऽकामयत**" (**शतपथ** ६.१.३.१)। यही बात शतपथमें एक स्थान (२.२.४.१) पर पुनः कही गयी है। 'मनुष्य मनसे ही उसे प्राप्त करता है'–"**मनसैवैनमाप्नोति**" (**काठकसंहिता** २६.६)। यही बात कई उपनिषदोंमें भी कही गयी है (बृहदारण्यकोपनिषद् ४.११, कठवल्ली ४.११ आदि)।

बार बारकी मृत्युसे (पुनर्जन्मसे) छूटनेको मुक्ति कहा गया है। यज्ञाग्निहोत्रसे मुक्ति प्राप्त होती है–"**पुनर्मृत्युं मुच्यते य एवमेतामग्निहोत्रे मृत्योरतिमुक्तिं वेद**" (**शतपथ** २.३.३.६)। तात्पर्य यह है कि, 'वह बार बारकी मृत्युसे छूट जाता है, जो इस अग्निहोत्रमें मृत्युसे मोक्षको जानता है।' आगे चलकर इसी शतपथ (१०.१.४.१४) में कहा गया है कि 'अग्नि-चयन करनेवाला पुनर्मृत्युको जीत लेता है।' शतपथके ११ वें काण्डमें (११.५. ६. ६) यह भी कहा गया है कि 'वह बार बारकी मृत्युको तो जीत ही लेता है, ब्रह्मात्मैक्य-भावको भी प्राप्त कर लेता है'—"**पुनर्मृत्युं मुच्यते गच्छति ब्रह्मणः सात्मताम्।**"

इसी काण्ड (११.२.१.२) में यह भी कहा गया है कि 'आत्मामें ही अर्थात् आत्माके आश्रयसे ही सारे प्राण ठहरे हुए हैं।'

आजकलके शरीर-शास्त्री जैसे मनुष्यका २१६०० बार २४ घंटोंमें श्वास लेना मानते हैं, वैसे ही शतपथ (१२.३.२.८) भी मानता है।

कौषीतकि-ब्राह्मणके मतसे (११.७) मनुष्यकी आयु सौ वर्षकी होती है—"**शतायुर्वै पुरुषः।**" परन्तु शतपथ (१.६.३.१६) के मतसे सौ वर्षसे भी अधिक मनुष्य जीता है—"**अपि हि भूयांसि शताद्वर्षेभ्यः पुरुषो जीवति।**" अग्निहोत्रीको पूर्ण आयु प्राप्त करनेवाला कहा गया है (शतपथ २.१.४.६)। दो ही बार मिताहार करनेवाला पूरी आयु पाता है (शतपथ २.४.२.६)। मैत्रायणी-संहिताके मतसे (१.६.५) 'अग्निहोत्र करनेवाला पूर्णायु प्राप्त करता है।' सोना धारण करनेवाला दीर्घ आयु प्राप्त करता है'—"**यो बिभर्त्ति दाक्षायणं हिरण्यं स जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः**" (**अथर्ववेद** १.३५.२)।

व्याधियोंकी उत्पत्ति और उनके विनाशकी बातें भी वैज्ञानिक और आयुवदीय शैलीमें कही गयी हैं। कौषीतकि-ब्राह्मण (५.१) और गोपथब्राह्मण, उत्तरार्द्ध (१.१९)में कहा गया है—"**ऋतुसन्धिषु वै व्याधिर्जायते।**" अर्थात् 'मौसम बदलते' समय रोग उन्त्पन्न होता है।' रोगके कीटाणुओंको मारनेवाला यज्ञीय अग्निको बताया गया है—"**अग्निर्हि रक्षसामपहन्ता**" (**शतपथ** १.२.१.६)। अग्निका सार सुवर्णको माना गया है और सोनेको कीटाणुओंका विनाशक कहा गया है (शतपथ १४.१.३.२६)। यही कारण है कि आर्य लोग कानोंमें कुण्डल धरण करते थे। इसी तरह सूर्य-तेज (शतपथ १.३.४.८), वेदवेत्ता विद्वान् (श० १.१.४.६) और साम-मन्त्र-पाठको भी कीटाणुनाशक (श० ४.४.५.६) बताया गया है। शुद्ध जलको भी रोग-नाशक बताया गया है। (तैत्तिरीयब्राह्मण ३.२.३.१२)। विज्ञान और आयुर्वेद भी इन वस्तुओंको रोग-विनाशक मानते हैं।

पुरुषको स्त्रीके सामने और स्त्रीको पुरुषके सामने भोजन करना ब्राह्मणोंने मना किया है (शतपथ १०.५.२.६ ; १.६.२.१२)। यहीं यह भी कहा गया है कि, 'स्त्रीके सामने न खानेवाला पुरुष बलवान् पुत्रको उत्पन्न करता है।' पुत्रको उत्पन्न करना आवश्यक बताया गया है। इतनी दूर तक कहा गया है कि "**नापुत्रस्य लोकोऽस्ति**" (**ऐतेरेय-ब्राह्मण ७.१३**)। अर्थात् 'संसारमें पुत्रहीनका कल्याण नहीं है।' 'वार्द्धक्यमें पुत्र ही पिताके आधार होते हैं ; इसलिये भी पुत्र-प्राप्तिको आवश्यक माना गया है'– "**तस्मादुत्तरवयसे पुत्रान्पितोपजीवति**" (**शतपथ १२.२.३-४**)। आशय यह है कि वृद्धावस्थामें पुत्रोंके आश्रयसे ही पिता जीता है। पिण्ड-दानमें पुत्र प्रथमाधिकारी है ; इसलिये भी पुत्र-प्राप्तिकी आवश्यकता बतायी गयी है।

स्त्रीजातिके सम्बन्धमें भी ब्राह्मणोंमें बहुत प्रकाश डाला गया है। सुन्दरी स्त्रीको प्रिया कहा गया है–"**तस्माद् रूपिणी युवतिः प्रिया भावुका**" (शतपथ १३.१.६.६)। अर्थात् 'रूपवती युवती पुरुषोंके लिये प्रिया और भावप्रवणा होती है।' सुन्दरी कौन है ? इसका भी लक्षण बताया गया है– "**पश्चाद्वरीयसी पृथुश्रोणिरिति वै योषां प्रशंसन्ति**" (**शतपथ ३.५.१.११**)। तात्पर्य यह कि, 'पीछेसे चौड़ी जांघोंवाली और मोटी श्रोणीवाली स्त्री प्रशंसाके योग्य है।' ऐसा ही अन्यत्र भी (श० १.२.५.१६) कहा गया है। शतपथ (६.५.१.१०) में उक्ति है–"एतद्वै योषायै समृद्धं रूपं यत् सुकपर्दा सुकुरीरा स्वौपशा।" अर्थात् 'सुन्दर चूड़ावाली, सुन्दर अलंकार-वाली और सुन्दर पट्टोंवाली स्त्री सौन्दर्यका विकसित रूप है।' आर्य लोग पत्नीको अर्द्धांगिनी कहते थे–"**अथो अर्द्धो वा एष आत्मनः। यत्पत्नी**" (तैत्तिरीय-ब्राह्मण ३.३.३.५)।' पत्नीविहीनको यज्ञका अधिकारी नहीं माना गया है'–"**अयज्ञो वा एषः। योऽपत्नीकः**" (**तै० ब्रा० २.२.२.६**)। '**स्त्रियोंको लक्ष्मीरूपिणी माना गया है'–"श्रिया वा एतद्रूपं यत्पत्न्यः**" (**तै० ब्रा० २.६.४.७**)।

परन्तु स्त्रियोंमें जो दुर्गुण होते हैं, उन्हें भी ब्राह्मणोंने कहा है—"**मोघसंहिता एव योषा। तस्माद्य एव नृत्यति यो गायति तस्मिन्नेवैता निमिश्लतमा इव**" (शतपथ ३.२.४.६)। अर्थात् 'स्त्रियां निरर्थक बातोंकी ओर जाती हैं। जो नाचता और गाता है, उसीको चाहने लगती हैं।' यही बात है मैत्रायणी-संहितामें भी (३.७.३) कही गयी है।

ऊन और सूतका कातना स्त्रियोंका कर्म बताया गया है—"**तद्वा एतत्स्त्रीणां कर्म यदूर्णासूत्रम्**" (श० १२.७.२.११)। यह कर्म अब तक स्त्रियोंमें पाया जाता है। स्त्रियां चर्खे चलाती हैं; गुलूबन्द, जुराब आदि बुनती हैं। परन्तु आर्य लोग कन्या-जन्मको कुछ अच्छा नहीं समझते थे (मैत्रायणी-संहिता ४.६.४)।

पुरुष ही सभामें जाते थे, स्त्रियां नहीं (मैत्रायणीसंहिता ४.७.४)। 'अपने घरोंमें पतियोंके साथ रहनेको ही स्त्रियोंकी प्रतिष्ठा' कहा गया है (शतपथ ३.३.१.१० ; २.६.२.१४)। 'स्त्रियोंको मारनेकी निन्दा की गयी है'—"न वै स्त्रियं घ्नन्ति" (श० ११.४.३.२)।

वैदिक धर्ममें सत्यपर बड़ा जोर दिया गया है। सच्चा बोलना, सच्चा संकल्प करना, सच्चा कर्म करना आदि वेदधर्मका प्रधान उद्देश्य है। आर्य लोग सबसे अधिक घृणा असत्यसे करते थे। झूठ बोलना और असत्याचरण करना महापातक समझा जाता था। शतपथ (३.१.३.१८) कहता है—"**अमेध्यो वै पुरुषो यदनृतं वदति।**" अर्थात् झूठ बोलनेवाला अशुद्ध है—झूठ बोलनेवालेकी पवित्रता नष्ट हो जाती है। असत्य भाषणका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। 'असत्य बोलना वाणीका छिद्र है, जिसमेंसे सब कुछ गिर जाता है'—"**एतद्वाचश्छिद्रं यदनृतम्**" (**ताण्ड्यब्राह्मण ८.६.१३**)। 'असत्यवादीका तेज भी कम होता जाता है—वह प्रति दिन पापी होता जाता है। इसलिये मनुष्यको सत्य ही बोलना चाहिये'—"**तस्य कनीयः कनीय एव तेजो भवति—श्वः श्वः पापीयान् भवति तस्मादु सत्यमेव वदेत्**" (शतपथ

२.२.२.१६)। यज्ञानुष्ठाताके लिये तो विशेष सावधान रहनेके लिये कहा गया है–'वह झूठ तो बोले ही नहीं, साथ ही मांस भी न खाय, न स्त्रीके समीप जाय'–**"नानृतं वतेदेन्न मांसमश्नीयात् न स्त्रियमुपेयात्"** (तैत्तिरीय-संहिता २.५.५.३२)। 'सत्य-पथसे ही स्वर्गकी प्राप्ति मानी गयी है'–"ऋतेनैवं स्वर्गं लोकं गमयति" (ताण्ड्य-ब्राह्मण १८.२.१६)। और तो और तीनों वेदोंको ही सत्य बताया गया है–**"तद्यत्तत् सत्यं त्रयी सा विद्या"** (शतपथ ९.५.१.१८)।'सत्यवादी अजेय माना गया है' (श० ३.४.२.८)। 'मद्य वा शराब पीना बड़ा पाप समझा जाता था' (मैत्रायणी-सं० २.४.२ और काठक-संहिता १२.१२)। जिसका गुरु मूर्ख है, जो मूर्ख गुरुसे उपनयन कराता है, वह भी पापी वा अन्धकारयात्री माना गया है–(आपस्तम्ब-धर्म-सूत्र १.१.१.११में ब्राह्मण-वचन)। 'अपने स्वास्थ्यकी चिन्ता न करने-वाला (रोगी) भी पापी माना गया है'–**"पात्मनैष गृहीतो य आमयावी"** (काठक-संहिता १३.६)। 'द्वेष करनेवाला भी पापी माना गया है' (आपस्तम्ब-धर्मसूत्र २.३.६.१६–२०)। 'चोरी करना, डाका डालना पाप है' (ऐतरेय-ब्राह्मण ८.११)। 'गाली देनेवाला भी पापी है' (ऐतरेय-ब्राह्मण ७.२७)।

इन सारे पापोंके प्रायश्चित्तका विधान है। प्रधान प्रायश्चित्त यज्ञ करना बताया गया है।

अभिमान वा अहंकार करनेकी मनाही है। अभिमानको अध:पतन-का द्वार बताया गया है–**"तस्मान्नातिमन्येत पराभवस्य हैतन्मुखं यदति-मानः" (शतपथ ५.१.१.१)।**

इसमें सन्देह नहीं कि, ये सब अपूर्व उपदेश मानवके अभ्युदयके लिये परमावश्यक हैं–ब्राह्मण-ग्रन्थोंकी ये विशेष संस्कृति हैं। शास्त्रों और पुराणों-में इन्हींका विस्तार है। इनमें विज्ञान-विरुद्ध एक भी उपदेश नहीं है। पृथ्वी, सूर्य, समुद्र आदिके बारेमें जो ब्राह्मणोंमें मन्तव्य है, वे भी विज्ञान-सम्मत हैं (काठक-संहिता ३६.७; शतपथ ७.१.१.१३; ऐतरेय ३.४४)।

ब्राह्मण-ग्रन्थ रेखागणित (Geometry) के तो जन्मदाता ही हैं। ब्राह्मणोंमें नाना प्रकारकी वेदियां और चितियां बनानेका विधान है। ये विधान रेखागणितके जनक हैं। दो अश्र (Squares), चार अश्र (Triangle), द्रोणकार (Trough) वाली वेदियों और चितियोंके निर्माणने रेखागणित-शास्त्रको ही आविष्कृत कर दिया। मूल रूप ब्राह्मणोंमें (श० १०.२.२.५; काठकसंहिता २१.४ आदि) है; परन्तु विस्तृत विवरण कल्पसूत्रोंके शुल्व-सूत्रोंमें पाये जाते हैं। इस तरह रेखागणित ब्राह्मणोंकी विशेष संस्कृति है।

ब्राह्मणादि जातियोंके लिये विशेष मन्तव्य पाये जाते हैं। कहा गया है कि, 'ब्राह्मणको ब्रह्मवर्चसी वा तेजःशाली होना चाहिये'—"**तद्ध्येव ब्राह्मणेनैष्टव्यं यद् ब्रह्मवर्चसी स्यादिति**" (शतपथ १.९.३.१६)। ब्राह्मणके लिये गाने और नाचनेका निषेध है—"**ब्राह्मणो नैव गायेन्न नृत्येत्**" (गोपथ-ब्राह्मण, पूर्वार्द्ध २.२१)। यज्ञको ही ब्राह्मणोंका शस्त्र बताया गया है—"**एतानि वै ब्राह्मण आयुधानि यद्यज्ञायुधानि**" (ऐतरेय ७.१९)। ब्राह्मणोंको मनुष्योंका देवता बताया गया है—"**अथ हैते मनुष्यदेवा ये ब्राह्मणाः**" (षड्विंश १.१)। वेदज्ञाता ब्राह्मणको महान् प्रतापी माना गया है (शतपथ ४.६.६.५)। क्षत्रियको बलि होना लिखा है (ऐतरेय ८.६)। युद्ध क्षत्रियका बल माना गया है (शतपथ १३.१.५.६)। अराजक देशको युद्धके लिये अनुपयुक्त कहा गया है (तैत्तिरीय-ब्रा० १.५.९.१)। वैश्यको तो साक्षात् राष्ट्र ही कहा गया है; क्योंकि वैश्यके धन कमाने पर ही सारे वर्णोंका कार्य चलता है (ऐतरेय ८.२६)। शूद्रको श्रमका रूप बताया गया है (शत० १३.६.२.१०)। शूद्रके लिये यज्ञ करनेका निषेध है (तैत्तिरीय-संहिता ७.१.१.१६)। शूद्रके समीप वेद पढ़ना मना किया गया है (वेदान्तदर्शन १.३.३८ सूत्रपर शंकराचार्योद्धृत ब्राह्मण-वचन)।

ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें ऐसे पचासों राजाओं और आचार्योंके उपदेशप्रद आख्यान उद्धृत हैं, जिनका विस्तार पुराणादिमें किया गया है। परवर्ती साहित्यमें एक एक आख्यानपर एकाधिक ग्रन्थोंकी रचना हुई है। वस्तुतः ब्राह्मण-ग्रन्थ आर्य-संस्कृतिके आधार और ज्ञान-विज्ञानके आगार हैं; अतएव राष्ट्रकी उन्नतिके लिये ब्राह्मण-ग्रन्थोंका प्रचार करना आवश्यक और अनिवार्य है।

अष्टम अध्याय

आरण्यक-ग्रन्थ

एकान्त जन-शून्य विपिनमें ब्रह्मचर्यमें निमग्न होकर ऋषियोंने जिस गंभीर और चिन्ता-पूर्ण विद्याका पाठ किया, उसका नाम "**आरण्यक**" है। यह प्रधानतया यज्ञ-रहस्य-प्रतिपादक विद्या है। अपने ऐतरेय-ब्राह्मण के भाष्यमें सायणाचार्यने लिखा है—"वनमें रहनेवाले वानप्रस्थ लोग जिन यज्ञादिको करते थे, उनको बतानेवाले ग्रन्थोंको आरण्यक कहते हैं।" ऐतरेयारण्यकके भाष्यमें भी सायणने लिखा है—"वन (अरण्य) में पढ़ाये जानेके योग्य होनेसे इसका नाम आरण्यक है"—"**अरण्य एव पाठ्यत्वादारण्यकमितीर्यते।**" आरण्यकोंको "रहस्य-ग्रन्थ" भी कहा गया है (गोपथ-ब्राह्मण २.१० और बोधायनधर्मसूत्र-भाष्य २.८.३)। परन्तु बोधायन-धर्मसूत्र (३.७.७.१६) में आरण्यकको ब्राह्मण भी कहा गया है।

गृहस्थोंके यज्ञोंका विवरण ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें है और वानप्रस्थ आश्रममें जीवन बितानेवालोंके यज्ञ, महाव्रत, हौत्र आदिका विवरण आरण्यकोंमें है। इनमें यज्ञोंके आध्यात्मिक रूपका विवेचन है। आधिदैविक रूपका विवरण भी है। ब्राह्मण-ग्रन्थोंकी ही तरह आरण्यकोंकी वाक्य-रचना भी सरल, संक्षिप्त और क्रिया-बहुल होती है। कर्मकी विवेचना होनेके कारण आरण्यकोंको कर्मकाण्ड भी कहा जाता है। परन्तु ये ग्रन्थ सोलहो आने कर्मकाण्ड नहीं हैं। उपनिषदोंकी ही तरह आरण्यक-ग्रन्थ भी एक ही मूल सत्ता मानते थे, जिसका विकास यह प्रपंच है। ऐतरेयारण्यक (३.२.३.१२) में स्पष्ट ही लिखा है—"ऋग्वेदी एक ही महती सत्ताकी उपासना "उक्थ" में करते हैं। यजुर्वेदी उसीकी उपासना याज्ञिक अग्निके रूपमें

करते हैं। सामवेदी लोग "महाव्रत" नामक योगमें उसीकी उपासना करते हैं।"

आरण्यकोंमें वर्णाश्रम-धर्मका पूर्ण विकास देखनेमें आता है। यज्ञकी दार्शनिक व्याख्या आरण्यकोंमें पायी जाती है—याज्ञिक रहस्योंकी यथार्थ मीमांसा भी इनमें है। आरण्यक यज्ञको विश्वका नियन्ता मानते हैं—उनकी दृष्टिमें वस्तुतः जगत् ही यज्ञमय है। यज्ञ चराचरके लिये कल्याणवाही है। देवता-विशेषको लक्ष्य करके द्रव्यका त्याग ही यज्ञ आरण्यक नहीं मानते। वस्तुतः आरण्यकोंमें सकाम कर्मके प्रति और कर्म-फलके प्रति श्रद्धाका भाव नहीं दिखायी देता; क्योंकि स्वर्ग-क्षय होनेके कारण आत्यन्तिक सुखका जनक कर्म-मार्ग नहीं माना जा सकता। यही कारण है कि कर्मकी ओरसे लोगोंकी रुचि हटकर ज्ञान-मार्गकी ओर हुई। ज्ञान-कर्म-समुच्चय का जो सिद्धान्त उपनिषदोंमें पुष्पित है, वह आरण्यकोंमें ही अंकुरित हुआ है।

संहिताओं और ब्राह्मणोंकी तरह आरण्यक भी ११३० मिलने चाहिये; परन्तु इन दिनों केवल सात ही उपलब्ध हैं। इनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध ऋग्वेदीय **ऐतरेयारण्यक** है। इसे १८७६ में सायणभाष्य-सहित सत्यव्रत सामश्रमी ने और १९०९ में ए० बी० कीथने सम्पादित कर प्रकाशित किया। कहते हैं, षड्गुरुशिष्यने इसपर "मोक्षप्रदा" नामकी एक टीका लिखी है, जो अबतक अप्रकाशित है। कीथके संस्करणमें अंग्रेजी अनुवाद भी है। आरण्यक प्रायः गद्यमें हैं।

ऐतरेय आरण्यकके पांच भाग हैं, जिन्हें आरण्यक ही कहा जाता है। प्रथममें ५ अध्याय, द्वितीयमें ७, तृतीयमें २, चतुर्थमें १ और पंचम आरण्यकमें ३ अध्याय हैं—सब १८ अध्याय हैं। हर एक अध्यायमें कई खण्ड हैं।

'गवामयन' सत्रका वर्णन ऐतरेयब्राह्मण (३.१-३८) में है। इसीमें **'महाव्रत'** का भी एक दिन होता है। इस दिनके प्रातः, मध्यदिन और

सायं सवनोंका प्रथम आरण्यकमें उल्लेख है। प्रधानतया महाव्रतका ही वर्णन है।

द्वितीय आरण्यके ४ से ६ अध्याय ऐतरेयोपनिषद् हैं। शेष अध्यायोंमें **'उक्थ'** आदिका कथन है।

तृतीय आरण्यकमें निर्भुज-संहिता और प्रतृण-संहिताके भेद बताये गये हैं। स्वर, स्पर्श, ऊष्म वर्णोंके भेद भी बताये गये हैं। ऋषियोंका भी उल्लेख है।

चतुर्थमें **महानाम्नी** ऋचाओंका संकलन है।

पंचममें महाव्रतके माध्यन्दिन सवनमें पढ़े जानेवाले "**निष्कैवल्य-शस्त्र**" का विवरण पाया जाता है।

प्रथम तीन आरण्यकोंके प्रधान प्रचारक इतरा-पुत्र ऐतरेय महिदास, चतुर्थके आश्वलायन और पंचमके शौनक हैं।

ऋग्वेदका दूसरा आरण्यक **शाङ्खायन** है, जिसको कौषीतकि-आरण्यक भी कहा जाता है। इसके दो अध्यायोंको १९०० में वाल्टर फ्राइडलंडरने, ७ से १५ अध्यायोंको, अंग्रेजी अनुवादके साथ, १९०९ में कीथने और अन्त को १९२२ में श्रीधर शास्त्री पाठकने सम्पूर्ण शाङ्खायनको छपाया। इसमें १५ अध्याय हैं। सब १३७ खण्ड हैं। इसके तीसरेसे छठे अध्यायों को कौषीतकि-उपनिषद् कहा जाता है। प्रथमके दो अध्यायोंको कुछ लोग ब्राह्मणका भाग ही मानते हैं। इस आरण्यकमें, तैत्तिरीय आरण्यक की तरह ही, शुनःशेप, अहिल्या, खाण्डव, कुरुक्षेत्र, मत्स्य, उशीनर, काशी, पांचाल, विदेह आदिका उल्लेख है। इसकी शेष बातें ऐतरेयारण्यककी ही तरह हैं। इसमें भी महाव्रत आदि कृत्य हैं। गुणाख्य शाङ्खायन और उनके शिष्योंने इसका प्रचार किया है।

तैत्तिरीय ब्राह्मणका शेषांश **तैत्तिरीय आरण्यक** है। यह अत्यन्त उपयोगी आरण्यक है। कृष्ण यजुर्वेदकी तैत्तिरीय शाखाका तैत्तिरीय

आरण्यक अनेकानेक ज्ञातव्य विषयोंसे परिपूर्ण है। इसको र राजेन्द्रलाल मित्रने १८७२ में, सायण-भाष्यके साथ, प्रकाशित किया। यह दो भागोंमें है। भट्ट भास्करके भाष्यके साथ तीन भागोंमें भी यह छप चुका है। सुना है, इसपर वरदराजका भी एक भाष्य था, जो अप्राप्य है।

इसमें दस भाग वा प्रपाठक हैं। प्रत्येक प्रपाठकमें कितने ही अनुवाक हैं। सब १७० अनुवाक हैं। दसवें प्रपाठकके अनुवाकोंकी संख्यामें बड़ी गड़बड़ है। सायणाचार्यने लिखा है, "१० वें प्रपाठकमें द्रविड़पाठमें ६४, आन्ध्र-पाठमें ८०, कर्णाटक-पाठमें ७४ और कुछमें ८९ अनुवाक हैं।" सायणने पाठान्तर देते हुए आन्ध्र-पाठका ही व्याख्यान किया है।

सातवें प्रपाठकसे लेकर नवम प्रपाठक तकको "तैत्तिरीयोपनिषद्" कहा जाता है, यह पहले भी लिखा गया है।

तैत्तिरीयारण्यकमें काशी, पांचाल, मत्स्य, कुरुक्षेत्र, खाण्डव, अहिल्या, शुनःशेप आदिका वर्णन है। इसमें एक स्थल (१.८.८) पर कश्यपको परमात्मा—सर्वदर्शक—कहा गया है। इस (१.९.२) में व्यास पाराशर्य का नाम आया है। १.२०.१ में नरकोंका वर्णन है। बौद्ध भिक्षुओंके लिये जिस 'श्रमण' शब्दका प्रयोग होता है, वह इस (२.७.१) में तपस्वीके अर्थमें आया है। बौद्धोंने यहींसे इस शब्दको लिया है। इसके ६.१ में कहा गया है कि "अपने मृत पतिसे धनुष्, सुवर्ण आदि लेकर नारी चिता से चली आयी"—

"धनुर्हस्तादाददाना मृतस्य श्रियै ब्रह्मणे तेजसे बलाय।
अत्रैव त्वमिह वयं सुशेवा विश्वाः स्पृधोऽभिजातीर्जयेम॥"

तैत्तिरीयमें ही सर्व-प्रथम यज्ञोपवीतका उल्लेख मिलता है। लिखा है—"यज्ञोपवीत धारण करनेवालेका यज्ञ भली भांति स्वीकार किया जाता है; यज्ञोपवीत-धारी ब्राह्मण जो कुछ अध्ययन करता है, वह यज्ञ ही करता है"—

"**प्रसृतो ह वै यज्ञोपवीतिनो यज्ञः। यत्किञ्च ब्राह्मणो यज्ञोपवीत्यधीते यजत एव तत्।**" (२.१.१)

इस (१.३१.१) में एक ऐसे रथका वणन है, जिसमें एक हजार धुरे हैं, एक हजार घोड़े जुते हैं और अनेक चक्र हैं—

"**रथं सहस्रबन्धुरं पुरश्चक्रं सहस्राश्वम्।**"

जलके चार मूल रूप बताये गये हैं—"**चत्वारि वा अपां रूपाणि। मेघो विद्युत् स्तनयित्नुर्वृष्टिः।**" (१.२४.१) अर्थात् जलके चार रूप हैं—मेघ, बिजली, गर्जन और वर्षा। छः प्रकारके जलका उल्लेख है—वर्षा-जल, कूप-जल, तड़ाग-जल, बहनेवाला (नद्यादिका) जल, पात्र-जल और झरना आदिका जल (१.२४.१–२)।

निस्सन्देह यह अतीव उपयोगी ग्रन्थ है।

कृष्ण यजुर्वेदके चरक-शाखोक्त "**बृहदारण्यक**" नामके एक आरण्यक का कहीं-कहीं उल्लेख मिलता है। इसको लोग "**मैत्रायणी-आरण्यक**" भी कहते हैं। कई स्थानोंसे जो "मैत्र्युपनिषद्", "मैत्रेयोपनिषद्" आदि नामोंसे "मैत्रायण्युपनिषद्" छपी है, उसे ही उक्त "मैत्रायणी-आरण्यक" कहा जाता है। इसमें सात प्रपाठक हैं। वस्तुतः इसमें उपनिषद् और आरण्यक मिले हुए हैं—अलग-अलग नहीं हैं।

इसमें परमात्माको अग्नि और प्राण कहा गया है (६.९)। "महाधनुर्धर" और "चक्रवर्ती" सुद्युम्न, भूरिद्युम्न, इन्द्रद्युम्न, कुवलयाश्व, यौवनाश्व, वध्र्यश्व, अश्वपति, शशबिन्दु, हरिश्चन्द्र, अम्बरीष, ननक्तु, शर्याति, ययाति, अनरणि, अक्षसेन आदि राजाओंका इसमें उल्लेख पाया जाता है। ५ वें प्रपाठकसे "**कौत्सायनी स्तुति**"का प्रारम्भ है।

शुक्ल यजुर्वेदकी दो शाखाएँ उपलब्ध हैं—माध्यन्दिन और काण्व। दोनोंके ब्राह्मण भी उपलब्ध हैं। एकका नाम है **माध्यन्दिन-शतपथ और** दूसरेका **काण्व-शतपथ**। प्रथममें १४ काण्ड हैं और दूसरेमें १७। पहलेमें

१०० अध्याय हैं और दूसरेमें, कैलेंडके मतानुसार, १०४। पहलेमें ४३८ ब्राह्मण हैं और दूसरेमें ४४६। पहलेमें ७६२४ कण्डिकाएँ हैं और दूसरेमें ५८६५। पहलेके शेषांशके ६ अध्याय "बृहदारण्यकोपनिषद्" कहाते हैं और दूसरेके भी। पहलेको "**माध्यन्दिन-बृहदारण्यक**" और दूसरेको "**काण्व-बृहदारण्यक**" कहते हैं। पहलेको १८८६ में ही ओटो बोहट्-लिंग्कने छपाया था और दूसरा अनेक स्थानोंसे छपा है। दोनोंमें अनेकानेक ब्राह्मण, खण्ड और कण्डिकाएँ हैं।

दोनोंमें उपनिषद् और आरण्यक मिले हुए हैं। दोनोंमें ही बीच-बीचमें यज्ञ-रहस्यका थोड़ासा वर्णन करके आत्मज्ञान-तत्त्वका विस्तृत उपदेश दिया गया है। इस तरह उपनिषद्का अधिक कथन होनेसे इनका नाम "बृहदारण्यकोपनिषद्" पड़ गया। उपनिषदोंसे आरण्यक-भागको पृथक् करनेकी आवश्यकता है।

दोनों बृहदारण्यकोंमें थोड़ा ही भेद है—पाठान्तर हैं। याज्ञवल्क्य और जनककी कथा दोनोंमें है। गार्गी और मैत्रेयी नामकी ब्रह्मवादिनी स्त्रियों का अनूठा विवरण भी दोनोंमें है।

संन्यासका विधान बहुत सुन्दर मिलता है—

"**एतमेव विदित्वा मुनिर्भवति। एतमेव प्रव्राजिनो लोकमिच्छन्तः प्रव्रजन्ति। एतद्ध स्म वै तत्पूर्वे विद्वांसः प्रजां न कामयन्ते। किं प्रजया करिष्यामो येषां नोऽयमात्माऽयं लोक इति ते ह स्म। पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति।**" (४.४.२२)

अर्थात् "इसी आत्माको जाननेपर मुनि होता है। ब्रह्मलोककी इच्छा करनेवाले संन्यास ग्रहण करते हैं। प्राचीन विद्वान् प्रजाकी इच्छा नहीं करते और कहते हैं कि 'हमें प्रजा लेकर क्या करना है, जब कि यह आत्मा और यह लोक ही हमें इष्ट हे।' इसीसे ये पुत्र, धन और कीर्त्ति को छोड़कर भिक्षा मांगते हैं।"

सामवेदकी जैमिनीय-शाखाके "जैमिनीयोपनिषद्-ब्राह्मण" को १९२१ में एच० आर्टलने प्रकाशित किया। इसके चार अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय अनुवाकों और खण्डोंमें विभक्त है। इसके चौथे अध्यायके १० वें अनुवाकसे प्रसिद्ध "केनोपनिषद्" है। चार खण्डोंमें इसकी समाप्ति हुई है।

इसी "**जैमिनियोपनिषद्-ब्राह्मण**" को "**तलवकार-आरण्यक**" कहा जाता है। इसमें ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्–तीनों ही मिले हुए हैं। इसमें अनेक आचार्योंके नाम मिलते हैं–अनक सामोंका भी वर्णन है। मन्त्रोंकी बड़ी सुन्दर मीमांसा की गयी है।

वंगानुवाद और सायण-भाष्यके साथ १८७८ में सत्यव्रत सामश्रमीने "**सामवेद-आरण्यक-संहिता**" छपायी थी। आर्चिक और उसके अवलम्ब पर गाये गये गीत आरण्यक कहाते हैं। यही "**छान्दोग्यारण्यक**" कहाता है। परन्तु गेय आरण्यकों और इन आरण्यकोंमें बहुत ही अन्तर है। दोनों दो वस्तुएँ हैं।

अथर्ववेदका कोई आरण्यक उपलब्ध नहीं है।

अप्राप्त ग्रन्थोंकी बात छोड़ भी दी जाय, तो भी प्राप्त संहिताओं (मन्त्रभाग), ब्राह्मणों, आरण्यकों और उपनिषदोंका सूक्ष्मतया अध्ययन करने पर स्पष्ट ज्ञात होगा कि चारोंका ऐसा अटूट सम्बन्ध है कि चारोंमें चारो सम्मिलित पाये जाते हैं। पहले कहा ही गया है कि ईशावास्योपनिषद् "माध्यन्दिन-संहिता" का अन्तिम अध्याय ही है। तैत्तिरीय-संहिताका शेषांश तैत्तिरीय ब्राह्मण है और तैत्तिरीय ब्राह्मणके अन्तिम भाग तैत्तिरीयारण्यक और तैत्तिरीयोपनिषद् हैं। मैत्रायणी और काठक संहिताओंमें तो अधिक ब्राह्मणादि अबतक सम्मिलित ही हैं। छान्दोग्योपनिषद्में ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् तीनों हैं। यही बात बृहदारण्यककी भी है। 'जैमिनीय ब्राह्मण'की बात तो अभी लिखी ही जा चुकी है।

साधारण क्रम यह मालूम पड़ता है कि संहिताका उत्तरांश ब्राह्मण है, ब्राह्मणका शेष आरण्यक है और आरण्यकका शेषांश उपनिषद् है। इस क्रमसे और विशेष क्रमसे भी ज्ञात होता है कि वेद-रूपी एक ही शरीरके सब अंश हैं। सबको लेकर वेद पूर्ण होता है। यही कारण है कि सनातनधर्मी इन मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् आदि चारों का वेदत्व और नित्यत्व मानते हैं। जैसे ऋग्वेदके मन्त्र यजुः, साम और अथर्वसंहिताओंमें पाये जाते हैं, वैसे ही ब्राह्मणोंमें भी पाये जाते हैं। जैसे ऋग्वेदीय ऋचाओं (मन्त्रों) को सामवेदमें गेय बनाया गया है, वैसे ही ब्राह्मणादिमें मन्त्रोंका निर्वचन किया गया है। फलतः ये चारो ही वेद हैं और चारोंके ही द्रष्टा, स्मारक तथा प्रचारक ऋषि-महर्षि हैं। आध्यात्मिक अर्थ करनेपर सभी ज्ञानमय हैं, अद्वैतवादी हैं, आधिदैविक अर्थ करनेपर सभी सकाम और निष्काम यज्ञ-परक हैं तथा आधिभौतिक अर्थ करनेपर सभीमें इतिहास सम्मिलित है।

निष्पक्ष दृष्टिसे देखनेपर इन चारोंमें ये तीनों ही अर्थ यथास्थान उपन्यस्त हैं और सायण आदि भाष्यकारोंने यथास्थान इन तीनों अर्थोंको लिखा भी है। तीनों अर्थोंको लिखते हुए भी भाष्यकारोंने वेदकी नित्यता स्वीकार की है।

नवम अध्याय

उपनिषद्-ग्रन्थ

'उप' शब्दका अर्थ समीप है और 'निषद्' का अर्थ बैठनेवाला है। इस तरह जो परम तत्त्व (ब्रह्म) के समीप पहुँचाकर बैठनेवाला ज्ञान है, उसे उपनिषद् कहते हैं। 'समीप पहुँचाने' का तात्पर्य है ब्रह्ममें विलीन करना और 'बैठनेवाले'का अभिप्राय है सदा स्थिर रहनेवाला। मथितार्थ यह है कि आत्माको ब्रह्म-रूपसे प्रतिष्ठित करनेवाले स्थिर ज्ञानको उपनिषद् कहा जाता है। इसीसे इसका एक नाम 'ब्रह्मविद्या' है। वेदका अन्तिम भाग होनेसे इसे 'वेदान्त' भी कहा गया है। उपनिषद् वैदिक संहिताओं का ही अंग है; इसलिये उपनिषद्को वेद भी कहा जाता है। जैसा कि कहा गया है, ईशावास्योपनिषद् शुक्ल यजुर्वेदीय माध्यन्दिन-संहिताका अन्तिम भाग है और कृष्ण-यजुर्वेदीय श्वेताश्वतर-संहिताका अन्त्य भाग श्वेताश्वतरोपनिषद् है। फलतः उपनिषद् वेद और वेदान्त दोनों है। इसे पराविद्या, मोक्षविद्या, ब्रह्म-विद्या, शान्तिविद्या, श्रेष्ठ विद्या और आर्य-संस्कृतिका मूलाधार आदि कितनी ही संज्ञाएँ दी गयी हैं।

जैसा कि कहा गया है, ऋग्वेदके दो ब्राह्मण अत्यन्त प्रसिद्ध हैं—कौषीतकि वा शांखायन और दूसरा ऐतरेय। कौषीतकि ३० अध्यायोंमें विभक्त है। इसमें यज्ञके सारे विवरण पाये जाते हैं। कुषीतक ऋषि इस ब्राह्मणके उपदेष्टा हैं। ब्राह्मण-ग्रन्थोंके जो भाग अरण्य वा वनमें पढ़ने योग्य हैं, उन्हें आरण्यक कहा जाता है। 'कौषीतकि-आरण्यक' के सब पन्द्रह अध्याय पाये जाते हैं, जिनमें तीसरेसे छठे अध्यायोंको **कौषीतकि-उपनिषद्** कहा जाता है। इसे

कौषितकि-ब्राह्मणोपनिषद् भी कहा जाता है। इसके प्रथम अध्यायमें चित्र गार्गायनि नामके क्षत्रिय राजाने उद्दालक आरुणि नामके विद्वान् ब्राह्मणको परलोककी शिक्षा दी है। द्वितीय अध्यायमें प्राणोंकी विविध उपासनाएँ, महाप्राण (ब्रह्म) की विवृति, पिता और पुत्रमें स्नेह-सम्बन्ध आदि हैं। तृतीय अध्यायमें इन्द्रने काशीराज दिवोदासको प्राण और प्रज्ञाके सम्बन्धमें उपदेश दिया है। चतुर्थ अध्यायमें काशीराज अजातशत्रु ने बालाकिको पर ब्रह्मका उपदेश दिया है।

ऐतरेय ब्राह्मणके ४० अध्याय हैं और सबमें सोमयज्ञोंका विस्तृत विवरण है। अन्तिम भागको ऐतरेयारण्यक कहते हैं, यह अभी कहा गया है।

ऐतरेय आरण्यकके पांच भाग हैं और एक-एक भागको एक-एक आरण्यक कहा गया है। द्वितीय आरण्यकके ४ से ६ अध्यायोंको '**ऐतरेय-उपनिषद्**' कहा जाता है। इसके प्रथम अध्यायमें सृष्टि, द्वितीयमें जीव-जन्म और तृतीयमें पर ब्रह्मकी बातें हैं। परन्तु ऋग्वेदकी कौषीतकि और ऐतरेय शाखाएँ नहीं मिलतीं।

सामवेदकी कौथुम-शाखाका ब्राह्मण चालीस भागोंका है। प्रथम २५ भागोंको ताण्ड्य वा पंचविंश-ब्राह्मण कहा जाता है, इसके आगेके ५ भागोंको षड्विंश-ब्राह्मण, इससे आगेके दो भागोंको मन्त्र-ब्राह्मण और अन्तिम ८ भागोंको **छान्दोग्योपनिषद्** कहा जाता है। 'ताण्ड्य-ब्राह्मण'में व्रात्योंका विवरण है। नैमिषारण्यके यज्ञ, कुरुक्षेत्र, कोशलराज 'पर आत्मा' तथा विदेहराज निमि साप्यकी भी बातें हैं। षड्विंश-ब्राह्मणमें प्रायश्चित्त, दुर्दैव, पीड़ा, शस्यनाश, भूकम्प आदिके निवारणकी बातें हैं। पंचविंश और षड्विंशके सारे यज्ञ श्रौत हैं। मन्त्र-ब्राह्मणमें गृह्य-यज्ञ अवश्य हैं। मन्त्र-ब्राह्मणके दो अध्यायों और छान्दोग्योपनिषद्के आठ अध्यायों—सब दस अध्यायोंको लोग 'छान्दोग्य-ब्राह्मण' भी कहते हैं। परन्तु लेखकको यहां अन्तिम आठ अध्यायोंसे ही मतलब है। इन्हें ही छान्दोग्योपनिषद् कहा जाता है और यह सामवेदकी तलवकार-शाखाकी उपनिषद् है। इसके

प्रथम और द्वितीय भागों वा प्रपाठकोंमें ओंकार, उद्गीथ और सामकी विस्तृत व्याख्या, विवृति तथा उपासना है। तृतीय प्रपाठकमें मधुनाड़ी, अमृतोपासना, पर ब्रह्मका विवरण आदि है। इसी प्रपाठकमें लिखा है कि 'घोर आंगिरस ऋषिसे धर्मोपदेश सुनकर देवकीनन्दन श्रीकृष्ण अपनी भूख-प्यास भूल गये थे।' चतुर्थ पाठकमें सत्यकाम जाबालिकी प्रसिद्ध कथा है। सत्यकामने प्रकृतिकी कार्य-परम्परा देखकर पर ब्रह्मका ज्ञान प्राप्त किया था। जानश्रुति, रैक्व, विविध अग्नियोंकी भी बातें हैं। पंचममें श्वेतकेतु आरुणेयने प्रवाहण जैबलि और अश्वपति कैकय नामके राजाओंसे ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त किया है। इसमें विभिन्न अग्नियोंकी विविध उपासनाएँ भी हैं। अश्वपतिके साथ औपमन्यव, सत्ययज्ञ, इन्द्रद्युम्न, बुडिल, उद्दालक आदिके संवाद भी हैं। छठेमें उद्दालक आरुणिसे उनके पुत्र श्वेतकेतु आरुणेय ने ब्रह्म-ज्ञानका लाभ किया है। त्रिवृत्करण, सृष्टि आदिकी बातें भी हैं। सातवेंमें नारदजीने सनत्कुमारसे नाम, वाक्य, मन, संकल्प, चित्त, ध्यान, विज्ञान, बल, जल, अन्न, तेज, आकाश, स्मरण, आशा, प्राण और ब्रह्मकी शिक्षा पायी है। इसमें सत्य, मति, श्रद्धा, निष्ठा, कृति, सुख, भूमा आदिका भी उपदेश है। आठवें प्रपाठकमें आत्मा, ब्रह्म, प्रजापति आदिका गम्भीर विचार है। इन्द्र और विरोचनकी सुप्रसिद्ध कथा भी इसी भागमें है। इस तरह इस उपनिषद्में अध्यात्मविद्याकी प्रायः सारी परम्परा और विवृति पायी जाती हैं। इसीसे यह उपनिषद् बड़ी हो पड़ी है और इसका इतना सम्मान है।

सामवेदकी तलवकार-शाखाको जैमिनीय-संहिता कहा जाता है—ऐसा अनेक वेद-ज्ञाताओंका मत है। जैमिनीय-संहिता छप चुकी है। जैमिनीय तलवकार-ब्राह्मणको डब्ल्यू० कैलैंडने प्रकाशित किया है। साथमें डच भाषामें अनुवाद भी है। इसमें भी ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्—तीनों ही हैं। तलवकार-ब्राह्मणके नवम अध्यायको 'तलवकारोपनिषद्', 'ब्राह्मणोपनिषद्' और 'केनोपनिषद्' भी कहा जाता है। सबसे पहले 'केन'

शब्द आनेसे इसका नाम केनोपनिषद् पड़ा। इसके चार खण्डोंमेंसे प्रथम दोमें परब्रह्मका निरूपण है। तृतीय-चतुर्थ खण्डोंमें भी ब्रह्मकी ही महिमा है। यहीं एक स्थलपर लिखा है कि 'ब्रह्म देवोंके निकट प्रकट हुए; परन्तु देवोंने उन्हें नहीं पहचाना। अन्तको हैमवती उमाने देवोंसे कहा—'ये ही ब्रह्म हैं। इन्हींके कारण तुम लोगोंकी इतनी महिमा है।' यह भी कहा गया है कि 'वायु, अग्नि आदि प्राकृत शक्तियां केवल ईश्वरीय शक्तिका विकास हैं।'

कृष्ण-यजुर्वेदीय तैत्तिरीय-संहिताका तैत्तिरीय-ब्राह्मण पृथक् छपा है। इस ब्राह्मणका अन्तिम भाग तैत्तिरीय-आरण्यक है। इसके दस प्रपाठकोंमेंसे ७ से ६ तकके प्रपाठकोंको **तैत्तिरीय उपनिषद्** कहा जाता है। इन तीनों प्रपाठकोंके तीन नाम हैं—शिक्षावल्ली, ब्रह्मानन्द-वल्ली और भृगुवल्ली। प्रथममें १२, द्वितीयमें ६ और तृतीयमें १० अनुवाक हैं। प्रथम बल्लीमें ओंकार, भूः, भुवः, स्वः शब्दोंकी पूरी निरुक्ति की गयी है और धार्मिक अनुष्ठानोंके सम्बन्धमें उपदेश दिये गये हैं। द्वितीयमें पर ब्रह्मकी बातें हैं। तृतीयमें वरुणने अपने पुत्रको उपदेश दिया है।

कृष्ण यजुर्वेदकी कठ-शाखाकी **कठोपनिषद्** है, जो दो अध्यायों और छः वल्लियोंमें विभाजित है। इसमें नचिकेता और यमराजके संवादके रूपमें बड़ी खूबीसे परम तत्त्वका रहस्य बताया गया है। मृत्यु-मन्दिरमें जाकर नचिकेताने परमात्म-शिक्षा प्राप्त की है। उपदेश इतने मार्मिक हैं कि सारी पुस्तक कण्ठस्थ करने योग्य है।

कृष्ण यजुर्वेदकी अनुपलब्ध श्वेताश्वतर-संहिताका ही एक अंश **श्वेताश्वतरोपनिषद्** है, जो बहुत प्रसिद्ध है। इसमें छः अध्याय हैं। प्रथम अध्यायमें परमात्म-साक्षात्कारका उपाय ध्यान बताया गया है। अगले अध्यायोंमें ध्यानकी सिद्धि, प्रार्थनाके प्रकार, ब्रह्ममहिमा, वेदान्त, सांख्य, योग आदिकी बातें हैं। भाषा बड़ी सरस है।

शुक्ल यजुर्वेदकी माध्यन्दिन-संहिता चालीस अध्यायोंमें विभक्त है। अन्तिम अध्यायको **ईशावास्योपनिषद्** कहा जाता है। इसके पहले मन्त्र-

में "ईशावास्यम्" आनेसे ही इसका यह नाम पड़ा है। माध्यन्दिनके ३९ अध्यायोंमें कर्मकाण्ड है और अन्तिममें इतनी मार्मिकता और स्पष्टतासे ज्ञान-परक ब्रह्म-निरूपण पाया जाता है कि सभी उपनिषदोंमें इसे प्रथम स्थान दिया गया है।

शुक्ल यजुर्वेदकी दो शाखाएँ उपलब्ध हैं—माध्यन्दिन और काण्व। दोनोंके ब्राह्मणोंका नाम शतपथ है। दोनोंके अन्तिम ६ अध्यायोंको बृहदारण्यक वा **बृहदारण्यकोपनिषद्** कहते हैं। दोनोंमें ही आरण्यक और उपनिषद्—दोनों मिले हुए हैं। इसीसे बृहदारण्यकोपनिषद् नाम पड़ा है। बृहत् महान्को कहते हैं। वस्तुतः यह उपनिषद् सबसे बड़ी है। आरण्यक-भागसे उपनिषद्-भाग अधिक है। दोनों विषयोंको अलग अलग करके छपानेकी आवश्यकता है।

इसके प्रथम अध्यायमें सृष्टि और उसके कर्त्ताका विचार है। द्वितीय में गार्ग्य बालाकिने काशीराज अजातशत्रुसे ब्रह्मविद्याका उपदेश लिया है। इसीमें मधुविद्याका उपदेश दिया गया है और प्रसिद्ध याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी-संवाद भी इसीमें है। तृतीयमें वर्णन आया है कि राजा जनकने एक बडी विद्वत्परिषद् बुलायी थी, जिसमें कुरु, पाञ्चाल आदिके दिग्गज विद्वान् आये थे; परन्तु सभीको जनक-पुरोहित याज्ञवल्क्यने शास्त्रार्थमें परास्त करके राज-पुरस्कार प्राप्त किया। सभामें परम विदुषी गार्गी वाचक्नवी भी आयी थीं। परन्तु उन्हें भी याज्ञवल्क्यने हरा दिया। चतुर्थ अध्यायमें जनक और याज्ञवल्क्यमें ब्रह्मकी आलोचना और याज्ञवल्क्यके द्वारा जनकको उपदेश है। इसीमें याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी-संवाद है। मैत्रेयीको ब्रह्म-सम्बन्धी उपदेश दिये गये हैं। पञ्चममें ब्रह्म, प्रजापति, वेद, गायत्री आदिकी बातें हैं। षष्ठ अध्यायमें प्रवाहण जैबलिने उद्दालक आरुणिको ब्रह्मका उपदेश दिया है। अनन्तर उद्दालकने याज्ञवल्क्यके पास आकर कहा—"सूखे काठको भी यदि अमृतमय उपदेश दिया जाय, तो उसमेंसे भी टहनियां और हरे पत्ते निकल आवें।"

कृष्ण यजुर्वेदकी मैत्रायणी और काठक संहिताओंमें जैसे ब्राह्मण सम्मिलित हैं, वैसे ही बृहदारण्यक और छान्दोग्य उपनिषदोंमें ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्–तीनों ही सम्मिलित हैं।

अथर्ववेदकी पैप्पलादशाखाके ब्राह्मण, आरण्यक, कल्पसूत्र आदि तो नहीं मिलते ; परन्तु **प्रश्नोपनिषद्** नामकी इसकी उपनिषद् मिलती है। इसमें पिप्पलाद ऋषिने सुकेशा, भार्गव, आश्वलायन, सौर्यायणी, सत्यकाम और कबन्धी आदि ६ ऋषियोंके ६ प्रश्नोंके क्रमशः उत्तर दिये हैं : इसलिय इसका नाम प्रश्नोपनिषद् पड़ गया। सब उत्तर ब्रह्मपरक ही हैं।

अथर्ववेदकी शौनकशाखाकी उपनिषद् **मुण्डकोपनिषद्** कही जाती है। इसमें तीन मुण्डक हैं और प्रत्येक मुण्डकमें दो खण्ड हैं। सबमें ब्रह्मविद्या, जगदुत्पत्ति, अग्निहोत्र, ब्रह्म-स्वरूप, ब्रह्मकी प्राप्ति आदि विषय हैं।

माण्डूक्योपनिषद् भी अथर्ववेदीय कहाती है–यद्यपि ऋग्वेदकी शाखाओं में एक माण्डुकेय शाखाका नाम आता है। इसमें सब बारह ही मंत्र हैं और सबमें ओंकार, ब्रह्म आदिका रहस्य बताया गया है।

मुण्डक और माण्डूक्य उपनिषदें अथर्ववेदके किस ब्राह्मण वा आरण्यक की हैं–इसकी खोज होनी चाहिये। अथर्ववेदका कोई भी आरण्यक उपलब्ध नहीं है। अथर्ववेदके उपलब्ध एक मात्र शौनक-शाखीय गोपथ-ब्राह्मणमें तो इन दोनों उपनिषदोंका पता नहीं है। परन्तु ये ही नहीं, अथर्व-वेदके नामपर प्रचलित ऐसी अनेकानेक उपनिषदें हैं, जिनका अथर्ववेद से कोई खास सम्बन्ध नहीं दिखाई देता। इस दिशामें विद्वानोंको अन्वेषण करना चाहिये।

उपनिषदें तो सब २२० पायी जाती हैं ; परन्तु उपर्युक्त बारह ही विशेष प्रसिद्ध और प्रामाणिक मानी जाती हैं। ये हिन्दूधर्मकी ज्ञान-काण्डकी मूल पुस्तकें हैं। यही कारण है कि आचार्य शंकरने स्वयं इन सबपर भाष्य लिखा है। इन अद्वैतवादी श्रीशंकराचार्यके शिष्योंने भी

इनपर अनेकानेक भाष्य-टीकाएं लिखी हैं। विशिष्टाद्वैतवादी रामानुजाचार्य, द्वैताद्वैतवादी निम्बार्काचार्य, विशुद्धाद्वैतवादी बल्लभाचार्य और द्वैतवादी मध्वाचार्यने अथवा इनके शिष्य-प्रशिष्योंने इन १२ उपनिषदोंपर भाष्य-टीकाएं लिखी हैं। जिस सम्प्रदायकी टीका इनपर नहीं होती थी, उसकी प्रतिष्ठा भी नहीं होती थी। जो सम्प्रदाय समाजमें अपनी प्रतिष्ठा और प्रामाणिकता स्थापित करना चाहता था, उसे इन १२ उपनिषदोंके द्वारा अपने मत वा सम्प्रदायको समर्थित और अनुमोदित करना पड़ता था। इससे उपनिषदोंकी अपूर्व महत्ता सूचित होती है। उपनिषदोंकी भाषा इतनी सरस-सुन्दर है और इनके उपदेश इतने भव्य और दिव्य हैं कि असंख्य मनुष्योंने इनसे विमल शान्ति प्राप्त की है और बड़े बड़े मनीषियोंने ब्रह्मानन्दकी मन्दाकिनीमें गोते लगाये हैं।

यूरोपके बड़े बड़े विद्वानोंके मतसे भी उपनिषदें ज्ञान, शान्ति, मानव-संस्कृति आदिकी जननी हैं। वे भी हमारी ही तरह उपनिषदोंपर आसक्त हैं।

बादशाह शाहजहांके पुत्र दाराशिकोह तो उपनिषदोंपर इतना मुग्ध हुआ कि उसने कई उपनिषदोंका १६५७ ई० में फारसीमें अनुवाद करा डाला। इसी फारसी अनुवादके फ्रेंच अनुवादको देखकर जर्मन विद्वान् शोपेनहरने लिखा है—'सम्पूर्ण विश्वमें उपनिषदोंके समान जीवनको ऊंचा उठानेवाला कोई भी पाठ्य ग्रन्थ नहीं है।' आगे इसी विद्वान्ने लिखा है—'औपनिषद सिद्धान्त एक प्रकारसे अपौरुषेय ही हैं। ये जिनके मस्तिष्ककी उपज हैं, उन्हें केवल मनुष्य कहना कठिन है।' मैक्समूलर साहबने शोपेनहरका हार्दिक समर्थन किया है। पाल डासन नाम के जर्मन विद्वान्ने उपनिषदोंका गहन अध्ययन करके "Philosophy of The Upanishads" नामकी एक पुस्तक लिखी है। आपका मत है कि 'उपनिषदोंमें जो दार्शनिक कल्पना है, वह भारतमें तो अद्वितीय है ही; सम्भवतः सारे विश्वमें अतुलनीय है।' मैकडानलने कहा है—

'मानवीय चिन्तनाके इतिहासमें पहले पहल बृहदारण्यक उपनिषद्में ही ब्रह्म अथवा पूर्ण तत्त्वको ग्रहण करके उसकी यथार्थ व्यञ्जना हुई है।' फ्रेडरिक श्लेगलने तो इतनी दूर तक कहा है कि 'उपनिषदोंके सामने यूरोपीय तत्त्वज्ञान प्रचण्ड मार्त्तण्डके सामने टिमटिमाता 'दिया' है।' इसी प्रकार फ्रेंच विद्वान् कजिंस, ऐंड्रूज हक्स्ले आदि संसारके सम्पूर्ण ज्ञानका मूल उपनिषदोंको बता गये हैं।

वस्तुतः उपनिषदोंसे जीवनको एक अपूर्व प्रेरणा मिलती है। उनके मन्त्र प्रगतिशील और जागरूक हैं। उपनिषद् साधारण जन तकको बराबर सतर्क करती रहती है—

"उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य वरान्निबोधत।"

अर्थात् 'उठो, जागो और बड़ोंके पास जाकर सीखो'—ऐसा ज्ञान प्राप्त करो कि अमर हो जाओ।

दशम अध्याय

उपनिषद् और अद्वैतवाद

"**वेदान्तसार**" में सदानन्द योगीन्द्रने लिखा है–

"**वेदान्तो नाम उपनिषत्प्रमाणं तदुपकारीणि शारीरकसूत्रादीनि च।**"

अर्थात् मुख्य और गौड़के भेदसे 'वेदान्त' शब्दके दो अर्थ हैं। वेदका अन्त वेदान्त है, इस व्युत्पत्तिके अनुसार वेदान्त शब्दका मुख्य अर्थ उपनिषद् है और उपनिषद्के अर्थ-बोधके अनुकूल अथवा उसमें सहायक शारीरक-सूत्र आदि तथा उपनिषदर्थ-संग्राहक भागवतगीता आदि गौण अर्थ है। अतः प्रमुख वेदान्त उपनिषद्को ही जानना चाहिये।

मंत्रभागीय उपनिषदोंमें मंत्र-स्वर और ब्राह्मण-भागीय उपनिषदोंमें ब्राह्मण-स्वर रहते हैं और इसीके अनुसार इनका अध्ययन भी किया जाता है। आचार्य शंकरने ऐसा लिखा है। यही शिष्ट-प्राणाली भी है। प्रायः सारे वैदिक साहित्यका अर्थ स्वराधीन होता है। 'स्वरमुक्तिवादी' एक वैदिक सम्प्रदाय भी है।

वेदान्ताचार्योंने आगे चलकर वेदान्तशास्त्रको तीन प्रस्थानोंमें विभक्त किया है–श्रुति, स्मृति और न्याय। उपनिषद्भाग श्रुति-प्रस्थान है, भागवतगीता, सनत्सुजात-संहिता आदि स्मृति-प्रस्थान हैं और ब्रह्मसूत्र आदि न्याय-प्रस्थान हैं।

वेदका ज्ञानकाण्ड होनेसे उपनिषद्को **ब्रह्मविद्या** कहा जाता है। ब्रह्म-विद्या ही परा विद्या वा श्रेष्ठ विद्या है। उपनिषदोंमें जो ब्रह्मविषयक विज्ञान प्रतिपादित किया गया है, वही परा विद्या है। शेष कर्म-विषयक विज्ञान

अपरा विद्या है। इसे कर्म-विद्या भी कहते हैं। कर्मविद्या तत्काल फल नहीं देती, कालान्तरमें उसका फल मिलता है। कर्मफल विनाशी भी होता है। इसके विपरीत ब्रह्मविद्या तत्काल फल देती है और यह फल अविनाशी होता है। इसीलिये ब्रह्मविद्या श्रेष्ठ है। यही ब्रह्मविद्या मुक्तिका एकमात्र कारण है। कर्म-विद्या मुक्तिका कारण नहीं है; ब्रह्मविद्याकी प्राप्तिमें हेतु अवश्य है। इसीलिये कहा गया है कि 'जो ब्रह्मविद्या अथवा आत्मतत्त्व-ज्ञान नहीं जानता, वह परमात्माको नहीं जान सकता'—

"नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम्।"

'जो वेदका ज्ञाता नहीं है, वह उस ब्रह्मको नहीं समझ सकता।' उपनिषद् वेद है, यह पहले ही कहा गया है।

श्रीशंकराचार्यके मतसे अद्वैतवाद ही सारी उपनिषदोंका तात्पर्य है। एक ब्रह्म ही परमार्थ सत्य है। दृश्यमान जगत् परमार्थ सत्य नहीं है; सपनेमें देखे गये पदार्थकी तरह मिथ्या है। जीवात्मा और ब्रह्म एक ही हैं, दो नहीं। यही उपनिषत्-सिद्धान्त है। इसी सिद्धान्तको एक श्लोकार्द्धमें कहा गया है—

"श्लोकार्द्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः॥"

परन्तु शंकराचार्यसे विरुद्ध मत रखनेवाले कहते हैं कि 'द्वैतवाद ही प्राचीन सिद्धान्त है, अद्वैतवाद तो नवीन सिद्धान्त है, जिसके जन्मदाता शंकराचार्य हैं। इनके पहले अद्वैतवाद था ही नहीं।' परन्तु बात ऐसी नहीं है। अद्वैतवाद प्राचीन ही नहीं, प्राचीनतम वाद है। ऋग्वेदके प्रसिद्ध 'नासदीय सूक्त'में द्वैतवादका तो नामोल्लेख नहीं है। छान्दोग्योपनिषद् (६.२.१) और बृहदारण्यकोपनिषद् (४.४.१९) में स्पष्ट ही अद्वैतवादका वर्णन है। सांख्य-सूत्रों (१.२१—२४) में अद्वैतवाद वेदान्त-मत माना गया है। न्यायसूत्रके **"तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः"** सूत्रके भाष्यमें भी अद्वैतवाद वेदान्त-सिद्धान्त स्वीकृत हुआ है। कविवर भवभूतिकी—

"एको रसः करुण एव विवर्तभेदात्।"

तथा--

"ब्रह्मणीव विवर्तानां क्वापि विप्रलयः कृतः॥"

--अनेक उक्तियोंमें अद्वैतवादका सिद्धान्त उपलब्ध होता है। पुराणोंमें तो जहां कहीं भी वेदान्तका उल्लेख है, वहां अद्वैतवादके सिद्धान्तका ही प्रतिपादन हुआ है। 'सूत-संहिता' और 'योगवासिष्ठ' जैसे प्राचीन ग्रन्थोंमें अद्वैतवाद भरा पड़ा है। 'नैषधचरित' (२१.८८)) में तो बुद्धको भी 'अद्वयवादी' कहा गया है। शान्तरक्षितके 'तत्त्वसंग्रह' (३२८.१२९) में अद्वैतवादका उल्लेख है। दिगम्बराचार्य समन्तभद्रने 'आप्तमीमांसा' (२४ श्लोक) में अद्वैतवादकी चर्चा की है। स्थान-संकोचके कारण इस प्रकारकी उक्तियोंका यहां अधिक उल्लेख नहीं किया जा सकता। मुख्य बात यह है कि अद्वैतवाद अत्यन्त प्राचीन सिद्धान्त है और अनेक आचार्योंके मतसे तो यह अनादि सिद्धान्त है।

अद्वैतवादके विरोधी अपने पक्षके समर्थनमें कठोपनिषद्का यह मन्त्र उपस्थित करते हैं--

"ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके,
गुहां प्रविष्टौ परमे परार्द्धे।
छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति,
पंचाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः॥"

('इस शरीरमें एक अपने कर्मका फल भोग करता है और दूसरा भोग कराता है। दोनों ही हृदयाकाश और बुद्धिमें प्रविष्ट हैं। इनमें एक (जीवात्मा) संसारी है, दूसरा (परमात्मा) असंसारी है। इसलिये ब्रह्मज्ञाता और गृहस्थ इन दोनोंको छाया और आतप (धूप) के समान विलक्षण कहते हैं।')

अद्वैतवादके खण्डनमें दूसरा प्रमाण यह (ऋग्वेद १.१६४.१६) दिया जाता है--

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥"

अर्थात् 'सहचर और सखा दो पक्षी एक वृक्षका आश्रय करके रहते हैं। उनमेंसे एक नानाविध फलका भक्षण करता है और दूसरा कुछ नहीं खाता, केवल देखता है।'

इस मंत्रसे स्पष्ट जाना जाता है कि यह शरीर वृक्ष है और जीवात्मा तथा परमात्मा पक्षी हैं—सुख-दुःख-भोग ही फल-भक्षण है।

द्वैतवादी कहते हैं कि 'जीवात्मा और परमात्मा एक नहीं हैं, परस्पर भिन्न हैं—इस विषयमें उक्त दोनों मन्त्र अकाट्य प्रमाण हैं। द्वैतवादके समर्थन में इन मंत्रोंसे बढ़कर उत्कष्ट प्रमाण नहीं मिल सकता—किसी भी उपनिषद् में इन मंत्रोंके सामान द्वैतवादका स्पष्ट समर्थन नहीं है।' अवश्य ही ऊपरसे देखने-सुननेमें ऐसा ही विदित होता है; परन्तु गहराईमें उतर कर विचार करने पर ज्ञात होता है कि इन मंत्रोंमें न तो द्वैतवादका समर्थन है, न अद्वैतवादका खण्डन ही है। क्यों और कैसे? नीचेकी पंक्तियोंको पढ़कर पाठक ही निर्णय करें।

अद्वैतवादी भी द्वैतप्रपंचका सर्वांशतः अपलाप नहीं करते; वे भी शास्त्र मानते हैं; गुरु-शिष्य-रूपसे आत्मविद्याका अनुशीलन करते हैं, सत्त्व-शुद्धिके लिये कर्म करते हैं और चित्तकी एकाग्रताके लिये उपासना करते हैं। वे उपास्य-उपासक-रूपसे जीव-ब्रह्मका औपाधिक भेद स्वीकार करते हैं और आत्म-साक्षात्कारके लिये योगमार्गका आश्रय ग्रहण करते हैं। वे केवल द्वैत-प्रपंचकी सत्यता और पारमार्थिकता को स्वीकार नहीं करते। वे कहते हैं—'यह द्वैतप्रपंच व्यावहारिक और माया-मय है तथा अद्वैत ही पारमार्थिक सत्य है।' इसलिये अद्वैतवादियोंके मतसे भी उपनिषदोंमें द्वैतप्रपंचका उल्लेख हो सकता है। परन्तु द्वैत-प्रपंच सत्य है, ऐसा उपदेश किसी भी उपनिषद्का नहीं है। हां, द्वैतप्रपञ्चका माया-

मयत्व उपनिषदोंमें अवश्य ही उपदिष्ट है। उपनिषद्का स्पष्ट ही आदेश है—'माया द्वारा परमेश्वर अनेक रूपोंमें दृष्ट होते हैं'—

"इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते।"

कठोपनिषद्के "ऋतं पिबन्तौ" मंत्रमें आत्माका उपाधि-भेदसे, जीवात्मा और परमात्माके रूपमें, भेद प्रतिपादित किया गया है—जीवात्मा और परमात्मा वस्तुतः भिन्न हैं, यह नहीं कहा गया है। इस मंत्रमें भेदका सत्यता-बोधक कोई भी शब्द नहीं है। इस मंत्रका प्रसंग देखनेसे बात स्पष्ट हो जायगी।

मृत्युने नचिकेताको तीन वर देनेका वचन दिया था। इसके अनुसार नचिकेताने प्रथम वरमें पिताकी अनुकूलता मांगी और द्वितीय वरमें अग्नि-विद्याके लिये प्रार्थना की। दोनों वरोंके मिल जाने पर नचिकेताने पुनः प्रार्थना की, 'कृपया मुझे यह समझा दीजिये कि आत्मा देहेन्द्रियोंसे भिन्न है कि नहीं।' मृत्युने अनेक प्रलोभन दिखाकर नचिकेताको इस वर-प्रार्थनासे निवृत्त होनेका अनुरोध किया; परन्तु नचिकेता किसी भी प्रलोभन में नहीं आये—उन्होंने एक भी नहीं सुनी। नचिकेताकी निःस्पृहता देखकर मृत्युने उनकी बड़ी प्रशंसा की और 'आत्मज्ञान' होने पर परम पुरुषार्थ सिद्ध हो जाता है, यह भी कहा। नचिकेताने कहा—'आत्माका यथार्थ स्वरूप क्या है?' इसके उत्तरमें मृत्युने आत्माकी देहेन्द्रियभिन्नता बतायी और आत्माके यथार्थ स्वरूपकी व्याख्या की। आत्मा क्योंकर अपने यथार्थ स्वरूपको जान सकता है, यह भी मृत्युने बताया। नचिकेताके प्रश्नके उत्तरमें 'ऋतं पिबन्तौ' मन्त्र मृत्युकी उक्ति है।

नचिकेताने पूछा था जीवात्माका विषय। तब यमराज वा मृत्यु परमात्माका विषय कैसे कहने लगती? यह तो अप्रासंगिक होता। जीवात्माका यथार्थ स्वरूप परमात्माके यथार्थ स्वरूपसे भिन्न नहीं है; जीवात्मा और परमात्मा एक ही हैं; केवल उपाधिभेदसे, घटाकाश, मठा-

काश आदिकी तरह, दोनोंका भेद मालूम पड़ता है। जीवात्माका संसारीपन अविद्याकृत है। अविद्याके अभावके कारण परमात्मामें संसारीपन नहीं है। इन्हीं अभिप्रायोंसे नचिकेताके जीवात्म-विषयक प्रश्नके उत्तरमें मृत्युने जीवात्मा और परमात्माकी बात कही। नचिकेताका प्रश्न यह है–

"येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं वराणामेष वरस्तृतीयः॥"

('कोई कहता है, मृत्युके अनन्तर भी देहातिरिक्त आत्माका अस्तित्व रहता है और कोई कहता है, नहीं। यह भारी संशय है। तुम्हारे उपदेशसे मैं इसे जानना चाहता हूं। यह मेरा तीसरा वर है।')

इसका उत्तर पानेके पहले ही नचिकेता परमात्मविषयक एक और असंगत प्रश्न कैसे कर बैठते? मृत्यु तो इसी प्रश्नको जटिल समझती थी। इसी बीच परमात्मसम्बन्धी एक अन्य महान् विकट प्रश्न कैसे किया जा सकता था? मृत्युने उक्त प्रश्नको ही सुनकर उत्तर देनेमें बड़ी आना-कानी की। मृत्युने स्पष्ट ही कहा–'यह दुर्विज्ञेय है, देवोंको भी इस विषयमें सन्देह हो जाता है। इसलिये इसके उत्तरके लिये आग्रह मत करो–दूसरा वर मांगो।' इस तरह मृत्युने उत्तर देनेमें बड़ी आपत्ति की; प्रलोभन तक दिखाकर अन्य वर मांगनेको बहुत तरहसे अनुरोध किया। परन्तु नचिकेता जरा भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने स्पष्ट ही कहा–"जिस विषयमें देवता भी सन्दिहान हैं और जो दुर्विज्ञेय है, उस विषयमें तुम्हारे समान न तो कोई उत्तरदाता ही मिलेगा, न इसके बराबर कोई दूसरा वर ही होगा। इसलिये चाहे यह वर कितना भी दुर्विज्ञेय हो, इसके सिवा मैं अन्य वर नहीं मांग सकता।'

मृत्युने नचिकेताकी दृढ़ता और लोभशून्यता देखकर उनकी, उनके प्रश्नकी और आत्मतत्त्वज्ञानकी प्रशंसा की। अनन्तर नचिकेताने आत्माका परमार्थ-स्वरूप जानना चाहा। आत्माके यथार्थ रूपको जाननेका

अनुरोध करना प्रकारान्तरसे पूर्व प्रश्नका व्याख्यान मात्र है। यह इस प्रकार कि आत्माके देहादि-स्वरूप होने पर मृत्युके पश्चात् आत्माका अस्तित्व नहीं रह सकता और देहादिसे भिन्न होने पर मरणानन्तर भी आत्माका अस्तित्व रह सकता है। परन्तु नचिकेताकी यथार्थ आत्मस्वरूपकी जिज्ञासां परमात्म-विषयक प्रश्न है, यह कल्पना नितान्त अलीक है; कारण, मृत्यु प्रार्थित वरको 'दुर्विज्ञेय' कह कर उत्तर प्रदान करनेमें ही जब कि आपत्ति करती है, तब नचिकेताका एक अन्य दुर्विज्ञेय प्रश्न कर बैठना असम्भव है—यह बात पहले ही लिखी जा चुकी है। मृत्युने नचिकेताको जिस प्रकार उत्तर दिया है, उसकी सूक्ष्मतया परीक्षा करने पर स्पष्ट ही ज्ञात होता है कि जीवात्मा और परमात्मा एक ही हैं, भिन्न नहीं; मृत्युको यही अभिप्रेत है। आगे दिये जानेवाले उत्तरके आरम्भमें मृत्युने कहा है—

"सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्।"
(कठ० १.२.१५)

('जिस पदका प्रतिपादन सारे वेद करते हैं, जिस पद-प्राप्तिका साधन सारी तपस्याएँ हैं और जिस स्थानकी प्राप्तिके लिये ब्रह्मचर्यका पालन किया जाता है, मैं संक्षेपसे वही पद कहता हूं। वह है ओंकार।')

ओंकार ईश्वरका नाम और प्रतीक है। श्रुतिका यही मत है। योगी याज्ञवल्क्यने कहा है—

"वाच्यः स ईश्वरः प्रोक्तो वाचकः प्रणवः स्मृतः।"

'प्रणव वा ओंकार परमात्माका प्रतिपादक है।' ठीक ऐसा ही योग-दर्शनमें पतञ्जलि ऋषिने भी कहा है—**'तस्य वाचकः प्रणवः।'** आगे चलकर मृत्युने जीवात्मा और परमात्माकी अभिन्नता दिखायी है। यही उचित उत्तरका क्रम है।

यदि नचिकेताने जीवात्म-विषयक प्रश्नका उत्तर पानेके पहले ही परमात्मविषयक असंगत प्रश्न किया होता, तो मृत्युने जीवात्मविषयक उत्तर देनेके बाद परमात्मविषयक उत्तर दिया होता। तब यह कैसे सम्भव था कि पहले ही परमात्म-सम्बन्धी बातें कह दी जातीं और पृथक् रूपसे जीवात्माका उल्लेख तक नहीं होता ?

आगे चलकर तो इसी उपनिषद्में द्वैतवादका खण्डन भी है—

"मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किञ्चन।
मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति॥"
(२.१.११)

('शास्त्र और आचार्यके द्वारा सुसंस्कृत मनसे ही ब्रह्मकी प्राप्ति होती है। इस ब्रह्ममें अणु मात्र भी भेद नहीं है। जो ब्रह्ममें भेद या नानापन देखता है, वह बार बार मृत्युको प्राप्त होता है।')

कठवल्लीको द्वैतवाद अभीष्ट रहता, तो यहां उसका खण्डन क्यों किया जाता? परस्पर विरोध कैसे उपस्थित होता? इसलिये यह निष्कर्ष निकला कि कठोपनिषद्का प्रतिपाद्य अद्वैतवाद है, द्वैतवाद नहीं।

ऋग्वेद और मुण्डकोपनिषद्का 'द्वा सुपर्णा' मंत्र भी द्वैतवादका प्रतिपादक नहीं है। यह भी 'ऋतं पिबन्तौ' की तरह ही है। 'द्वा सुपर्णा' मंत्र जीवात्म और परमात्माके भेदका 'अकाट्य' प्रमाण तो क्या होगा, साधारण प्रमाण कोटिमें भी नहीं आता। आश्चर्य है कि कुछ द्वैतवादी धीर-गम्भीर शैलीसे इसपर विचार नहीं करते।

वस्तुतः यह मन्त्र अन्तःकरण (सत्त्व) और जीवात्माका प्रतिपादक है। **"पैंगि-रहस्य"** **ब्राह्मणमें** इसकी व्याख्या इस तरह की गयी है—

"तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्तीति सत्त्वम् अनश्नन्नन्योऽभिचाकशीत्यनश्नन्नन्योऽभिपश्यति क्षेत्रज्ञस्तावेतौ सत्त्वक्षेत्रज्ञाविति।"

अर्थात् 'तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति' से सत्त्व वा अन्तःकरणका फल-भोक्तृत्व कहा गया है। 'अनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति' से जीवात्मा-को द्रष्टा कहा गया है। इस लिये यह मंत्र जीवात्मा और परमात्माका नहीं—अन्तःकरण और जीवात्माका प्रतिपादक है।

इसी ब्रह्माणमें आगे चलकर कहा गया है——

"तदेतत्सत्त्वं येन स्वप्नं पश्यति। अथ योऽयं शारीर उपद्रष्टा क्षेत्रज्ञस्तावेतौ सत्त्वक्षेत्रज्ञाविति।"

('जिसके द्वारा स्वप्न देखा जाता है, उसका नाम सत्त्व वा अन्तःकरण है। जो 'शारीर' वा जीवात्मा द्रष्टा है, उसका नाम क्षेत्रज्ञ है।') अचेतन अन्तः-करणका भोक्तृत्व कैसे संभव है, इसका उत्तर शंकराचार्यने यों दिया है—

"नेयं श्रुतिरचेतनस्य सत्त्वस्य भोक्तृत्वं वक्ष्यामीति प्रवृत्ता, किन्तर्हि? चेतनस्य क्षेत्रज्ञस्याभोक्तृत्वं ब्रह्मस्वभावतां च वक्ष्यामीति। तदर्थं सुखादि-विक्रियावति सत्त्वे भोक्तृत्वमध्यारोपयति।"

अर्थात् अचेतन अन्तःकरणका भोक्तृत्व बताना मंत्रका उद्देश्य नहीं है। चेतन क्षेत्रज्ञका अभोक्तृत्व और ब्रह्मस्वभावत्वका प्रतिपादन करना ही मंत्रका लक्ष्य है। इसी अभोक्तापन और ब्रह्मकी स्वभावताको समझानेके लिये क्षेत्रज्ञके उपाधिभूत और सुखादिक विकारसे युक्त अन्तःकरणमें भोक्तृत्वका आरोप किया गया है; क्योंकि अन्तःकरण और क्षेत्रज्ञके अविवेकके कारण क्षेत्रज्ञमें कर्तृत्व और भोक्तृत्वकी कल्पना की जाती है। सुखादिक विकारोंसे युक्त सत्त्व (अन्तःकरण) में चित्प्रतिबिम्ब पतित होने पर चित्का भोक्तृत्व मालूम पड़ता है। फलतः यह अविद्याजन्य है, पारमार्थिक नहीं।

कदाचित् यहां यह लिखनेकी आवश्यकता नहीं कि वेदमंत्रोंका यथार्थ अर्थ समझनेके लिये कितनी धीरता, सावधानता और बहुदर्शिताकी आव-श्यकता होती है और इस दिशामें जरा-सी भी त्रुटि कितना बडा अनर्थ कर सकती है।

वेद-वेत्ताओंके मतसे जो वाक्य जीवके ब्रह्मभावका बोधक है, वही वाक्य जीव और ब्रह्मके भेदका बोधक मालूम पड़ जाता है–अर्थका अनर्थ उपस्थित कर देता है। इसीलिये वेदमंत्रोंका रहस्य समझनेवालोंने कहा है–

"बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति।"

'अल्पविद्य (नीम हकीम) से वेद इसलिये डरता है कि यह मुझे मार डालेगा।' वेदज्ञोंने और भी कहा है–

"पौर्वापर्यपरामृष्टः शब्दोऽन्यां कुरुते मतिम्।"

'पूर्वापरकी आलोचना नहीं करनेसे शब्द विपरीत अर्थबोधका कारण होता है।'

एक बात और। बन्ध्या पुत्र, कूर्मरोम, शशशृंग वा गगन-कमलिनी के समान द्वैत-प्रपंचको अद्वैतवादी तुच्छ वा अलीक नहीं कहते। वे केवल इतना ही कहते हैं कि 'जैसे मनुष्यके निद्रादोषके कारण स्वप्नमें देखा गया पदार्थ मिथ्या है, वैसे ही अविद्यारूप दोषके कारण जाग्रदवस्थामें देखा गया पदार्थ भी मिथ्या है। एक मात्र ब्रह्म ही परमार्थ सत्य है।' ब्रह्मके अतिरिक्त कोई भी पदार्थ 'परमार्थ सत्य' नहीं है। परन्तु पारमार्थिक सत्ता नहीं होने पर भी संसारी पदार्थोंकी व्यवाहारिक सत्ता और स्वप्नमें देखे पदार्थोंकी प्रातिभासिक सत्ता है। सपनेमें देखे गये पदार्थ जैसे स्वप्न-कालमें यथार्थ मालूम पड़ते हैं, वैसे ही जागतिक पदार्थ व्यवहार-दशामें यथार्थ ज्ञात होते हैं। ब्रह्मवादियोंने कहा ही है–

"देहात्मप्रत्ययो यद्वत् प्रमाणत्वेन कल्पितः।
लौकिकं तद्वदेवेदं प्रमाणं त्वात्मनिश्चयात्॥"

अर्थात् 'शरीरमें आत्मबुद्धि वस्तुतः मिथ्या है, तो भी देह-भिन्न आत्माके ज्ञानके पहले सत्य विदित होती है। इसी तरह सारी लौकिक वस्तुओंके मिथ्या होने पर भी आत्म-निश्चय तक वे सच्ची मालूम पड़ती हैं।' **'ज्ञाते द्वैतं न विद्यते'**–'आत्मतत्त्वज्ञान होने पर द्वैत नहीं रहता।'

निष्कर्ष यह है कि व्यवहार–दशामें अद्वैतवादी भी जीवेश्वर-भेद, द्वैत-प्रपञ्च तथा परमात्मा और जीवात्माका उपास्य-उपासक-भाव स्वीकार करते हैं। वेदान्तवेत्ताओंने ठीक ही कहा है–

"मायाख्यायाः कामधेनोर्वत्सौ जीवेश्वरावुभौ।
यथेच्छं पिबतां द्वैतं तत्त्वं त्वद्वैतमेव हि॥"

('माया नामकी कामधेनुके दो बछड़े हैं–जीव और ईश्वर। ये दोनों इच्छानुसार द्वैतरूप दुग्धका पान करें; परन्तु परमार्थ-तत्त्व तो अद्वैत ही है।')

पारमार्थिक और व्यावहारिक भावोंके उदाहरण संसारमें भी देखे जाते हैं। जिसके साथ वास्तविक आत्मीयता नहीं है, उसके साथ भी लोग बाध्य होकर आत्मीयके समान व्यवहार करते हैं। यह केवल व्यावहारिक आत्मीयता है, पारमार्थिक नहीं। अगले मंत्रमें इस बातको बड़ी स्पष्टतासे कहा गया है–

"यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति।
यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत् तत् केन कं पश्येत्॥"

('जब तक द्वैत रहता है, तब तक एक दूसरेको देखता है और जब सारे पदार्थ आत्मरूप हो जाते हैं, तब कौन किसको देख सकता है?')

मुख्य बात यह है कि अद्वैतवाद और व्यावहारिक द्वैतवाद, दोनों ही वेद-सम्मत हैं। इसलिये उपनिषदोंमें उपास्य-उपासक-भावसे परमात्मा और जीवात्माका निर्देश रहना कुछ विचित्र बात नहीं है। व्यावहारिक द्वैतावस्था माननेके कारण उपनिषदोंके द्वैतवादी वाक्योंके द्वारा अद्वैतवादका खण्डन नहीं हो सकता। व्यावहारिक द्वैतावस्था अद्वैतावस्थाकी विरोधिनी हो ही नहीं सकती।

फलतः अद्वैतवादके सम्बन्धमें द्वैतवादियोंकी आपत्तियां निर्मूल हैं और उपनिषदोंके अनुसार अद्वैतवाद ही परमार्थ सत्य है। किसी भी उपनिषद्के किसी भी मंत्रसे द्वैतवाद 'परमार्थ सत्य' सिद्ध नहीं होता।

एकादश अध्याय

उपनिषदोंके अनूठे उपदेश

उपनिषदोंका एक नाम ब्रह्म-विद्या है। इसका कारण यह है कि उपनिषदोंका एक मात्र प्रतिपाद्य ब्रह्म है। ब्रह्म क्या है, ब्रह्ममें विश्वका अध्यास क्योंकर है, ब्रह्म और जीवात्माका भेद कैसे है, ब्रह्मकी प्राप्ति कैसे होती है, आत्मा, प्रज्ञात्मा और प्रज्ञान क्या हैं, ब्रह्मात्मैक्य-ज्ञानका रहस्य क्या है आदि बातोंका विस्तृत और सूक्ष्म विचार उपनिषदोंमें भरा पड़ा है। किसी भी उपनिषद्को देखा जाय, उसमें आदिसे अन्ततक ब्रह्म-विचार ओत-प्रोत है। जहां देखिये, वहीं ब्रह्म-ज्ञानके उपदेश हैं—चारों ओर ब्रह्म ही ब्रह्मका रहस्य है। इसीसे उपनिषदोंको ब्रह्मविद्याकी संज्ञा दी गयी है। कुछ प्रसिद्ध उपनिषदोंके उदाहरण देखिये।

ऋग्वेदीय कौषीतकि-उपनिषद्के चतुर्थ अध्यायमें कहा गया है, 'गार्ग्य बालाकि नामके एक विद्वान् ब्राह्मण थे, जो उशीनर, मत्स्य, कुरु, पाञ्चाल, काशी और विदेह आदि भारतके पश्चिमसे पूर्वतकके प्रान्तोंका पर्यटन करते थे। एक बार वे काशी आकर वहांके राजा अजातशत्रुसे बोले—'मैं आज तुमको पर ब्रह्मका विवरण बताऊँगा।' इसपर महाराजने कहा—'इसके लिये मैं तुम्हें एक हजार गायें दूंगा। मेरी तो धारणा है कि महाराजा जनक ही ब्रह्मवादियोंके जनक-स्वरूप हैं; इसीलिये प्रायः सभी ब्रह्मवादी जनकके पास ही जाते हैं।'

इसके अनन्तर बालाकिने कहना प्रारम्भ किया—'सूर्य, चन्द्र, विद्युत्, मेघ, आकाश, वायु, अग्नि, जल, दर्पण, छाया, प्रतिध्वनि, शब्द, स्वप्न, दक्षिण और वाम चक्षु आदिकी उपाधियोंसे युक्त जो आत्मा है, वही ब्रह्म

है।' परन्तु अजातशत्रुने प्रत्येक उपाधिका खण्डन करते हुए कहा—'नहीं, जो सूर्य, चन्द्र आदिका बनानेवाला है, उसीको जानना चाहिये—"**य एतेषां पुरुषाणां कर्त्ता, यस्य वै तत्कर्म स वै वेदितव्य इति।**"

अनन्तर बालाकि समित्काष्ठ लेकर और राजाके पास आकर बोले—'मैं शिष्य होकर आपसे ब्रह्मोपदेश लेना चाहता हूँ।' राजाने उत्तर दिया—'क्षत्रिय ब्राह्मणको शिष्य बनावे—यह बात उलटी है। मैं विना शिष्य बनाये ही तुम्हें यह विषय समझा देता हूँ।' यह कहकर राजाने एक सोये हुए मनुष्यको जगाकर बालाकिसे पूछा—'इस मनुष्यका चैतन्य कहां चला गया था और अब कहांसे आ गया?' एक विनम शिष्यकी तरह बालाकि मौन रहे।

राजाने कहना प्रारम्भ किया—'स्वप्न-शून्य निद्राके समय हृदयकी 'हिता' नामक हजारों शिराओंमें चेतन पुरुष अवस्थान करता है—मन और सारी ज्ञानेन्द्रियां भी उसके साथ एकीभाव धारण करती हैं। जब मनुष्य जाग जाता है, तब अग्निके स्फुलिंगकी तरह सारी ज्ञानेन्द्रियां, सारे प्राण, सारी दिव्य शक्तियां अपने-अपने स्थानोंपर निकल पड़ती हैं। जैसे काठमें आग व्याप्त है, उसी तरह प्रज्ञात्मा भी शरीर, लोमों और नखोंतकमें अनुप्रविष्ट है। जैसे धनीके पीछे सब लोग चलते हैं, वैसे ही सारी प्राण-चेष्टाएँ भी प्रज्ञात्माके साथ चलती हैं। इसी प्रज्ञात्मा वा आत्माको न जाननेके कारण ही इन्द्र असुरोंके द्वारा पराजित हुए थे। जो इस ज्ञानको प्राप्त करता है, वह सारे पापोंसे छूटकर सब भूतोंका श्रेष्ठत्व, साम्राज्य और आधिपत्य प्राप्त करता है—"**एवं विद्वान् सर्वान् पाप्मनोऽपहत्य सर्वेषां च भूतानां श्रैष्ठ्यं स्वाराज्यमाधिपत्यं पर्येति।**"

ऋग्वेदीय ऐतरेयोपनिषद्के तीसरे अध्यायमें प्रश्न किया गया है कि 'चक्षु आदि इन्द्रियां आत्मा हैं अथवा अन्तःकरण आत्मा है?' इसके उत्तरमें कहा गया है कि 'ब्रह्मा, इन्द्र आदि समस्त देवता, पंच महाभूत, स्वेदज, उद्भिज्ज, अण्डज, जरायुज आदि स्थावर-जंगम जितने जीव हैं, उन सबका

नेता प्रज्ञान है, सब प्रज्ञानमें ही प्रतिष्ठित हैं। सारा ब्रह्माण्ड प्रज्ञानमें ही स्थित है और सारे ब्रह्माण्डका नेता प्रज्ञान ही है। फलतः बहिरिन्द्रिय, अन्तरिन्द्रिय, इन्द्रिय-वृत्ति-समूह और सारे पदार्थोंमें समभावसे देदीप्यमान और सर्वोपाधि-विनिर्मुक्त प्रज्ञान ही ब्रह्म है। इसी प्रज्ञानका ज्ञान प्राप्त कर वामदेव आदि अमर हुए थे।'

यहां यह ध्यान देनेकी बात है कि कहीं ब्रह्मका 'तटस्थ लक्षण' कहा गया है और कहीं 'स्वरूप लक्षण'।

सामवेदीय छान्दोग्योपनिषद् बड़ासा ग्रन्थ है। उसमें अध्यात्मवादके एकसे एक रत्न भरे पड़े हैं। उसके तीसरे प्रपाठकके चौदहवें खण्डके चार मंत्रोंमें कहा गया है—'यह सारा जगत् ब्रह्म है। यह ब्रह्मसे ही उत्पन्न हुआ है, ब्रह्ममें ही विलीन होगा और ब्रह्ममें ही अवस्थित है। संयत होकर उसकी उपासना करनी चाहिये। पुरुष कर्ममय है। यहां जैसा जो कर्म करता है, परलोकमें वैसा ही फल वह पाता है। इसलिये धर्म करना चाहिये'— **"सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत। अथ खलु क्रतुमयः पुरुषो यथाक्रतुरस्मिल्लोके पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्य भवति। स क्रतुं कुर्वीत।"** इस एक ही मन्त्रमें सारे ब्रह्मवाद, निखिल कर्मवाद और धर्माचरणका रहस्य निहित है।

दूसरे मन्त्रका अर्थ है—'ब्रह्म मनोमय है, उसका शरीर प्रज्ञा है। ब्रह्म चैतन्य-स्वरूप, सत्यसंकल्प, आकाशकी तरह सूक्ष्म, नीरूप और सर्वगत है। वह सर्वकर्मा, सर्वकाम, सर्वगन्ध और सर्वरस है। यह सारा विश्व ब्रह्ममें अभिव्याप्त है। ब्रह्मके कोई इन्द्रिय नहीं है। वह निःस्पृह है।'

तीसरे मन्त्रका तात्पर्य है—'यह आत्मा मेरे हृदयमें विराजमान है। यह सर्षप (सरसों) आदिसे भी सूक्ष्म है। जो आत्मा मेरे हृदयमें विराजमान है, वह पृथिवी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग और इस लोकत्रयके समुदायसे भी बड़ा है।'

चौथे मन्त्रमें शाण्डिल्य ऋषिकी अपरोक्षानुभूति है–'जो सर्वकर्मा, सर्वकाम आदि आत्मा है, वह मेरे हृदयमें विराजमान है और आरब्ध कर्म-फल-भोगके अनन्तर मैं शरीर-त्यागके बाद इसी आत्मा (ब्रह्म) में मिल जाऊँगा।' हृदयमें ऐसा दृढ़ विश्वास रहनेपर ब्रह्म-लीन होना ही होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

इसी अध्यायके सोलहवें खण्डमें ११६ वर्षोंकी आयुकी बात कही गयी है। इसमें भी ब्रह्मके दोनों लक्षण कहे गये हैं।

सामवेदीय केनोपनिषद् छोटी उपनिषद् होनेपर भी मणियोंका खजाना है; इसीलिये आचार्य शंकरने इसपर द्विविध भाष्य लिखनेकी आवश्यकता समझी। शिष्य और आचार्यके प्रश्नोत्तर-रूपमें जो इस उपनिषद्के प्रथम खण्डमें मन्त्र कहे गये हैं, वे अनमोल हैं। प्रथम खण्डके तीसरे मन्त्रमें कहा गया है–

'चक्षु उसको (ब्रह्मको) नहीं देख सकता, वाक्य उसका वर्णन नहीं कर सकता तथा मन उसका अनुभव नहीं कर सकता। हम उसको नहीं जानते; दूसरेको उसका कैसे उपदेश दिया जाय, यह भी हम नहीं जानते। फिर भी जिन प्राचीन पुरुषोंने उसके सम्बन्धमें शिक्षा दी है, उनसे सुना है कि 'ब्रह्म सभी विदित पदार्थोंसे पृथक् है और सारे अविदित पदार्थोंसे ऊपर है।'

इसके अगले मन्त्रमें आचार्यने कहा है–'जो वचनके द्वारा प्रकाश नहीं पाता, अपितु जिससे वाक्यका ही प्रकाश होता है, उसे ही तुम ब्रह्म जानो। संसारमें दूसरे जिस किसीकी उपासना की जाती है, वह ब्रह्म नहीं है।'

सरल, स्वच्छ और निष्कपट भाषामें कितनी बड़ी बात, कितनी खूबी से, कही गयी है, यह देखकर आश्चर्य होता है!

द्वितीय खण्डके प्रथम मन्त्रका अर्थ देखिये–

'यदि तुम समझते हो कि मैंने ब्रह्मको भली भांति जान लिया है, तब तुमने निश्चय ही ब्रह्मका स्वरूप थोड़ासा ही जाना है। यदि तुम देवोंमेंसे

किसीको ब्रह्म-स्वरूप जाने हुए हो, तो निश्चय ही तुमने ब्रह्मका थोड़ा ही स्वरूप समझा है।'

ठीक ही है, ब्रह्मके समान अप्रतर्क्य विषयमें अभिमान और अहंकार की आवश्यकता नहीं है। इसी खण्डका चौथा मन्त्र इस आशयका है–

'प्रत्येक व्यक्तिके बोध-स्वरूप, अवभासमान और प्रत्यक्ष आत्म-स्वरूप ही ब्रह्म है। ऐसा ज्ञान ही ब्रह्म-ज्ञान है। ऐसा आत्म-(ब्रह्म)-ज्ञान होनेपर ही अमरता प्राप्त होती है। आत्म-विद्याके प्रभावसे ही आत्मप्रत्यक्षानुभव की शक्ति मिलती है।'

ऐसे ही अनूठे उपदेश इस उपनिषद्में हैं। सारी पुस्तक मुखाग्र करने योग्य है।

कृष्ण यजुर्वेदकी तैत्तिरीयोपनिषद् तो हिन्दू संस्कृति और शिष्टाचारका गढ़ ही है। इसकी प्रथम वल्लीके ग्यारहवें अनुवाकका प्रथम मन्त्र उपदेशामृतसे भरा हुआ है। वेद-शिक्षा देकर आचार्य शिष्यको अनुशासित करते हैं–

"सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। × × × × सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। × × × स्वाध्याय-प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्।

('सत्य बोलना। धर्म करना। कभी भी ज्ञानोपार्जनसे विरत नहीं होना। कभी भी सत्यसे दूर नहीं जाना। धर्म-पालनसे कभी भी नहीं भागना। वेदाध्ययन और वेद-प्रचारसे कभी भी असावधान नहीं होना।') इसका अगला मन्त्र है–

"देवपितृ-कार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि।"

('देवों और पितरोंके सन्तोषकारी कार्यसे कभी निवृत्त नहीं होना।

माता-पिताको पूजनीय देवता जानना। आचार्य और अतिथिको भी उपास्य देवता जानना। प्रशंसनीय कर्म ही करना, अन्य नहीं।') इसके अगले मन्त्रका अर्थ देखिये—

'हमसे श्रेष्ठ जो ब्राह्मण आचार्य हैं, उनको आसन देकर सम्मान करना। श्रद्धाके साथ देना, श्रद्धा-शून्य होकर नहीं। सहर्ष, सलज्ज, सभय और ससदाचार देना। धर्म-भीरु ब्राह्मणोंने जो किया है, उसीके अनुरूप तुम भी करना।' चौथा इस तात्पर्यका मन्त्र है—

'यही आदेश और यही उपदेश है। यही वेदोपनिषद् है और यही अनुशासन है। इसके अनुसार ही अनुष्ठान और आचरण करना।'

कृष्ण यजुर्वेदकी कठोपनिषद्के प्रथमाध्यायकी प्रथम वल्लीसे विदित होता है कि वाजश्रवस नामके राजाने यज्ञ करके अपना सर्वस्व दान कर दिया था। उन्हींके पुत्र नचिकेता और मृत्युके बीच कथोपकथन ही इसका प्रधान विषय है। इस कथोपकथनमें जीवन और मरणकी बड़ी-बड़ी समस्याएँ हल की गयी हैं।

द्वितीय वल्लीके ५ वें मन्त्रमें यमराज नचिकेतासे कहते हैं—

'अविद्यामें पड़े हुए मूढ़ व्यक्ति अपनेको धीर और पण्डित समझकर, अन्धके द्वारा लाये गये अन्धेकी तरह, चारों ओर उलटी चाल चलते हैं।' इसके आगे यम कहते हैं—

'धन-मदमें प्रमत्त मूढ़ बालकके पास परलोक-प्राप्तिका उपदेश काम नहीं करता। 'इस लोकके सिवा परलोक नहीं है', ऐसा जो समझता है, वह बार-बार मेरे आधीन आता है।'

'साधारण मनुष्यकी शिक्षासे तो बहुत चिन्तनके द्वारा भी परमात्माको नहीं जाना जा सकता। इसलिये असाधारण आचार्यसे ही शिक्षा लेनी चाहिये। कारण यह है कि परमात्मा अणुसे भी सूक्ष्म और तर्कसे भी अतीत है।'

'उस दुर्दशनीय, निगूढ़, प्रच्छन्न, गुहामें छिपे हुए, गह्वरमें स्थित और पुरातन आत्माको, अध्यात्म-योगके द्वारा, परमात्मा जान लेनेपर, बुद्धिमान् पुरुष हर्ष और शोकसे छूट जाता है।'

'आत्मा जन्म और मृत्युसे रहित है। यह मेधावी है। यह किसीसे उत्पन्न नहीं है। इससे साक्षात् अन्य पदार्थ भी नहीं उत्पन्न हुआ है। यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है। शरीरके नष्ट होनेपर भी यह विनष्ट नहीं होता।'

'दर्पणकी तरह आत्मामें परमात्माको देखा जाता है।' (२.३.५)।

इस तरह आत्मा, ब्रह्म आदिके सम्बन्धमें एकसे एक अनूठे उपदेश हैं। मन्त्र भी बड़े सरस, सुन्दर और सरल हैं। ये अनायास कण्ठाग्र हो सकते हैं।

कृष्ण यजुर्वेदकी श्वेताश्वतरोपनिषद्के प्रथमाध्यायके १५ वें और १६ वें मन्त्रोंके अर्थोंपर विशेष ध्यान देने योग्य है—

'जैसे तिलको पेरनेसे तेल और दधिको मथनेसे मक्खन पाया जाता है अथवा नहर खोदनेसे पानी और अरणि-काष्ठके संघर्षणसे आग पायी जाती है, वैसे ही सत्य और तपस्याके द्वारा खोज करनेपर अपनी आत्मामें ही परमात्माको पाया जाता है।'

'जैसे दूधमें मक्खन व्याप्त है, वैसे ही विश्वमें परमात्मा व्याप्त है। आत्म-विद्या (उपनिषद्) और तपस्या ही उसको जाननेके उपाय हैं। वही उपनिषदुक्त परब्रह्म है।'

उपनिषदुक्त आत्मा, परमात्मा, ब्रह्म वा पर ब्रह्ममें नामका ही भेद है। अनेक आचार्य अमुक्त आत्माको जीवात्मा और मुक्त आत्माको परमात्मा मानते हैं। वे निर्वचनीयको ईश्वर और अनिर्वचनीयको ब्रह्म वा पर ब्रह्म मानते हैं। परन्तु उपनिषदोंमें, अनेक स्थलोंपर, अद्वैतवादियोंके मतानुसार, आत्मा, परमात्मा और ब्रह्म एकार्थवाची हैं। इस सूक्ष्म भेदको

ध्यानमें रखकर ही उपनिषदोंका स्वाध्याय करना चाहिये। अनेक अद्वैत-वादी चेतनको नहीं, चेतनाको वा ज्ञातृत्वको ही ब्रह्म मानते हैं। कुछ लोग अव्यक्त परमात्माको ब्रह्म कहते हैं। उपनिषदोंके मतसे प्रधानतः वेदश्रवण, श्रुत विषयके मनन और उसके निदिध्यासन वा बार-बार ध्यान करनेसे ब्रह्म-ज्ञान और मोक्ष प्राप्त होता है।

शुक्ल यजुर्वेदकी ईशोपनिषद्में १८ मन्त्र हैं और सबके सब अनूठे हैं। कुछ नमूने ये हैं—

'इस विश्वमें जो कुछ संचरणशील है, जंगम है, सो सब ईश्वर (परमात्मा) के द्वारा व्याप्त है। मोह-ममता छोड़कर भोग करो (जीवन-चक्र चलाओ। किसी भी विषयमें 'मेरापन' मत रखो; क्योंकि यही दुःखका कारण है)। किसीके धनका लोभ मत करो।'

'इस कर्म-भूमिमें कर्म करते ही करते सौ वर्ष जीनेकी इच्छा करो।'

'परमात्मा चलनेपर भी निश्चल है, वह दूर भी है, पास भी है। वह सबके अन्तरमें भी है और सबके बाहर भी व्याप्त है।'

'जो मनुष्य सारे प्राणियोंको अपनेमें देखता है और अपनेको सबमें देखता है, उसके लिये कुछ गुप्त नहीं।' (वह आत्म-ज्ञाता हो जाता है।)

'जिस ज्ञानीके पास सारे प्राणी 'अपने' हैं, उस एकत्व-दर्शीके लिये मोह और शोक कुछ नहीं है।'

इन उपर्युक्त मन्त्रोंमें सारा वेदान्त-दर्शन भरा पड़ा है।

शुक्ल यजुर्वेदकी बृहदारण्यकोपनिषद् उपनिषदोंमें सबसे बड़ी है। इसीसे इसका नाम 'बृहत्' है। इसमें ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्—तीनों ही मिले हुए हैं। इन्हें पृथक् पृथक् करनेकी अत्यावश्यकता है। यह बात पहले भी लिखी जा चुकी है।

इस उपनिषद्के तृतीय अध्यायके 'प्रथम ब्राह्मण' से जाना जाता है कि राजा जनकने एक बड़ा यज्ञ किया था, जिसमें कुरु, पांचाल आदि

देशोंके विद्वान् ब्राह्मण आये थे। राजाकी यह जाननेकी प्रबल इच्छा हुई कि इनमें सबसे बड़ा वेदज्ञ कौन है ? राजाने एक हजार गायोंके शृंगों (सींगों) में सोना मंढ़वाकर ब्राह्मणोंसे कहा कि 'जो आप लोगोंमें सबसे बड़ा वेदज्ञ (ब्रह्मज्ञाता) हो, वह इन हजार गायोंको अपने घर ले जाय।' दूसरे तो चुप रहे; परन्तु याज्ञबल्क्यने अपने एक शिष्यसे स्वर्ण-मण्डित शृंगवाली गायोंको अपने घरपर भिजवा दिया। इसपर विद्वानोंमें शास्त्रार्थ छिड़ गया; किन्तु याज्ञबल्क्यने सबको परास्त कर दिया। ब्रह्म-ज्ञानिनी वाचक्नवी गार्गीसे भी याज्ञबल्क्यका शास्त्रार्थ हुआ; परन्तु गार्गी भी पराजित हो गयीं। इस अध्यायके आठवें 'ब्राह्मण' में यह कथा समाप्त हुई है, जो पढ़ने योग्य है।

चतुर्थ अध्यायके पांचवें 'ब्राह्मण'में कहा गया है कि 'याज्ञबल्क्य ऋषिकी दो स्त्रियां थीं— मैत्रेयी और कात्यायनी। कात्यायनी तो साधारण ही स्त्री थी; परन्तु मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी थी। एक बार घर-बार छोड़कर परिव्राजक बननेकी याज्ञबल्क्यकी इच्छा हुई। उन्होंने मैत्रेयीसे कहा— 'मैं परिव्राजक बनना चाहता हूँ; इसलिये कात्यायनीके साथ तुम्हारे हिस्से का धन बांट देना चाहता हूँ।'

इसपर मैत्रेयीने उत्तर दिया—'भगवन्, यदि धन-धान्यपूर्ण समूची धरित्री ही मुझे मिल जाय, तो क्या मैं अमर हो जाऊँगी ?' याज्ञबल्क्यने कहा—'नहीं, अमरता तो नहीं मिल सकती। हां, धनियोंकी तरह तुम्हारा जीवन अवश्य हो जायगा।' मैत्रेयीने कहा—'जिसे पाकर मैं अमर नहीं बनूंगी, उसे लेकर क्या लाभ ? भगवन्, अमरत्व-प्राप्तिका उपाय बताइये।'

इसके अनन्तर याज्ञबल्क्यने जो कहा, वह अनुपम है। एकसे एक उत्तम उदाहरण देकर याज्ञबल्क्यने ब्रह्म-विवेचन किया है। अन्तको याज्ञ-बल्क्यने कहा—

'जिस समय सर्वत्र व्याप्त परमात्माका ज्ञान हो जाता है, उस समय कौन किसको देखता, सुनता, छूता वा अभिवादन करता है (सब तो एक

ही हैं) ? जिसकी सत्तासे ही सारा विश्व जाना जाता है, उसको कैसे समझा जाय ? 'यह नहीं, यह नहीं,' इस तरह कहते-कहते जो शेष बच जाता है, वही ब्रह्म है। वह अगृह्य है; क्योंकि उसका ग्रहण नहीं किया जा सकता, वह अशीर्य है; क्योंकि उसका क्षय नहीं होता, वह असंग है; क्योंकि उसका संग नहीं हो सकता। वह किसीको पीड़ा नहीं देता, किसीपर क्रुद्ध नहीं होता। वह सबका बाहर-भीतर जानता है। उस सर्व-विज्ञाताको कैसे जाना जाय ? मैत्रेयी, उसीकी शिक्षासे अमरता प्राप्त होती है।'

इतना उपदेश देकर याज्ञवल्क्य परिव्रजन कर गये।

अथर्ववेदकी पैप्पलाद-शाखाकी प्रश्नोपनिषद्में छः ब्रह्मपरायण ऋषियोंके छः प्रश्न हैं और इन छहो प्रश्नोंके उत्तर पिप्पलाद ऋषिने दिये हैं। ये छहो उत्तर दिव्य और भव्य हैं। ये उत्तर अध्यात्मवादके प्राण हैं। इनका जितना ही अध्ययन कीजिये, उतनी ही ज्ञान-ज्योति दमकती जायगी। कुछ उदाहरण देखिये—

'जो लोग प्रजापतिके नियमोंका पालन करते हैं, उन्हें पुत्र, कन्या प्राप्त होते हैं और जो लोग सत्य, तपस्या और ब्रह्मचर्यका आचरण करते हैं, उन्हींके लिये ब्रह्म-लोक है।'

'जिनमें कपट, मिथ्या व्यवहार और माया नहीं है, उन्हींके लिये यह विशुद्ध ब्रह्मलोक है।'

'आत्मासे ही प्राण उत्पन्न है। जैसे छाया देहका अवलम्बन करके फैलती है, वैसे ही प्राण भी आत्मावलम्बनसे रहता है।'

'यह जो विज्ञानात्मा पुरुष देखता है, छूता है, सुनता है, सूंघता है, रसास्वाद करता है, मनन करता है तथा जो बोद्धा और कर्त्ता है, वह अक्षय परमात्मामें प्रतिष्ठित है।'

'जो व्यक्ति ओंकार (अ,उ,म) के द्वारा परम पुरुषका ध्यान करता है, वह तेजोमय सूर्य-लोक प्राप्त करता है।'

ऐसे ही एकसे एक अपूर्व उपदेश हैं।

अथर्ववेदीय मुण्डकोपनिषद्में पहले ही ब्रह्मविद्याकी परम्परा बतायी गयी है। कहा गया है–

'विश्वके कर्त्ता और पालयिता ब्रह्मा देवोंमें प्रथम ब्रह्मज्ञानी हुए थे। उन्होंने सर्व-विद्याधार ब्रह्म-विद्या अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वाको बतायी, अथर्वा ने अंगिरको वह विद्या सिखायी, अंगिरने भारद्वाजको वह विद्या दी और भारद्वाज़ने अंगिरस् वा अंगिराको सिखायी। अंगिरासे यह विद्या शौनक ऋषिको मिली।'

शौनकके प्रश्न करनेपर अंगिराने कहा–

'दो विद्याओंका जानना आवश्यक है, एक परा और दूसरी अपरा।'

'चारो वेद और वेदांग अपरा विद्या हैं; परा विद्या वह है, जिससे क्षय-शून्य ब्रह्म जाना जाता है।'

'जो सर्वज्ञ और सर्ववित् है और जिसका तप ज्ञानमय है, उसी पर ब्रह्म से आत्मा और अन्न एवम् नाम और रूप उत्पन्न हुए हैं।'

आगे कहा गया है–

'अविद्यामें फँसे ज्ञान-शून्य व्यक्ति समझते हैं कि हम कृतार्थ हो गये। परन्तु कर्म-फलमें आसक्ति होनेके कारण ये लोग मुक्ति नहीं पाते।'

'जैसे प्रदीप्त अग्निसे (अग्नि-स्वरूप) विस्फुलिंग चारों ओर निकलते हैं, वैसे ही अक्षर ब्रह्मसे विविध जीव उत्पन्न होते और उसीमें पुनः विलीन होते हैं।' **"सत्यमेव जयते नानृतम्", नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"** आदि अद्भुत उपदेश इसी उपनिषद्के हैं। इसमें एक स्थल (तृतीय मुण्डक, द्वितीय खण्ड, १० म मन्त्र) पर यह भी कहा गया है कि 'संन्यासी ही ब्रह्म-विद्याके अधिकारी हैं।'

अथर्ववेदकी माण्डूक्योपनिषद्में १२ ही मन्त्र हैं और सबके सब अनमोल़ हैं। इसके द्वितीय मन्त्रमें ही कहा गया है–'आत्मा और ब्रह्म अभिन्न हैं।' आगे कहा है–

'आत्मा सर्वेश्वर, सर्वज्ञ, अन्तर्यामी और समस्त विश्वका कारण है; क्योंकि इससे ही सारे प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है और इसमें ही सारे प्राणी विलीन होते हैं।'

'ओंकारके द्वारा इस आत्माका ज्ञान होता है।'

इस प्रकार सभी उपनिषदें सदाचारका आदेश देती हैं, संस्कृतिका रहस्य समझाती हैं, सद्गुणको आवश्यक मानती हैं, त्याग और तपस्याकी महिमा बताती हैं तथा ब्रह्म-ज्ञान और मुक्तिके अनूठे उपदेश देती हैं। परन्तु इनका मुख्य प्रतिपाद्य ब्रह्मविद्या है।

द्वादश अध्याय

कल्पसूत्र

'कल्प' शब्दके कितने ही अर्थ हैं—विधि, नियम, न्याय आदि। थोड़े अक्षरोंवाले, साररूप और निर्दोष वाक्यका नाम सूत्र है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि विधियों, नियमों अथवा न्यायोंके जो संक्षिप्त, सारवान् और दोष-शून्य वाक्य-समूह हैं, उनका नाम कल्प-सूत्र है। कल्प-सूत्रोंको वेदांग कहा जाता है। मतलब यह कि कल्पसूत्र वेदोंके अंश या हिस्से हैं।

कल्प-सूत्रोंकी आधार-शिला कर्म-काण्ड है और हिन्दू-धर्मके सारे कर्म, सब संस्कार, निखिल अनुष्ठान और समूचे रीति-रस्म प्रायः कल्प-सूत्रोंसे ही उत्पन्न हैं। इसलिये प्राचीन हिन्दू-जीवनके समस्त नित्य, नैमित्तिक, काम्य और निष्काम कर्म, सारी क्रियाएँ, सारी संस्कृति और अशेष अनुष्ठान समझनेके लिये एकमात्र अवलम्ब ये सूत्र हैं।

धर्मानुष्ठानोंमें मानस वृत्तियोंको संलग्न करना तथा धार्मिक विधियों और नियमोंमें व्यक्तियों और समाजका जीवन संयत करना इन सूत्रोंका खास उद्देश्य है। और सचमुच नियमबद्ध और संयत करके इन सूत्रोंने हिन्दू जीवन और समाजको पावन बनानेमें बड़ी सहायता की है।

कल्पसत्र तीन तरहके होते हैं—श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र। वैदिक संहिताओंमें कहे गये यज्ञादि-विषयक विधान और विवरण देनेवाले सूत्रोंको श्रौतसूत्र कहा जाता है। गृहस्थके जन्मसे लेकर मृत्यु तकके समस्त कर्त्तव्यों और अनुष्ठानोंका जिनमें वर्णन है, उन्हें गृह्यसूत्र नाम दिया गया है। विभिन्न पारमार्थिक, सामाजिक और राजनीतिक कर्त्तव्यों,

आश्रमों, विविध जातियोंके कर्तव्यों, विवाह, उत्तराधिकार आदि आदिका जिनमें विवरण है, उनकी संज्ञा धर्मसूत्र है। पातञ्जल महाभाष्य (पस्पशाह्निक) में लिखा है—ऋग्वेदकी २१, यजुर्वेदकी १००, सामवेदकी १००० और अथर्ववेदकी ६ शाखाएं हैं अर्थात् सब मिलाकर चारों वेदोंकी ११३० शाखाएं हैं; परन्तु इन दिनों हमारी इतनी दयानीय दशा है कि इन शाखाओंके पूरे नाम तक नहीं मिलते। यह बात पहले भी लिखी गयी है। प्राचीन साहित्यसे पता चलता है कि जितनी शाखाएं थीं, उतनी ही संहिताएँ थीं, उतने ही ब्राह्मण और आरण्यक थे, उतनी ही उपनिषदें थीं और उतने ही कल्पसूत्र भी थे; परन्तु आजकल इनमेंसे कोई भी पूरे-का-पूरा नहीं मिलता। किसी शाखाकी संहिता मिलती है, किसीकी नहीं; किसीका केवल ब्राह्मण-ग्रन्थ मिलता है, तो किसीका कल्पसूत्र मात्र। आश्वलायन-शाखावालोंकी अपनी कोई संहिता नहीं मिलती—उनके कल्पसूत्र मिलते हैं। वे शाकल-संहिताको ही अपनी संहिता मानते और ऐतरेय शाखावालोंके ब्राह्मणों, आरण्यकों और उपनिषदोंसे ही अपने काम चलाते हैं। शौनकके "चरण-व्यूह"में चरकशाखाको विशिष्ट स्थान दिया गया है; परन्तु न इस शाखाकी संहिता या ब्राह्मण ही मिलता है, न इसकी उपनिषदें आदि ही उपलब्ध हैं। काठक-शाखाकी संहिता तो मिलती हैं; परन्तु ब्राह्मण, आरण्यक नहीं। मैत्रायणी और राणायणीकी भी यही बात है। अथर्ववेदकी पैपलाद-शाखाकी तो केवल प्रश्नोपनिषद् ही मिलती है, यह बात पहले भी कही गयी है। संक्षेपमें यह समझिये कि जैसे न्याय और वैशेषिक दर्शन तो मिलते हैं; परन्तु उनके सम्प्रदाय नहीं मिलते तथा सौर और गाणपत्य सम्प्रदाय तो मिलते हैं; परन्तु उनके दर्शनशास्त्र नहीं मिलते। ठीक इसी तरह किसीकी केवल शाखा ही मिलती है, किसीका ब्राह्मण और किसीकी केवल संज्ञा भर मिलती है और किसीका तो नाम तक नहीं मिलता! कल्पसूत्र भी तो शाखाओंके अनुसार ११३० उपलब्ध होने चाहिये; परन्तु इन दिनों प्रायः ४० पाये जाते हैं।

चारों वेदोंकी जो सब मिलाकर ११ संहिताएं हैं (शाखाएं) छपी हैं, वह प्रायः यूरोपीयोंकी कृपासे। लाखों रुपये खर्च कर यूरोपीयोंने ही यूरोपके विविध देशोंमें इन संहिताओंको पहले छापा है। भारतवर्षमें जो संहिताएं छापी गयी हैं, उनमेंसे कइयोंके पाठ विश्वसनीय नहीं हैं। श्रीपाद दामोदर सातवलेकर और डा० रघुवीरने जो संहिताएँ छपायी हैं, वे मूल मात्र हैं। पं० जयदेव शर्माने सानुवाद संहिताएँ छपायी हैं।

श्रौत या वैदिक यज्ञ चौदह प्रकारके हैं—सात हविर्यज्ञ और सात सोम यज्ञ। अग्न्याधान, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, आग्रहायण, चातुर्मास्य, निरूढ़पशुबन्ध और सौत्रामणि—ये सातो चरु-पुरोडाश द्वारा हविसे संपन्न होते हैं; इसलिये ये हविर्यज्ञ कहाते हैं। अग्निष्टोम, अन्त्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोड़शी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्यामको सोमयज्ञ कहा जाता है। इन सातोंमें सोमरसका प्राधान्य रहता है।

कई संहिताओं और आश्वलायन, लाट्यायन आदि श्रौत सूत्रोंमें इन चौदहों यज्ञोंका विस्तृत विवरण मिलता है। इसमें सन्देह नहीं कि इन दिनों इन यज्ञोंका प्रचार नहीं है। गृह्य-सूत्रोंके यज्ञ नित्य कर्म अर्थात् आवश्यक कर्तव्य माने जाते हैं; इसलिये उन्हें पाक या प्रधान यज्ञ भी कहा जाता है। पाक यज्ञोंमेंसे कुछ तो ज्यों-के-त्यों हिन्दू-समाजमें प्रचलित हैं और कुछ रूपान्तरित होकर।

गृह्यसूत्रकारोंने सात प्रकारके गृह्य या पाक यज्ञ माने हैं। पितृ-यज्ञ या पितृ-श्राद्ध। यह सभी हिन्दुओंमें मूल रूपमें ही प्रचलित है। पार्वण यज्ञ अर्थात् पूर्णिमा और अमावस्याके दिन किया जानेवाला यज्ञ। इस समय भी यथावत् किया जाता है। अष्टकायज्ञ। यह अवश्य ही बहुत रूपान्तर प्राप्त कर चुका है। श्रावणी यज्ञ। यह अब तक प्रचलित है। आश्वयुजी यज्ञ अर्थात् आश्विन मासमें किया जानेवाला यज्ञ, जो कोजागरा लक्ष्मी-पूजाका रूप धारण कर चुका है। आग्रहायणी यज्ञ। यह अगहनमें किया जानेवाला

यज्ञ नवान्नके रूपमें अनुकल्प बन चुका है। चैत्री यज्ञ अर्थात् चैत्रमें किया जानेवाला यज्ञ, जो बिलकुल दूसरा रूप धारण कर चुका है।

चौंदह श्रौत यज्ञों और सात पाकयज्ञोंके सिवा धर्म-सूत्रों और गृह्य-सूत्रोंमें इन पांच महायज्ञोंका भी वर्णन मिलता है—देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृ-यज्ञ, ब्रह्मयज्ञ और मनुष्ययज्ञ। हवनको देवयज्ञ, बलि-रूपमें अन्न आदि दान करनेको भूतयज्ञ, पिण्डदान और तर्पणको पितृयज्ञ, वेदोंके अध्ययन, अध्या-पन अथवा मंत्र-पाठको ब्रह्म-यज्ञ और अतिथिको अन्न आदि देनेको मनुष्य-यज्ञ कहा जाता है। ये पांचों महायज्ञ भी अब तक ज्यों-के-त्यों प्रचलित हैं।

उक्त सूत्रोंमें इन संस्कारोंका बहुत सुन्दर विवरण है—गर्भाधान, पुंसवन, अर्थात् पुत्रजन्मानुष्ठान, सीमन्तोन्नयन अर्थात् गर्भवती स्त्रीका केश-विन्यास, जातकर्म अर्थात् सन्तान होने पर आवश्यकीय अनुष्ठान, नामकरण, निष्क्रामण, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, उपनयन, वेदाध्ययनके समय महा-नाम्नीव्रत, महाव्रत, उपनिषद्व्रत, गोदानव्रत, समावर्तन अर्थात् पठनके अन्तमें स्नानविशेष, विवाह, अन्त्येष्टि अर्थात् मृतसंस्कार। ये सोलहों संस्कार भी प्रायः प्रचलित हैं।

इस प्रकार १४ श्रौत यज्ञ, ७ पाक यज्ञ, ५ महायज्ञ और १६ संस्कार मिलकर ४२ कर्म हमारे लिये कल्पसूत्रकारोंने बताये हैं। सूत्रोंमें इन बयालीसोंका विस्तृत विवरण पढ़ने पर अपने पूर्वजोंकी सारी जीवनलीला दर्पणकी तरह दिखाई देने लगती है।

सूत्रकारोंने ४२ कर्म बताये हैं; परन्तु साथ ही सूत्रकार ऋषियोंने सत्य, सद्गुण और सदाचारपर भी बहुत जोर दिया है। धर्म-सूत्रकार गौतम चत्वारिंशत्-कर्मवादी हैं—उन्होंने अन्त्येष्टि और निष्क्रामणको संस्कार नहीं माना है—सोलहमें १४ ही संस्कार माने हैं। उन्होंने गौतम-धर्मसूत्र (८.२०.२५) में लिखा है—'जो ४० संस्कारोंसे तो युक्त हैं; परन्तु सद्गुणसे शून्य हैं; वे न तो ब्रह्मलोक जा सकेंगे, न ब्रह्मको पा सकेंगे। हां, जो नित्य

और नैमित्तिक यज्ञोंको करते हैं और काम्य कर्मोंके लिये कोई चेष्टा नहीं करते अथवा चेष्टा करनेमें असमर्थ हैं, वे भी सद्गुणों (सत्य, सदाचार आदि) से युक्त होनेपर ब्रह्मलोकको जा सकेंगे और ब्रह्मलोक भी पा सकेंगे।' इसी तरह वसिष्ठधर्मसूत्र (६.३) में भी कहा गया है–'जैसे चिड़ियोंके बच्चे पंख हो जाने पर घोंसलेको छोड़कर चले जाते हैं, वैसे ही वेद और वेदांग भी सद्गुण-शून्य मनुष्यका त्याग कर देते है।' इन वचनोंसे मालूम होता है कि सत्य और सदाचारको हमारे सूत्रकारोंने कितना महत्त्व दिया है–एक तरहसे उन्होंने सत्य और सदाचारको हिन्दू-धर्मकी भित्ति ही माना है। हमको उनसे यह महती शिक्षा मिलती है। जैसे ऋग्वेदके ऐतरेय और कौषीतकि नामके दो ब्राह्मण अत्यन्त प्रसिद्ध है, वैसे ही इसके आश्वलायन और शांखायन नामके दो कल्पसूत्र भी अतीव विख्यात है। **आश्वलायन-श्रौत-सूत्र**में १२ अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय वैदिक यज्ञोंके विवरणसे पूर्ण है। कहा जाता है कि आश्वलायन ऋषि शौनक ऋषिके शिष्य थे और ऐतरेय-आरण्यकके अन्तिम दो अध्याय गुरु और शिष्यने मिलकर बनाये थे। ऐतरेय ब्राह्मण और आरण्यकमें जो वैदिक यज्ञ विस्तृत रूपसे विवृत किये गये हैं, संक्षेपमें उन्हींके विधान आदिका निर्देश करना इस श्रौतसूत्रका उद्देश्य है। इसपर गार्ग्य नारायणिकी संस्कृत-वृत्ति है। इस सूत्रको सम्पादित कर श्रीराजेन्द्रलाल मित्रने १८६४-७४ ईस्वीमें "बाइ-ब्लोथिका इंडिका" ग्रन्थमाला (कलकत्ता) से प्रकाशित किया था।

आश्वलायन-गृह्यसूत्र चार अध्यायोंमें विभक्त है। प्रथम अध्यायमें विवाह, पार्वण, पशुयज्ञ, चैत्ययज्ञ, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, गोदानकर्म, उपनयन और ब्रह्मचर्य आश्रम-की विवृति है। द्वितीयमें श्रावणी, आश्वयुजी, आग्रहायणी, अष्टका, गृह-निर्माण और गृहप्रवेशका विवरण है। इन यज्ञोंको प्रतिदिन सम्पन्न करके हमारे पूर्वज अन्न-जल ग्रहण करते थे और इन दिनों भी कुछ लोग ऐसा ही करते हैं। इसी अध्यायमें ऋग्वेदके विभिन्न मंडलोंके ऋषियोंके नाम पाये

जाते हैं। इसके अतिरिक्त सुमन्त, जैमिनि, वैशम्पायन, पैल तथा सूत्रों, भाष्यों और महाभारतके प्रणेताओंके भी नाम पाये जाते हैं। इससे सूचित होता है कि १२०० बी० सी० के पहले ही महाभारत, विविध कल्पसूत्र और उनपर भाष्य भी बन गये थे। प्रसिद्ध ऐतिहासिक श्री-चिन्तामणि विनायक वैद्यके मतसे इस गृह्यसूत्रका रचनाकाल ईसासे १२०० वर्ष पहले है। परन्तु यह मत संदिग्ध है। हमारी समझमें इसका रचनाकाल इससे भी प्राचीन है। वार्षिक अध्ययनके प्रारम्भमें जो कर्म किया जाता था, उसे अध्यायोपाकरण कहा जाता था। इसका भी इसी अध्यायमें वर्णन है। आपद् और युद्धके कालके कर्मोंका भी विवरण है। चतुर्थ अध्या-यमें अन्त्येष्टि और श्राद्धका वर्णन है।

आश्वलायन-गृह्यसूत्रपर गार्ग्य नारायणि, कुमारिल भट्ट और हरदत्त मिश्रकी वृत्ति, कारिका और व्याख्या हैं। ए० एफ० स्टेन्सलरने दो भागोंमें सुसम्पादित कर इसे प्रकाशित किया है।

शांखायन-श्रौतसूत्र अठारह अध्यायोंमें विभाजित है। दर्शपूर्णमास आदि वैदिक यज्ञोंका इसमें भी विवरण है; साथ ही वाजपेय, राजसूय, अश्वमेध, पुरुषमेध और सर्वमेध आदि विशाल यज्ञोंकी विस्तृत विवृति भी है इस सूत्र-ग्रन्थपर अनृतकृत संस्कृत-भाष्य है। गोविन्दकी टीका भी इसपर है। यह भी 'बाइब्लोथिका इंडिका' में छपा है। हिलेब्रान्तने भी इस श्रौत-सूत्रका एक सुन्दर संस्करण निकाला है।

शांखायन-गृह्यसूत्र ६ अध्यायोंमें पूर्ण हुआ है। प्रथम अध्यायमें पार्वण, विवाह, गर्भाधान, पुंसवन, गर्भरक्षण, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण और गोदान-कर्मका विवरण है। द्वितीयमें उपनयन और ब्रह्मचर्य आश्रमका वर्णन है। तृतीयमें स्नान, गृहनिर्माण, गृहप्रवेश, वृषोत्सर्ग, आग्रहायणी और अष्टकाका विवरण है। चतुर्थमें श्राद्ध, अध्यायो-पाकरण, श्रावणी, आश्वयुजी, आग्रहायणी और चैत्रीका उल्लेख है। पञ्चम और षष्ठ अध्यायोंमें कुछ प्रायश्चित्तोंका वर्णन है।

बहुत लोगोंका मत है कि **वसिष्ठधर्मसूत्र** ऋग्वेदका ही धर्म-सूत्र है। इसके टीकाकार गोविन्द स्वामीका भी ऐसा ही मत है। यह तीस अध्यायोंमें विभक्त है। प्रथममें साधारण विधि, आर्यावर्तकी सीमा, पञ्चमहापातक और विवाह-पद्धतियोंका वर्णन है। द्वितीयमें विविध जातियोंके कर्तव्य-का निर्देश है। तृतीयमें वेदपाठकी आवश्यकता और चतुर्थमें अशुद्धियोंका विचार है। चौथे अध्यायमें सूत्रकारने मनुके अनेक वचनोंको उद्धृत किया है, जिससे विदित होता है कि अत्यन्त प्राचीन कालमें कोई मनु-सूत्र भी था, जिसके आधारपर ही वर्तमान मनुस्मृति बनी है। पांचवेंमें स्त्रियोंका कर्तव्य, छठेमें सदाचार, सातवेंमें ब्रह्मचर्य, आठवेंमें गृहस्थधर्म, नौवेंमें वानप्रस्थ-धर्म और दसवेंमें भिक्षु-धर्म वर्णित हैं। ग्यारहवेंमें अतिथि-सेवा, श्राद्ध और उपनयनकी बातें हैं। बारहवेंमें स्नातक-धर्म, तेरहवेंमें वेदपाठ और चौदहवेंमें खाद्य-विचार विवृत है। पंद्रहवेंमें दत्तक-पुत्र-ग्रहण, सोलहवेंमें राजकीय-विधि और सत्रहवेंमें उत्तराधिकारका वर्णन है। अठारहवें में चाण्डाल, वैण, अन्त्यावसायी, राभक, पुल्कस, सूत, अम्बष्ठ, उग्र, निषाद, पारशव आदि दस मिश्र या मिली हुई जातियोंका विवरण है। उन्नीसवेंमें राजधर्मकी विवृति है। बीसवेंसे अठाईसवें तकमें प्रायश्चित्त और उनतीस-तीस अध्यायोंमें दान-दक्षिणाका विवरण है।

रामेश्वरकी संस्कृत-व्याख्या और उमानन्दकी पद्धतिके साथ दो भागोंमें एक **परशुराम-कल्पसूत्र** भी बम्बईमें छपा है। इसे भी ऋग्वेदीय कल्पसूत्र कहा जाता है।

कृष्ण यजुर्वेदके ग्रन्थ और अन्य सभी वेदोंसे अधिक मिलते हैं। इसकी संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, कल्पसूत्र, प्रातिशाख्य आदि प्रायः सब मिलते हैं। इस वेदकी मैत्रायणी-शाखाका **मानव-धर्म-सूत्र** पाया जाता है। इसे जे० एम० गिल्डनरने प्रकाशित किया है। एफ० क्राउएरने भी **मानवश्रौत-सूत्र**का संस्करण निकाला है। **मानवगृह्यसूत्र** अष्टावक्रकृत भाष्यके साथ 'गायकवाड़ संस्कृत सिरीज'में

छपा है। पं० भीमसेन शर्माने भी हिन्दी-भाष्य करके इसे छपाया है। इसके अतिरिक्त बौधायन, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, भारद्वाज, काठक आदि कितने ही सूत्रग्रन्थ इस वेदके मिले हैं।

बौधायन-श्रौतसूत्र उन्नीस प्रश्नोंमें पूर्ण हुआ है। **बौधायन-गृह्यसूत्र** और **बौधायन-धर्मसूत्र**में चार-चार प्रश्न या खण्ड है। बौधायन कल्पसूत्रोंमें कर्मान्तसूत्र, द्वैधसूत्र, शुल्वसूत्र (यज्ञवेदी-निर्माणके लिये रेखागणितके नियम) आदि भी पाये जाते हैं। बौधायनने लिखा है–'अवन्ती, मगध, सौराष्ट्र, दक्षिण, उपावृत, सिन्धु और सौवीरके निवासी मिश्र जाति हैं।' इससे विदित होता है कि बौधायनके समय १२५० ईसा पूर्वमें इन प्रदेशोंमें अनार्य भी रहते थे। आगे चलकर लिखा गया है–'जिन्होंने आरट्ट, कारस्कर, पुण्ड्र, सौवीर, वंग, कलिंग आदिका भ्रमण किया, उन्हें 'पुनस्तोम' और 'सर्व-, पृष्ठा' यज्ञ करने पड़े। इससे मालूम पड़ता है कि आर्य लोग इन प्रदेशोंको हीन समझते थे।

बौधायन-श्रौतसूत्रको सम्पादित कर डब्ल्यू० कैलेंडने प्रकाशित किया है। इसमें सब १४ भाग हैं। यह 'वाइब्लोथिका इंडिका'में छपा है। बौधा-धर्मसूत्रके प्रथम प्रश्नमें ब्रह्मचर्य-विवरण, शुद्धाशुद्ध-विचार, मिश्र-जाति-वर्णन, राजकीय विधि और आठ तरहके विवाहोंकी बातें हैं। द्वितीय प्रश्न-में प्रायश्चित्त, उत्तराधिकार तथा स्त्री-धर्म, गृहस्थधर्म, चार आश्रम और श्राद्धका विवरण है। तृतीयमें वैखानस आदिके कर्तव्य और चान्द्रायण आदि प्रायश्चित्तोंका वर्णन है। चतुर्थमें काम्य-सिद्धि आदि विवृत हैं। गोविन्द स्वामीके भाष्यके साथ यह 'गवर्नमेंट ओरियंटल लाइब्रेरी संस्कृत सिरीज'में छपा है। उक्त सिरीजमें ही बौधायनगृह्यसूत्र भी छपा है।

आपस्तम्बके भी सारे कल्पसूत्र पाये जाते हैं। आपस्तम्ब आन्ध्रमें उत्पन्न हुए थे। द्रविड़ और तैलंग ब्राह्मण भी अपनेको आपस्तम्बशाखी और अपनी संहिताको तैत्तिरीय-संहिता कहते हैं। आपस्तम्बका कल्पसूत्र तीस प्रश्नोंमें परिपूर्ण हुआ है। प्रथम चौबीस प्रश्न श्रौतसूत्र हैं, पचीसवा

प्रश्न परिभाषा है, छब्बीसवां और सत्ताईसवां प्रश्न गृह्यसूत्र है। अट्ठाईसवां और उनतीसवां प्रश्न धर्म-सूत्र है और तीसवां शुल्व-सूत्र है। **आपस्तम्ब-श्रौतसूत्र**को सुसम्पादित कर आर० गार्बेने दो भागोंमें प्रकाशित किया है। डब्ल्यू० कैलेंडने अनेक टीका-टिप्पणियोंके साथ इसका जर्मन अनुवाद निकाला है। **आपस्तम्बगृह्यसूत्र**में ब्रह्मचर्य द्वारा शास्त्र-शिक्षा, गृहनिर्माण, मासिक श्राद्ध, विवाह आदि संस्कार तथा श्रावणी, अष्टका आदिका विवरण है। यह ग्रन्थ 'काशी-संस्कृत-सिरीज'में छपा है। हरदत्त मिश्र और सुदर्शनाचार्यकी व्याख्या भी इसमें है। परिशिष्ट और टिप्पणियोंके साथ इसे बड़ी शुद्धतासे एम० विंटर्नित्जने भी छपाया है। **आपस्तम्ब-धर्म-सूत्र**के प्रथम प्रश्नमें ब्रह्मचर्य, शास्त्र-शिक्षा, खाद्य विचार और प्रायश्चित्तकी बातें हैं। 'गवर्नमेंट ओरियंटल हिन्दू सिरीज'में 'उज्ज्वला' नामक व्याख्याके साथ यह धर्मसूत्र दो भागोंमें छपा है। 'गवर्नमेंट ओरियंटल लाइब्रेरी संस्कृत सिरीज'में भी यह छपा है। इसी सिरीजमें कपर्दि स्वामीके भाष्य और हरदत्ताचार्यकी व्याख्याके साथ '**आपस्तम्ब-परिभाषा-सूत्र**' छपा है। यूरोपमें डच भाषामें इस वेदका **पितृमेध - सूत्र** भी छपा है। **बाधूल-सूत्र**को भी कैलेंडने छपाया है।

हिरण्यकेशी आपस्तम्बके पीछेके पुरुष हैं। हिरण्यकेशीके कल्पसूत्रोंकी रचना आपस्तम्बके कल्पसूत्रोंको सामने रखकर की गयी है। हिरण्यकेशीका दूसरा नाम सत्याषाढ़ है। 'आनन्दाश्रम-संस्कृत-ग्रन्थावली'में छः भागोंमें वैजयन्ती, ज्योत्स्ना और चन्द्रिका नामकी व्याख्याओंके साथ **हिरण्यकेशी-श्रौत-सूत्र** छपा है। **हिरण्यकेशी-गृह्यसूत्र**को मातृदत्तकी व्याख्या और परिशिष्टके साथ जे० कीर्स्टेने छापा है। जे० डब्ल्यू० सोलोमनने सुसम्पादित करके **भारद्वाज-गृह्यसूत्र**को छापा है। इसमें शब्दानुक्रमणिका भी है। भारद्वाज-कल्पसूत्र भी तैत्तिरीय शाखाका है। मैत्रायणी-शाखाका **वाराह-गृह्यसूत्र** 'गायकवाड़ संस्कृत सिरीज'में छपा है। कठशाखाका **काठक-गृह्यसूत्र** डब्ल्यू० कैलेंडने प्रकाशित किया है। इसी वेदका देवपाल कृत भाष्यके

साथ **लौगाक्षि-गृह्यसूत्र** छपा है। **वैखानस-गृह्यसूत्र**को भी कैलेंडने छपाया है।

शुक्ल यजुर्वेदके (माध्यन्दिन और काण्व, दोनोंके) दो कल्पसूत्र अत्यन्त प्रसिद्ध हैं—कात्यायन-श्रौतसूत्र और पारस्कर-गृह्यसूत्र। कात्यायनश्रौत-सूत्रके अठारह अध्याय इस वेदके शतपथ-ब्राह्मणके नौ काण्डोंके क्रमानुवर्ती हैं। अवशिष्ट अध्याय सौत्रामणि, अश्वमेध, नरमेध, सर्वमेध आदिके विवरणोंसे पूर्ण हैं। व्रात्योंके विवरणमें मगधके ब्रह्मबन्धुओंका उल्लेख है। ब्रह्मण्यानुष्ठानसे शून्य अधम ब्राह्मणोंको **ब्रह्मबन्धु** कहा गया है। **कात्यायन-श्रौतसूत्र**को कर्काचार्यके भाष्यके साथ १३ खण्डोंमें 'चौखम्भा संस्कृत सिरीज'में प्रकाशित किया गया है। इसके कई संस्करण छप चुके हैं।

पारस्कर-गृह्यसूत्र नौ खण्डोंमें पूर्ण हुआ है। प्रथममें विवाह, गर्भाधान आदि संस्कारोंका विवरण है। द्वितीयमें कृषि-प्रारम्भ, विद्या-शिक्षा, श्रावणी आदिका विवेचन है। तृतीयमें गृह-निर्माण, वृषोत्सर्ग, श्राद्ध आदिका वर्णन है। अन्य गृह्य सूत्रोंकी तरह ही इसके भी अन्यान्य काण्डोंका विवरण है। यह गृह्यसूत्र 'काशी संस्कृत-सिरीज'में कर्कोपाध्याय, जयराम, गदाधर, हरिहर और विश्वनाथकी टीकाओंके साथ छपा है। इसमें परिशिष्ट-कण्डिका, शौचसूत्र, स्नानसूत्र, श्राद्धसूत्र और भोजनसूत्र भी सम्मिलित हैं। इस वेदका कात्यायन-प्रणीत शुल्वसूत्र भी सी० मूलर द्वारा छपा है।

सामवेदकी दो शाखाओंके दो श्रौतसूत्र अत्यन्त विख्यात हैं—कौथुम-शाखाका **लाट्यायन-श्रौतसूत्र या मशक-श्रौतसूत्र** और राणायणीय शाखाका **द्राह्यायण-श्रौतसूत्र**। दोनोंमें वैदिक यज्ञोंका खूब सुन्दर विश्लेषण और विवरण है। लाट्यायन-श्रौतसूत्र 'बाइब्लोथिका इंडिका'में छपा है। इसपर अग्नि स्वामीका भाष्य है। द्राह्यायणको धन्विन्की व्याख्याके साथ जे० एम० रूटरने सुसम्पादित कर प्रकाशित किया है। रुद्रस्कन्दकी वृत्तिके साथ **द्राह्यायण-गृह्यसूत्र** भी छपा है।

सामवेद (कौथुमशाखा) का **गोभिल-गृह्यसूत्र** चार प्रपाठकोंमें विभक्त है। प्रथम प्रपाठकमें साधारण विधि, ब्रह्मयज्ञ, दर्शपूर्णमास आदिका विवरण है। द्वितीयमें विवाह, गर्भाधान, पुंसवन, जातकर्म, नामकरण, चूड़ाकरण, उपनयन आदि विवृत हैं। तृतीयमें ब्रह्मचर्य, गोपालन, गोयज्ञ, अश्वयज्ञ, श्रावणी आदिका वर्णन है। चतुर्थमें विविध अन्वष्टका, काम्य सिद्धियोंके उपयोगी कर्म, गृहनिर्माण आदिकी विवृति है। यह भी 'वाइब्लोथिका इंडिका'में छपा है। महामहोपाध्याय पं० चन्द्रकान्त तर्कालंकारका भाष्य भी इसपर है। सत्यव्रत सामश्रमी महोदयने इसका बंगलामें अनुवाद किया है। उक्त तर्कालंकारजीने एक **गोभिल-परिशिष्ट** भी छपाया है। राणायणीय शाखाका **खदिर-गृह्यसूत्र** है, जो रुद्र स्कन्दकी टीकाके साथ 'गवर्नमेंट ओरियंटल लाइब्रेरी संस्कृतसिरीज'में छपा है। सामवेदके **पञ्चविधसूत्र**को अंग्रेजी टीकाके साथ कैलेंडने छपाया है। इसका **निदान-सूत्र** कलकत्तेमें छपा है। इसका **क्षुद्रसूत्र** भी छप चुका है।

सामवेदकी जैमिनीय शाखाके **जैमिनीय-श्रौतसूत्र**को डच भाषामें टिप्पणियों और परिशिष्टके साथ सम्पादित करके डी० गास्ट्राने छापा है। **जैमिनीय-गृह्यसूत्र**को सुबोधिनी टीका, टिप्पणियों और लम्बी भूमिकाके साथ डब्ल्यू० कैलेंडने छापा है। कैलेंडने ही सामवेदका एक **आर्षेय-कल्पसूत्र** भी, टिप्पणियोंके साथ, छापा है।

सामवेदका **गौतमधर्म-सूत्र** अत्यन्त विख्यात है। यह अट्ठाईस अध्यायों में पूर्ण हुआ है। प्रथम और द्वितीय अध्यायोंमें उपनयन और ब्रह्मचर्य, तृतीयमें भिक्षु (संन्यासी) और वैखानस (वानप्रस्थ) का धर्म और चतुर्थ तथा पञ्चम अध्यायोंमें गृहस्थका धर्म विवृत हैं। इस प्रसंगमें गौतमने इन आठ प्रकारके विवाहोंका उल्लेख किया है—ब्राह्म, प्राजापत्य, आर्ष, दैव, गान्धर्व, आसुर, राक्षस और पैशाच। प्रथमके चार उत्तम हैं और अन्तके चार अधम हैं। पञ्चम अध्यायमें अठारह प्रकारकी मिली हुई जातियोंका या मिश्र जातियों का उल्लेख है। षष्ठमें अभिवादन, सप्तममें आपत्कालीन वृत्ति-समूह

और अष्टममें चालीस संस्कारोंका उल्लेख है। नवममें स्नातक-धर्म, दशममें विभिन्न-जाति-धर्म, एकादशमें राज-धर्म, द्वादशमें राजकीय विधि, त्रयोदशमें विचार और साक्ष्यग्रहण, चतुर्दशमें अशुद्धि-विचार, पञ्चदशमें श्राद्ध-नियम, षोडशमें वेदपाठ, सप्तदशमें खाद्यविचार और अष्टादशमें स्त्री-विवाह आदि हैं। उन्नीससे सत्ताईस अध्यायोंमें प्रायश्चित्त-विवरण है। अठाईसवेंमें उत्तराधिकारका विचार है। मस्करीभाष्यके साथ यह सूत्र-ग्रन्थ 'गवर्नमेंट ओरियंटल लाइब्रेरी संस्कृत सिरीज'में छपा है।

अथर्ववेदका **वैतान-श्रौतसूत्र** जर्मन अनुवादके साथ डब्ल्यू० कैलेंड द्वारा सुसम्पादित होकर प्रकाशित हो चुका है। स्व० चिन्तामणि विनायक वैद्यके मतसे इसका निर्माणकाल २००० ईसा पूर्व है। इस तरह उप-लब्ध कल्पसूत्रोंमें यह प्राचीनतम है। इस वेदके सुप्रसिद्ध **कौशिक-गृह्यसूत्र**-को, दो टीकाओंसे युक्त, मारिस ब्लूमफील्डने बड़ी शुद्धता और सुन्दरताके साथ प्रकाशित किया है। किसी-किसीके मतसे वैखानस-गृह्यसूत्र भी इसी वेदकी शौनकशाखाका है। इस वेदकी पैप्पलाद-शाखाका कोई भी कल्पसूत्र उपलब्ध नहीं है।

अब तक जितने कल्पसूत्रोंका उल्लेख हो चुका है, उनके अतिरिक्त भी कुछ कल्पसूत्र पाये जाते हैं; परन्तु उनकी प्रामाणिकतामें सन्देह है। इसी-लिये उनका यहां उल्लेख नहीं किया गया है। उल्लिखित कल्पसूत्रोंपर अनेकानेक खण्डित और अखण्डित भाष्य-टीकाएं भी मिलती हैं; परन्तु अधिकांश हस्तलिखित और अप्रकाशित दशामें ब्रिटिश म्युजियम (लंदन), नेशनल लाइब्रेरी (कलकत्ता), भांडारकर ओरियंटल रिसर्च इन्स्टीट्यूट (पूना) तथा देश-विदेशकी विभिन्न लाइब्रेरियोंमें पड़ी हैं। वैदिक साहित्यके अनेकानेक बहुमूल्य ग्रन्थ भी पड़े हैं। यदि उन्हें छापें, तो यूरोपीय विद्वान् ही; हम हिन्दुओंको तो कुछ भी परवा नहीं।

वैदिक संहिताओंका अर्थ, तत्त्व और रहस्य समझनेके लिये जैसे ब्राह्मण, आरण्यक, प्रातिशाख्य, निरुक्त, निघंटु, मीमांसा, बृहद्देवता, अनुक्रमणी

शिक्षा, चरणव्यूह आदिका अध्ययन आवश्यक है, वैसे ही, बल्कि कहीं कहीं उनसे भी अधिक आवश्यक कल्पसूत्रोंका पठन है। श्रौतसूत्रोंसे यज्ञ-रहस्य समझनेमें आश्चर्यजनक सहायता मिलती है। गृह्यसूत्रोंसे स्थल-विशेषमें अद्भुत साहाय्य प्राप्त होता है। प्राचीन हिन्दू जीवन, प्राचीन हिन्दू समाज और प्राचीन हिन्दूधर्म समझनेके लिये तो ये सूत्र अद्वितीय हैं ही। धार्मिक नियमोंमें अपना और अपने समाजका जीवन संयत कौर उन्नत करनेके लिये तथा निःश्रेयसकी प्राप्तिके लिये ये सूत्र अनूठे हैं।

यहां यह भी ध्यान देनेकी बात है कि मनुस्मृति, याज्ञबल्क्यस्मृति, वसिष्ठस्मृति, पराशरस्मृति आदि बीसों प्रसिद्ध स्मृतियोंकी उत्पत्ति और रचना इन्हीं कल्पसूत्रोंसे हुई है। समस्त हिन्दू-संस्कारों, राजधर्मों, व्यवहार-दर्शनों, दाम्पत्य-धर्मों, दाय-भागों, संकर-जाति-विवरणों और प्रायश्चित्तों के आधार भी ये ही कल्पसूत्र हैं। इनके विना प्राचीन नियमों और प्रथाओं का समझना दुरूह, कठिन, जटिल और विकट है। इसलिये इनका स्वाध्याय करना प्रत्येक हिन्दूके लिये आवश्यक और अनिवार्य है।*

---

* शौनकके चरण-व्यूहके महीदासके भाष्यमें लिखा है—'कृष्णा और गोदावरीके तटोंपर आन्ध्रदेशमें आश्वलायनी शाखा, आपस्तम्बी शाखा और हिरण्यकेशी शाखा प्रचलित है, गुजरातमें शांखायनी शाखा और मैत्रायणी शाखा प्रचलित है तथा अंग, वंग, कलिंगमें माध्यन्दिनी शाखा और कौथुम शाखा प्रचलित हैं।' परन्तु इन दिनों प्रधानतया महाराष्ट्रमें ऋग्वेदकी शाकल-शाखा, गुजरात और दक्षिणमें कृष्ण यजुर्वेदकी मैत्रा-यणी शाखा, दक्षिण तैलंग और द्राविड़में कृष्ण यजुर्वेदकी आपस्तम्बी या

तैत्तिरीय शाखा, उत्तर भारत, मिथिला और महाराष्ट्रमें शुक्ल यजुर्वेदकी माध्यन्दिनी शाखा, दाक्षिणात्यमें इसी वेदकी काण्वशाखा, गुजरात और बंगालमें सामवेदकी कौथुमशाखा, दक्षिणमें (सेतुबन्ध रामेश्वरमें) सामवेदकी राणायणी शाखा, कर्णाटकमें सामवेदकी जैमिनीय शाखा और गुजरात (नागर ब्राह्मणों) में अथर्ववेदकी शौनक शाखा प्रचलित हैं। काठक-शाखावाले ब्राह्मण काश्मीरमें तथा इतस्ततः पाये जाते हैं। पैप्पलाद-शाखी ब्राह्मण देशमें बहुत कम पाये जाते हैं। जहां जो शाखा प्रचलित है, वहां उसी शाखाके कल्पसूत्रोंके अनुसार सारे श्रौत, स्मार्त कार्य और संस्कार आदि होते हैं; इसलिये विभिन्न प्रदेशोंके ऐसे कार्यों और संस्कारोंमें भेद दिखाई देते हैं। किंतु ये भेद साधारणसे ही होते हैं।

त्रयोदश अध्याय

कल्पसूत्रोंके आदेश

जैसा कि कहा गया है, साक्षात् वेदोंमें कथित यज्ञादि-विषयक विधि-विधानोंको बतानेवाले कल्पसूत्रोंको श्रौतसूत्र, गृहस्थके कार्योंको सम्पन्न करनेके लिये चिर कालसे स्थापित वा समय-समयपर स्थापित अग्निके द्वारा करणीय यज्ञादि-विषयक सूत्रोंको गृह्यसूत्र और विभिन्न पारमार्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक कर्त्तव्योंको बतानेवाले सूत्रोंको धर्मसूत्र कहा जाता है।

अबतक प्राय: चालीस कल्पसूत्र छप चुके है। इनमेंसे आश्वलायन-श्रौतसूत्र, आश्वलायन-गृह्यसूत्र, गोभिल-गृह्यसूत्र और गौतमधर्म-सूत्र से ही कुछ अवश्य ज्ञातव्य विषयोंके नमूने, हिन्दू संस्कृति और प्राचीन अनुष्ठानोंकी परम्परा समझनेके लिये, यहां दिये जाते हैं।

ऋग्वेदकी आश्वलायन-शाखा तो नहीं मिलती; परन्तु उसके श्रौत और गृह्य सूत्र अत्यन्त विख्यात हैं। श्रौतसूत्रमें १२ अध्याय है। ऐतरेय-ब्राह्मण और आरण्यक-ग्रन्थोंमें जो सब श्रौत यज्ञ विस्तृत रूपसे कहे गये हैं, उन्हींका विधान आदि संक्षेपसे कहना इस आश्वलायनश्रौतसूत्रका उद्देश्य है।

प्रथम सूत्रमें सूत्रकारने कहा है—'निवित्, प्रैष, पुरोरुक्, कुन्ताप, बालखिल्य, महानाम्नी आदि मन्त्रों, ऐतरेय-ब्राह्मणारण्यकादि तथा शाकल, वाष्कल संहिताओंके श्रौताग्नि द्वारा करणीय अग्निहोत्र आदि यज्ञोंकी प्रयोग-विधि कहूँगा।' अगले सूत्रमें कहा गया है—'श्रौताग्नि ग्रहण

करनेवाला अर्थात् नित्याग्निहोत्री (आहिताग्नि) पुरुष ही इन यज्ञोंको करनेका अधिकारी है।'

इष्टि-यज्ञोंके आदर्श दर्श और पूर्णमास यज्ञ हैं। इसलिये प्रथम इन्हीं (अमावास्या और पूर्णमासीमें सम्पादनीय) यज्ञोंका विधान बताया गया है। कहा गया है—'यजमानके द्वारा आमन्त्रित ऋग्वेदीय ऋत्विक् (पुरोहित) हवि तैयार करनेके लिये आहवनीय (जिस अग्निकुण्डमें चरु, पुरोडाश आदि प्रस्तुत किये जाते हैं) वेदीके उत्तर पूर्वाभिमुख बैठकर और यज्ञोपवीती होकर आचमन करे।'

प्रत्येक दैवकार्यमें यज्ञोपवीती और पितृ-कार्यमें प्राचीनावीती होना आवश्यक है। अन्य समयोंमें निवीती रहनेकी विधि है। बायें कन्धेसे दक्षिण पार्श्वमें यज्ञसूत्र (जनेऊ) धारण करनेको यज्ञोपवीती, दाहिने कन्धेसे वाम पार्श्वमें यज्ञसूत्र पहननेको प्राचीनावीती और कण्ठमें मालाकी तरह पहननेको निवीती कहा जाता है। आश्वलायनने चौथे सूत्रमें 'यज्ञोपवीती' की बात लिखी है। अवश्य ही आजकल निवीती बहुत ही कम दिखाई देते हैं।

लिखा है, 'आचमनके अनन्तर उत्कर (वेदीकी धूलि रखनेके स्थान) को पूर्व और प्रणीता (हविष्का पाक करनेवाले मन्त्रपूत जलके पात्र) को पश्चिम करके बीचमें विहार-भूमि (अग्निकुण्डके निर्माण-स्थान) की प्रदक्षिणा करे।' जिस यज्ञमें प्रणीताकी आवश्यकता नहीं है, उसमें यज्ञीय इन्धनकी लकड़ियां रखनेकी विधि है। उसमें उत्कर और इन्धनके बीच प्रदक्षिणा करनी चाहिये। उत्तर वेदीके निर्माणके लिये जिस स्थानसे मिट्टी ली जाती है, उस गड्ढेको 'चात्वाल' कहा जाता है। 'वरुणप्रघास' और 'पशुयाग' आदिमें प्रणीताकी आवश्यकता नहीं होती। उनमें चात्वालको ही पश्चिम करके उत्कर और चात्वालके बीचोबीच विहारभूमिकी प्रदक्षिणा की जाती है। इस प्रदक्षिणा-पथको तीर्थ कहते हैं। तीर्थकी प्रदक्षिणा करना होताका प्रथम और आवश्यक कर्त्तव्य है।'

इस श्रौतसूत्रका दसवां सूत्र है–"**यज्ञोपवीतशौचे च**।" अर्थात् 'यज्ञ करने-करानेवाले समस्त व्यक्तियोंका यज्ञोपवीती होना और आचमनादिके द्वारा अंगशुद्धि करना अत्यावश्यक है।'

'जिस समय विहारभूमिमें कोई कार्य हो रहा है, उस समय विहारभूमि को पीठ नहीं दिखानी चाहिये।'

'जहां कहीं मस्तक, अंगुलि आदिका नाम आया है, वहां सबका दक्षिण भाग ही समझना चाहिये। जो अंग–आंख, कान आदि दो हैं, उनमेसे दाहिने को ही समझना चाहिये।'

'दान करना चाहिये'–ऐसी जहां विधि है, वहां यजमानके लिये विधान समझना चाहिये। अन्यत्र होताके लिये ही विधान, उपदेश समझने चाहिये। अध्वर्यु आदिके लिये जहां उपदेश है, वहां तो उनका स्पष्ट ही नामोल्लेख है।'

'प्रायश्चित्त-प्रकरणमें अथवा होम और जप करनेके समय जो विधि है, वह ब्रह्माके लिये है।'

'सूत्र-ग्रन्थोंमें जहां-कहीं मन्त्रका प्रथम चरण लिखा गया है, वहां समस्त मन्त्र पढ़ना चाहिये।'

'जहां आधी ऋचाका उल्लेख है, वहां उस ऋचाके साथ समस्त सूक्त समझना चाहिये।'

'एक पादसे कुछ अधिक जहां ऋचा लिखी है, वहां 'तृच' वा तीन ऋचाओंको समझना चाहिये।'

'जप (पाठ), अनुमन्त्रण (अर्थ-स्मरणके साथ पाठ), अभिमन्त्रण (संशोध्य द्रव्यादिकी ओर देखकर अर्थ-स्मरणके साथ पाठ), आप्यायन (जल-स्पर्श कर-करके अर्थ-स्मरणके साथ पाठ) और उपस्थान (विनम्र भावसे अर्थ-स्मरणके साथ पाठ) जहां कहीं विहित हैं, वहां-वहां सब स्थलों में मन्त्रोंका उपांशु-प्रयोग (अशब्द उच्चारण अर्थात् निःशब्द जीभ चलाकर पाठ करना) जानना चाहिये।'

'मन्त्र-पाठ (अर्थ-स्मरणके साथ उच्च स्वरसे पाठ्य)के साथ ही सार अनुष्ठान करने चाहिये।'

'साधारण विधिसे विशेष विधि बलिष्ठ है।'

'पूर्वोक्त 'तीर्थ'की प्रदक्षिणा करनेके बाद वेदीकी उत्तर श्रोणी (वेदीके पश्चिमके दोनों कोनों) के ऊपर दाहिना पैर उठाकर और गुल्फ को समभावसे रखकर पादाग्र द्वारा, वेदीपर बिछाये हुए, कशोंको लांघे और दोनों हाथोंकी अँगुलियोंको (एक हाथकी अँगुलियोंके भीतर दूसरे हाथकी अँगुलियोंको घुसाकर) अपने हृदय या गोदमें रखते हुए तथा अन्त-रिक्षका निरीक्षण करते हुए होता बैठे।' 'यही वेदीकी उत्तर श्रोणी ही होताका कर्म-स्थान है।' 'सारे कार्योंमें होताको यहीं बैठना पड़ता है।'

'अध्वर्यु (यज्ञका विधिवत् सम्पादन करनेवाले) के द्वारा आदेश पानेपर ही होता सामिधेनी (अग्नि जलानेके लिये पठनीय मन्त्र) आदिका जप करे।'

'होम करनेके समय बायें हाथकी अँगुलियोंको फैलाकर हृदय वा गोदमें रखना चाहिये।'

आश्वलायन-श्रौतसूत्रके प्रथमाध्यायके प्रायः २७ सूत्रोंका भावानुवाद ऊपर दिया गया है। इससे श्रौत यज्ञोंका आभास मिल सकता है।

अब आश्वलायन ऋषिके गृह्यसूत्रका प्रसंग देखिये। यह चार अध्यायोंमें विभाजित है। गृह्यसूत्रोंके यज्ञ नित्य कर्म हैं अर्थात् अवश्य करणीय हैं। इसीलिये इन्हें पाक यज्ञ वा प्रधान यज्ञ कहा जाता है। ये यज्ञ, कुछ मूल रूपमें और कुछ रूपान्तरित होकर, अब तक प्रचलित हैं।

आश्वलायन-गृह्यसूत्रके तृतीय अध्यायकी प्रथमा कण्डिकाके तीन सूत्रोंमें देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ और मनुष्ययज्ञके लक्षण और स्वरूप बताकर चौथे सूत्रमें कहा गया है—

"तानेतान् यज्ञानहरहः कुर्वीत ।"

अर्थात् 'इन पांचों यज्ञोंको प्रतिदिन अवश्य करना चाहिये।'

इसके चतुर्थ अध्यायकी चतुर्थी कण्डिकामें नित्य अग्निहोत्री (आहिताग्नि) की अन्त्येष्टि-क्रियाका विषय पढ़ने योग्य है। लिखा है—'पित्रादि के शवकी क्रियाके अधिकारी पुत्रादि पुरोहितको बुलाकर कहें, 'आहवनीय, गार्हपत्य तथा दक्षिणाग्निको एक साथ प्रज्वलित कीजिये।' 'यदि मृतकको आहवनीय अग्नि पहले स्पर्श करे, तो समझना चाहिये कि उसे स्वर्ग मिला, वह वहीं समृद्ध होगा। उसके पुत्रादि भी इस संसारमें समृद्ध होंगे।'

'यदि मृतकको पहले गार्हपत्याग्नि स्पर्श करे, तो समझना चाहिये कि उसे अन्तरिक्ष मिला, वह वहीं फूले-फलेगा और उसके पुत्रादि भी संसारमें वैभव पावेंगे।'

'यदि दक्षिणाग्नि पहले स्पर्श करे, तो जानना चाहिये कि उसे मनुष्यलोक मिला, वह वहीं अभ्युदय करेगा और उसके पुत्रादि भी ऐश्वर्य प्राप्त करेंगे।'

'यदि एक साथ ही तीनों अग्नि शवको स्पर्श करें, तो समझना चाहिये कि वह मुक्त हो जायगा।'

विवाहमें व्यवहृत अग्नि सदा घरमें रखा जाता था। उसे गार्हपत्याग्नि कहा गया है। स्थालीपाक, मोहनभोग आदि जिसमें बनते थे, वह दक्षिणाग्नि है। अग्निहोत्र-यज्ञाग्निको आहवनीयाग्नि कहा गया है।

चिता प्रज्वलित हो जानेपर पढ़ना चाहिये—"**प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्वेभिः**" (ऋग्वेद १०.१४.७) अर्थात् 'जिस मार्गसे पूर्वज गये हैं, उसी मार्गसे तुम भी जाओ।'

'जिसकी मृत देहका ऐसा सत्कार होता है, उसकी आत्मा धूमके साथ ही स्वर्ग जाती है।'

चिता जल जानेपर पुत्रादि और अन्य शववाहक "**इमे जीवा वि मृतैराववृत्रन्**" (ऋग्वेद १०.१८.३) अर्थात् 'ये जीवित मनुष्य मृतकके पास

से लौट रहे हैं'–पढ़ते हुए, चिताको बायें हाथ छोड़कर तथा पीछे न देखते हुए घरकी ओर प्रस्थान करें।'

'अनन्तर स्वच्छ जलाशयमें स्नान करके मृतकके नाम और गोत्रका उच्चारण करते हुए सब लोग जलाञ्जलि दें। इसके अनन्तर नये वस्त्र पहनें। परन्तु सूर्यास्तके बाद नक्षत्र-दर्शन होनेपर ही घरमें प्रवेश करें।' 'मृत-संस्कार रात्रिमें होनेपर सूर्योदयके बाद घरमें प्रवेश करें।'

इसके अनन्तर सप्तमी और अष्टमी कण्डिकाओंमें विस्तृत श्राद्ध-विधि है। जिज्ञासुओंको वहीं देखना चाहिये। गृहस्थोंको यह सारा प्रकरण ध्यानसे पढ़ना चाहिये। यहां यह भी ध्यान देनेकी वात है कि प्रत्येक सद्-गृहस्थको आहिताग्नि होना अनिवार्य बताया गया है। पहले प्रत्येक गृहस्थ आहिताग्नि होता भी था–अब भी कुछ ऐसे पुण्यात्मा मिलते हैं।

सामवेदकी कौथुमशाखाका गोभिल-गृह्यसूत्र चार प्रपाठकोंमें विभक्त है। इसके द्वितीय प्रपाठकके प्रथम, द्वितीय और तृतीय खण्डोंके कुछ सूत्रोंमें विवाह-संस्कारका बड़ा ही मार्मिक विवेचन है। इससे वैदिक रीति के विवाह-विधानकी झलक दिखाई देती है।

द्वितीय प्रपाठकके प्रथम खण्डके १२ वें सूत्रसे प्राप्त प्रसंग चलता है। कहा गया है, 'पाणि-ग्रहण करनेके लिये पहले घरमें अग्नि-स्थापन करना चाहिये।' 'अनन्तर कोई कन्याका आत्मीय, जिस तालाबका जल कभी नहीं सूखता, उसके जलसे कलशको भरकर और कपड़ेसे ढककर तथा स्वयं वाक्संयत होकर अग्निके सम्मुख रखे। अनन्तर प्रदक्षिणा करनेके बाद अग्निके दाहिने उत्तराभिमुख बैठे। एक दूसरा मनुष्य भी इसी तरह हाथमें लकड़ी लेकर बैठेगा। अग्निके पीछे शमीपत्रके साथ चार अंगुली ऊँचा भुना धान्य (लावा) और एक लोढ़ा रखा जाना चाहिये। पश्चात् कन्याको सिरतक नहला देना चाहिये। स्नानके अनन्तर भावी पति **'या अकृन्तन्'** (मन्त्र-ब्राह्मण ५) और **'परिधत्त धत्त वाससा '** (म०

आ० ६) मन्त्र पढ़कर कन्याको अखण्ड वस्त्र परिधान करावे। पुनः भावी पति कन्याको वस्त्राच्छादित और यज्ञोपवीतिनी करके तथा सामने लाकर **'सोमोऽददत्'** (मं० ब्रा० ७) मन्त्र पढ़े (**'यज्ञोपवीतिनीमभ्युदानयञ्जपेत्'**)। अनन्तर अग्निके पीछे रखे हुए चटाई आदि किसी आसनको कन्या के पैरसे चलाकर अग्निके पास फैलाये गये कुशोंतक लिवा लावे। कन्यासे **'प्र मे'** (म० ब्रा० ८) मन्त्रका पाठ करावे। यदि कन्या मन्त्रपाठ करना न जानती हो, तो भावी पति **'प्रास्या'** (म० ब्रा० ९) मन्त्रका स्वयं पाठ करे।'

—पैरसे लायी गयी चटाईके पूर्वी कोनेपर बैठे हुए पतिके दाहिने कन्या बैठे। कन्या अपने दाहिने हाथसे वरका दाहिना कन्धा स्पर्श करे और वर कन्याके कल्याणके लिये **'अग्निरेतु प्रथमः'** (म० ब्रा० १०-१५) आदि छः मन्त्रोंका पाठ करते हुए अलग-अलग तीन वार हवन करे। अन्तको 'भूर्भुवः स्वः' मन्त्रसे चतुर्थ होम करे।'

इस तरह इस गृह्यसूत्रके द्वितीय प्रपाठकके द्वितीय खण्डके १७ सूत्रों तथा तृतीय खण्डके १२ सूत्रोंमें विवाह-मण्डपकी सारी विधियां और विधान कहे गये हैं। आर्यजीवनमें विवाह-संस्कार सबसे बड़ा संस्कार है। विवाह-मण्डपमें पद-पदपर प्रतापी और शक्तिशाली मन्त्रोंका पाठ करके इस संस्कारको प्रबल और पावन बना दिया गया है। यह पूरा प्रकरण बार-बार पढ़ने योग्य है। इसमें कन्याको यज्ञोपवीत पहनानेकी वात है; मन्त्र-पाठकी वात भी है। कुछ लोगोंका मत है कि असाधारण कन्याओं के लिये ही ये दोनों विधियां हैं—साधारणके लिये नहीं।

सातवें खण्डमें 'जात-कर्म' संस्कारका कथन है। कहा गया है—'जिस समय सूतिका-गृहमें दाई आदि बोल उठें—'कुमारने जन्म लिया', उसी समय पिता कहेगा, 'नाभि-संलग्न नाड़ीको काटकर और स्तन्य-पान कराकर इसकी रक्षा करनेकी अभिलाषा करो।' 'चावल और जौको पीसकर उसे

अपने अँगूठे और अनामिकासे बच्चेकी जीभपर लगा देना चाहिये। साथ ही मन्त्र-ब्राह्मणके (१.५.८) मन्त्रोंको पढ़ते भी जाना चाहिये। अनन्तर मन्त्र-ब्राह्मणके १.५.९ और छन्द आर्चिकके २.२.३.७ मन्त्रोंको पढ़ते हुए अँगूठे और अनामिकासे वा स्वर्णकी शलाका (सींक) के अग्र भागसे जीभपर घी लगा देना चाहिये।' 'दस राततक जननाशौच रहता है।'

आठवें खण्डमें निष्क्रामण-संस्कारका विधान है। यह जन्मसे तीसरे शुक्ल पक्षकी तृतीया तिथिको विहित है। इसी खण्डमें नामकरण-विधि भी है। जन्मतिथिसे दसवें वा सौवें वा एक वर्ष बीत जानेपर ग्यारहवें दिन नामकरण करनेकी विधि है। नामका पहला अक्षर घोष हो वा अन्त:स्थ हो, अन्त्य वर्ण दीर्घ हो या विसर्ग हो, किसका नाम सम हो और किसका विषम—इन बातोंका भी विचार किया गया है। इसी खण्डमें अपनी प्रत्येक जयन्तीमें देवार्चनका विधान है। नवम खण्डमें चूड़ाकरण है और दसवेंमें उपनयन-संस्कार है।

चूड़ाकरणमें वसिष्ठ गोत्रवालोंको 'पंचचूड़' छोड़कर, कुण्डपायी कुलवालोंको 'चूड़ात्रय, छोड़कर और कौथुमशाखावालोंको शिखाके साथ ही मुण्डन करानेका आदेश है। इन संस्कारोंको करानेवाले पुरोहितको प्रत्येक संस्कारमें एक गौ देनेकी आज्ञा है।

वेदाध्ययनके लिये गुरुके समीप कुमारको ले जानेको उपनयन कहा जाता है। उपनयनका अर्थ यज्ञोपवीत समझना ठीक नहीं।

'जिस दिन गर्भ रहा, उस दिनसे आठवें वर्षमें ब्राह्मण-बालकका, ग्यारहवें वर्षमें क्षत्रियका और बारहवेंमें वैश्यका उपनयन करना चाहिये। यदि नियत समयके भीतर उपनयन नहीं किया जा सके, तो सोलह वर्षतक ब्राह्मण कुमारका, बाईस वर्षतक क्षत्रियका और चौबीस वर्षतक वैश्यका उपनयन हो सकता है, 'यदि इन वर्षोंके भीतर उपनयन नहीं कराया जा सका, तो तीनों जातियोंके बालकोंको गायत्री मन्त्र लेनेका, वेदाध्ययनका, यज्ञ करनेका और विवाह करनेका अधिकार ही विनष्ट हो जाता है।'

किस जातिके बालकका किस वस्तुका वस्त्र, कैसा उत्तरीय चर्म, करधन (कटि-वन्धनी) और दण्ड हो, इसकी भी विधि बतायी गयी है।

अनेकानेक कृत्योंके अनन्तर और गायत्री-उपदेशके पहले यज्ञोपवीत-धारणका विधान है। यद्यपि सूत्रकारोंने यज्ञोपवीतके सम्बन्धमें इस प्रसंग में कुछ नहीं लिखा है; परन्तु उपनयन होते ही बालकके लिये प्रातः-सायं हवन करनेका विधान है और विना यज्ञोपवीती बने दैव-कार्य करनेका अधिकार ही नहीं प्राप्त होता, ऐसा सूत्रकारोंका मत है; इसलिये गायत्री-उपदेशके पहले ही यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये।*

'उपनयनके पश्चात् तीन दिनोंतक नमक नहीं खाना चाहिये।'

'इस संस्कारके लिये भी दक्षिणा गौ है।'

उपनयन यथाविधि तो नहीं, परन्तु कुछ रूपान्तर प्राप्त करके प्रचलित है। गुरुकुल-वास और वेदाध्ययनके लिये तो बहुत ही कम उपनयन होता है; किन्तु जनेऊ पहननेके लिये विवाहके पहले किसी तरह उपनयन करा दिया जाता है। गृह्यसूत्रके अनुसार ही यह संस्कार होता है; परन्तु वेद-शाखाओंके अनुसार विविध गृह्यसूत्र विभिन्न व्यक्तियोंको मान्य हैं; इसलिये देशके अनेक प्रान्तोंमें उपनयन-संस्कारमें भेद दिखाई देता है। सभी वेद-शाखियोंके लिये न तो एक ही गृह्यसूत्र मान्य है, न सभी गृह्यसूत्रोंका एकसा विधान ही है। पुरोहितोंमें वेदाध्ययनके अभाव और अशिक्षाके कारण भी उपनयन-संस्कार बहुत कुछ विकृत और अशुद्ध हो पड़ा है।

*** तैत्तिरीयारण्यक (२.११) में लिखा है—"प्रसृतो ह वै यज्ञोपवीतिनो यज्ञः। यत्किञ्च ब्राह्मणो यज्ञोपवीत्यधीते यजत एव तत्।" (यज्ञोपवीतीका यज्ञ भली भांति स्वीकार किया जाता है। जो कुछ यज्ञोपवीती पढ़ता है, वह यज्ञ ही करता है।)]**

सामवेदकी गौतम-संहिता तो अब नहीं मिल रही हैं; परन्तु उसका गौतमधर्म सूत्र अतीव प्रसिद्ध है। उसमें अठाईस अध्याय हैं। तीसरे अध्यायमें आश्रमधर्म, चौथेमें मिश्रित जातियों, आठवेंमें चालीस संस्कारों और ग्यारहवेंमें राजधर्मका विवरण है।

तृतीय अध्यायके प्रथम सूत्रसे मालूम होता है कि 'किसी-किसी आचार्यके मतसे वेदाध्ययनके अनन्तर मनुष्य किसी भी एक ही आश्रममें जीवन भर रह सकता है।'

दूसरे सूत्रमें बताया गया है कि 'ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वैखानस और भिक्षु नामके चार आश्रमवाले हैं।' 'इन सबका जन्म-स्थान गृहस्थ ही है; क्योंकि अन्य तीन सन्तान नहीं उत्पन्न करते।'

'वेदाध्ययनकी समाप्ति तक ब्रह्मचारीको गुरुके आधीन रहना चाहिये।' 'गुरुदेवका कार्य कर लेनेके बाद वेद-पाठ करना चाहिये।' 'यदि गुरुका कोई कार्य न रहे, तो गुरु-पुत्रका कार्य करे।' 'गुरु-पुत्रका कोई कार्य न रहे, तो अपनेसे ज्येष्ठ ब्रह्मचारीका कार्य करे अथवा अग्निका कार्य करे।' 'जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी शुद्ध आचरणके द्वारा ब्रह्म-लोकको प्राप्त करते हैं।'

११ वें सूत्रसे संन्यासीके कर्त्तव्योंकी विवृति है। कहा गया है–'भिक्षु (संन्यासी) को सर्वथा सम्पत्ति-शून्य होना चाहिये'–**"अनिचयो भिक्षुः।"** 'उसको ऊर्ध्वरेता होना चाहिये।' 'वर्षाकालमें उसे एक स्थानपर रहना चाहिये।' 'जिस घरके लोग भोजन नहीं कर चुके हों, वहीं भिक्षा लेनी चाहिये।' 'उसे सब तरहकी विलास-वासनाको छोड़ देना चाहिये।' 'उसे वचन, नेत्र और कर्मको संयत रखना चाहिये।' 'गुप्तांगोंको ढकनेके लिये केवल कौपीन पहनना चाहिये।' 'किसी-किसी मतसे गेरुएमें रँगकर केवल एक वस्त्र धारण करना चाहिये'–**"प्रहोणमेके निर्णिज्य।"** 'वृक्ष वा धान्य आदिसे जो अंश स्वयं गिर चुका है, उसे ही संन्यासी व्यवहारमें ले आवे। अपने पेटके लिये स्वयं कुछ न तोड़े।' 'वर्षाकालके अतिरिक्त संन्यासी दो रात एक ग्राममें न रहे।' 'भिक्षु पूरा मुण्डन करा डाले वा केवल शिखा रखे'–**"मुण्डः शिखी वा"** 'पर्यटनके समय अपने पैरसे अन्नादिके बीज

नष्ट न करे।' 'हिंसक और कृपालुको बराबर समझे।' 'अपने स्वार्थके लिये किसी भी कार्यको न करे।'

संन्यासके इन नियमोंका पालन पहले भली भांति किया जाता था। पहलेके बौद्ध भिक्षु (बौद्ध पुरोहित) भी ब्राह्मण-भिक्षुओंकी देखा-देखी इन नियमोंका कड़ाईसे पालन करते थे। बौद्धोंको देखकर शाम, मिश्र, ग्रीस और यूरोपके विभिन्न देशोंमें भी भिक्षु होकर लोग संयत और तपस्वी जीवन बिताते थे। ब्राह्मण-भिक्षुओंके आश्रमोंको देखकर बौद्ध-विहार बने और उनकी नकलपर ईसाई बिहार(Monastry)बने। तात्पर्य यह है कि हमारे यहां संन्यासियोंका जीवन इतना त्यागमय और आदर्श था कि संसारने उनकी नकल की। परन्तु **"ते हि नो दिवसा गताः"** (हमारे वे दिन चले गये)! अब तो गृहस्थसे भी बढ़कर कितने ही संन्यासी विलासी बनने लगे, लाखों रुपये बटोरने लगे, महल बनाने लगे, सत्रह तरहकी पोशाकें पहनने लगे, गद्दी बांधने लगे! ऐसे लोगोंने हिन्दूजातिसे त्याग और तपस्याकी महिमा ही मिटा डाली!

२६ वें सूत्रसे वैखानस (वानप्रस्थ) के कर्त्तव्योंका उल्लेख है। कहा गया है—'वानप्रस्थ वनमें फल-मूल खाकर तपस्या करे।' 'सायं-प्रातः होम करे।' 'ग्राम्य अन्न आदिका भोजन न करे।'

तैत्तिरीय-संहिता (५.२.५.५) से पता चलता है कि सात प्रकारके ग्राम्य अन्न और सात प्रकारके आरण्य अन्न हैं। तिल, उड़द, चावल, जौ, गेहूँ, चीनी धान (अणु) और प्रियंगु (श्यामा लता) आदि सात ग्राम्य अन्न हैं तथा वेणु, श्यामाक, नीवार, जर्त्तिल, गवेधुका, मर्कटका और गार्मुत आदि सात अरण्यके अन्न हैं। मतलब यह कि जितने अन्न ग्रामोंमें उत्पन्न होते हैं, उन्हें छोड़कर जंगलमें होनेवाले अन्नोंको ही वैखानस खायं।

'वानप्रस्थ पंचमहायज्ञ प्रतिदिन करे।' 'योग्य अतिथिकी सेवा करे।' 'जोती हुई भूमिपर नहीं रहे।' 'वानप्रस्थ कभी गांवमें न जाय।' 'जटा

धारण करे और चिथड़ा (वस्त्र-खण्ड) वा पशु-चर्म धारण करे।'

'यदि किसी एक ही आश्रममें रहना हो, तो वेदाध्ययनके अनन्तर गृहस्थाश्रममें ही रहना अच्छा है; क्योंकि वेदमें गृहस्थाश्रमका ही प्रत्यक्ष विधान है।'

संक्षेपमें ये वैखानसके कर्त्तव्य है। पहले ऐसे आदर्श वैखानस अनेक होते थे। ग्रीक आदिकोंने ऐसे भारतीय वानप्रस्थोंका अपने ग्रन्थोंमें उल्लेख किया है। आदर्श संन्यासियोंकी तरह इन दिनों आदर्श वानप्रस्थ भी नहीं के बराबर मिलते हैं।

आठवें अध्यायमें ब्राह्मण और राजाका स्वरूप, लक्षण आदि कह कर चालीस संस्कारोंका विवरण बताया गया है। कहा गया है—'संसारमें बहुश्रुत ब्राह्मण और राजा, ये दो धृत-व्रत हैं।' 'सारे मनुष्य और पशु-पक्षी इन्हींके वशमें रहते हैं।' 'प्रजाका रक्षण, जातियोंकी विशुद्धता और धर्मानुष्ठान इन्हीके हाथमें हैं।' 'बहुश्रुत वही हैं, जो वेद-वेदांगके ज्ञाता हैं और जो लोकाचारसे अभिज्ञ हैं; जो उत्तर-प्रत्युत्तर-रूप वैदिक विचारशास्त्र और वैदिक इतिहास, पुराणमें निपुण हैं; जो उक्त शास्त्रोंका सम्मान करते और शास्त्रीय विधानके अनुसार जीवन बिताते हैं; जो चालीस संस्कारोंसे सुसंस्कृत हैं; 'जो ब्राह्मणोचित छः कर्मोंमें लीन हैं;' 'जो (राजा) द्विजोचित तीन कर्मोंमें तत्पर हैं;' 'जो सामयिक आचार बतानेवाले कल्पसूत्रों और स्मृतियोंमें कथित कर्त्तव्योंसे शिक्षित हैं।"

इसी गौतमधर्मसूत्र (१०.१.२) में कहा गया है कि अध्ययन, यजन और दान—ये तीन कर्म तो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—तीनों द्विजातियोंके लिये हैं; परन्तु अध्यापन, याजन और प्रतिग्रह—ये तीन केवल ब्राह्मणके लिये हैं। इस तरह ब्राह्मणके छः कर्म हैं।

इन छः कर्मोंसे युक्त और उक्त लक्षणोंसे समन्वित ब्राह्मणको अदण्ड्य बताया गया है। लिखा है—'बहुश्रुत ब्राह्मण अबध्य, अबन्ध्य, अदण्ड्य, अबहिष्कार्य, अपरिवाद्य (अनिन्द्य) और अपरिहार्य है।'

सुप्रसिद्ध ४२ संस्कारोंमेंसे निष्क्रामण और अन्त्येष्टिको गौतम संस्कार नहीं मानते; इसलिये इनके मतसे ४० ही संस्कार हैं। इनका यह भी मत है कि चालीस संस्कारोंमेंसे गर्भाधानादि चतुर्दश संस्कार, पंच महायज्ञ और सप्त पाकयज्ञ (सब छब्बीस) गृह्य और नित्य कर्म हैं। इन नित्य कर्मों (आवश्यक कर्त्तव्यों) को करनेवाला यदि 'दया, क्षमा, द्वेष-शून्यता, आयास-हीनता, मंगल, अकृपणता और अस्पृहता आदि आठ गुणोंसे सम्पन्न है, तो वह ब्रह्मके सायुज्य और सालोक्यको प्राप्त करता है—भले ही वह श्रौतसूत्रोंके सात सोमयज्ञों और सात हविर्यज्ञोंको न करता हो।'

गौतमधर्मसूत्रके एकादश अध्यायमें राजधर्मका वर्णन है। लिखा है—"**राजा सर्वस्येष्टो ब्राह्मणवर्जम् ।**" अर्थात् 'ब्राह्मणको छोड़कर राजा सबका अधिपति है।' ' 'राजाको साधुकारी और साधुवादी होना चाहिये।' 'उसे तीनों वेद और न्याय-शास्त्रका पण्डित होना चाहिये।' 'उसे शुचि, जितेन्द्रिय, गुणी सभासदोंसे युक्त और उपाय-सम्पन्न रहना चाहिये।' 'सारी प्रजाके प्रति उसे समदर्शी होना चाहिये।' 'वह प्रजाका हित-साधन करे।' 'ब्राह्मणके सिवा राजा सबसे ऊपर बैठे।' 'प्रजाको राजाका सम्मान करना चाहिये।' 'राजा वर्ण-धर्म और आश्रम-धर्मकी रक्षा करे।' 'राजा धर्म-पतितोंको धर्ममें स्थित करे।' 'राजा विद्या, सत्कुल, वक्तृत्व, रूप, वय और शीलसे सम्पन्न ब्राह्मणको पुरोहित बनावे।' 'पुरोहितकी आज्ञासे धर्मानुष्ठान करे।' 'तभी वह समृद्धि प्राप्त करेगा।' 'राजा ज्योतिषियों की बात माने।' 'क्योंकि ज्योतिर्विद्याके ऊपर ही योग-क्षेम निर्भर करते हैं।' 'वेद, धर्मशास्त्र, सामयिक आचार और पुराणके अनुसार राजा न्याय करे।' 'वेदके अनुकूल देशधर्म, जातिधर्म और कुलधर्मको भी राजा प्रमाण माने।' 'कृषक, वणिक्, पशुपालक, सूद लेनेवाले और शिल्पी लोग पंचायत के द्वारा विचार करें।' 'राजाको अपना निर्णय बतानेपर राजा धर्मानुसार व्यवस्था दे।'

आगे कहा गया है—'यथार्थ निर्णयके लिये तर्क बढ़िया उपाय है'—"**न्यायाधिगमे तर्कोऽभ्युपायः।**" 'तर्कके द्वारा प्रकृत अवस्था समझकर सिद्धान्त करना चाहिये।' 'परस्पर-विरोधी प्रमाण मिलनेपर वेद-त्रयके पारगामी वृद्ध ब्राह्मणसे अपना कर्त्तव्य समझकर राजाको सिद्धान्त करना चाहिये।' 'राजाको ऐसा करनेसे ही इष्टकी प्राप्ति होगी।' 'वेदका भी निर्देश है कि ब्राह्मण और क्षत्रिय मिलकर ही देवों, पितरों और मनुष्योंका पालन-पोषण करते हैं।' 'दम धातुसे दण्ड शब्द बना है (निरुक्त २.१.४); इसलिये राजाको दुष्टोंका दमन भी करना चाहिये।' 'विभिन्न वर्णों और आश्रमोंका कर्त्तव्य पालन करके लोग परलोक जाते हैं और वहां कर्म-फल-भोगके अनन्तर शेष कर्म-फल-भोगके लिये यथायोग्य देश, जाति, कुल, रूप, आयु, विद्या, सम्पत्ति, सुख और मेधाकी प्राप्तिके निमित्त मर्त्यलोकमें जन्म ग्रहण करते है।' 'कर्त्तव्य-हीन विनष्ट हो जाते हैं।' 'राजा और आचार्य ही उन्हें धर्ममें स्थित कर विनाशसे वचाते है।' 'इसलिये राजा और आचार्य की निन्दा नहीं करनी चाहिये।'

यदि कल्पसूत्रोंके उपर्युक्त अनुपम आदेशोंके अनुसार हम कर्मानुष्ठान करें, धर्माचरण करें, कर्त्तव्य-परायण हों और सद्गुण-सम्पन्न बनें, तो राम-राज्यके आनेमें कितनी देर लगे?

चतुर्दश अध्याय

निघण्टु और निरुक्त

अधिकांश विद्वानोंका मत है कि "प्रजापति कश्यपने वेदोंके अनेकार्थक, एकार्थक और दुरूह शब्दोंका संग्रह किया। संग्रहका नाम इसलिये **'निघण्टु'** पड़ा कि निघण्टु वेदोंका निगमन वा बोध कराता है। परन्तु जैसे निर्घण्ट शब्द सूचीपत्रके अर्थमें रूढ़ है, वैसे ही निघण्टु शब्द वैदिक कोषके अर्थमें।

जिस निघण्टुपर यास्कने 'निरुक्त' लिखा है, उसे सभी वेदज्ञाता, महाभारतके प्रमाणानुसार, कश्यप-कृत मानते हैं; परन्तु स्वा० दयानन्द सरस्वती उसे यास्क-प्रणीत बताते हैं। यही मत श्रीभगवद्दत्तजीका भी है, जो प्रसिद्ध आर्यसमाजी वेदज्ञ हैं। भगवद्दत्तजी लाहौरमें छपे एक "आथर्वण-परिशिष्ट"को भी कौत्सव्य-कृत निघण्टु मानते हैं। सुना है, भगवद्दत्तजीने एक तीसरे निघण्टुको पूनाके "पाठक-स्मारक-ग्रन्थ"में छपवाया है। इसे वे शाकपूणि-रचित मानते हैं। उनकी यह भी धारणा है कि जिन निरुक्तकारों और आचार्योंका उल्लेख यास्कने अपने निरुक्तमें किया है, वे सब निघण्टुकार भी थे। इस तरह १५-२० निघण्टुओंकी रचनाका उन्होंने अनुमान लगाया है; परन्तु प्रचलित एक ही है, जिसपर यास्कने **निरुक्त** लिखा है।

इस निघण्टुमें तीन काण्ड और पांच अध्याय हैं। पहले तीन अध्याय नैघण्टुक-काण्ड, चौथा नैगम काण्ड और पांचवां दैवतकाण्ड कहाते हैं। इस निघण्टुपर देवराज यज्वाकी टीका है। इस निघण्टुके लघु और बृहत् दो पाठ हैं।

अथर्वपरिशिष्ट ७८ हैं। इनमें कौत्सव्य-कृत निघण्टु ४८ वां परिशिष्ट है। इसे रामगोपाल शास्त्रीने १९२१ में आर्ष-ग्रन्थावली (लाहौर) में छपाया। इसमें १४८ गण और ६९ खण्ड हैं। कश्यप-निघण्टुकी ही अधिक बातें इसमें हैं। इसके कई पद ऐसे हैं, जो अथर्वमें भी नहीं मिलते।

"**बृहद्देवता**"में शाकपूणिके मतका सात बार उल्लेख है। इसमें 'रथीतर' के विशेषणके साथ शाकपूणिका तीन बार उल्लेख है। इक्कीस बार यास्कने शाकपूणिके मतको उद्धृत किया है। इन उद्धरणोंके आधार पर लोगोंका अनुमान है कि शाकपूणिका भी एक निरुक्त था। परन्तु इसे तो अब भगवद्दत्तजीने खोजकर सनिघण्टु छपा ही डाला है।

जहां कहीं निघण्टु मिला है, वहां निरुक्त भी साथ ही मिला है। निरुक्त भी जहां-कहीं मिला है, उसके साथ ही निघण्टु भी मिला है। इसलिये निघण्टुकार और निरुक्तकारको एक ही व्यक्ति बहुत लोग मानते हैं। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि निघण्टु वैदिक कोष है और निरुक्त बहुत कुछ व्याकरण है। यास्कने तो निरुक्तको ही व्याकरणकी पूर्णताका स्थल माना है—"**तदिदं विद्यास्थानं व्याकरणस्य कात्स्न्र्यम्।**"

निघण्टुके साथ ही यास्कीय निरुक्तको अनेक स्थानोंमें छपाया गया है। डा० लक्ष्मणस्वरूपका संस्करण सुन्दर है। अंग्रेजीमें शब्दार्थ भी दिया गया है। दुर्गाचार्य और स्कन्द महेश्वरकी टीकाओंके साथ (सनिघण्टु) यास्कीय निरुक्तके कितने ही संस्करण छप चुके हैं। १८४६ में ही राथने इसका संस्करण निकाला था। सत्यव्रत सामश्रमीका "**निरुक्तालोचन**" प्रसिद्ध है। इन्होंने चार भागोंमें १८९१ में निरुक्तको भी प्रकाशित कराया था। चन्द्रमणि विद्यालंकारने निरुक्तपर "वेदार्थदीपिका" नामका १००० पृष्ठोंका हिन्दी-भाष्य छपाया है। इस निरुक्तपर कई प्राचीन टीकाएँ भी थीं, जो अनुपलब्ध हैं।

निश्चित कथन जिसमें है, वह निरुक्त है। यह वाच्यार्थ है; परन्तु निरुक्त शब्द 'वेदोंके दुरूह शब्दोंकी व्याख्या करनेवाले शास्त्र' के अर्थमें

प्रयुक्त होता है। यह रूढ़ अर्थ है। निघण्टुमें वेदोंके कठिन शब्दोंकी एक क्रम-बद्ध तालिका है और निरुक्तमें इन शब्दोंकी व्युत्पत्ति दिखायी गयी है। यास्कके मतसे सभी शब्द धातुओंसे उत्पन्न हुए हैं। शब्द-व्युत्पत्ति दिखाकर इस मतको यास्कने परिपुष्ट किया है। निरुक्तके सम्बन्धमें कहा गया है–

"वर्णागमो वर्ण-विपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्ण-विकार-नाशौ।
धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम्।"

अर्थात् निरुक्तके पांच कार्य हैं–वर्णागम, वर्ण-विपर्यय, वर्ण-विकार, वर्ण-नाश और धात्वर्थ-सम्बन्ध। ये पांचों बातें व्याकरणमें हैं; इसलिये निरुक्तको व्याकरण कहा जाता है। कई वेदज्ञ कहते हैं, प्रातिशाख्योंमें वैदिक व्याकरणकी जो त्रुटियां रह गयी हैं, उन्हें दूर करनेके लिये निरुक्त-शास्त्रकी रचना करनी पड़ी।

यद्यपि निघण्टुमें अनेकार्थक शब्दोंको समानार्थक शब्दोंसे पृथक् करके दिखाया गया है; परन्तु कौन शब्द किस अर्थमें प्रचलित था, तत्का-लीन विद्वान् क्योंकर किसी शब्दको किसी विशिष्ट अर्थमें लेते थे, अमुक शब्दकी प्रवृत्ति अमुक अर्थमें क्यों और कैसे हुई, इन बातोंका रहस्य निघण्टु में नहीं बताया गया है। अन्तिम दो अध्यायोंमें तो केवल पदोंकी गणना है। कैसे प्रत्येक शब्दसे क्या आशय ग्रहण करना चाहिये, इसका कुछ पता नहीं है। परन्तु यास्कने जो निरुक्त नामसे इसकी व्याख्या की है, उससे वेदार्थ समझनेमें अद्भुत सहायता मिलती है। यद्यपि निरुक्तमें भी इतना स्पष्ट नहीं किया गया है कि पशु-वाचक गौ शब्द पृथिवी-वाचक कैसे और कहां-कहां हुआ, तो भी निरुक्त वैदिक विज्ञानका भाण्डार गिना जाता है।

यास्कके निरुक्तमें बारह अध्याय हैं। परिशिष्ट रूपमें दो अध्याय और हैं। सायणके मतसे ये १२ ही यास्ककृत हैं। इसके दो पाठ हैं–गुर्जर-

पाठ (लघुपाठ) और महाराष्ट्र-पाठ (बृहत्पाठ)। लघुपाठको ही "बृहद्देवता" आदि विश्वसनीय मानते हैं।

वेदार्थ करनेके इतने पक्षोंका उल्लेख यास्कने किया है—आधिदैवत, अध्यात्म, आख्यान-समय, ऐतिहासिक, नैदान, नैरुक्त, परिव्राजक, पूर्व-याज्ञिक और याज्ञिक। यास्कने इन बारह निरुक्तकारोंके मत अपने निरुक्त में दिये हैं—औपमन्यव, औदुम्बरायण, वार्ष्यायणि, गार्ग्य, आग्रायण, शाकपूणि, और्णवाभ, तैटीकि, गालव, स्थौलाष्ठीवि, क्रौष्टुकि और कात्थक्य। एक-एक निरुक्तकारको यास्कने कई-कई बार उद्धृत किया है। 'एके', 'अपरे', 'अन्ये', 'आचार्याः' कह-कहकर भी यास्कने विना नामके कई आचार्योंका उल्लेख किया है।

भाषा-सम्बन्धी मौलिक सिद्धान्तोंका विवेचन करके यास्काचार्यने निघण्टुमें कथित शब्दोंका निर्वचन किया है। इसके साथ ही उदाहरणमें कई सौ ऋग्वेदीय मन्त्रोंको उद्धृत करके अर्थ स्पष्ट किया गया है। उत्तरार्द्ध में देवता-वाद है। इसमें मन्त्रोंके द्वारा देवोंका स्वरूप-निरूपण किया गया है।

संस्कृतमें ऐसे कई कोष हैं, जिनमें शब्दार्थ किया गया है; परन्तु वैदिक शब्दोंमेंसे प्रतिशत १५ शब्दोंका ही इनमें अर्थ मिलता है। राथ, बोह्ट्-लिंग्क, स्मिट्, मोनियर, बेनफे, मैक्डानल, ग्रासमान, नीसेर आदिने भी वैदिक कोष लिखकर मन्त्रार्थ करनेकी चेष्टा की है; परन्तु इनमें न तो पूर्वी विद्वानोंके किये गये अर्थ हैं. न नये विद्वानोंके मत ही हैं। इसलिये ये सभी अपूर्ण हैं। इस क्षेत्रमें निघण्टु और निरुक्त सर्वाधिक सहायक हैं। इनकी तथा ब्राह्मण, कल्पसूत्र आदिकी सहायतासे एक बृहत् वैदिक-कोष तैयार हो सकता है। एक "वैदिक-शब्दार्थ-पारिजात" तैयार हो भी रहा है।

वेदार्थ-बोधके लिये निरुक्त सर्वाधिक सहायक तो है ही; साथ ही इसमें व्याकरणकी उच्च कलाका विकास भी पाया जाता है। निरुक्तका विषय व्याकरणसे व्यापक है। निरुक्तको समझनेके लिये व्याकरण-ज्ञान

आवश्यक है। जो भली भांति व्याकरण नहीं जानता, वह निरुक्तका पण्डित नहीं हो सकता। इसीलिये यास्कने "**नावैयाकरणाय**" लिखा है। जिसने व्याकरण और निरुक्तका अच्छी तरह अध्ययन किया है, वही पूर्ण वैयाकरण हो सकता है।

निरुक्त एक वेदांग है, ग्रन्थ-विशेष नहीं; परन्तु यास्कके निरुक्तके अतिरिक्त अन्य निरुक्त अप्रसिद्ध हैं; इसलिये निरुक्त कहनेसे यास्कके निरुक्तका ही बोध होता है। यद्यपि निरुक्तसे निघण्टु भिन्न है—दोनों दो वस्तुएँ हैं; परन्तु दोनोंके साथ-साथ रहनेके कारण सायणाचार्यने निघण्टु को ही निरुक्त कहा है और लाक्षणिक रूपसे उसकी व्याख्याको भी निरुक्त कहा है।

निरुक्तके प्रारम्भमें यास्कने महत्त्वपूर्ण भूमिका लिखी है, जिसमें निघण्टु-निरुक्त-निर्माणकी प्रयोजनीयता, वेद-विद्रोहियोंकी बातोंका खंडन, पद-विभाग और निर्वचनकी रीति, अर्थ-हीन-वेद-पाठसे हानि आदि बातों को लिखा है। भूमिकाके पश्चात् '**गौः**' से लेकर '**देवपत्न्यः**' तक निघण्टुके सारे शब्दोंकी व्याख्या की गयी है। जिस भाषा-विज्ञानका आविष्कार अभी हालमें यूरोपमें हुआ है, उसका आधार निरुक्त ही है, जिसकी रचना हजारों वर्षोंकी है। वस्तुतः निरुक्तमें व्याकरण और भाषाविज्ञानकी प्रधानता है; परन्तु इसमें साहित्य, विज्ञान, समाजशास्त्र आदिकी भी बातें हैं।

वेदमें इन्द्र और वृत्रका जो युद्ध-वर्णन है, वह ऐतिहासिक है; परन्तु निरुक्तकार एक विलक्षण अर्थ करते हैं। यास्क कहते हैं,—"**तत्को वृत्रः ? मेघ इति नैरुक्ताः त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः अपां च ज्योतिषश्च मिश्रीभावकर्मणो वर्ष-कर्म जायते। तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णाः भवन्ति।**"

अर्थात् 'यह वृत्र कौन है ? निरुक्तकार कहते हैं कि यह मेघ है और ऐतिहासिक कहते हैं कि त्वाष्ट्र असुरका नाम वृत्र है। जल और तेजके मेलसे वृष्टि होती है, उसीका उपमा-रूपसे युद्ध-वर्णन किया गया है।'

निरुक्तकार कहते हैं कि कहीं इन्द्रकी वृत्रासुरसे लड़ाई हुई होगी, इसे हम अस्वीकार नहीं करते; परन्तु वेदमें इन्द्र-वृत्र-युद्धके बहाने वैज्ञानिक वर्षाका वर्णन है। तात्पर्य यह है कि यहां अप्रस्तुत प्रशंसा (अन्योक्ति) अलंकार है।

यास्कने 'गौ' शब्दका एक अर्थ 'किरण' किया है। वहीं उन्होंने यह भी कहा है कि **"अथाप्यस्यैको रश्मिश्चन्द्रमसं प्रति दीप्यते, तदनेनोपेक्षितव्यम्—आदित्यतोऽस्य दीप्तिर्भवति।"** अर्थात् 'सूर्यकी एक किरण चन्द्रमा में प्रकाश पहुँचाती है। सूर्यसे ही उसमें प्रकाश जाता है।' दुर्गाचार्यने इसकी व्याख्या की है कि 'चन्द्रमा जलमय है, सूर्य तेजसे ही वह प्रकाशित होता है।' आज कलके विज्ञानवेत्ता भी कुछ ऐसा ही कहते हैं।

निरुक्तमें उपमा आदि अलंकार तो हैं ही—उपमावाचक शब्दोंका भी विचार है—**"अग्निरिति रूपोपमा हिरण्यरूपः सः।"** **"वदिति सिद्धोपमा—ब्राह्मणवद् वृषलवत्।"**

एक स्थानपर लिखा है—"लुप्तोपमाको ही अर्थोपमा कहा जाता है; क्योंकि शब्दके विना अर्थानुसन्धानसे ही यह जानी जाती है। किसीकी प्रशंसा करते हैं, तो उसे लोग सिंह, व्याघ्र कहते हैं और निन्दा करनी होती है तो उसे कुत्ता, कौवा कहते हैं—यद्यपि कोई मनुष्य न तो सिंह-बाघ ही हो सकता है, न कुत्ता-कौवा ही"—**"अथ लुप्तोपमान्यर्थोपमान्याचक्षते—सिंहो व्याघ्र इति पूजायाम्; श्वा काक इति कुत्सायाम्।"** यहां निरुक्तकारने सादृश्यमूला अतिशयोक्तिको लुप्तोपमा कहा है।

इस प्रकार निरुक्तकारने अनेकानेक वैज्ञानिक और साहित्यिक विषयों का उल्लेख किया है।

वैदिक शब्दोंमें अधिकांशका निर्वचन करके यास्कने स्पष्ट अर्थ कर दिया है। बहुतसे ऐसे शब्द हैं, जिनका अर्थ 'ढूंढ़-ढांढ़' कर धात्वर्थसे वा विकृत रूपसे वा वाक्यमें स्थान देखकर अथवा जिन-जिन वाक्योंमें उनका

प्रयोग हुआ है, उनकी तुलना करके निश्चित किया गया है। तो भी वैदिक संहिताओंमें कुछ ऐसे शब्द हैं, जिनका अर्थ किया तो गया है; परन्तु संदिग्ध हैं। ऐसे शब्दोंका निश्चित अर्थ निकालनेके लिये प्रयत्न करना चाहिये। ऐसे शब्दोंके संदिग्ध अर्थ होनेके कई कारण हैं—१ इन शब्दोंके सम्बन्धकी सम्प्रदाय-परम्पराका सर्वथा लुप्त हो जाना, २ इनका कम प्रयोग होना तथा ३ जिन प्रसंगोंमें ये पाये जाते हैं, उनसे इनके ठीक अर्थका पता न चलना। अशुद्ध पाठोंके कारण भी अर्थ-निश्चयतामें बाधा पड़ती है। यद्यपि पदपाठ, अनुक्रमणी, निघण्टु और भाष्य-टीकाओंके रूपोंमें विशेष सतर्कता की गयी, ताकि पद-पाठ ज्योंके त्यों रहें; परन्तु वेद-मन्त्रोंको सुन-सुनकर कण्ठस्थ करनेवालों और लिखनेवालोंकी त्रुटियोंके कारण अनेक पाठान्तर हो गये हैं।

अनेक पाश्चात्त्य और उनके अनुयायी वेदज्ञोंका विचार है कि 'ग्रीक, लैटिन, प्राकृत आदि भाषाओंका ज्ञान प्राप्त कर लेनेके अनन्तर ही वेदार्थका ठीक पता लगता है। जैसे लैटिन भाषामें Domus शब्दका अर्थ गृह है और वेदमें भी 'दमः' शब्दका अर्थ गृह है। जो व्यक्ति केवल संस्कृत ही जानता है, लैटिन नहीं जानता, वह 'दमः'का अर्थ 'गृहम्' नहीं कर सकता।' ऐसे ही ग्रीक भाषामें कमल (Kamare = कैमेर) शब्दका अर्थ कर्णद्वार है और वेदमें गर्भ-द्वार। क्या केवल संस्कृतज्ञ कमलका अर्थ कभी गर्भद्वार कर सकता है ?'

परन्तु ऐसे सज्जनोंको यह जानकर आश्चर्य करना चाहिये कि वेदके निरुक्तकार-टीकाकारोंने **दमः**का अर्थ गृह और **कमल**का गर्भ-द्वार ही किया है ! यही सम्प्रदाय परम्परा-प्राप्त अर्थ है। अन्य प्राचीन भाषाओंसे वेदार्थ करनेमें सहायता मिले भी तो प्राचीन वैदिक सम्प्रदायोंका परम्परा-प्राप्त ज्ञान प्राप्त किये विना यह सहायता बहुत काम नहीं दे सकेगी। यास्कके पहले वेदार्थ-ज्ञाता सम्प्रदायोंकी परम्परा अक्षुण्ण थी; इसलिये

वेदार्थ करनेमें सरलता थी। यास्कके समय यह परम्परा टट चली थी; इसलिये कठिनता और जटिलता उत्पन्न हो गयी।

स्थान-भेदके अनुसार, प्राकृतिक दृश्योंके आधारपर, निरुक्तकारने तीन देव-वर्ग बनाये—पृथिवी-स्थान, अन्तरिक्ष-स्थान और द्यु-स्थानके। पृथिवी के देव अग्नि, अन्तरिक्षके इन्द्र (वा वायु) और द्युके सूर्य माने गये हैं। परन्तु जैसे परस्पर सम्बद्ध होनेके कारण पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यु एक ही हैं, वैसे ही तत्तत्कर्मानुसार तीन नामोंसे पुकारे जानेपर भी तीनों देव एक ही हैं—"**तासां महाभाग्यात् एकैकस्यापि बहूनि नामधेयानि भवन्ति।**" दूसरा उदाहरण यास्कने दिया है—"**नरराष्ट्रमिव।**" अर्थात् व्यक्ति-रूपसे भिन्न होते हुए भी जैसे असंख्य मनुष्य राष्ट्र-रूपसे एक ही हैं, वैसे ही प्रकृतिस्थ दृश्योंके विविध रूपोंमें प्रकट और प्रकाशित होनेपर भी इनमें एक ही परमात्माका निवास है—"**एको देवः सर्वभूतेषु गूढः।**" इस तरह भासमान भेदमें वास्तविक अभेद और भासमान अनेकत्वमें वास्तविक एकता है। इसीलिये निरुक्तकारने लिखा है—"**एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यंगानि भवन्ति।**" अर्थात् एक ही आत्मा (परमात्मा) के सब दूसरे देवता विभिन्न अंग हैं। इन्हीं परमात्माको याज्ञिकों और ब्राह्मण-ग्रन्थोंने 'प्रजापति' कहा है। सभी देवता प्रजापतिकी विशिष्ट शक्ति माने गये हैं। ठीक ही है। गुलाबको चाहे जिस नामसे पुकारिये, उसमें सुगन्ध तो रहेगी ही—गुलाबपन तो रहेगा ही।

निरुक्त (१.२०) से जाना जाता है कि 'ऋषियोंने वैदिक मन्त्रोंका साक्षात्कार और आविष्कार किया था। इनके अनन्तर 'श्रुतर्षि' हुए, जिन्होंने सुन-सुनकर मन्त्रोंकी व्याख्या की।' यह स्वाभाविक है कि बार-बार सुनी-सुनायी बातें बहुत कुछ भूल जाती हैं। सुनने-सुनानेके कारण ही संहिताओंमें पाठान्तर हो गये हैं, शाखाओंके कितने ही नाम अशुद्ध हो पड़े हैं, शाखा-प्रवचन-कर्त्ताओं और कल्पसूत्र-कर्त्ताओंके नाम एकमें मिल गये हैं और एक ही मन्त्रकी कई प्रकारकी व्याख्याएँ हो गयी हैं। ऋग्वेद

(४.५८.३) के एक मन्त्रमें महादेव शब्द आया है–"**महादेवो मर्त्यां आविवेश।**" इस महादेव शब्दके कई तरहके अर्थ किये गये हैं। किसीने महादेव को यज्ञ बताया है, किसीने सूर्य कहा है और किसीने शब्द लिखा है।

इसी तरह ऋग्वेदके १.१६४.४५ मन्त्रकी व्याख्या निरुक्त-परिशिष्ट (१३.६) और सायणके अनुसार सात तरहकी की गयी है! यास्क (१२.१) के अनुसार "अश्विनौ" शब्दके चार प्रकारके अर्थ हैं–स्वर्ग-मर्त्य, दिन-रात, सूर्य-चन्द्रमा और दो धर्मात्मा !

यहां यह उत्तर नहीं हो सकता कि मन्त्रका साक्षात्कार करनेवाले ऋषियोंके ध्यानमें ये परस्पर-विरुद्ध सभी अर्थ थे। उनका तात्पर्य तो किसी एक ही अर्थसे होगा। बादरायणको ब्रह्मसूत्रकी एक ही व्याख्या अभीष्ट होगी–चाहे वह द्वैतवादी हो, अद्वैतवादी हो, विशुद्धाद्वैतवादी हो वा विशिष्टाद्वैतवादी हो। यह नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने सभी वादोंको अभीष्ट माना था वा सभीका समन्वय चाहा था।

इस अर्थ-विविधता और सारी गड़बड़ीके कारण हैं वेदार्थ सुनने-सुनाने वाले और वैदिक साहित्यके लिपि-कर्त्ता वा लेखक। यह बात पहले भी कही गयी है।

यह सब होनेपर भी अधिकांश मन्त्रोंकी व्याख्या सर्व-सम्मत है–कुछ ही मन्त्रों और शब्दोंके बारेमें सन्देह है। इस सन्देहको दूर करनेके उपाय हैं ब्राह्मण-ग्रन्थों, आरण्यकों, उपनिषदों, कल्पसूत्रों और निरुक्त आदि वेदांगोंका गम्भीर अध्ययन, टीकाओंका स्वाध्याय तथा प्रकरण, प्रसंग और वेदार्थ करनेवाले प्राचीन-सम्प्रदाय-परम्परा-प्राप्त आधार। इस रीतिसे हम सत्य अर्थको समझनेमें समर्थ हो सकते हैं। इस दिशामें स्मृतियों, वेद-भाष्यकारों और पुराणादिसे भी सहायता मिल सकती है। सबका मन्थन करनेपर तात्त्विक अर्थ स्पष्ट हो जायगा। परन्तु अधिकांश मन्त्रोंके अर्थके लिये सर्वाधिक सहायक निरुक्त है। वस्तुतः सारे संस्कृत-

साहित्यका मूल वेद है; इसलिये सभीमें कुछ न कुछ परम्परा-प्राप्त वेदार्थ हैं। परम्परा-प्राप्त अर्थ और भावको छोड़कर शाब्दिक अर्थका अनुसरण करना खतरनाक है। इसलिये वेदार्थ करनेमें पद-पदपर सावधानीसे काम लेना चाहिये।

सारे वेदांग, स्मृति, पुराण आदिका निर्माण बहुत करके वैदिक साहित्य के ही आधारपर हुआ है; इसलिये इनकी अनेक बातें वेदोंसे मिलती हैं। शिव, विष्णु, इन्द्र, सूर्य आदिका जैसा विवरण पुराणादिमें है, बहुत कुछ वैसा ही वेदोंमें भी है। शुक्ल यजुर्वेद (माध्यन्दिन) के ३.६१ में पुराणोंके अनुसार ही शिवजीका वर्णन है। मन्त्रमें हाथीकी छाल (कृत्ति), पिनाक, पर्वत, निवास-स्थान आदि सबका उल्लेख है। ऐसे ही वर्णनोंको देखकर देशी-विदेशी वेद-ज्ञाता वेदोंमें इतिहास मानते हैं। निरुक्तने भी अनेक बार इतिहासका उल्लेख किया है। निरुक्त (२.४) में यास्कने इषितसेन, शन्तनु, देवापि आदिका महाभारतके अनुसार ही इतिहास लिखा है। इसी तरह पिजवन-पुत्र सुदास, कौशिक विश्वामित्र आदिका भी विवरण यास्कने दिया है। निरुक्तके ३.३ में यास्कने प्रस्कण्वको "**कण्वस्य पुत्रः**" लिखा है। ४.३ में लिखा है—"**च्यवन ऋषिर्भवति।**" ६.३ में कहा है—"**भार्म्यश्वो भृम्यश्वस्य पुत्रः।**" इसी तरह "**सन्तपन्ति माम्**" मन्त्रका अर्थ लिखनेके बाद यास्कने, सायणकी ही तरह, लिखा है—"कुएँ में गिरे हुए त्रित ऋषिको इस सूक्तका ज्ञान हुआ।" इसी "सन्तपन्ति" मन्त्रके नीचे यास्काचार्यने लिखा है—

"**तत्र ब्रह्मेतिहास-मिश्रं ऋङ्मिश्रं गाथा-मिश्रं भवति।**"

अर्थात् 'इतिहासों, ऋचाओं और गाथाओंसे युक्त वेद है।'

इस प्रकार निरुक्तके अनेक स्थलोंको देखनेसे विदित होता है कि यास्क वेदमें इतिहास मानते थे। निरुक्त भरमें एकाध ही स्थल ऐसा है, जहां ऐतिहासिकोंसे निरुक्तकारका मत-भेद है। जैसे "**प्रतिष्ठन्ती नाम**"

(२.५) मन्त्रमें आया हुआ वृत्र शब्द। वृत्रका अर्थ निरुक्तके मतसे मेघ है और ऐतिहासिकोंके मतसे असुर। इसके सिवा अन्य स्थलोंमें यास्क इतिहास मानते हैं। सनातनधर्मी भी वेदमें इतिहास मानते हैं। अधिक लोग इतिहाससे अर्थवादका तात्पर्य समझते है। अर्थात् 'वैदिक क्रियाओं और आदेशोंकी ओर साधारण जनको आकृष्ट करनेके लिये (कथा-व्याजसे) प्रफुल्लित और पुष्पित भाषामें ये सब बातें कही गयी हैं—वस्तुतः वेदमें अनित्य इतिहास नही है। फलतः ऐसे लेखोंसे वेदकी अनित्यताकी कल्पना नहीं की जा सकती।'

पञ्चदश अध्याय

अनुक्रमणी और वेदांग

बहुत पहले भारतवर्षमें मुद्रा-यन्त्र नहीं थे, कागज और कलम-दावात का भी अभाव था; इसलिये सुन-सुनकर ग्रन्थोंको कण्ठस्थ करनेके अतिरिक्त अध्ययनका कोई मार्ग नहीं था। ऐसी परिस्थितिमें इन प्रश्नोंका उठना स्वाभाविक था—किन-किन ऋषियोंने किन-किन मन्त्रोंको प्राप्त किया था? किन मन्त्रोंके कौन-कौन देवता थे? किस-किस छन्दमें कौन-कौन मन्त्र हैं? किस शाखामें कितने अनुवाक, वर्ग, सूक्त और मन्त्र हैं? मन्त्रोंमें कहां-कहां मन्द्र, मध्यम और तार स्वर पढ़े जाते हैं? मन्त्र-पाठका क्या क्रम है? वेदोंमें क्षेपक क्योंकर नहीं मिले? आदि आदि प्रश्नोंके उत्तरके लिये, प्रांजल मन्त्रोच्चारणके लिये और विशुद्ध अर्थ-बोधके लिये अनुक्रमणी, वेदांग आदि विविध ग्रन्थोंकी रचना हुई। अनुक्रमणियोंके प्रमेयों और प्रतिपाद्योंके मूल रूप ऐतरेय आदि ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं; परन्तु अत्यन्त संक्षिप्त। ब्राह्मणोंने इस दिशामें इंगित भर कर दिया है।

इस क्षेत्रमें सर्वाधिक ग्रन्थ लिखे हैं महर्षि शौनकने। "ऋक्सर्वानुक्रमणी"की वृत्तिकी भूमिकामें वृत्तिकार **षड्गुरुशिष्यने** लिखा है—

"शौनकीया दशग्रन्थास्तदा ऋग्वेद-गुप्तये।
आर्ष्यनुक्रमणीत्याद्या छान्दसी दैवती तथा॥
अनुवाकानुक्रमणी च सूक्तानुक्रमणी तथा।
ऋक्पादयोर्विधाने च बार्हद्दैवतमेव च॥
प्रातिशाख्यं शौनकीयं स्मार्त्तं दशममुच्यते।"

अर्थात् ऋग्वेदकी रक्षाके लिये शौनकने ये दस ग्रन्थ बनाये—१आर्षानुक्रमणी, २ छन्दोऽनुक्रमणी, ३ देवतानुक्रमणी, ४ अनुवाकानुक्रमणी, ५ सूक्तानुक्रमणी, ६ ऋग्विधान, ७ पाद-विधान, ८ बृहद्देवता, ९ प्रातिशाख्य और शौनकस्मृति। ये दसो ग्रन्थ छप चुके हैं।

आर्षानुक्रमणी कलकत्तेमें छपी है। इसमें दस मण्डल हैं। छोटी-सी पुस्तक है। इसमें ऋग्वेदके मन्त्र-क्रमसे ऋग्वेदीय दसो मण्डलोंके मन्त्र-द्रष्टा ऋषियों और उनकी वंशावलीका विवरण है। कृष्ण-यजुर्वेदीय चारायणीय शाखाका एक "मन्त्रार्षाध्याय" भी छपा है, जो चारायणीय शाखाकी आर्षानुक्रमणी है। सामवेदीय "क्षुद्रसूक्त" (आर्षेयकल्प) में तो रागों और लयोंकी बातें है। यह सामवेदीय श्रौतसूत्र है। "**छन्दोऽनुक्रमणी**"में भी दस ही मण्डल है। ऋग्वेदके समस्त छन्दोंका इसमें क्रमशः विवरण है। "**देवतानुक्रमणी**"में ऋग्वेदके मन्त्र-क्रमसे देवोंका विशद विचार है। "**अनुवाकानुक्रमणी**"में केवल ३९ श्लोक हैं। इसके अनुसार ऋग्वेदकी ऋक्संख्या१०५८० है। इसके मतसे ऋग्वेदकी "शैशिरीय शाखा" (कुछ लोग "शाकलशाखा"को ही शैशिरीय कहते हैं) में ८५ अनुवाक, १०१७ सूक्त, २००६ वर्ग और १०४१७ मन्त्र हैं। शौनकके प्रसिद्ध शिष्य कात्यायनने अपने "अष्टादश परिशिष्टों"में एक "अनुवाकाध्याय-परिशिष्ट" भी लिखा है, जिसमें अनुवाकानुक्रमणीके समान ही अनुवाक-विवरण है। **सूक्तानुक्रमणी**में ऋग्वेदके सूक्तोंका विवेचन है। "**ऋग्विधान**"में ९९ श्लोक हैं। इसमें सूक्त, वर्ग, पाद, मन्त्र आदिके जपके फल लिखे हैं। "आद्याग्निपुराण"में चारों वेदोंके विधान है। "यजुर्वेद-विधान"में ८४, "सामवेद-विधान"में २४ और "अथर्ववेद-विधान"में २५ श्लोक हैं। सबमें एक ही शैलीकी बातें हैं। "**पाद-विधान**"में ऋग्वेदीय शब्दोंकी सूची है। कृष्ण यजुर्वेदकी एक "**पदानुक्रमणी**" भी छपी है, जिसमें तैत्तिरीय संहिताकी शब्द-सूची है। आठ अध्यायोंमें "**बृहद्देवता**" समाप्त हुई है, जिसमें ऋग्वेदीय देवोंका विस्तृत विवरण है। "**ऋक्प्राति-शाख्य**"

का एक नाम "पार्षद-सूत्र" भी है। इसपर उवटका भाष्य है। यह ३ अध्यायों और १८ पटलोंमें पूर्ण हुआ है। यह ऋग्वेदका व्याकरण है। उवटके "मातृमोदभाष्य"के साथ आठ अध्यायोंमें "शुक्लयजु:प्रातिशाख्य" छपा है। यह कात्यायन-कृत है। ४ अध्यायोंमें शौनकका "अथर्वप्रातिशाख्य" प्रकाशित है। त्रिरत्न-भाष्यके साथ "तैत्तिरीय-प्रातिशाख्य" २४ अध्यायोंमें छपा है, जिसके कर्त्ताका पता नहीं चलता। महर्षि "पुष्पर्षि" का एक "पुष्पसूत्र" पाया जाता है, जो सामवेदका प्रातिशाख्य है। इसमें विशेषत: गान-विचार है। इसमें दस प्रपाठक और ११ कण्डिकाएँ हैं। एक और भी सूत्र-निबद्ध "अथर्व-प्रातिशाख्य" पाया जाता है। ये सब वैदिक व्याकरण हैं। शौनककी स्मृति भी छप चुकी है।

"यजुर्वेद-मंजरी" टीका (कालनाथ-कृत) के साथ ७ अध्यायोंमें "शुक्ल-यजुर्विधान" प्रकाशित हो चुका है। यह महर्षि कात्यायनका बनाया है। इसमें मन्त्र-पाठके लाभ बताये गये हैं। किन मन्त्रोंके पाठोंसे मारण, मोहन, वशीकरण आदि सिद्ध होते हैं—यह सब कुछ बताया गया है। शौनक के छपे "ऋग्विधान"में भी कुछ ऐसी बातें हैं।

इनमेंसे अधिकांश ग्रन्थ बंगालकी "एशियाटिक सोसाइटी"ने छापे हैं—यूरोपीयोंने भी छापे हैं। स्थान-संकोचके कारण सबके नाम, संवत् आदि नहीं दिये गये।

अनुक्रमणियोंमें सबसे बड़ी है ऋषि कात्यायनकी "**ऋक्सर्वानुक्रमणी**"। उवट-भाष्य और महाराष्ट्रके षड्गुरुशिष्यकी "वेदार्थदीपिका" नामकी वृत्तिके साथ १८९६ में ए० ए० मैकडानलने इसे छपाया। इसमें टिप्पनियां भी हैं। प्राय: सभी अनुक्रमणियोंके विषयोंका संक्षिप्त वर्णन है। अथर्व-वेदकी "**बृहत्सर्वानुक्रमणी**" भी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें अथर्ववेदके ऋषि, देवता, छन्द आदिके विस्तृत क्रम बताये गये हैं। परन्तु १९ काण्डों का ही विवरण है। २० वें काण्डका विवरण आश्वलायनीय "**अनुक्रमणी**" में आया है। इसके रचयिता शौनक हैं। इसमें ११ पटल (खण्ड) हैं।

कात्यायनका **"शुक्लयजुःसर्वानुक्रम-सूत्र"** ५ अध्यायोंमें प्रकाशित किया गया है। इसपर याज्ञिक अनन्तदेवका सुन्दर भाष्य है। महर्षि यास्ककी एक कृष्णयजुर्वेदीय **"याजुषसर्वानुक्रमणी"** है, जिसपर अनन्तदेव और होलीरके भाष्य हैं। कात्यायनकी सर्वानुक्रमणीके समान ही इसमें सर्व-प्रथम छन्दोंका वर्णन है। कात्यायनके उक्त सूत्रमें शुक्ल यजुर्वेद और यास्ककी अनुक्रमणीमें कृष्ण यजुर्वेदके ऋषि, देवता, छन्द आदिका विवरण पाया जाता है।

एक **"काण्डानुक्रमणी"** भी मिलती है, जिसमें तैत्तिरीयसंहिताके काण्डोंका विचार है। वेंकट माधवकी एक **"माधवीयानुक्रमणी"** उपलब्ध है, जिसमें ऋग्वेदीय अनुक्रमणीकी मुख्य बातें हैं। इनके अतिरिक्त और भी कई छोटी-छोटी अनुक्रमणियोंके नाम पाये जाते हैं, जिनका अधिक महत्त्व नहीं है।

शौनकके "चरण-व्यूह-परिशिष्ट"में ५ कण्डिकाएँ हैं, महिदासकी वृत्ति भी है। इसके अनुसार अथर्ववेदकी "शौनक-संहिता"में १२००० मन्त्र हैं। परन्तु इन दिनों इतने मन्त्र नहीं पाये जाते। इसमें विशेषतया मन्त्र आदिका विवेचन है। अथर्ववेदकी "पंचपटलिका" लक्षण-ग्रन्थ है। इसमें अथर्वके बीसो काण्डोंके मन्त्रों, सूक्तों और पाठोंके क्रम, लक्षण, विवरण आदि हैं। इसके मतानुसार शौनक-संहितामें तीन भाग और अठारह काण्ड थे। १म भागमें १ से ७, २ यमें ८ से ११ और ३ य काण्ड में १२ से १८ काण्ड थे। ८ से ११ तक "क्षुद्र-सूक्त" थे। परन्तु कहीं भी छपी "शौनक-संहिता"में २० ही काण्ड पाये जाते हैं। सम्भव है, "पंच-पटलिका"-कारके समय १८ ही काण्ड उपलब्ध रहे हों। यह छोटासा ही ग्रन्थ है।

शौनकका ऋग्वेदीय "उपलेख-सूत्र" आठ वर्गोंमें विभक्त है। इस ग्रन्थमें शिष्ट पदों और मन्त्रोंका क्रम है। चार प्रपाठकोंमें सामवेदीय "उपग्रन्थसूत्र" छपा है, जिसमें 'गीत-विचार' है। सामवेदका "पंचविध-

सूत्र" भी प्राप्य है। इस ग्रन्थमें दो प्रपाठक, चार पटल, सात खण्ड और आठ सूत्र हैं। केवल स्वर-विचार है। "जटादि-विकृति-लक्षण"के छपे भी बहुत दिन हो गये, जिसमें जटा, माला, शिखा, लेखा, ध्वजा, दण्ड, रथ, घन आदिके पाठोंके कारण मन्त्रोंके विकारोंका उल्लेख है। यह आचार्य व्याड़िका बनाया हुआ है। प्रीतिकर त्रिवेदीने **"साम-प्रकाशन"** बनाया है, जिसमें सामवेदीय गानोंका वैज्ञानिक विवेचन है।

इसी तरह कात्यायनके "प्रतिज्ञासूत्र-परिशिष्ट" (३ काण्ड), "भाषिकपरिशिष्टसूत्र" (३ काण्ड) और "अष्टादश परिशिष्ट" आदि, गौतम, बौधायन और हिरण्यकेशीके "पितृमेधसूत्र", आपस्तम्बके "यज्ञ-परिभाषासूत्र" (१६० सूत्र), वररुचिके "निरुक्त-समुच्चय", जयन्तके "स्वरांकुश", कृष्णयजुर्वेदके "एकाग्निकाण्ड", अथर्व-परिशिष्ट तथा सामवेदीय "निदानश्रौतसूत्र" (१० प्रपाठक, पतञ्जलिकृत), काठकों के "बह्वृच-गृह्य" आदि समस्त ग्रन्थोंसे वेदार्थ समझनेमें एवम् ऋषि, छन्द, देवता, मन्त्र, स्वर, गान आदिका ज्ञान प्राप्त करनेमें बड़ी सहायता मिलती है।

वेदार्थ समझने और वेदोंका सविशेष विवरण बतानेमें वेदांग-ग्रन्थ भी बड़ी सहायता करते हैं। वेदांग छः हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्यौतिष। 'इनमें शिक्षा वेदकी नासिका है, कल्प हाथ, व्याकरण मुख, निरुक्त श्रोत्र, छन्द पैर और ज्यौतिष नेत्र हैं। इसीलिये वेद-शरीरके ये अंग कहाते हैं। सांग वेद जाननेवालेको मुक्तिकी प्राप्ति होती है' ("पाणि-नीय शिक्षा", ४१-४२)। यों तो ऋग्वेदका आयुर्वेद, यजुर्वेदका धनु-र्वेद, सामवेदका गन्धर्ववेद और अथर्ववेदका भास्कर्य-वेद उपवेद हैं, तो भी इनसे वेदार्थ और वेद-रहस्य समझनेमें प्रत्यक्ष सहायता नहीं मिलती। परन्तु वेदांगोंसे प्रत्यक्ष और मूल्यवान् साहाय्य प्राप्त होता है।

वेद-पाठमें स्वरोंका बड़ा महत्त्व है। स्वरोंमें अशुद्धि होनेपर अर्थका अनर्थ हो जाता है। इसलिये स्वर-ज्ञान प्राप्त कर शुद्ध उच्चारण करनेके

लिये शिक्षा-शास्त्रकी रचना हुई। प्रत्येक वेदकी अलग-अलग शिक्षा-पुस्तकें थीं; किन्तु इन दिनों, अन्य वैदिक ग्रन्थोंकी तरह ही, बहुत ही कम उपलब्ध हैं। शुक्ल यजुर्वेदकी **"याज्ञवल्क्य-शिक्षा"** और सामवेदकी **"नारद-शिक्षा"** प्रकाशित हो चुकी है। अथर्ववेदकी **"माण्डूकी शिक्षा"** भी, उवट-भाष्यके साथ, छप चुकी है। ऋग्वेदका कोई विशिष्ट शिक्षा-ग्रन्थ नहीं है, उसके लिये **"पाणिनीय शिक्षा"** ही साधन है।

सभी वैदिक मन्त्र छन्दोंमें हैं; इसलिये छन्दोंका ज्ञान प्राप्त किये विना शुद्ध उच्चारण नहीं हो सकता। इसीलिये छन्दोविद्याकी अवतारणा हुई। शौनकके "ऋक्प्रातिशाख्य"के अन्तमें छन्दोंपर यथेष्ट विचार किया गया है। "छन्दोऽनुक्रमणी" आदि कई अनुक्रमणियोंमें भी छन्दो-विचार है। यों तो "छन्दः-सारसंग्रह", "छन्दोऽनुशासन", "प्राकृत-पैंगल", "वाणीभूषण", "वृत्तमणिकोष", "वृत्तरत्नाकर", वृत्तालंकार", "छन्दोमंजरी", "श्रुतबोध" आदि अनेक छन्दोग्रन्थ छप चुके हैं; परन्तु पिंगल नामक आचार्यका **"पिंगल"** ग्रन्थ ही सर्वाधिक उपयोगी है। इसमें भी अन्य ग्रन्थोंकी तरह लौकिक छन्दोंका वर्णन है; परन्तु वैदिक छन्दोंका वर्णन भी यथेष्ट है।

वेदके प्रधान प्रतिपाद्य यज्ञोंसे **"ज्यौतिष"**का विशिष्ट सम्वन्ध है। **"आचार्य-ज्यौतिष"** (३६ श्लोक) में कहा गया है—"यज्ञके लिये वेदोंका अवतरण है और कालके उपयुक्त संनिवेशसे यज्ञोंका सम्बन्ध है। इसीलिये ज्यौतिषको 'काल-विधायक-शास्त्र' कहा जाता है। फलतः ज्यौतिष जानने-वाला ही यज्ञ-ज्ञाता है।" वैदिक ज्यौतिषके प्रधान आचार्य "लगध" हैं। लगधके **"वेदांग-ज्यौतिष"**के दो ग्रन्थ पाये जाते हैं—एक ऋग्वेदीय, दूसरा यजुर्वेदीय। पहलेमें ३६ श्लोक हैं, दूसरेमें ४३। इनपर "सोमाकर"की प्राचीन टीका और म० म० प० सुधाकर द्विवेदीका "सुधाकर-भाष्य" है।

कल्पसूत्रोंमेंसे **"शुल्वसूत्र"** भी ज्यौतिषकी ही बातोंका विवरण बताते हैं। शुल्वका अर्थ है "नापनेका डोरा"। इनमें वेदियोंका नापना, उनके

स्थानोंका चुनाव करना, उनको बनाना आदि आदि का विशद वर्णन है। ये शुल्वसूत्र भारतीय ज्यामिति, रेखागणित वा ज्यौतिषके प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। कात्यायन, बौधायन, आपस्तम्ब आदिके कई शुल्वसूत्र छप चुके हैं। यूरोपीय वेदाभ्यासी यूनानके "पाइथागोरस"को ही ज्यामितिके जन्मदाता बताते हैं; परन्तु इनके जन्मके सैकड़ों वर्ष पहले भारतमें इस कलाका प्रचार हो चुका था।

अनुक्रमणियों और वेदांग-ग्रन्थोंके स्वाध्यायके विना वेद-ज्ञान होना कठिन है; इसलिये इनका अध्ययन करना अनिवार्य है।

वैदिक व्याकरण, कल्पसूत्र और निरुक्तके सम्बन्धमें स्वतन्त्र रूपसे पृथक् अध्यायोंमें विचार किया गया है।

षोडश अध्याय

प्रातिशाख्य

संस्कृत-भाषामें सबसे प्रसिद्ध व्याकरण पाणिनीय व्याकरण है। यह आठ अध्यायोंमें विभक्त है ; इसलिये इसका नाम "**अष्टाध्यायी**" है। पाणिनि मुनिके पहले गार्ग्य, भारद्वाज, स्फोटायन, शाकटायन आदि वैयाकरण थे। इन्होंने भी व्याकरण बनाये थे। पाणिनिने इनके नामोंका उल्लेख किया है। परन्तु इनके व्याकरण अब नहीं मिलते ; इसलिये नहीं कहा जा सकता कि इन्होंने वैदिक शब्दोंकी व्युत्पत्ति की थी या नहीं।

पाणिनिने लौकिक संस्कृतका ही व्याकरण लिखा है, वैदिकका नही। अष्टाध्यायीमें मुख्य रूपसे संस्कृत-भाषाके रूपों और प्रयोगोंका व्युत्थान और संकलन है। इन्हींका मथन कर नियम बनाये गये है। इसमें सन्देह नहीं कि पाणिनिका "**स्वरवैदिकी**"का संकलन वैदिक व्याकरणके लिये ही है ; परन्तु यह पूर्ण नहीं, अधूरा है। वैदिक भाषाके अनेक रूपों और प्रयोगोंको "**व्यत्ययो बहुलम्**", "**बहुलं छन्दसि**" कहकर छोड़ दिया गया है। सारस्वत व्याकरणने तो पाणिनिके बराबर भी नहीं किया है—वैदिक भागको छोड़ ही दिया है ! यह भी एक कारण है कि वेदाध्ययनकी परिपाटी लुप्त हो रही है।

वस्तुतः वैदिक व्याकरणकी नींव ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें ही पड़ी। इनमें ही पहले पहल वैदिक शब्दोंका निर्वचन किया गया है। कल्पसूत्रोंमें भी वैदिक शब्दोंका निर्वचन किया गया है। फलतः ये दोनों ही वैदिक व्याकरणके आधार हैं। इन्हींके आधारपर ऋषियोंने वेदकी प्रत्येक शाखाके लिये एक-एक व्याकरण लिखा। फलतः वैदिक व्याकरणका नाम

"**प्रातिशाख्य**" पड़ गया। वेदोंकी ११३० शाखाओंके ११३० प्रातिशाख्य प्राप्त होने चाहिये ; परन्तु ये उतने भी नहीं मिलते, जितनी शाखाएं और ब्राह्मण मिलते हैं। इन दिनों केवल ६ प्रामाणिक प्रातिशाख्य उपलब्ध हैं।

पाणिनिकी ही तरह प्रातिशाख्योंके वर्णनका क्रम है ; विषय-प्रवेश भी कुछ पाणिनिकी तरह ही है। हां, पाणिनिकी तरह इनमें प्रत्येक शब्द और धातुका "साधन" नहीं है। स्वर-सम्बन्धी बातें विशद रूपमें हैं। शाब्दिक सिद्धियोंपर तो अत्यन्त संक्षिप्त प्रकाश डाला गया है। निर्भुज और प्रतृण संहिताओंके उच्चारणोंमें जो कठिनाई उत्पन्न होती है, उसे लक्ष्य कर प्रातिशाख्योंने ऐसे सूत्र बनाये हैं, जिनसे उच्चारण सुख-पूर्वक हो सकें। छन्द भी इनके वर्णनीय विषयोंमें है। विभिन्न शाखाओंमें प्रचलित रूप, लक्षण आदिका नियमबद्ध वर्णन प्रातिशाख्योंमें पाया जाता है; परन्तु प्रातिशाख्योंमें सुव्यवस्थित सारी व्याकरण-प्रक्रिया नहीं है। अपनी अपनी शाखाकी विलक्षणता तथा संहिता-पाठ, पद-पाठ, क्रम-पाठ, जटा-पाठ आदिके द्वारा पावन वेद-पाठको सुरक्षित रखना ही प्रातिशाख्योंका प्रधान लक्ष्य है। प्राचीन समयमें इन पाठोंके कितने ही आचार्य और सम्प्रदाय थे। तैत्तिरीय-प्रातिशाख्यमें ऐसे २२ आचार्योंके नाम मिलते हैं।

मुख्य बात यह है कि वैदिक भाषा अत्यन्त प्रचलित नहीं रही; इसलिये वैदिक व्याकरणकी गंभीर और सूक्ष्म बातोंकी ओर ध्यान नहीं दिया गया। सन्धियोंकी विविध संज्ञाओं, कृत्रिम नामों और प्रत्याहारों तथा सूत्रोंकी वैज्ञानिक रचनाका अभाव सिद्ध करता है कि प्रातिशाख्योंमें वेद-व्याकरणका बाल्य काल ही है। प्रातिशाख्योंमें शब्द-व्युत्पत्तिका ही नहीं ; शब्द-रचना और निर्वचन-शैलीका भी प्रायः अभाव ही है। यही कारण है कि बहुतसे वैदिक शब्दोंका प्रयोग ही जाता रहा और अनेक शब्दों-के अर्थ भी परिवर्त्तित हो गये ! अनेक शब्द अज्ञेय हो रहे ! इसका इतनी दूर तक दुष्परिणाम हुआ कि मन्त्रोंको निरर्थक—"**अनर्थका हि मन्त्राः**"—

कहनेवाला एक कौत्स-सम्प्रदाय ही उत्पन्न हो गया! वेद-पाठपर ही लोग इतने मुग्ध हो गये कि अर्थकी महिमाको ही भूल गये—मानने लगे कि मन्त्र अर्थ-बोधके लिये नहीं, यज्ञोंमें यथाविधि उच्चारणके लिये हैं! यही कारण है कि जर्भरी, तुर्फरी, फरफरीका, आलिगी, विलिगी; तैमात, ताबुवम् आदि अनेकानेक शब्दोंका कदाचित् ठीक अर्थ-बोध नहीं होता। यद्यपि वेदभाष्यकार सायणाचार्यने इन शब्दोंका अर्थ किया है; परन्तु ऐसा अर्थ संदेहसे परे नहीं है। जिन शब्दोंका अर्थ-बोध नहीं होता, उनका परिगणन भी निघण्टु, निरुक्त आदिमें है। प्राचीन ग्रन्थोंके अनुसार प्रातिशाख्योंके ये प्रतिपाद्य विषय हैं—१ वर्ण-समाम्नाय—स्वर-व्यञ्जनोंकी गणना और उनके उच्चारण आदिके नियम। २ सन्धि—अच्, हल्, विसर्ग आदि। ३ प्रगृह्य-संज्ञा, पद-विभागके नियम (अवग्रह) और इनके अपवादसूत्र। ४ उदात्त—अनुदात्त शब्दोंकी गणना, स्वरितके भेद और आख्यात-स्वर। ५ संहिता-पाठ—पद-पाठमें भेदप्रदर्शक नियम—सत्व, षत्व, दीर्घ आदिका विवरण। ६ अथर्व-प्रातिशाख्यमें संहिता-पाठ और क्रम-पाठके भी नियम बताये गये हैं और तैत्तिरीय-प्रातिशाख्यमें इन तीनोंके अतिरिक्त जटा-पाठके नियमोंका भी उल्लेख है। ७ साम-प्रातिशाख्यमें सामवेदकी विभिन्न प्रकारकी गीतियोंमें प्रश्लेष, विश्लेष, वृद्ध, अवृद्ध, गत, अगत, उच्च, नीच, क्रुष्ट, अक्रुष्ट, संक्रुष्ट आदि उच्चारण-कृत भेदोंका भी वर्णन पाया जाता है।

प्रातिशाख्योंके स्वाध्यायसे ज्ञात होता है कि इनका लक्ष्य सम्पूर्ण वैदिक व्याकरणकी प्रक्रियाको उपस्थित करना नहीं है। वस्तुतः ये बाह्य परिवर्तन, सन्धि आदि और स्वर, ध्वनि आदिके प्रतिपादक शास्त्र हैं। अपनी शाखाओंकी विलक्षणताकी ओर इनका विशेष झुकाव है।

उपलब्ध ६ प्रातिशाख्योंमें पहला "**ऋक्प्रातिशाख्य**" है, जिसका नाम "**पार्षद-सूत्र**" भी है। इसे महर्षि शौनकने बनाया है। ३ अध्यायों और १८ पटलोंमें इसकी छन्दोबद्ध रचना है। इसे मैक्समूलरने नागराक्षरोंमें, जर्मन टिप्पनियोंके साथ, १८६९ में और ए० रेग्नियरने फ्रेंचमें, तीन भागों-

में, १८५९ में प्रकाशित किया है। उवटके भाष्यके साथ १९०३ में भी एक संस्करण निकला है। युगलकिशोर शर्माने १९०३ में, हिन्दी-अनुवादके साथ, इसे छपाया। डा० मंगलदेव शास्त्रीने इसकी विस्तृत प्रस्तावना छपायी है। दूसरा "**शुक्लयजुःप्रातिशाख्य**" आठ अध्यायोंमें कात्यायनने बनाया है। उवटके भाष्यके साथ यह छः खण्डोंमें काशीसे प्रकाशित हुआ है। महर्षि पुष्पके द्वारा "**साम-प्रातिशाख्य**" निर्मित है; इसीलिये इसका 'एक नाम "**पुष्प-सूत्र**" भी है। इसपर सायण-भाष्य छप चुका है। जर्मन अनुवादके साथ आर० साइमनने भी १९०८ में इसे छपाया। स्व० म० म० पं० लक्ष्मण शास्त्री द्राविडने भी साम-प्रातिशाख्य प्रकाशित किया है। इस प्रातिशाख्यपर अजातशत्रुका भाष्य है। "**अथर्व-प्रातिशाख्य**" (सूत्र-निबद्ध) को प्रसिद्ध वेदज्ञ प० विश्वबन्धु शास्त्रीने कई हस्तलेखोंको देखकर सम्पादित और प्रकाशित किया है। अमेरिकाके डब्ल्यू०डी० ह्विटनेने अंग्रेजी अनुवादके साथ अथर्व-प्रातिशाख्य (**चतुरध्यायी**) को प्रकाशित किया है। कृष्ण यजुर्वेदका "**तैत्तिरीय-प्रातिशाख्य**" २४ अध्यायोंमें है। इसके कर्त्ताका कुछ पता नहीं चलता। इसको भी ह्विटनेने "त्रिरत्नभाष्य"के साथ १८७२ में छपाया। सोमयार्य और गोपाल यज्वाकी व्याख्याओंके साथ सामशास्त्रीने भी इसे प्रकाशित किया है। 'पदक्रमसदन' भाष्यके साथ यह मद्रासमें भी छपा है।

वैदिक भाषा और संस्कृत भाषामें वड़ी विभिन्नता है। संस्कृतमें जिस शब्दका जो अर्थ है, वही वैदिक भाषामें नहीं है। संस्कृतमें "न" का अर्थ 'नहीं' है; परन्तु ऋग्वेदमें "न" का अर्थ "इव" अर्थात् सदृश है। संस्कृतमें घृणाका अर्थ 'नफरत' है और ऋग्वेदमें दया भी है। इस तरह सैकड़ों शब्द ऐसे हैं, जिनका अर्थ संस्कृतमें और है तथा वेदमें और ही है।

इसी प्रकार लौकिक और वैदिक व्याकरणोंमें भी भेद है। लौकिक संस्कृतमें अकारान्त पुंलिग शब्दोंके प्रथमा बहुवचनमें जहां अस् वा जस् प्रत्यय जोड़नेसे देवाः, रामाः रूप बनते हैं, वहां वैदिक भाषामें असस् प्रत्यय

जोड़कर देवासः, रामासः रूप भी बनते हैं। अकारान्त शब्दोंके तृतीया बहु-वचनमें देवैः, रामैः रूप बनते हैं और वेदमें देवेभिः, रामेभिः भी होते हैं। वेदमें प्रथमा द्विवचनमें 'आ' प्रत्यय लगाकर मित्रावरुणा, अश्विना आदि रूप भी बनते हैं और संस्कृतमें 'औ' प्रत्यय लगाकर मित्रावरुणौ, अश्विनौ रूप ही होते हैं। इकारान्त स्त्रीलिंग शब्दोंके तृतीया एकवचनमें, वेदमें, 'ई' प्रत्यय लगता है—सुष्टुती। संस्कृतमें सुष्टुत्या होगा। अनेक स्थानोंमें सप्तमीके एकवचनमें कोई प्रत्यय नहीं लगता—परमे व्योमन्। संस्कृतमें व्योमनि वा व्योम्नि प्रयोग होता है। अकारान्त नपुंसक शब्दोंका बहुवचन 'आनि' और 'आ' प्रत्ययोंको जोड़नेसे बनता है—विश्वानि अद्भुता। संस्कृतमें "विश्वानि अद्भुतानि" होगा। क्रियापदोंमें उत्तम पुरुषके बहु-वचनके (वर्त्तमान काल) रूप 'मसि' प्रत्ययके योगसे बनते हैं—मिनीमसि आदि। संस्कृतमें 'मिनीमः' होगा। आज्ञावाचक लोट् लकारके मध्यम पुरुष बहुवचनमें चार प्रत्यय लगते हैं—त, तन, तात्, थन्। रूप ऐसे बनते हैं—शृणोत, सुनोतन, कृणुतात्, यतिष्ठन्। 'लिये' अर्थमें संस्कृतमें 'तुमुन्' का प्रयोग होता है—कर्तुम् (करनेके लिये); गन्तुम् (जानेके लिये)। किन्तु वेदमें इस अर्थमें कई प्रत्यय लगते हैं—से, वसे, असे, कसे, अध्यै, शध्यै आदि आठ-दस। जीवसे (जीवितुम्), कर्त्तवे (कर्तुम्), दातवै (दातुम्), पिबध्यै (पातुम्) आदि। वेदमें आज्ञा और सम्भावनाके अर्थमें लेट् लकार होता है, जो संस्कृतमें नहीं होता। उदाहरण है—"आयूंषि तारिषत्" (हमारी आयुको बढ़ाओ)। संस्कृतमें 'तारय' होगा। इस प्रकार वैदिक और लौकिक (संस्कृत) भाषाओंके व्याकरणोंमें बड़ा भेद है और इस भेदका पता "प्रातिशाख्यों"को देखनेसे स्पष्ट ज्ञात होता है।

वैदिक भाषामें संहिता (मंत्र-भाग), ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् हैं। वैदिक भाषाकी वाक्य-रचना सरल, संक्षिप्त और क्रिया-बहुल होती है। उक्त चारोंमें यही बात है। प्रातिशाख्य, निरुक्त, अनुक्रमणी आदिमें अधिक संस्कृत और वैदिक भाषाका कम प्रयोग हुआ है।

वैदिक स्वरोंको नियम-बद्ध करनेके लिये तो प्रातिशाख्य प्रधान हैं। ऋक्प्रातिशाख्यमें छन्दोंका भी यथेष्ट विवरण है। छंदोंका पूरा ज्ञान प्राप्त किये विना मन्त्रोंका ठीक उच्चारण नहीं हो सकता; क्योंकि वेद-मंत्र छन्दोंमें हैं। ठीक मंत्रोच्चारण नहीं होनेसे मन्त्रोंका ठीक अर्थ भी नहीं लग सकता। छंदो-विवरण देना इसीलिये प्रातिशाख्य-कारने उचित समझा। वेदमें गायत्री, जगती, बृहती आदि छन्द हैं और संस्कृतमें वंशस्थ, उपजाति, मालिनी आदि हैं।

सप्तदश अध्याय

बृहद्देवता

प्रसिद्ध यूरोपीय वेदाभ्यासी ए० ए० मैकडानलने १९०४ में टिप्पनियों के साथ "बृहद्देवता"को प्रकाशित किया। प्रत्येक वेद-शाखाकी एक-एक बृहद्देवता थी; परन्तु इन दिनों यही एक पुस्तक मिलती है। भारतके अधिकांश वेद-विज्ञाताओंके मतसे इसमें दो शाखाओंका सम्मिश्रण है। यह ऋग्वेदीय बृहद्देवता तो है; किन्तु यह केवल शाकल-शाखाकी नही है; क्योंकि शाकल-संहिताके कई सूक्तोंके देवता "बृहद्देवता"में नही कहे गये हैं—इन सूक्तोंका उल्लेख ही नही है। इसके सिवा बृहद्देवतामें ऐसे ३७ सूक्तोंका उल्लेख है, जो शाकल-संहितामें नहीं हैं। बृहद्देवतामें ऋग्वेद १०.१०३ सूक्तके पश्चात् "**ब्रह्मजज्ञानं प्रथमं पुरस्तात्**" मन्त्रसे आरम्भ होनेवाला "नाकुल-सूक्त" न तो शाकल-शाखा में है, न वाष्कल-संहितामें—सर्वानुक्रमणीमें भी नहीं है। इसी तरह बृहद्देवता (३.११८–११९) में जो लिखा है कि "ऋग्वेद १.७३ सूक्तके पश्चात् दस अश्विसूक्त हैं, जिनकी १ ली ऋचा "'**शश्वद्धि वाम्**" आदि है; पश्चात् सौपर्ण-सूक्त है। इसके आगे "**उपप्रयन्तः**' आदि अग्निदेव-सम्बन्धी ६ सूक्त हैं।" परन्तु यह क्रम न तो शाकलमें है, न वाष्कलमें। "**शश्वद्धि वाम्**" मन्त्र न तो आश्वलायन-श्रौतसूत्रमें है, न शांखायन-श्रौत-सूत्रमें। इसलिये अनेक वेदज्ञोंका अनुमान है कि प्रकाशित बृहद्देवता प्रधानतया ऋग्वेदकी माण्डूकेय-शाखाकी है। ऐसी बात हो, तो भी शाकल-संहिताके अधिकांश देवोंका ज्ञान इस बृहद्देवतासे हो जाता है।

किसी-किसीके मतसे बृहद्देवता और **निरुक्त-वार्त्तिक** एक ही हैं—बृहद्देवताको ही निरुक्त-वार्त्तिक कहा गया है; क्योंकि दोनोंके अनेक श्लोक परस्पर मिलते हैं। निरुक्त-भाष्यकार दुर्गाचार्य और स्व० बैजनाथ काशीनाथ राजवाड़ेने जो निरुक्तवार्त्तिकके उदाहरण दिये हैं, वे इस बृहद्देवतामें मिलते हैं। परन्तु कुछ उदाहरणोंको देखकर ही दोनोंको एक नहीं माना जा सकता। सम्भव है, एकने दूसरेसे ये उदाहरण लिये हों। दोनों दो स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं। इस बृहद्देवताके कर्त्ता शौनक ऋषि हैं। इसमें आधुनिक संस्कृत-पुस्तकोंकी तरह अध्यायों और श्लोकोंका क्रम है। ऐसा होते हुए भी ऐतिहासिक लोग बृहद्देवताका रचना-काल ४०० बी० सी० (ईसासे पहले) बताते हैं; परन्तु वस्तुतः यह ग्रन्थ अतीव प्राचीन है। अनेक प्राचीन ग्रन्थोंमें बृहद्देवताका उल्लेख है।

ऋग्वेद ५.६१.१ के स्कन्द-भाष्यमें बृहद्देवताका आख्यान उद्धृत है। ऋग्वेद १०.७६.१ के उद्गीथ-भाष्यमें बृहद्देवता (७.१०६) का पाठ उद्धृत है, जो देवतानुक्रमणीके नामसे है। ऋग्वेद १०.१६.१ के उद्गीथ-भाष्यमें भी बृहद्देवताका उल्लेख है। डा० लक्ष्मण स्वरूपके मतसे वेंकट माधवने ऋग्वेद, २ य अष्टक, प्रथमाध्यायकी भूमिकामें दो कारिकाएँ बृहद्देवताके आश्रयसे ही बनायी हैं। वेंकट माधवने अपने ऋग्वेद-भाष्यमें बृहद्देवताको बहुत बार उद्धृत किया है। वेंकट माधवके उद्धरण मैकडानलके संस्करणसे शुद्ध हैं। उवटने भी बृहद्देवताको उद्धृत किया है। दुर्गाचार्यने निरुक्त १.१ की व्याख्यामें बृहद्देवताका पाठ लिया है। इस तरह बृहद्देवता अत्यन्त प्राचीन और प्रामाणिक ग्रन्थ है।

हां, यह बात अवश्य है कि मैकडानलकी प्रथम शाखा (A.) के ही श्लोक विशेषतः उद्धृत हैं। परन्तु नीचे लिखा श्लोक दोनों शाखाओं (A. और B.) में मिलता है—

"महानाम्न्य ऋचो गुह्यास्ताश्चैन्द्र्याश्चैव यो वदेत्।
सहस्रयुगपर्यन्तं अहर्ब्राह्मं स राध्यते॥" (८.१८)

अर्थात् इन्द्रदेव-सम्बन्धी रहस्यमयी महानाम्नी ऋचाओंको जो जपता है, वह सहस्र युग-पर्यन्त रहनेवाले ब्रह्माके दिनको प्राप्त होता है।

बृहद्देवतामें अनेक ऋषियों और आचार्योंके मत उद्धृत हैं। आचार्य औपमन्यवका मत एक बार उद्धृत है। गार्ग्यका नाम बृहद्देवता (१.२६) में आया है। शाकपूणिका मत तो बृहद्देवतामें सात बार आया है। लम्बे-लम्बे उद्धरण भी हैं। रथीतरका मत तीन बार आया है। अनेक विद्वान् शाकपूणिको ही रथीतर मानते हैं। बृहद्देवतामें यास्कका मत तो १९ बार उद्धृत है। निरुक्तका लघुपाठ (गुर्जर-पाठ) ही बृहद्देवता (२.४ और ७.१०) में आया है।

बृहद्देवतामें दैवत-वादके अतिरिक्त प्रसंगतः अनेक महत्त्वपूर्ण बातें कही गयी हैं—अनेक उपयोगी आख्यान भी आये हैं। १म अध्याय, श्लोक ३४ से ४७ में ३१ प्रकारके मन्त्रज्ञाता "मन्त्रवित्" कहे गये हैं। ३१ प्रकार की गिनती भी वहां की गयी है। इसके ८.१२९ में कहा गया है कि 'जो ऋषि नहीं है, उसके मन्त्र प्रत्यक्ष नहीं हो सकते—"**न प्रत्यक्षमनृषेरस्ति मन्त्रम्**।" ऋषि ही मन्त्रोंके प्रत्यक्षकर्त्ता हैं।

बृहद्देवतामें मधुक, श्वेतकेतु, गालव, यास्क, गार्ग्य, रथीतर और शौनकके मत ही प्रधानतया प्रदर्शित हैं। एक स्थल (अध्याय १, श्लोक २४) पर लिखा है—

"नवभ्य इति नैरुक्ताः पुराणाः कवयश्च ये।
मधुकः श्वेतकेतुश्च गालवश्चैव मन्वते ॥"

अर्थात् निरुक्तकार, मधुक, श्वेतकेतु और गालव आदि पुराने कवि मानते हैं कि नौ बातोंसे नाम होता है।

इन सबका विवरण बृहद्देवतामें देखने योग्य है।

बृहद्देवतामें इस बातपर विचार किया गया है कि देवताओंका नाम किस-किस कारणसे किया जाता है। प्रत्येक मन्त्रके देवताको जानना भी बृहद्देवता अनिवार्य बताती है। कहा गया है—

"अविदित्वा ऋषिं छन्दो देवत्वं योगमेव च ।
योऽध्यापयेत् जपेद्वापि पापीयान् जायते तु सः ॥"

अर्थात् ऋषि, छन्द, देवता और विनियोगको जाने विना जो मन्त्र पढ़ाता वा जपता है, वह पापी है।

इन चारोंमें दैवत-ज्ञान तो परमावश्यक है। वेदार्थ करनेकी कुंजी यही ज्ञान है। प्रारम्भमें ही बृहद्देवता कहती है–

"वेदितव्यं दैवतं हि मन्त्रे मन्त्रे प्रयत्नतः ।
दैवतज्ञो हि मन्त्राणां तदर्थमवगच्छति ॥"

अर्थात् प्रयत्न करके प्रत्येक मन्त्रके देवताका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये; क्योंकि दैवत ज्ञान प्राप्त करनेवाला पुरुष वेदार्थ समझता है। इसीलिये बृहद्देवता-कर्त्ताने प्रथम श्लोकमें ही कहा है–

"मन्त्रदृग्भ्यो नमस्कृत्वा समाम्नायानुपूर्वशः ।"

अर्थात् मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंको नमस्कार करके मैं आम्नाय वा वेद-सरणिके क्रमसे सूक्त आदिके देवता कहूँगा।

किस मन्त्रके कौन देवता हैं, इस सम्बन्धमें वेदाचार्योंमें मत-भेद भी है। एक ही देवता विविध रूपोंमें बताये गये हैं। बृहद्देवताके २य अध्यायके १३५–१३६ श्लोकोंमें कहा गया है–

"सरस्वतीति द्विविधं ऋक्षु सर्वासु सा स्तुता ॥ १३५ ॥
नदीवद्देवतावच्च तत्राचार्यस्तु शौनकः ।
नदीवन्निगमाः षट् ते सप्तमो नेत्युवाच ह ॥ १३६ ॥"

तात्पर्य यह कि सारी ऋचाओंमें सरस्वती दो प्रकारसे स्तुत है–नदी की तरह और देवताकी तरह। शौनकके मतसे नदीकी तरह कही गयी सरस्वतीके ६ ही मन्त्र हैं, ७ वां नहीं। वेदाचार्योंके मतभेदोंको देखिये–

"इलस्पतिं शाकपूणिः पर्जन्याग्नी तु गालवः ।" ५.३६

अर्थात् शाकपूणि ऋग्वेद ५.४२.१४ मन्त्रके देवता इलस्पतिको तथा गालव पर्जन्य और अग्निको मानते हैं।

"पौष्णौ प्रेति प्रगाथौ द्वौ मन्यते शाकटायनः।
ऐन्द्रमेवाथ पूर्वं तु गालवः पौष्णमुत्तरम्॥" ६.४३

आशय यह कि शाकटायनके मतसे ऋग्वेद ८.४.१५ से १८ प्रगाथ ऋचाओंके देवता पूषा हैं तथा गालवकी रायसे १५–१६ के देवता इन्द्र हैं–१७-१८ के ही पूषा हैं।

"सावित्रमेके मन्यन्ते महो अग्ने स्तवं परम्।
आचार्या शौनको यास्को गालवश्चोत्तमामृचाम्॥" ७.३८

अर्थात् कई ऋषि ऋग्वेद १०.३६.१२–१४ के देवता सविताको मानते हैं; किन्तु शौनक, यास्क और गालव अन्तिम ऋचाके ही देवता सविताको मानते हैं।

"सोमप्रधानामेतां तु क्रौष्टुकिर्मन्यते स्तुतिम्॥" ४.१३७

तात्पर्य यह कि क्रौष्टुकिके मतसे ऋग्वेद ४.२८ में सोमकी स्तुति है। दूसरोंके मतसे ऐसी बात नहीं है।

"पराश्चतस्रो यत्रेति इन्द्रोलूखलयोः स्तुतिः।
मन्येते यास्क-कात्थक्याविन्द्रस्येति तु भागुरिः॥" ३.१०

अर्थात् यास्क और कात्थक्यके मतसे ऋग्वेद १.२८.१–४ तकमें इन्द्र और उलूखलकी स्तुति है; परन्तु भागुरिके मतसे इन्द्रकी स्तुति है।

वैदिक देवताओंका क्या स्वरूप है, इसपर अनेक ग्रंथोंने अनेक प्रकारसे विचार किया है। इनमें मुख्य हैं बृहद्देवता और निरुक्तका दैवत-काण्ड। निरुक्तकारने तीन मुख्य देवता माने हैं–पृथिवी-स्थानीय अग्नि, अन्तरिक्ष-स्थानीय वायु या इन्द्र और द्युस्थानीय सूर्य। अन्य सभी देवताओं को गौण मानकर इन तीनोंके साथ ही सम्बन्ध प्रदर्शित कर दिया गया है। परन्तु बृहद्देवता और निरुक्तमें वस्तुतः एक महादेवता (परमात्मा) को ही मुख्य माना गया है। परमात्माके एक होते हुए भी अनेक रूपोंमें उनकी स्तुति की गयी है। एक ही आत्माके अन्य देवता

भिन्न-भिन्न अंग हैं। एक ही प्रकृतिकी तत्तत्पदार्थ-रूपसे अनेकताको लेकर ऋषि लोग इनकी बहुरूपोंमें स्तुति करते हैं; यद्यपि वस्तुतः यह एक–अखण्ड– है।

इस तरह एक नहीं अनेक उदाहरण देकर यास्कने उसी बातको सिद्ध किया है, जिसको ऋग्वेदके "**एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति**" में कहा गया है। देवोंके इस एकत्व-वादको बृहद्देवताने भी माना है। बृहद्देवताका मत है कि मुर्दे (शव) के भी आंखें हैं; परन्तु वह इसलिये नहीं देख सकता कि उसका चेतनाधिष्ठान नहीं है। जबतक जड़ नेत्रका अधिष्ठाता चेतन रहता है, तबतक वह भली भांति देखता है। जड़ पदार्थमें स्वयं कर्त्तृत्व-शक्ति नहीं है; इसलिये उसका अधिष्ठाता चेतन माना गया है। इस तरह अनेक जड़ पदार्थोंके अनेक अधिष्ठाता चेतन (देवता) माने गये हैं। परन्तु समुदाय रूपसे सब एक ही हैं। एक ही अग्निके अनेक स्फुलिंगोंकी तरह एक ही परमात्माकी सब (देव-गण) विभूतियां हैं। मनुस्मृतिके १२ वें अध्यायमें भी इसी बातको मनुजीने बताया है। वस्तुतः वेदोंमें जो ३३ देवोंका उल्लेख है, वे सब परमात्माके ही अंग हैं–

"**एको देवः सर्वभूतेषु गूढः।**"

यह बात अवश्य है कि जिस मन्त्रमें जिसका कथन प्रधानतया किया गया है, उस मन्त्रका वही देवता कहा गया है। जिनका यह मत है कि जिस मन्त्रका जो देवता माना गया है, उस मन्त्रमें उसी देवताके समान दिव्य शक्ति है, वह भी ठीक है। इन मतोंसे देवोंके एकत्ववादमें कोई त्रुटि नहीं आती। अनेक मन्त्रोंमें अग्नि, इन्द्र आदिकी इस तरह स्तुति की गयी है, जिस तरह परमात्माकी की जाती है। परमात्माके अनेक नाम हैं, इसलिये वह विविध नामोंसे वैदिक मन्त्रोंमें स्तुत किये गये हैं। वस्तुतः सभी नामोंसे परमात्माकी ही पुकार लगायी गयी है–

"**तस्मात्सर्वैरपि परमेश्वर एव हूयते।**" **–सायणाचार्य**

वेदोंका आध्यात्मिक अर्थ करनेवाले तो सभी देव-नामोंको ईश्वरके नाम बताते ही हैं।

"दि मिस्टीरियस कुण्डलिनी" और "भगवद्गीता—ऐन एक्स-पोजीशन" नामक पुस्तकोंके रचयिता डा० वी० जी० रेलेने "द वैदिक गाड्स" नामकी एक पुस्तक लिखी है। डा० रेलेका मन्तव्य है कि "वैदिक ऋषियोंने बाह्य विश्वका पूर्ण और शुद्ध ज्ञान प्राप्त कर लिया था। ऋषियों ने शरीर-विज्ञानपर जब विचार करना शुरू किया, तब उन्होंने अपनी पूर्व-परिचित दैवत संज्ञाओंका व्यवहार, आलंकारिक दृष्टिसे, शरीर-विज्ञानमें भी करना प्रारम्भ किया। फलतः ये दैवत संज्ञाएँ (नाम) द्व्यर्थक और नानार्थक हैं। इनको शरीर-विज्ञानके पारिभाषिक शब्दोंकी भांति भी समझा जा सकता है।"

अनेक वैदिक नानार्थक शब्दोंकी निरुक्ति यास्कने भी की है। रेलेके मतसे सभी देव-नाम नानार्थक—कमसे कम द्व्यर्थक हैं। बाह्य अर्थोंमें जिन शब्दोंकी प्रवृत्ति थी, वे ही शरीरके विभिन्न स्थानोंको बतानेके लिये प्रयुक्त होने लगे। रेले कहते हैं—"वैदिक देवता प्रायः ज्ञान-तन्तु-संस्थानके विविध भाग हैं।" रेलेने अपनी उक्त पुस्तकमें १ त्वष्टा, २ ऋभु, ३ सविता, ४ अश्विनौ, ५ मरुत्, ६ पर्जन्य, ७ उषा, ८ विष्णु, ९ रुद्र, १० पूषा, ११ सूर्य, १२ अग्नि, १३ इन्द्र, १४ अदिति—आदित्य, १५ बृहस्पति (ब्रह्मण-स्पति), १६ सोम, १७ वरुण-मित्र और १८ अप्—आपः आदि प्रसिद्ध वैदिक देवताओंके सम्बन्धमें विचार किया है।

डा० रेलेका दावा है कि "सम्पूर्ण वैदिक देवता और उनके कार्य हमारे मस्तिष्क-संस्थानके विभिन्न कार्योंके ही द्योतक हैं।" डा० रेलेकी यह भी प्रतिज्ञा है कि "वैदिक ऋषियोंने बहुत-सी ऐसी बातोंका पता लगा लिया था, जो वर्त्तमान समयमें आधुनिक विज्ञानकी सहायतासे पुनः जानी जा सकी हैं—बहुतसी ऐसी बातोंका भी उन्हें ज्ञान था, जिनका ज्ञान अभी वर्त्तमान युगमें हमें प्राप्त करना है।"

डा० रेलेकी शब्दार्थ-शैली केवल वैज्ञानिक है। उन्होंने वैदिक व्याकरण, कोश, निरुक्त तथा सम्प्रदायकी चिन्ता नहीं की है। रेलेके अर्थ वैदिक मर्य्यादा और परम्पराके विपरीत हैं। नहीं कहा जा सकता, वैदिक विद्वान् इन अर्थोंको कहांतक ग्रहण करेंगे। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि ये अर्थ मनोरंजनके साधन अवश्य हैं। वैदिक देवताओंका रहस्य बतानेवाले तो बृहद्देवताके ही विवरण हैं। देवता-वादपर सर्वोत्तम ग्रन्थ बृहद्देवता ही है।

अष्टादश अध्याय

यज्ञरहस्य

जैन-बौद्धोंमें अहिंसा, ईसाइयोंमें दया, सिखोंमें भक्ति और इस्लाम में नमाजकी जो प्रतिष्ठा और महत्त्व है, वही वैदिक धर्ममें यज्ञके लिये है। वेदधर्मका प्राण और आत्मा यज्ञ है। यज्ञ-रूप नींवपर ही धर्म-रूप इमारत खड़ी है। अथर्ववेदका तो मत है कि "**अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः।**" अर्थात् संसारका उत्पत्ति-स्थान यह यज्ञ ही है। ऋग्वेदमें भी स्पष्ट ही लिखा है, 'यज्ञसे ही सब कुछ उत्पन्न हुआ है' (१०.९०.८–९)। पुरुषसूक्त (ऋग्वेद १०.९०.१६) कहता है कि "**यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।**" अर्थात् ध्यान-यज्ञसे देवोंने यज्ञ-पुरुषकी पूजा की। यज्ञ ही प्रथम वा मुख्य धर्म है। शतपथ (१.७.४.५) इसीलिये उद्घोष करता है कि "**यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म।**" अर्थात् सबसे श्रेष्ठ कार्य यज्ञ है। शतपथने यज्ञको ईश्वरका रूप भी माना है–"**प्रजापतिर्वै यज्ञः**", "**विष्णुर्वै यज्ञः**" आदि आदि। ऋग्वेदने (१०.९०.६) इस बातको और भी मार्मिक शैलीमें कहा है–"**तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।**" आशय यह है कि तपस्वियोंने यज्ञ-पुरुषको हृदयमें प्रबुद्ध किया।

इस तरह यज्ञको ईश्वर और धर्मका साक्षात् प्रतीक कहा गया है। यही कारण है कि वेदसे लेकर तन्त्रतक यज्ञकी महिमा गाते हैं और प्रत्येक हिन्दू प्रत्येक सत्कर्मको आजतक 'यज्ञ' कहता आया है। यज्ञ ईश्वर-रूप हो वा धर्मरूप हो, वह चराचरका रक्षक है। धर्मका भी लक्षण है संरक्षण करना। धारण वा रक्षण करनेसे ही उसका नाम धर्म पड़ा–"**धारणात् धर्ममित्याहुः।**" (**महाभारत**)

इस श्रेष्ठ धर्म (यज्ञ) का वैदिक साहित्यमें बड़ा विस्तार है। यज्ञके सम्बन्धमें कितने ही ग्रन्थ भी छप चुके हैं। इनमें महर्षि आपस्तम्बका **"यज्ञपरिभाषासूत्र"** बड़े महत्त्वका ग्रन्थ है। यज्ञ-रहस्य समझनेकी इच्छा रखनेवालेको इसे अवश्य पढ़ना चाहिये। परन्तु यह अतीव संक्षिप्त है। यज्ञके विशाल स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये तो विविध ब्राह्मण-ग्रन्थ देखने चाहिये। स्थानाभावके कारण यहां भी संक्षिप्त बातें ही लिखी जायंगी।

यज्ञ शब्दका वाच्यार्थ है स्वार्थ-त्याग-पूर्वक पूजन करना। महात्मा गांधीने यज्ञका अर्थ परोपकार किया है। अनेक सज्जनोंने यही अर्थ माना है। परन्तु सूक्ष्म विचार करनेपर इसके व्यापक अर्थका पता चलता है। वस्तुतः "श्रेष्ठ धर्म"के अर्थमें यज्ञ शब्द योग-रूढ़सा है।

वैदिक यज्ञ दो प्रकारके होते हैं। एक श्रौत और दूसरा गृह्य। प्रथम श्रेणीके यज्ञोंका विवरण श्रौतसूत्रोंमें है और द्वितीय श्रेणीके यज्ञोंका वर्णन गृह्यसूत्रोंमें है। यथाविधि दीक्षित होनेपर ही श्रौत यज्ञका अधिकारी मनुष्य होता है; परन्तु केवल उपनीत होनेपर ही गृह्य-यज्ञका अधिकारी मनुष्य हो जाता है।

श्रौतयज्ञके दो भेद हैं—'सोम-संस्था' और 'हविः-संस्था'। गृह्य-यज्ञको 'पाकसंस्था' भी कहा जाता है। इस तरह तीन प्रकारके यज्ञ होते हैं। इन तीनोंके भी सात-सात भेद हैं। इनमेंसे सप्त सोमसंस्थाका वर्णन आश्वलायन-श्रौतसूत्र (६.११ और १९.९.२७) तथा कात्यायन-श्रौत-सूत्र (१२.३.१९०) में आया है। अन्य स्थानोंमें इन सबका वर्णन है। परन्तु गोपथब्राह्मण (पूर्व भाग ५.२३) में इन इक्कीसोंका विवरण एकत्र पाया जाता है।

सप्त सोमसंस्थामें ये सात यज्ञ हैं—१ अग्निष्टोम, २ अत्यग्निष्टोम, ३ उक्थ्य, ४ षोड़शी, ५ वाजपेय, ६ अतिरात्र और ७ आप्तोर्याम। सप्त

हवि.संस्थामें ये सात हैं–१ अग्न्याधेय, २ अग्निहोत्र, ३ दर्श, ४ पौर्णमास, ५ आग्रयण, ६ चातुर्मास्य और ७ पशुबन्ध। सप्त पाकसंस्थामें ये सात यज्ञ हैं–१ सायंहोम, २ प्रातर्होम, ३ स्थालीपाक, ४ नवयज्ञ, ५ वैश्वदेव, ६ पितृयज्ञ और ७ अष्टका। लाट्यायन-श्रौत सूत्र (५.४.१०) में दर्श और पौर्णमासको एक ही यज्ञ मानकर "सौत्रामणि" यज्ञको भी सप्त हविःसंस्थाके अन्तर्गत गिनाया गया है। सोमसंस्थाको 'सोमयज्ञ', 'क्रतु', 'ज्योतिष्टोम', 'सुत्या' आदि भी कहा जाता है और हविःसंस्थाको 'हविर्यज्ञ' भी कहते हैं। १२ दिनोंके यज्ञको 'क्रतु' और ६ महीनों वा वर्षोंमें होनेवाले यज्ञको 'सत्र' भी कहा जाता है। संवत्सरसत्र, गवामयन, स्वर्ग-सत्र, अश्वमेध आदि 'सत्र' कहाते हैं। कहीं-कहीं इन तीनों संस्थाओंको 'सोम', 'इष्टि' और 'हौत्र' भी कहा गया है। सोमसंस्थाको सोम, हविः-संस्थाको इष्टि और पाकसंस्थाको हौत्र कहा गया है। गोमेध, अश्वमेध आदि सब सोमसंस्थाके अन्तर्गत हैं। ताण्ड्यमहाब्राह्मणमें कहा गया है कि एक दिनमें होनेवाला यज्ञ 'एकाह', कई दिनोंमें होनेवाला 'अहीन' और दीर्घ-कालमें होनेवाला यज्ञ 'सत्र' कहाता है। चातुर्मास्यके अन्तर्गत ही बलि-वैश्वदेव (वैश्वदेव नहीं), वरुणप्रघास और साकमेध हैं। पशुबन्धको 'निरूढ़पशुबन्ध' और 'इष्टि' भी कहा जाता है। 'इष्टि'के कई भेद हैं–आयुष्कामेष्टि, पुत्रेष्टि, पवित्रेष्टि, वर्षकामेष्टि, प्राजापत्येष्टि, वैश्वानरेष्टि, नवशस्येष्टि, ऋक्षेष्टि, गोष्पतीष्टि आदि। पशु-साध्य यज्ञोंको 'पशु-याग' कहा जाता है। अथर्व-परिशिष्ट (५.१) में 'पशुयाग' का अनुकल्प 'पिष्ट पशु' विहित है। 'पिष्ट पशु' आंटेके बनाये 'पिण्ड'को कहा जाता है। मनुस्मृति (५.३७) में 'घृतपशु' का भी उल्लेख है। परन्तु कई मतों में यह उल्लेख यज्ञार्थ नहीं है।

कौन-कौन जातियां यज्ञाधिकारिणी हैं, किन वेद-मन्त्रोंसे कौन-कौन यज्ञ किये जाते हैं, किस यज्ञमें किस (तीव्र, मध्यम और मन्द्र) स्वरमें मन्त्र पढ़े जाते हैं, किसमें मनोजप किया जाता है आदिका विचार "यज्ञ-

परिभाषासूत्र" के २३ सूत्रोंतक किया गया है। २४ वें सूत्रमें कहा गया है कि ऋत्विक् (यज्ञ कराने) का एकमात्र अधिकार ब्राह्मणको ही है। हां, यज्ञ करनेका अधिकार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य–तीनोंको है।

सोमयज्ञके 'अहीन' और 'एकाह' यज्ञोंमें षोड़श ऋत्विक् दीक्षित होते हैं। इनमें होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा प्रधान हैं। मैत्रावरुण, अच्छावाक और ग्रावस्तुत होताके, प्रतिप्रस्थाता, नेता (नेष्टा) और उन्नेता अध्वर्युके, प्रस्तोता,प्रतिहर्त्ता और सुब्रह्मण्य उद्गाताके तथा ब्राह्मणाच्छंसी, आग्नीध्र और पोता ब्रह्माके सहकारी हैं। इनके सिवा एक गृहपति भी रहता है। ये सत्रह व्यक्ति दीक्षित होते हैं (आश्वलायन-श्रौतसूत्र ४.१)। ऐतरेय-ब्राह्मण (७.१.१) के मतसे यज्ञ-विशेषमें आत्रेय, सदस्य, उपगाता और शमिता आदि भी वृत होते हैं।

जिन यज्ञोंमें त्रिविध अग्निकी स्थापना की जाती है, उन्हें सोमसंस्था कहते हैं। तीन अग्नि ये हैं—गार्हपत्य, दक्षिण और आहवनीय। प्रथमको पिता, द्वितीयको पुत्र और तृतीयको पौत्र भी कहा गया है (आश्वलायन श्रौतसूत्र २.२ और ४)। इन तीनोंका विशेष विवरण शतपथ (१.६. २.४), कात्यायन-श्रौतसूत्र (२.७.२६ और ५.८.६), छान्दोग्योपनिषद् (२.२४.११ और ४.१३.१) तथा मनुस्मृति (२३.२३१) आदिमें देखने योग्य है।

मुसलमानोंमें जो स्थान चांदका और ईसाइयोंमें जो स्थान क्रासका है, वही स्थान हिन्दुओंमें अग्निका है। आर्य अग्निको प्रकाशक, तेजस्वी और ज्योतिःस्वरूप मानते थे। प्रकाश, तेज और ज्योति पानेकी इच्छा रखनेवालेको अखण्ड अग्नि प्रज्वलित रखना चाहिये। आर्य लोग सदा ऐसा करते चले आये। विवाहमें व्यवहृत अग्निको घरमें लाकर प्रज्वलित रखा जाता था। इसे ही गार्हपत्याग्नि वा विवाहाग्नि कहा जाता है। दक्षिणाग्नि वह है, जिसमें दक्षिणाके लिये हलुआ, मोहनभोग आदि बनते थे और यज्ञाहुतियोंके लिये स्थालीपाक भी बनते थे। इसका नाम कात्या-

यन-श्रौतसूत्र (२.५.२७) ने अन्वाहार्य-पचन रखा है। अग्निहोत्रादि यज्ञाग्निको आहवनीयाग्नि कहा जाता है। गार्हपत्याग्नि पिता इसलिये है कि इससे भी दक्षिणाग्नि और आहवनीयाग्निको लिया जाता है। दक्षिणाग्निसे भी आहवनीयाग्निको लिया जाता है। इसीलिये दक्षिणाग्नि पुत्र और आहवनीयाग्नि पौत्र है। अरणि-मन्थनसे भी दक्षिणाग्नि और आहवनीयाग्निको उत्पन्न किया जाता है। गार्हपत्याग्निको कभी बुझने नहीं दिया जाता था। इसीसे मृत-दाहाग्निको भी लिया जाता था। यास्क ने गार्हपत्याग्निको वनस्पति-अग्नि, दक्षिणाग्निको शमिता और आहवनीयाग्निको देवाग्नि भी लिखा है।

प्रत्येक यज्ञमें गोघृतका ही व्यवहार करना लिखा है। प्रत्येक यज्ञमें अध्वर्युको साधारण कर्त्ता माना गया है। यज्ञके अनेकानेक पात्र होते हैं; परन्तु होम मात्रमें 'जुहू'का ही व्यवहार लिखा है। इसके अभावमें 'स्रुव'का उपयोग उचित है। जो नित्य अग्निहोत्र करनेवाले हैं, उनकी मृत्यु हो जानेपर उनकी चितापर समस्त यज्ञीय पात्र रखकर जलानेकी विधि है। पात्रोंको प्रतिदिन उष्ण जलसे प्रक्षालित करनेकी विधि भी है। संहिताओं और ब्राह्मण-ग्रन्थोंके अनुसार समस्त यज्ञोंका सम्पादन करना चाहिये'—"**मन्त्रब्राह्मणे यज्ञस्य प्रमाणम्**" (यज्ञ-परिभाषा-सूत्र ३३)। यज्ञपरिभाषासूत्रके ३४ वें सूत्रमें स्पष्ट ही कहा गया है कि "मन्त्र और ब्राह्मण—दोनों ही वेद हैं"—"**मन्त्र-ब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् ।**" जिन वाक्योंसे अग्निष्टोम आदि कर्मोंका विधान किया गया है, उन समस्त वैदिक वाक्योंको 'ब्राह्मण' माना गया है। जैसे 'कृत्तिका नक्षत्रमें अग्निका आधान करना चाहिये' (शतपथ १.१.२.१)।

इन विधान-वाक्योंका वर्णन करनेवाले वाक्योंको 'अर्थवाद' कहा गया है—जैसे 'कृत्तिकामें अग्न्याधान (अग्नि-स्थापन) करनेवाला 'ब्रह्मवर्चस्' प्राप्त करता है' (शतपथ १.१.२.२)। अर्थवादके चार भेद हैं—निन्दा, प्रशंसा, परकृति और पुराकल्प। निन्दा यह है—'आत्महत्या करनेवाला

नरक जाता है।' प्रशंसा—'अश्वमेध यज्ञ करनेवाला ब्रह्महत्यासे छूट जाता है।' परकृति—'चरकाध्वर्यु शाखावाले 'पृषदाज्य' (दधिमिश्रित घृत) से हवन करते हैं।' पुराकल्प—'प्रजापतिने इच्छा की कि मैं बहुत हो जाऊँ।' ये चारों प्रकारके वचन 'अर्थवाद' हैं और ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें अर्थवाद बहुत हैं। अर्थवादकी ही तरह ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें मन्त्र भी बहुत हैं—जैसे ताण्ड्य-ब्राह्मण और छान्दोग्य-ब्राह्मणके प्रथमके दोनों अध्यायोंमें हैं। इसी तरह संहिताओंमें भी बहुत ब्राह्मण-वचन पाये जाते हैं।

मीमांसाकारने अर्थवादके तीन भेद किये हैं—गुणवाद, अनुवाद और भूतार्थानुवाद। भूतार्थानुवादके सात भेद फिर कहे गये हैं—स्तुत्यर्थवाद, फलार्थवाद, सिद्धार्थवाद, निन्दार्थवाद, परकृति, पुराकल्प और मन्त्र। कहीं-कहीं हेतु, निर्वचन, संशय आदिको भी अर्थवाद कहा गया है। वैदिक साहित्यमें अर्थवादके बहुत प्रसंग आये हैं; इसीलिये यहां थोड़ीसी चर्चा की गयी। अर्थवादका पूरा ज्ञान प्राप्त किये विना मन्त्रों और ब्राह्मणोंके अर्थके अनर्थ कर दिये जाते हैं—यज्ञ-रहस्य समझनेमें भी बाधा होती है; इसलिये अर्थवादका सांगोपांग ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है।

यज्ञ-कार्यमें अनध्याय नहीं होता। 'प्रत्येक देव-कार्यको पूर्व वा उत्तर मुख करके और यज्ञोपवीती होकर करना चाहिये।' (यज्ञपरिभाषासूत्र ६३)। यज्ञोपवीती बायें कन्धेके आधारपर जनेऊ पहननेको कहा जाता है और प्राचीनावीती दाहिने कन्धेके आश्रयसे जनेऊ पहननेको कहा जाता है। दक्षिणाभिमुख और प्राचीनावीती होकर पितृ-कार्य करना चाहिये (य० प० सू० ६४)। अमावस्याके दिन दर्शयाग और पूर्णमासीके दिन पौर्णमास-यज्ञ करना चाहिये (य० प० सू० ६७)। 'जहां-जहां 'तुष्णीम्' विधि है, वहां-वहां छोड़कर अग्निमें घृत, हविः आदि जो कुछ दिया जाता है, सो सब 'स्वाहा' कहकर देना चाहिये' (य० प० सू० ९०)। 'सपत्नीक यज्ञ करनेकी जहां विधि है, वहां अपत्नीक यज्ञ नहीं किया जा सकता,

जहां आहवनीयाग्नि प्रतिनिधि लिखा है, वहां गार्हपत्याग्निको प्रतिनिधि नहीं किया जा सकता। अग्निका प्रतिनिधि सूर्य नहीं हो सकता, एक मन्त्र का प्रतिनिधि दूसरा मन्त्र नहीं हो सकता, प्रयाजादि कर्मोंके प्रतिनिधि प्रोक्षणादि नहीं हो सकते और यज्ञमें निषिद्ध मसूड़, चना और कोदो आदि याग-द्रव्यके प्रतिनिधि नहीं हो सकते' (य० प० सू० १३९)। मतलब यह कि जहां जैसा विधान है, वहां वैसा ही होना चाहिये; विहितके स्थान पर अविहितसे काम नहीं चल सकता।

यज्ञपरिभाषासूत्रमें केवल १६० सूत्र हैं। यज्ञ-विवरण पढ़नेवालोंको ये सारे सूत्र देखने चाहिये। यहां स्थानाभावके कारण अधिक उल्लेख नही किया जा सकता। इन सूत्रोंमें दो ही सूत्र ऐसे हैं, जिनमें सुराधार, कुम्भी, मांस-पाक करनेके शूल और चर्बी पकानेके 'कड़ाहा' (वपा-श्रपणी) का उल्लेख है। सूत्रोंमें कहा गया है कि 'एकजातीय पशुओंके लिये ये वस्तुएँ एक-एक ही होनी चाहिये' (सूत्र १५४ और १५५)। श्रीसत्यव्रत सामश्रमीके मतसे वैदिक साहित्यके इन ग्रन्थोंमें कुम्भीका उल्लेख है—वाजसनेय-संहिता १९.१६.२७ और ८७; अथर्ववेद-संहिता ९.५.५ और ५.६.१७; ११.३.११; १२.२.५१ और १२.३.२३; तैत्तिरीय-संहिता ३.२.८.४ और ५; शतपथ-ब्राह्मण १.१.२.१; १.९.१.३; १.५.३.१६; आश्वलायनगृह्यसूत्र ४.५; कौशिकसूत्र ६.६१; लाट्यायन-श्रौतसूत्र ३.४ और १४; कात्यायन-श्रौतसूत्र १९.३.२०। शूलका उल्लेख इन ग्रन्थोंमें है—शतपथ-ब्राह्मण ११.४.२.४; ११.७.१.२; ११.७.४.३; आश्वलायनगृह्यसूत्र १.११.१२; कात्यायन-श्रौतसूत्र ६.७.१४; ८.८.३२; २०.७.२७; छान्दोग्योपनिषद् ७.१५.३। वपाश्रपणीका उल्लेख इनमें है—शतपथ-ब्राह्मण ३.६.३.१०; ३.८.२.१७ और २८; तैत्तिरीयसंहिता ६.३.८.२; कात्यायन-श्रौतसूत्र ६.५.७ और २६। इन उल्लेखों से तो मालूम होता है कि कदाचित् यज्ञोंमें पशुओंकी बलि होती थी। परन्तु इसके उत्तर चार प्रकारसे दिये जाते हैं—

(१) आध्यात्मिक अर्थ करनेवाले तो इनका उल्लेख ही नहीं मानते; वे इन शब्दोंके अर्थ और करते हैं।

(२) पशु-यागोंमें अनुकल्पका (पशुओंके स्थानपर दूसरी वस्तुओंका) बहुत विधान है; इसलिये आंटेके पिण्ड आदिसे ही काम चलाया जाता है; पशु-बलिकी आवश्यकता ही नहीं समझी जाती।

(३) कुछ लोग कहते हैं कि 'अन्य युगोंके लिये भले ही विधान हो; परन्तु कलिमें, यज्ञोंमें, पशु-बलि निषिद्ध है।'

(४) अनेक सज्जन यह भी उत्तर देते हैं कि 'पहले भी कुछ निम्न कोटिके अधिकारी थे। ऐसे ही तामस लोगोंके लिये पशु-बलिकी विधि है, अन्य लोगोंके लिये नहीं।'

पाठक विचार कर देखें कि कौन उत्तर कहांतक उपयुक्त है। लेखक के मतसे ये चारो उत्तर यथा-स्थल ठीक हो सकते हैं।

श्रीमद्भागवतगीताको संस्कृत-साहित्यका अमूल्य रत्न माना जाता है; परन्तु प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान् स्व० चिन्तामणि विनायक वैद्यने अपने "संस्कृत-साहित्यके इतिहास" ("वैदिक काल") में गीताको वैदिक साहित्यका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ माना है। कितने ही अन्य विद्वान् भी ऐसा ही मानते हैं। इसलिये यज्ञके सम्बन्धमें गीताका अभिमत जान लेना प्रासंगिक ही है। गीतामें यज्ञके अर्थ परोपकार, श्रेष्ठ धर्म, उत्तम कर्म आदि हैं। महात्मा गांधीकी ही तरह लो० बाल गंगाधर तिलकने भी यज्ञका अर्थ परोपकार किया है।

यों तो गीतामें यज्ञ शब्दकी बहुत चर्चा आयी है; परन्तु कुछ विस्तृत उल्लेख ३ रे, ४ थे, १७ वें और १८ वें अध्यायोंमें हैं। भगवान्ने सबसे पहले घोषणा की है—**"यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः" (गीता ३.९)**। अर्थात् 'यज्ञके लिये जो कर्म किये जाते हैं, उनके अतिरिक्त अन्य कर्मोंसे लोक बँधा हुआ है'। तात्पर्य यह है कि यज्ञ-कर्म मुक्ति देनेवाले

हैं और अन्य कर्म बन्धन डालनेवाले हैं। इस घोषणाके अनन्तर भगवान्ने ६ श्लोकोंमें यज्ञकी प्रकृति और प्रक्रिया बतायी है।

कहा गया है–'यज्ञके साथ प्रजाको उत्पन्न करके प्रजापति ब्रह्माने कहा–'यज्ञके द्वारा तुम्हारी वृद्धि हो। यह तुम्हें इच्छित फल दे। तुम यज्ञके द्वारा देवताओंको सन्तुष्ट करते रहो और वे देवता तुम्हें सन्तुष्ट करते रहें। इस प्रकार परस्पर सन्तुष्ट करते हुए दोनों परम कल्याण प्राप्त करो। यज्ञसे सन्तुष्ट होकर देवता लोग तुम्हें इच्छित भोग देंगे। उन्हींका दिया हुआ उन्हें वापस न देकर जो केवल स्वयं उपभोग करता है, वह सचमुच चोर है। यज्ञ करके शेष बचे हुए भागको ग्रहण करनेवाले सज्जन सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। परन्तु यज्ञ न करके केवल अपने ही लिये जो अन्न पकाते हैं, वे लोग पाप भक्षण करते हैं। प्राणियोंकी उत्पत्ति अन्नसे होती है, अन्न वर्षासे उत्पन्न होता है, वर्षा यज्ञसे उत्पन्न होती है और कर्मसे यज्ञकी उत्पत्ति होती है। कर्मकी उत्पत्ति प्रकृतिसे हुई है और प्रकृति परमेश्वरसे उत्पन्न हुई है। इसलिये सर्व-व्यापक ब्रह्म सदा यज्ञमें विद्यमान रहते हैं। इस प्रकार जगत्की रक्षाके लिये चलाये हुए यज्ञ-चक्रको जो आगे नहीं चलाता, उसकी आयु पाप-रूप है। देवोंको न देकर स्वयं उपभोग करनेवालेका जीवन व्यर्थ है' (गीता ३.१०–१५)।

कई ग्रन्थोंकी बातें भगवान्ने इन ६ श्लोकोंमें कह दी हैं। इनसे ज्ञात होता है कि यज्ञ करना और देवोंको सन्तुष्ट करना हर एकके लिये अनिवार्य है, यज्ञ न करनेवाला चोर और पापी है, यज्ञसे ही परम्परया जीवोंकी उत्पत्ति और प्राण-रक्षा होती है, यज्ञमें साक्षात् परमात्मा विराजते हैं और यज्ञ न करनेवालेका जीवन व्यर्थ है।

वस्तुतः यज्ञ करना प्रभुकी सेवा करना है। भगवान्ने स्पष्ट ही कहा हैं–'श्रद्धाके साथ अन्य देवोंके भक्त बनकर जो लोग यजन करते हैं, वे भी मेरा ही यजन करते हैं; क्योंकि मैं ही सारे यज्ञीय पदार्थोंका भोक्ता और स्वामी हूँ' (९.२४–२५)। १७ वें अध्याय (२३) में तो

ओंकारसे यज्ञकी उत्पत्ति बतायी गयी है। १८ वें अध्याय (५) में यज्ञको पवित्रता-कारक और अनिवार्य कर्म बताया गया है।

१७ वें अध्याय (११-१३ श्लोक) में भगवान्ने सात्त्विक, राजस और तामस यज्ञोंके लक्षण भी बताये हैं। कहा गया है—'फलाशा छोड़कर और कर्त्तव्य समझकर, शास्त्रीय विधिके अनुसार, शान्त चित्तसे, जो यज्ञ किया जाता है, वह सात्त्विक है। फलकी इच्छासे और ऐश्वर्य दिखानेके लिये जो यज्ञ किया जाता है, वह राजस है। शास्त्र-विधि-रहित, अन्नदान-विहीन, विना मन्त्रोंका, विना दक्षिणाका, श्रद्धा-शून्य यज्ञ तामस यज्ञ है।' यज्ञाभिलाषियोंको ये श्लोक कण्ठस्थ कर लेने चाहिये।

गीताके ४ र्थ अध्याय (२४-३३) में भी यज्ञकी कुछ विशेष चर्चा है। कहा गया है—'यज्ञमें अर्पण (हवन-क्रिया) ब्रह्म है, हवि (अर्पण-द्रव्य) ब्रह्म है और ब्रह्मरूपी अग्निमें हवन करनेवाला भी ब्रह्म है। इस प्रकार यज्ञ-कर्मके साथ जिसने मेल साधा है, वह ब्रह्मको ही पाता है। कोई-कोई कर्मयोगी (ब्रह्म-यज्ञके बदले) देवोंद्देश्यसे यज्ञ किया करते हैं। किन्तु अन्य ज्ञानी पुरुष ब्रह्मरूप अग्निमें यज्ञसे ही यज्ञका यजन करते हैं अर्थात् ब्रह्ममें ज्ञान द्वारा एकीभावसे स्थित होते हैं। कितने ही श्रवणादि इन्द्रियोंका संयम-रूप यज्ञ करते हैं और कुछ लोग इन्द्रिय-रूप अग्निमें शब्द आदि विषयोंका हवन करते हैं। कितने ही इन्द्रियों और प्राणोंके कर्मोंको ज्ञान-दीपकसे प्रज्वलित आत्म-संयम-रूप योगकी अग्निमें हवन किया करते हैं। इस प्रकार कोई यज्ञार्थ द्रव्य देते हैं, कोई तप करते हैं, कितने ही अष्टांग योग साधनेवाले होते हैं, कितने ही स्वाध्याय-यज्ञ और ज्ञान-यज्ञ करते हैं। ये सब कठिन-व्रतधारी प्रयत्नशील याज्ञिक हैं। प्राणायाममें तत्पर होकर प्राण और अपानकी गतिको रोककर, कोई प्राण-वायुका अपानमें हवन किया करते हैं और कोई अपान वायुका प्राणमें हवन किया करते हैं। कुछ लोग आहारका संयम करके प्राणोंमें ही प्राणोंका होम किया करते हैं। यज्ञोंके द्वारा अपने पापोंको क्षीण करनेवाले ये सब यज्ञको जाननेवाले

हैं। यज्ञसे बचे हुए अमृतको खानेवाले लोग सनातन ब्रह्मको पाते हैं। यज्ञ न करनेवालेके लिये यह संसार ही नहीं है, तो परलोक तो हो ही कहांसे सक़ता है? इस प्रकार वेदमें अनेक प्रकारके यज्ञोंका वर्णन हुआ है। सबको कर्मसे उत्पन्न जान। इस प्रकार सबको जानकर तू मोक्ष पावेगा। द्रव्य-यज्ञकी अपेक्षा ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है।' 'सब प्रकारके सम्पूर्ण कर्मोंका अन्त ज्ञानमें होता है।' 'यज्ञके लिये कर्म करनेवालेके सारे बन्धन छूट जाते हैं' (४.२३)।

इस प्रकार भगवान्ने ब्रह्म-यज्ञ, देव-यज्ञ, संयम-यज्ञ, योग-यज्ञ, द्रव्य-यज्ञ, तपो-यज्ञ, स्वाध्याय-यज्ञ, ज्ञान-यज्ञ आदि कितने ही यज्ञोंको बताया है और सबका वेदमें उल्लेख भी बताया है। साथ ही यज्ञोंके द्वारा पापों का नष्ट होना और कर्म-बन्धनसे छूटना भी कहा है। यज्ञोच्छिष्टको अमृत बताकर उसका भक्षण करनेवालेके लिये ब्रह्म-प्राप्ति भी बतायी है। यह भी कहा है कि काय-मनो-बुद्धि आदिके संयमके विना यज्ञ नहीं हो सकता और यज्ञके विना मोक्ष नही प्राप्त हो सकता। म० गांधीने भी अपने "अनासक्ति-योग"में लिखा है–'यज्ञ विना मोक्ष नहीं होता' (४. ३२)। अन्तको भगवान्ने ज्ञान-यज्ञको श्रेष्ठ कहा है। प्रायः यही बात १८ वें अध्याय (७०) में भी कही गयी है। यह ठीक ही है; क्योंकि ज्ञान-शून्य परोपकार भी किसी कामका नहीं होता। ज्ञान-रहित दान भी हानि-कारक हो सकता है। कोई भी कर्म तभी सुन्दर, शुद्ध और उपयुक्त होता है, जब उसके साथ ज्ञानका मेल हो। अज्ञानी तो यज्ञाधिकारी भी नहीं हो सकता और यज्ञ-रहित मनुष्यका जीवन ही व्यर्थ है।

पहले कहा गया है कि प्रत्येक अमावस्या और पूर्णिमाको अनुष्ठित होनेके कारण 'दर्शपौर्णमास' नाम पड़ा। इस यज्ञमें उपवास करके यजमान दम्पतीको संयम-पूर्वक रात बितानी पड़ती है। दूसरे दिन यज्ञानुष्ठान होता है। अमावास्याके दिन अग्निके लिये पुरोडाश, इन्द्रके लिये दधि और पुनः इन्द्रके लिये दुग्धका त्याग किया जाता है। ये तीनों तीन याग

कहाते हैं। पूर्णिमाको पहला अग्नि-सम्बन्धी अष्टकपालवाला पुरोडाश-याग, दूसरा अग्नि और सोमके लिये आज्य द्रव्यवाला उपांशु-याग और पुनः तीसरा अग्नि और सोमके लिये एकादश कपालवाला पुरोडाश-याग किया जाता है। इस प्रकार दर्शपौर्णमास यज्ञमें सब छः याग होते हैं।

वाजसनेय-माध्यन्दिनके प्रथम दो अध्याय दर्शपौर्णमास यज्ञकी विधियोंमें ही विनियुक्त हैं। जैसे संहिताओंमें माध्यन्दिनकी प्रसिद्धि है, वैसे ही यज्ञोंमें दर्शपौर्णमासकी।

सभी यज्ञोंमें अनुष्ठान-विधि बड़ी विस्तृत होती है। अनेक यज्ञोंकी अनेक अनुष्ठान-विधियां भी हैं। नमूनेकी तरह यहां दर्शपौर्णमासकी अनुष्ठान-विधि लिखी जाती है। अनेक यज्ञोंमें तो कुछ घटा-बढ़ाकर यही अनुष्ठान-विधि प्रयुक्त की जाती है।

१. अग्नि-उद्धरण—गार्हपत्याग्निसे आहवनीयाग्नि और दक्षिणाग्निका पृथक् किया जाना।
२. अग्नि-अन्वाधान—तीनों अग्नियोंमें छः-छः समिधाओंका दिया जाना।
३. ब्रह्म-वरण—यजमानके द्वारा ऋत्विक्का वरण।
४. प्रणीता-प्रणयन—चमसमें जल भरकर निर्दिष्ट स्थानमें रखना।
५. परिस्तरण—अग्निके चारों ओर कुशाच्छादन।
६. पात्रासादन—यज्ञीय पात्रोंको यथास्थान रखना।
७. शूर्पाग्निहोत्रहवणीका प्रतपन।
८. शकटसे हविःग्रहण करना।
९. पवित्रीकरण।
१०. पात्रहविः-प्रोक्षण—हविष्य और पात्रोंका मार्जन।
११. फलीकरण—तण्डुलसे कणोंको दूर कर शोधन करना।
१२. कपालोपधान—दो अंगुल ऊँचे किनारेवाले मिट्टीके पात्र कपाल कहे जाते हैं। इन्हें यथास्थान रखना।

१३. उपसर्जनीका अधिश्रयण–पिष्ट-संयवनके लिये तप्त जलका नाम उपसर्जनी है। इसे नीचे रखना।
१४. वेदीकरण।
१५. स्तम्बयजुः-हरण–मन्त्रसे कुशको छिन्न कर रखना।
१६. स्रुवा, जुहू, उपभृत् और ध्रुवाआदि काष्ट-निर्मित यज्ञ-पात्रोंका संमार्जन।
१७. पत्नीसंनहन–मूंजकी रज्जुसे पत्नीकी करधनी बनाना।
१८. इध्म, वेदी और बर्हिकाका प्रोक्षण।
१९. प्रस्तर-ग्रहण–कुशमुष्टिको प्रस्तर कहा जाता है।
२०. वेदिकास्तरण–वेदीपर कुशाच्छादन करना।
२१. परिधि-परिधान–वेदीके चारो ओर परिधि बनाना।
२२. इध्मका आधान।
२३. विधृति-स्थापन।
२४. जुहू आदिको वेदीपर रखना।
२५. पञ्चदश-सामिधेनी-अनुवचन।
२६. अग्नि-संमार्जन।
२७. आधार–अग्निके एक छोरसे दूसरे छोरतक आज्यकी धाराका प्रक्षेप करना।
२८. होतृ-वरण।
२९. पञ्च प्रयाज (पांच प्रकृष्ट याग)।
३०. आज्य-भाग (अग्नि और सोमदेवताके निमित्त)।
३१. प्रधान याग–प्रधान देवताके लिये याग।
३२. स्विष्टकृत् (प्रधान यागको शोभित करनेवाली याग-विधि)।
३३. प्राशित्रावदान–ब्रह्माके भागको प्राशित्र कहते हैं। उसका ग्रहण॥
३४. इडावदान आदि।
३५. अन्वाहार्य-दक्षिणा (ऋत्विक्का खाद्य ओदन अन्वाहार्य कहाता है)॥

३६. तीन अनुयाज (पीछे किये जानेवाले याग)।

३७. व्यूहन—जुहू आदि पात्रोंको हटाना।

३८. सूक्तवाक्। } —स्तुति-विशेष।

३९. शंयुवाक् }

४०. पत्नी-संयाज (पत्नी देवताके लिये चार याग)।

४१. दक्षिणाग्नि-हवन।

४२. बर्हिर्होम।

४३. प्रणीता-विमोक।

४४. विष्णु-क्रम।

४५. व्रत-विसर्ग।

४६. ब्राह्मण-तर्पण।

एकोनविंश अध्याय

जैमिनीय मीमांसा और वेद

पुराण-कर्त्ता बादरायण व्यासके शिष्य जैमिनिकी बनायी **"पूर्वमीमांसा"** को पांचवां शास्त्र मानकर लौकिक साहित्यमें गिना जाता है; परन्तु इसमें वेदकी नित्यता, प्रामाणिकता और वैदिक यज्ञोंका इतना विशद विचार है कि इसे वैदिक साहित्यका ही ग्रन्थ समझना उचित होगा। वस्तुतः पूर्व मीमांसाका परिचय दिये विना वैदिक साहित्यका परिचय पूर्ण और सांगोपांग नही कहा जा सकता।

यह दर्शनशास्त्र न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग और उत्तरमीमांसा (वेदान्तदर्शन) से बड़ा है। इसमें बारह अध्याय, अड़तालीस पाद तथा एक हजार अधिकरण और हजारसे कुछ कम सूत्र हैं। कोई अधिकरण एक ही सूत्रमें है, कोई दो, तीन, चार वा इससे भी अधिक सूत्रोंमें है और किसी-किसी सूत्रमें दो-तीन अधिकरण भी हैं। अधिकरण विचारको कहा जाता है।

इसके कई नाम हैं—द्वादशलक्षणी, पूर्वमीमांसा, पूर्वकाण्ड, कर्ममीमांसा, कर्म-काण्ड, यज्ञविद्या, अध्वरमीमांसा, धर्ममीमांसा आदि। बारह अध्यायोंमें विभक्त होनेके कारण द्वादशलक्षणी नाम पड़ा। कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्डमें वेद विभक्त हैं और कर्मकाण्डात्मक वेदका विशेष विचार रहनेके कारण इसके नाम पूर्वमीमांसा, पूर्वकाण्ड, कर्ममीमांसा, कर्मकाण्ड आदि पड़े। यज्ञका अत्यधिक विचार रहनेके कारण इसके नाम यज्ञविद्या और अध्वरमीमांसा रखे गये। धर्म-निरूपण

ही इस शास्त्रका प्रधान उद्देश्य है; | इसलिये इसका एक नाम धर्ममीमांसा भी हुआ। मीमांसा शब्दका अर्थ निर्णय है।

इसके प्रथम अध्यायमें धर्मज्ञानका प्रयोजन, धर्मलक्षण, धर्ममें प्रमाण, वेदोक्त क्रियाएँ क्योंकर धर्म हैं, आदिका विचार है। द्वितीय अध्यायमें याग-यज्ञकी विविधता कही गयी है। तृतीयमें इन बातोंका निरूपण है कि किस यज्ञका कौन अंग है तथा कौन अंग प्रधान और कौन अप्रधान है। चतुर्थमें याज्ञिकके गुण कहे गये हैं और जो यज्ञ जिस शैलीसे सम्पादित किया जाता है, उसका विवेचन है। पांचवेंमें यज्ञादि कर्मोंका क्रम-निर्णय है। छठेमें अधिकारि-निर्वाचन है। सातवेंमे 'अतिदेश' वाक्योंका विवेचन है। 'अमुक कर्म अमुक कर्मकी तरह करना चाहिये'—ऐसे वाक्योंको अति-देश कहा जाता है। आठवेंमें 'विशेषातिदेश' वाक्योंकी मीमांसा है। नौवेंमें उह-विचार है। मन्त्रादिमें अप्राप्त पदार्थकी उत्प्रेक्षा वा उल्लेखको 'उह' कहा जाता है। उहका विचार कहां करना चाहिये, कहां नहीं, यही 'उह-विचार' का उद्देश्य है। लिखित द्रव्यके अभावमें प्रतिनिधि-द्रव्यके द्वारा कार्य करने और 'अतिदेश'—विधानके कार्य करनेके समय 'उह-विचार' का सिद्धान्त लागू होता है। मधुके अभावमें गुड़ देनेकी व्यवस्था है। परन्तु गुड़ देनेके समय "**मधुवाता ऋतायते**" मन्त्रका पाठ करना चाहिये कि नहीं, यह संशय होता है। 'उह-विचार' का सिद्धान्त है कि 'इस मन्त्रका अविकल पाठ होना चाहिये।' दसवेंमें 'बाध'-निर्णय है। कहां किस मन्त्र, किस द्रव्य और किस क्रियाका परित्याग करना चाहिये, इसका निश्चय करना 'बाध'—विचारका उद्देश्य है। ग्यारहवेंमें 'तन्त्रता'का विचार है। जहां एक कर्त्ताको अनेक कर्म करने होते हैं, वहां एक कर्मके अनुष्ठानसे अन्य कर्मका फल सिद्ध होता है, इसका निर्णय 'तन्त्रता'-विचारका उद्देश्य है। जैसे स्नान करना प्रत्येक क्रियाका अंग है; परन्तु कर्त्ताको यदि एक दिनमें पांच कर्म करने हैं, तो एक ही बार स्नान करना होगा और इसीसे अन्य स्नानोंका फल प्राप्त हो जायगा—बार-बार स्नान करनेकी आवश्यकता

नहीं पड़ेगी। बारहवें में प्रसंग-निर्णय है। एक बातको लक्ष्य करके कार्य करनेपर यदि अन्य फल सिद्ध होता है, तो उसको प्रसंग-सिद्ध कहा जाता है। जैसे आम्र-फलके लिये वृक्षको रोपा जाता है; परन्तु छाया प्रसंगतः मिल जाती है। किसी यज्ञके लिये पुरोडाश (पिसान) तैयार करनेपर अंग-यज्ञके लिये उसे नहीं तैयार करना होगा; क्योंकि अंग-यागका पुरोडाश प्रसंग-सिद्ध है।

इस विषय-सूचीसे स्पष्ट विदित होता है कि मीमांसादर्शन वैदिक साहित्यकी बातोंसे भरा पड़ा है।

मीमांसाकारके मतसे मन्त्र वह है, जो अनुष्ठानके समयमें उपयुक्त अनुष्ठेय अर्थका बोध कराता है। कई आचार्योंके मतसे 'चिर कालसे कहे जानेवाले मन्त्र मात्र मन्त्र हैं।' मन्त्रावशिष्ट वाक्योंको ब्राह्मण कहा गया है। परन्तु वेदके ये ही दो भाग नहीं हैं—इतिहास, पुराण, कल्प, नाराशंसी, गाथा आदि भाग भी हैं। प्राचीन घटनाएँ बतानेवाला वेदांश इतिहास है, पूर्वावस्थाको बतानेवाला वेदांश पुराण कहाता है, कर्त्तव्याकर्त्तव्य बतानेवाले वेद-भागको कल्प कहते हैं, मनुष्य-वृत्तान्त-बोधक सन्दर्भको नाराशंसी कहा जाता है और प्रशंसा तथा गाने योग्य सन्दर्भको गाथा कहते हैं। इनके अतिरिक्त और भी छोटे-छोटे वेद-भाग हैं।

इन सारे भागोंको पुनः जैमिनिने चार भागोंमें बांटा है—विधि, अर्थवाद, मन्त्र और नामधेय। इन्हींके द्वारा धर्म, धर्म-जनक यज्ञ, दान, होम आदि कर्मोंके स्वरूप और अनुष्ठान बताये गये हैं। मीमांसाका पहला सूत्र है—"**अथातो धर्म-जिज्ञासा।**" आशय यह है कि विचार द्वारा धर्म-तत्त्व जानना आवश्यक कर्त्तव्य है। धर्म क्या है? इसका उत्तर जैमिनिने दिया है—"**चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः।**" अर्थात् जिसके ज्ञापक वा बोधक विधि-वाक्य हैं और जो श्रेयस्कर और इष्ट है, वही धर्म है। आशय यह है कि विधि-बोधक और श्रेयस्कर क्रिया-कलाप (यज्ञ, दान, होम आदि) धर्म

हैं। मीमांसा-भाष्यकार शबर स्वामीने धर्मपर विशद विचार किया है। एक तो यहां स्थान-संकोच है, दूसरे ऐसी प्रगाढ़ और पाण्डित्य-पूर्ण शैली में भाष्यकारने विचार किया है कि हिन्दीमें उसका अनुवाद होना तो दूर रहे, छायानुवाद होनेमें भी सन्देह है।

जैमिनि कहते हैं–'अर्थके साथ शब्दका जो सम्बन्ध है, वह औत्पत्तिक नित्य है–कृत्रिम वा सांकेतिक नहीं है। वह तो स्वाभाविक है। इसलिये विधि-वाक्योत्पन्न ज्ञान अबाधित और सत्य है। वेद-शब्द अज्ञात विषयों का ज्ञान कराते हैं; इसलिये स्थायी प्रमाण हैं। उच्चारणके पहले शब्द अव्यक्त रहता है; उच्चारणसे व्यक्त होता है–शब्द सदा रहता ही है, उत्पन्न नहीं किया जाता। उच्चारणके अनन्तर भी शब्द रहता है–अवश्य ही अव्यक्त हो जाता है–विनष्ट नहीं होता। "शब्द करो" का तात्पर्य शब्द बनाना नहीं है, ध्वनि करना है। शब्द तो नित्य रूपसे रहता ही है; हां, ध्वनिके द्वारा अभिव्यक्त अवश्य किया जाता है। जैसे नित्य-स्थित सूर्यको एक ही समय, अनेक स्थानोंमें, अनेक मनुष्य देखते हैं, वैसे ही नित्य-स्थित वर्णात्मक शब्दको भी एक ही समय,' अनेक स्थानोंमें, अनेक मानव सुनते और बोलते हैं। प्रत्येक वर्ण स्वतन्त्र है, कोई किसीकी विकृति नहीं है। फलतः किसी वर्णके बदले किसी वर्णका आना (जैसे व्याकरणमें 'इ'के स्थानमें 'य'का आना) विकृति नहीं है। शब्द बढ़ता-घटता भी नहीं, ध्वनि ही बढ़ती-घटती है। शब्द तो ज्योंका त्यों रहता है। ध्वनिके द्वारा केवल दूसरोंको बताया जाता है। शब्दके अनित्य रहनेपर उसे अभिव्यक्त करनेके लिये कोई ध्वनि भी नहीं करता; क्योंकि नित्य और अव्यक्त की ही अभिव्यक्ति होती है–अनित्यकी नहीं। कोई भी नहीं कहता कि "आठ बार शब्द बनाओ।" सब यही कहते हैं कि "आठ बार शब्दका उच्चारण करो।" यह अनादि-काल-सिद्ध व्यवहार शब्दकी स्पष्ट ही नित्यता बताता है। इसके सिवा शब्दका उपादान-कारण भी कोई नहीं है। ध्वनिसे अभि-व्यक्त शब्द ध्वनिसे भिन्न है। ध्वनि अभिव्यञ्जक है और शब्द अभिव्यञ्ज-

नीय। ध्वनिका ही उपादान कारण वायु है, शब्दका नहीं। इसलिये शब्द नित्य है। कई शास्त्रोंका भी ऐसा ही मत है।

मनुष्यके भ्रम, प्रमाद, इन्द्रिय-दोष, विप्रलिप्सा आदिके कारण मनुष्य-कल्पित वाक्य अप्रमाण हैं; परन्तु अपौरुषेय वैदिक वाक्योंमें कोई दोष नहीं है; इसलिये वे प्रमाण और स्वतःसिद्ध हैं। शाकल-संहिता, शौनक-संहिता, पैप्पलाद-संहिता आदि शब्दोंके कारण शाकल, शौनक और पैप्पलाद संहिता-ओंके कर्त्ता नहीं हैं, केवल प्रचारक हैं। वेद-कर्त्ता तो कोई है ही नहीं।

मीमांसाके मतसे वेदोक्त यज्ञ, दान, होम आदि ही धर्म हैं—ये ही एक विशेष सामर्थ्य उत्पन्न करते हैं। इसीके द्वारा अनुष्ठान करनेवालेको स्वर्गा-दिकी प्राप्ति होती है। इसी सामर्थ्यको मीमांसामें 'अपूर्व' कहा जाता है और अन्य शास्त्रोंमें इसीको अदृष्ट, पुण्य आदि कहते हैं। कोई कोई मीमांसक अपूर्व-शक्तिको ही 'धर्म' कहते हैं—यज्ञ-कियाको धर्म कहना उपचार मात्र बताते हैं। यह धर्म योगज ज्ञानके बलसे योगियोंके लिये प्रत्यक्ष है। यहाँ मीमांसाकोंने बड़ा विस्तृत शास्त्रार्थ उठाया है; परन्तु निष्कर्ष यही है। मीमांसक यज्ञोत्पन्न 'अपूर्व'-से ही मोक्षकी प्राप्ति भी मानते हैं।

'अपौरुषेय' के दो भेद हैं—सिद्धार्थ और विधायक। जो सिद्धवस्तु-विषयक ज्ञान उत्पन्न करता है, वह सिद्धार्थ है। जैसे 'यह आपका पुत्र है।' जो वाक्य कुछ करनेको कहता है, वह विधायक है। जैसे "स्वर्गाभिलाषी यज्ञ करे।" विधायक वाक्य भी द्विविध होते हैं—उपदेश और अतिदेश। 'इसे इस तरह करे', यह उपदेश है और 'अमुक कार्यके समान अमुक कार्य करे', यह अतिदेश है।

मीमांसकोंके मतसे केवल शब्द ही नित्य नहीं, शब्द-शब्दार्थ और वाक्य-वाक्यार्थका बोध्य-बोधक सम्बन्ध भी नित्य है। यह भी स्वाभाविक हैं, सांकेतिक वा कृत्रिम नहीं है। शब्द नाम है, अर्थ नामी है, शब्द संज्ञा है, अर्थ संज्ञी है, शब्द बोधक है, अर्थ बोध्य है। यह सम्बन्ध किसीका बनाया हुआ नहीं है, अनादिपरम्परागत है। ध्वन्यारूढ़ वर्ण, पद, वाक्य सुननेके अनन्तर

श्रोताके अन्तःकरणमें जो अर्थ-प्रत्यायक ज्ञानमय वर्ण, पद, वाक्य उदित होते हैं, प्रस्फुरित होते हैं, वे ही प्रस्फुरित, अमूर्त्त पदार्थ "स्फोट" है। "स्फोट" निराकार वर्ण, पद, वाक्यकी प्रतिच्छाया है अथवा "स्फोट" ही अनादि-निधन और वर्ण, पद, वाक्य नामोंका नामी (नामवाला) है। शब्द असंख्य हैं, अर्थ भी असंख्य हैं। ब्रह्मा वा कोई भी एक व्यक्ति शब्दों, अर्थों वा उनके सम्बन्धोंका कर्त्ता नहीं है—ब्रह्मा द्वारा वेद-निर्माणका कोई प्रमाण भी नहीं है।

वेदका विधि-भाग अज्ञात तत्त्वोंका विज्ञापक है; इसलिये वह स्वतः प्रमाण है। विधि-पोषक वाक्य वा विधिके साथ मेल खानेवाले वेद-वाक्य भी प्रमाण हैं।

स्वतःप्रमाण वेद चार भागोंमें विभक्त हैं, यह बात पहले भी कही गयी है। ये चारों ये हैं—विधि, अर्थवाद, मन्त्र और नामधेय। जो कर्त्तव्य अन्य किसी प्रमाण वा वाक्यमें नहीं पाया जाता, वह विधि है। जैसे "स्वर्गाभिलाषी यज्ञ करे" वाक्य अन्य किसी प्रमाण वा वाक्य-राशिमें नहीं पाया जाता। जो जीवकी स्वाभाविक प्रवृत्तिके कारण प्राप्त है वा शास्त्र-प्राप्त है, उसे नियम कहा जाता है। यह भी विधिका एक भेद है। जैसे एकादशीके उपवासके बाद द्वादशीको 'पारण' (भक्षण) करे।' यह नियम स्वाभाविक इच्छा और शास्त्र, दोनोंसे प्राप्त है। परिसंख्या भी विधिका एक भेद है। जो वाक्यमें पाया जाता है तथा प्रमाणान्तर और वाक्यान्तरमें भी पाया जाता है, वह परिसंख्या है। जैसे "पांच पंचनखके अतिरिक्त अन्य जीव अभक्ष्य हैं।" साही, गोधा, कूर्म आदि पांच जीव पच्चनख हैं। यहां इच्छा और शास्त्र, दोनोंसे ही "पञ्चनख-भक्षण" प्राप्त है। यही परिसंख्या है। किसी-किसी मीमांसकने विधिका अर्थ भावना (उत्पादन) किया है और किसी-किसीने नियोग। इन दोनोंको लेकर भी आधुनिक मीमांसकोंने बड़ा विचार किया है। परन्तु मुख्य बात यह समझिये कि सबमें विधि और उसके भेदोंके रूप "**कुर्यात्, क्रियेत, कर्त्तव्यः, यजेत**"

आदि हैं अर्थात् "करे" है। सभी तरहके विधि-वाक्य कार्य वा कर्तव्यमें प्रवृत्ति जनमाते हैं।

विधिके अन्य चार भेद भी देखे जाते हैं—उत्पत्ति,विनियोग, अधिकार और प्रयोग। कर्त्तव्यकार्यका जो बोधक है,वह उत्पत्ति-विधि है। जैसे "**अग्नि-होत्रं जुहोति**" वाक्य केवल अग्निहोत्र नामक कर्मका विधान करता है, अन्य कुछ नहीं। अंग-कर्मका जो विधायक है, वह विनियोग-विधि है। जैसे "**दध्ना जुहोति**"में दधि-होम अग्निहोत्र यज्ञका अंग है। जो फल-बोधक है, वह अधिकार-विधि है। जैसे "**स्वर्गकामो यजेत**"। इस विधिसे ज्ञात होता है कि यज्ञकर्त्ता स्वर्गफलभागी है। जो इन तीनों विधियोंका सम्मेलन है, उसे प्रयोग-विधि कहा जाता है। जिस पद्धतिसे सांग-प्रधान यज्ञादि कर्म किये जाते हैं, वह प्रयोग-विधिके द्वारा जानी जाती है।

कर्मानुष्ठान दो प्रकारके होते हैं—अंग और प्रधान। जो दूसरेके लिये होता है, वह अंग है और जो दूसरेके लिये नहीं होता, वह प्रधान है। अंग प्रधानका सहायक है और प्रधान स्वयं फल-जनक है। जैसे "दुर्गा-पूजन" प्रधान है और स्नान, आचमन, संकल्प आदि उसकी अंग-क्रियाएँ हैं।

अंग द्विविध हैं—सिद्ध-रूप और क्रिया-रूप। द्रव्य, संख्या आदि सिद्ध-रूप हैं और शेष क्रिया-रूप हैं।

क्रिया-रूप अंगके दो भेद हैं—सन्निपत्योपकारक और आरादुपकारक। द्रव्यादि (सिद्ध-रूप अंग) के उद्देश्यसे जिस क्रियाका विधान है, वह सन्नि-पत्योपकारक है। "**व्रीहीनवहन्ति**", "**सोममभिषुणोति**" आदि वाक्योंमें व्रीहि (धान्य) और सोम द्रव्योंको कूटने और चुलाने (अभिषव) की क्रियाओंका विधान है। जहां द्रव्यादिका उद्देश नहीं दिखाई देता; परन्तु क्रियाका विधान है, वहां आरादुपकारक अंग होता है। सन्निपत्योपकारक कर्म प्रधान कर्मके उपकारक हैं और प्रधान कर्म उपकरणीय हैं। यह उपकारक-उपकरणीय-भाव वाक्य-गम्य हैं, प्रमाणान्तर-गम्य नहीं हैं।

आरादुपकारक कर्मके साथ प्रधान कर्मके जो उपकारक-उपकार्य-भाव हैं, उन्हें प्रकरणानुसार देखना चाहिये।

विधिकी प्रशंसा और निषेधकी निन्दा करनेवाले वाक्योंको अर्थवाद कहा जाता है—"**विहितकार्ये प्ररोचना निषिद्धकार्ये निवर्त्तना अर्थवादः।**" अर्थवादके तीन भेद हैं—गुणवाद, अनुवाद और भूतार्थवाद। प्रमाण-विरुद्ध अर्थ कहनेवाला वाक्य गुणवाद कहाता है। जैसे "**आदित्यो यूपः**" वाक्यमें 'यूप ही आदित्य है' अर्थ प्रत्यक्ष-विरुद्ध है; इसलिये समझना होगा कि यह उक्ति गुण-समानताके कारण है। जैसे सूर्य दिनको प्रकट करके यज्ञका उपकार करते हैं, वैसे ही यूप (एक तरहका स्तम्भ) भी पशु-बन्धनका आश्रय होनेके कारण यागोपकारक है। प्रमाण-सिद्ध अर्थ कहनेवाला वाक्य 'अनुवाद' कहाता है। जैसे "**वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता।**" वायु क्षिप्रगामी है, यह अर्थ प्रमाण-सिद्ध है। जो प्रत्यक्ष-प्रमाण विरुद्ध नहीं है और अज्ञात वा अप्राप्त अर्थका बोध कराता है, वह भूतार्थवाद है। जैसे "**इन्द्रो वृत्राय वज्रमुदयच्छत्**"। यह सन्दर्भ महाभारत आदिमें प्रसिद्ध है; इसलिये प्रमाण-विरुद्ध नही है और अप्राप्त अर्थका बोध भी कराता है।

वस्तुतः अर्थवादवाले वाक्योंका यथाश्रुत आक्षरिक अर्थ ग्राह्य नहीं होता। गुणवाद और अनुवाद वाक्योंका अक्षरार्थ प्रमाण नहीं होता; किन्तु भूतार्थवादका प्रामाण्य तो स्वीकृत है।

अर्थवाद वाक्योंमें जो फलका उल्लेख रहता है, वह केवल प्रलोभन है और जो निन्दा रहती है, वह केवल भयका प्रदर्शन है। जैसे आरोग्याभिलाषी पिता अपने रोगी पुत्रको प्रलोभन दिखाकर तिक्त भोजन कराता है, वैसे ही शास्त्र भी फलका लोभ दिखाकर मनुष्योंको सन्मार्गपर आरूढ़ कराता है और भय दिखाकर बुरे कर्मोंसे बचाता है। रोगी पुत्र मिठाईके लोभसे तिक्त भोजन करता है; परन्तु पिता उसे मिठाई नहीं देता। वैसे ही शास्त्र भी स्वोक्त फल नहीं देता। जैसे पिताकी इच्छा पुत्रको नीरोग देखनेकी रहती है, वैसे ही शास्त्र चाहता है कि मनुष्य ऐहिक और पारत्रिक

उन्नयन करें। पिताके प्रलोभनसे पुत्र तिक्त (तीखा) भक्षण करनेपर केवल नीरोगिता पाता है, अन्य मिष्ठान्न नहीं, वैसे ही शास्त्रके प्रलोभन दिखानेसे मनुष्य शास्त्रानुसार चलकर ऐहिक और पारत्रिक अभ्युदय मात्र पाता है, अन्य फल नहीं। अर्थवाद वाक्योंका यही रहस्य है। अर्थवादके और भी कई भेद हैं। सबका उल्लेख आवश्यक नहीं है।

अनुष्ठान-सम्बन्धी द्रव्य, देवता आदिके स्मरणके निमित्त प्रकाशक वाक्योंको मन्त्र कहा जाता है। ऋक्, यजुः, साम आदि कई प्रकारके मन्त्र होते हैं। अनुष्ठानके समय अनुष्ठेय पदार्थके स्मरणके लिये मन्त्रोंकी आवृत्ति करनी पड़ती है। मन्त्रोंकी आवृत्ति (पाठ) से द्रव्य, देवता आदिका और क्रम-विशेषका स्मरण होता है, इससे आत्मामें अदृष्ट उत्पन्न होता है। प्रयोग-विधिके साथ एकता स्थापित करके ही मन्त्रोंका प्रामाण्य माना गया है, स्वतन्त्र रूपसे नहीं। जिस विषयका जो मन्त्र है, उसका उच्चारण उसीके साथ होना चाहिये। वैदिक कार्यमें वैदिक मन्त्र, पौराणिक कार्यमें पौराणिक मन्त्र और तान्त्रिक कार्यमें तान्त्रिक मन्त्र पढ़ने चाहिये। जहां विषय-विशेषके मन्त्र नहीं मिलते, वहां देवताका नाम ही प्रणम्य और मन्त्र है। इसीलिये पूजा आदिके समय **"अमुकदेवतायै नमः"** मन्त्र प्रचलित है। वैदिक मन्त्रोंमें स्वर-चिन्ह रहते हैं।

"उद्भिदा यजेत", **"विश्वजिता यजेत"**, **"गोमेधेन यजेत"**. **"अश्वमेधेन यजेत"** आदि वाक्योंमें जो उद्भिद्, विश्वजित्, गोमेध, अश्वमेध आदि शब्द हैं, वे "नामधेय" हैं अर्थात् विशेष-विशेष यज्ञोंके नाम हैं। ऐसे वाक्य विधि, अर्थवाद वा मन्त्र नहीं हैं, केवल नाम हैं। ये सब नाम विधि-अंशमें अवस्थित यज्ञादिके साथ अभेद अन्वय प्राप्त करते हैं। वेदों और वैदिक साहित्यके सम्बन्धमें महर्षि जैमिनिके जो मत हैं, उन्हें, अतीव संक्षेपमें, अबतक लिखा गया। जैमिनीय मीमांसाने वेदोंके ऊपर जो प्रकाश डाला है, वह अमूल्य है। इस दर्शनके अभावमें अनेक वेद-विषय संदिग्ध ही रहते। इस दिशामें इतना महत्त्वपूर्ण कार्य किसी भी

हिन्दू दर्शन-शास्त्रने नहीं किया है। इसीलिये इसको प्रतिष्ठित नाम दिया गया है "धर्म-मीमांसा"। इसे विधिवत् पढ़े विना कोई भी वेद-विज्ञाता नहीं हो सकता।

मीमांसाके प्रधान प्रतिपाद्य वैदिक विषय हैं; किन्तु प्रसंगतः शरीर, मन, इन्द्रिय, जीव, ईश्वर, ब्रह्म, मूल-तत्त्व, स्वर्ग, नरक, मोक्ष, सुख दुःख, प्रमाण, प्रमेय, सृष्टि, स्थिति, प्रलय आदि आदिका भी, दार्शनिक दृष्टिकोणसे, विचार किया गया है। परन्तु ये सब विषय इस पुस्तकके बाहरके हैं; इसलिये इनकी यहां चर्चा करना प्रसंग-रहित समझा गया।

इस दर्शनका प्रकाशन, नाना स्थानोसे, विविध भाषाओंमें हुआ है। नवीन मीमांसकोंने मीमांसा-दर्शनका विराट् विस्तार भी कर डाला है।

विंश अध्याय

वेदव्याख्याता और परम्परा-प्राप्त वेदार्थ

जैसा कि पहले लिखा गया है, निरुक्तकार यास्कने वेदार्थके सम्बन्ध में अनेक प्राचीन आचार्योंके मत दिये हैं। इनमें एक मत कौत्सका है। उनका कहना है–"**अनर्थका हि मन्त्राः।**" अर्थात् 'मन्त्र अर्थ-हीन होते हैं।' परन्तु जिन वैदिक शब्दोंसे अर्थका बोध नही होता, उनका परिगणन तो विशेष रूपसे निघंटुमें किया ही गया है। इसलिये कौत्सका यहां इतना ही आशय है कि वैदिक मन्त्र केवल अर्थ-बोधके लिये ही नहीं हैं, यज्ञोंमें उच्चारणके लिये भी है। यास्कने कौत्सको उत्तर दिया है–"**अर्थवन्तः शब्दसामान्यात्।**" अर्थात् लौकिक संस्कृतमें प्रयुक्त शब्द वेदोंमें हैं; इसलिये वे अर्थवान् है, अनर्थक नही। वेदोंके मन्त्र-पाठपर मुग्ध होकर अनेक आचार्योंकी धारणा होने लगी थी कि 'यज्ञार्थ ही मन्त्र हैं।' यही कारण है कि अब तक वेदोके जितने प्राचीन भाष्यकार हुए हैं, सबने प्रायः याज्ञिक (आधिदैविक) अर्थका ही अनुधावन किया है। तो भी अधिक आचार्य यह भी मानते हैं कि 'जो वेदार्थ नहीं जानता, वह सूखा काठ है।'

पहले कहा ही गया है कि 'वेदोंके कितने ही ऐसे शब्द हैं, जिनका अर्थ बिलकुल अज्ञात है, कुछ शब्द ऐसे हैं, जिनका अर्थ ढूढ़-ढांढ़कर धात्वर्थसे या विकृत रूपसे या वाक्यमें स्थान देखकर अथवा जिन वाक्योंमें उनका प्रयोग हुआ है, उनकी तुलना करके निश्चित किया जा सकता है। किन्तु वैदिक शब्दोंका एक ऐसा बड़ा समुदाय है, जिनका अर्थ यास्कके '**शब्दसामान्यात्**'के अनुसार निश्चित रूपसे ज्ञात होता है वा जिनका अर्थ निर्वचनके अनुसार किया जा सकता है।

बहुतसे ऐसे वैदिक शब्द हैं, जिनका अर्थ सम्प्रदाय वा परम्परासे प्राप्त है। परम्परा-प्राप्त अर्थ अत्यन्त प्रामाणिक माना जाता है।'

मन्त्रार्थ करते समय इन सारी बातोंपर ध्यान रखना चाहिये। यदि ध्यान रखा जाय, तो यथार्थ मन्त्रार्थ समझनेमें कठिनाई नहीं होगी।

कविका काम कविता कर लेनेके बाद समाप्त हो जाता है; उसके लिये आवश्यक नहीं कि वह अपनी कविताका अर्थ भी कर दे। अर्थ करनेवाले नाना रुचिके व्यक्ति होते हैं और अपनी अपनी रुचिके अनुसार विविध अर्थ कर डालते हैं। यदि कवि अपनी कविताका अर्थ भी लिख दे, तो लिपिकारोंकी अज्ञता, अल्पज्ञता, प्रमाद, पक्षपात आदिके कारण हजारों वर्ष बाद लिखा हुआ अर्थ विलुप्त-सा हो जाता है और नाना प्रकारके विकृत अर्थ सामने आ जाते हैं। यदि कवि अपनी कविताका अर्थ किसीको समझा दे, तो समझनेवाला दूसरेसे कहेगा, दूसरा तीसरेसे और तीसरा चौथेसे——इस तरह समझाया हुआ अर्थ हजारों मुखों और मस्तिष्कोंसे छनकर विकृत हो जाता है। ये ही सब कारण हैं कि **पद, क्रम, जटा, माला, शिखा, लेखा, ध्वजा, दण्ड, रथ, घन (विकृतवल्ली १.५)** आदिमें आबद्ध करनेपर भी लिपिकारोंके प्रमाद आदिके कारण बहुतसे वैदिक ग्रन्थोंमें पाठान्तर हो गये। एक ही मन्त्र, दो-एक शब्द इधर-उधर करके, दुबारा लिखा गया तथा अनेक मन्त्र और शब्द ऐसे विकृत हो पड़े, जिनका शुद्ध पाठ और अर्थबोध दुरूह तथा निगूढ़ हो रहे।

इसमें सन्देह नहीं कि कोई भी ग्रन्थकार अपने सारे ग्रन्थको श्लेषालंकारका जामा नहीं पहना सकता। अपने ग्रन्थका वह एक ही अर्थ, एक ही प्रतिपाद्य रखता है। यह कोई नहीं कह सकता कि सूत्रकारको ब्रह्मसूत्रकी अद्वैतवाद, विशुद्धाद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद आदिकी सभी व्याख्याएँ अभीष्ट थीं। उन्हें तो केवल एक ही वाद अभीष्ट रहा होगा, वह चाहे

जो रहा हो। इसी प्रकार मन्त्र-प्रणेता ऋषिको भी एक ही अर्थ अभीष्ट होगा; परन्तु व्याख्याताओंने सीधे अथवा परंपरागत प्रसंगके अनुकूल कल्पनाके अनुसार अथवा अभीष्ट अभिमतको प्रामाणिकता देनेके हेतु मनमाने अर्थ कर डाले। ऋग्वेद (४.५८.३) के एक मन्त्रको नमूनेके तौरपर लीजिये—

"चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महादेवो मर्त्यां आविवेश।"

सायणने इसका एक अर्थ किया है—'महादेव यज्ञ है। यज्ञकी चार सींगें हैं चार वेद। उसके तीन पैर है प्रातः सवन, माध्यन्दिन सवन और सायं सवन। दो हवन (ब्रह्मोदन और प्रवर्ग्य) दो सिर हैं। सात हाथ गायत्री आदि सात छन्द है। मन्त्र, ब्राह्मण और कल्प—तीन तरहसे वह बंधा है। वह अभीष्ट-वर्षक है। अतीव शब्द करता है। वह महान् देव (यज्ञ) मर्त्यों के बीच प्रवेश करता है।'

तैत्तिरीय ब्राह्मणके अनुसार सूर्यकी गतिका सम्बन्ध तीनों वेदोंसे होनेके कारण इसका दूसरा अर्थ सूर्यपर किया गया है। 'सूर्यकी चार सींगें चार दिशाएं हैं। उनके तीन पैर तीन वेद हैं। दो सिर हैं, दिन और रात। सात किरणें, सात हाथ हैं। वह ग्रीष्म, वर्षा, हेमन्त अथवा पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक—तीन तरहसे बंधे हैं।'

महर्षि पतञ्जलिने इस मन्त्रका एक तीसरा ही अर्थ किया है। उनका महादेव 'शब्द' है। चार सींगे चार शब्द-भेद हैं—नाम, आख्या, उपसर्ग और निपात। तीन पैर तीन काल हैं—भूत, वर्त्तमान और भविष्य। दो सिर हैं दो प्रकारकी भाषाएं—नित्य और कार्य। सात हाथ हैं सात विभक्तियां। हृदय, कण्ठ और मुखसे वह महादेव (शब्द) बंधा है।

इसी प्रकार ऋग्वेदके १.१६४ के ४५ वें मन्त्रकी, निरुक्त-परिशिष्ट (१३.६), सायण और पतञ्जलिने, सात प्रकारसे, व्याख्याएं की है!

नमूनेकी तरह यहां दो मन्त्रोंकी ही बात कही गयी। ऐसे सैकड़ों शब्द और मन्त्र हैं, जिनकी व्याख्याएँ वेद-व्याख्याताओंने नाना प्रकारसे की हैं। परन्तु यह कहनेका कोई भी साहस नहीं कर सकता कि ये सभी व्याख्याएं मन्त्रकर्त्ताको अभीष्ट थीं।

इसमें सन्देह नहीं कि अधिकांश मन्त्रोंके अर्थ असन्दिग्ध हैं। ब्राह्मण-ग्रन्थ, निरुक्त, प्रातिशाख्यकी सहायतासे बहुत कुछ मन्त्रार्थ मौलिक रूपमें सुरक्षित है। अवश्य ही अनेक मन्त्रोंके बारेमें सन्देह है। यास्कने तीन ऐसे साधन बताये हैं, जिनसे मन्त्रोंका अर्थ जाना जा सकता है। वे हैं–१ आचार्योंसे परम्परया सुना हुआ ज्ञान अर्थात् इस प्रकारके सुने हुए ज्ञानके ग्रन्थ, २ तर्क और ३ गम्भीर मनन। वस्तुतः मन्त्र ऋषियोंके विश्व-विषयक मननके उद्गार हैं। तर्कसे तात्पर्य है वेदान्तसूत्र आदिसे। वेदान्तसूत्रके शारीरक-भाष्यमें शंकराचार्यने अनेक मंत्रोंका अर्थ-निर्णय इन्हीं साधनोंसे किया भी है।

बात यह है कि जैसे भाषा-विज्ञानियोंके द्वारा वैदिक और अवैदिक (ग्रीक, लैटिन आदि) भाषाओंका एक ही उद्गम-स्थान माना जाता है, वैसे ही क्या, उससे भी अधिक वैदिक साहित्य और पीछे के संस्कृत-साहित्यका एक ही मूल-स्थान है। यही कारण है कि **'अमरकोष'** रटनेवाला छात्र वेदमें प्रयुक्त होनेवाले शब्दोंको गिना जाता है। आप उससे पूछिये, वह अग्निके अर्थमें वैश्वानर, जातवेदस्, तनूनपात् और आशुशुक्षणि जैसे वैदिक शब्द बता जायगा। उसे यह परम्परा-गत वैदिक अर्थ प्राप्त है।

बृहदारण्यकोपनिषद् (४. ४. ७) और कठोपनिषद् (४. १४) में कहा गया है–

"यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि स्थिताः।
अथ मर्त्यो अमृतो भवत्यथ ब्रह्म समश्नुते ॥"

(जब इसके हृदयमें स्थित सारी कामनाएँ छुट जाती हैं, तब मरणशील मनुष्य अमर होकर ब्रह्मको प्राप्त करता है।)

इस मन्त्रकी परम्परा-प्राप्त व्याख्या गीता (२. ७१) में है–

"विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति ॥"

(जो मनुष्य सभी कामनाओं, ममता और अहंकारको छोड़कर निःस्पृह भावसे आचरण करता है, वही शान्ति पाता है।)

ईशोपनिषद्का एक मन्त्र है–

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥"

(कर्म करते हुए ही सौ वर्ष तक जीनेकी इच्छा करो। इस प्रकारसे ही तुम्हारी सिद्धि होगी, अन्यथा नहीं। कर्म मनुष्यमे लिप्त नहीं होता।) यह मन्त्र शुक्ल यजुर्वेदके चालीसवें अध्यायमें भी है। समूचे कर्मतत्त्व-के साथ इसकी परम्परा-प्राप्त व्याख्या स्मृति (भागवत गीता) में है–

"न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ॥"

(कर्म मुझे लिप्त नहीं करते और कर्म-फलमें मेरी इच्छा भी नहीं रहती। मुझे ऐसा जाननेवाला कर्म-बन्धनमें नहीं बँधता।)

वेद और संस्कृत-साहित्यको लेकर यहां अधिक लिखनेका स्थल नहीं है। मुख्य बात इतनी ही है कि स्मृतिशास्त्र, पुराण आदि परम्परा-प्राप्त अर्थोंके भाण्डार हैं ओर वेदार्थ करनेमें इनसे यथेष्ट सहायता ली जानी चाहिये।

दुर्भाग्यसे विदेशी और कुछ एतद्देशीय विद्वान् परम्परा-प्राप्त अर्थ की चिन्ता नहीं करते और भाषा-विज्ञानको ही मुख्य मानते हैं। इसी-लिये ये कभी-कभी घोर अनर्थ कर डालते हं। कई ब्राह्मणों और तैत्तिरीय-

उपनिषद्में **श्रद्धादेव** शब्द आया है, जिसका अर्थ भाष्यकारोंने श्रद्धालु किया है। सायणने तैत्तिरीय-संहिता (७.१.८.२) में इसका अर्थ किया है–**'श्रद्धा है देवता जिसको, वह।'** यही परम्परागत अर्थ है; परन्तु परम्परासे दूर भागनेवाले एगलिंग साहबने इसका अर्थ **देवभीरु** (God-fearing) कर मारा है !

छान्दोग्योपनिषद् (४.१७.१०) में एक वाक्य है–

"**ब्रह्मैव ऋत्विक् कुरूनश्वाभिरक्षति।**" यूरोपीयोंमें शब्दाचार्य **और** भाषा-विज्ञानाचार्य माने जानेवाले तथा "संस्कृत-जर्मन-महाकोष" (**"पीटर्सबर्ग लेक्सिकन"**) के लेखक राथ (रोठराचार्य) और बोट्लिंग्कने **'अश्वा'** शब्दका अर्थ किया है, 'न' = समान, 'श्वा' = कुत्ता अर्थात् 'कुत्तेकी तरह (कुत्तेके समान)।' वस्तुतः यह 'अश्वा' तृतीया एकवचन है, जिसका अर्थ है घोड़ेके द्वारा।

· इसी प्रकार चीनी, मंगोलियन, तिब्बती, संस्कृत आदि कितनी ही भाषाओंके विद्वान् Rahder ने **'दशभूमिक सुत्त'**के प्रसिद्ध बौद्ध शब्द **'ब्रह्मविहार'**का अर्थ किया है "Brahma-hall" ! इसका अर्थ है मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षाकी भावनासे उत्पन्न मनकी अत्युत्कृष्ट शान्त अवस्था।

ब्रिटिश म्युजियमके डा० एल० डी० बर्नेटने अपने गीता-अनुवादमें 'हृषीकेश'का अर्थ किया है 'खड़े खड़े बालोंवाले' और 'गुडाकेश'का 'लट-वाले बालोंवाले !' परन्तु हृषी-केशका अर्थ है जितेन्द्रिय और गुडाकेश-का निद्रा-जित्।

फलतः परम्परागत अर्थको छोड़ देनेसे बड़े अनर्थ और खतरेकी सम्भावना है। केवल यौगिक अर्थके पीछे पड़नेवाले धोखा खा सकते हैं। 'गौका यौगिक अर्थ है चलनेवाला। परन्तु चलनेवाले मनुष्यको 'गौ' कहना धोखा खाना है। किसी मनुष्यको गौ कहने पर वह युद्ध ठान बैठेगा ! इसीसे कहा गया है–**'रूढ़िर्योगाद् बलीयसी'**

(यौगिक अर्थसे रूढ़, प्रचलित और स्वीकृत अर्थ बलवत्तर है)। इसलिये वाच्यार्थ, व्युत्पत्ति-लभ्य अर्थ, शाब्दिकार्थ और यौगिकार्थ करते समय बड़ी सावधानी रखनी चाहिये ।

सायणाचार्यने समस्त वैदिक और संस्कृत साहित्यको सामने रखकर और अनेक पण्डितोंके साथ परम्पराप्राप्त अर्थोंकी पूरी छान-बीन कर वेद-भाष्य लिखा है। इसीलिये इस ग्रन्थमें अधिकतया सायण-भाष्य का अनुगमन किया गया है। ऐसे स्थान विरल हैं, जहां सायणसे मतभेद है। अपना मतभेद भी प्रायः उन्हीं मन्त्रार्थोंमें है, जहां सायणने शब्द, वाक्य और मन्त्रके कई अर्थ कर दिये हैं। कई अर्थोंमेंसे अधिकतर परम्पराप्राप्त अर्थको ही इस ग्रन्थमें ग्रहण किया गया है।

एकविंश अध्याय

वेद और भूगोल

संस्कृत-साहित्यके अन्यान्य ग्रन्थों (पुराणादि) की तरह यद्यपि वैदिक साहित्यमें समुद्रों, देशों, पर्वतों और नदियोंका क्रम-बद्ध विवरण नहीं है, तथापि सबका सूक्ष्म विवरण अवश्य पाया जाता है। इससे सिद्ध होता है कि आर्य लोग भूगोल-विद्याके आदि ज्ञाता थे। आगेकी पङ्क्तियोंसे यह बात सिद्ध होती है।

समुद्र

पृथिवीमें अपेक्षाकृत स्थायी वस्तु समुद्र है। ऋग्वेदमें ही अनेक समुद्रोंका विवरण पाया जाता है। ऋग्वेद (३.३३) के दूसरे और तीसरे मन्त्रोंका यह तात्पर्य है कि शुतुद्री (सतलज) और विपाश् (व्यास) नामकी दो नदियां, रथियोंकी तरह, समुद्रमें गिरती हैं। यह पंजाबसे दक्षिणका समुद्र था। जहां आजकल राजपूताना है, वहीं यह समुद्र था। भूगर्भविद्याकी खोजें बतलाती हैं कि प्राचीन कालमें राजपूताना समुद्रके गर्भमें था। यह समुद्र अरबली पर्वतके दक्षिण और पूर्व भागों तक फैला हुआ था। जैसा कि पहले कहा गया है, Imperial Gazctteer of India के प्रथम भागको देखनेसे विदित होता है कि भूगर्भवेत्ताओंने इसका नाम राजपूताना समुद्र (Rajputana Sea) रखा है। आज भी राजपूतानेके गर्भमें खारे जलकी झीलें (सांभर आदि) और नमककी तहें इस बातको बताती हैं कि किसी समय इस प्रदेशको समुद्रकी लहरें प्लावित करती थीं।

ऋग्वेदके १० म मण्डलके १३६ वें सूक्तके ५ वें मन्त्रसे ज्ञात होता है कि पंजाबके पूर्व और पश्चिममें दो समुद्र वर्त्तमान थे। मन्त्र यह है—

"वातस्याश्वो वायोः सखाथो देवेषितो मुनिः ।
उभौ समुद्रावा क्षेति यश्च पूर्व उतापरः ॥"

अर्थात् 'मुनि वायु-मार्ग घूमनेके लिये अश्वरूप हैं । वे वायुके सहचर हैं । देवता उन्हें पानेकी इच्छा करते हैं । वह पूर्व और पश्चिम-के दोनों समुद्रोंमें निवास करते हैं ।'

पश्चिम समुद्र तो अब तक है; परन्तु पूर्वी समुद्र लुप्त हो गया है । यह 'पूर्वी समुद्र' बंगालकी खाड़ी नहीं था; पंजाबसे पूर्व समस्त गांगेय प्रदेश (उत्तर भारतके साथ) था ।

परन्तु ऋग्वेदके दो मन्त्रों (९.३३.६ और १०.४७.२) में चार समुद्रोंका भी उल्लेख पाया जाता है । वे मन्त्र ये हैं—

"रायः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणः"

अर्थात् 'सोम, धन-सम्बन्धी चारों समुद्रोंको चारों दिशाओंसे हमारे पास ले आओ और असीम अभिलाषाओंको भी ले आओ ।'

'चारो समुद्रोंको'का अर्थ है 'चारो समुद्रोंसे युक्त भूखण्डके स्वामित्वको ।'

दूसरा मन्त्र है—

"स्वायुधं स्ववसं सुनीथं चतुःसमुद्रं धरुणं रयीणाम् ।
चर्कृत्य शंस्यं भूरिवारमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥"

अर्थात् 'इन्द्र, तुम्हें हम शोभन अस्त्र और शोभन रक्षणवाले, सुन्दर नेत्रवाले, चारो समुद्रोंको जलसे परिपूर्ण करनेवाले, धन-धारक, बार-बार स्तुत्य और दुःखोंके निवारक जानते हैं । इन्द्र, तुम हमें विलक्षण और वर्षक धन दो ।'

यह चौथा समुद्र कौन था ? "Encyclopedia Britannica" (प्रथम भाग) से विदित होता है कि एशियामें, बल्ख और फारसके उत्तर, एक विशाल समुद्र था, जिसका नाम भूगर्भवत्ताओंने 'एशियाई मेडीटरेनियन' (एशियाई भूमध्य सागर) रखा था । यह

इतना विशाल था कि इसका उत्तरमें आर्कटिक महासागरसे सम्बन्ध था। इसके पास ही वर्त्तमान यूरोपीय भूमध्य सागर था। पहले कहा जा चुका है कि एशियाके भूमध्य सागरका तल ऊँचा था और यूरोप वालेका नीचा। फलतः पृथिवीके परिवर्त्तनोंने जब वासफरसके मार्गको बना दिया, तब एशियाई समुद्रका पानी यूरोपीय समुद्रमें पहुँच गया और एशियाका समुद्र विनष्ट हो गया। भूगर्भशास्त्रियोंका मत है कि अब इसके अंश मात्र, झीलोंके रूपोंमें, सूखकर रह गये हैं, जिन्हें इन दिनों कृष्ण-ह्रद् (Black Sea), काश्यप-ह्रद् (Caspean Sea), अराल-ह्रद् (Sea of Aral) और बल्काश-ह्रद् (Lake Balkash) कहा जाता है। ये चारों स्वतन्त्र रूपसे अवस्थित हैं। इन्हींको ऋग्वेदका 'उत्तर समुद्र' कहा जाता है।

कहा गया है कि आर्य लोग इन चारों समुद्रोंमें घूम-घूमकर व्यापार करते थे (ऋग्वेद १.५६.२)। एक बार तुग्र नामके राजर्षिने अपने पुत्र भुज्युको, शत्रु-जयके लिये, सेनाके साथ नावोंसे समुद्र-स्थित द्वीपमें भेजा था। भुज्यु डूबने लगा था, जिसे अश्विनीकुमारोंने अपनी 'अन्तरिक्ष' तक जानेवाली नौकासे जाकर बचाया था। यह नौका ऐसी थी कि इसमें जल पैठ ही नहीं सकता था।

मन्त्र यों है—

"तुग्रो ह भुज्युमश्विनोदमेघे रयिं न कश्चिन्ममृवां अवाहाः।
तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभिरन्तरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभिः ॥"

—ऋग्वेद १.११६.३

यद्यपि समुद्र-यात्राका उल्लेख अन्य स्थानों (१.४८.३; ४.५५.६) में भी हैं; परन्तु ऋग्वेद (७.८८.३) में एक ऐसा सुन्दर मन्त्र है, जिसे यहां उद्धृत करनेका लोभ संवरण नहीं किया जा सकता—

"आ यद्रुहाव वरुणश्च नावं प्रयत्-समुद्रमीरयाव मध्यम्।
अधि यदपां स्नुभिश्चराव प्र प्रेङ्ख ईङ्खयावहै शुभे कम् ॥"

अर्थात् 'जिस समय में (वसिष्ठ) और वरुण, दोनों नावपर चढ़े थे, जिस समय समुद्रके बीचमें नावको हमने भली भांति संचालित किया था और जिस समय जलके ऊपर नावपर हम थे, उस समय शोभाके लिये नौका-रूपी झूलेपर हमने सुखसे क्रीड़ा की थी।'

इस तरह समुद्रोंपर आर्योंका अखण्ड राज्य था। परन्तु यह सब कुछ होनेपर भी इन दिनों राजपूताना सागर, गांगेय प्रदेशस्थ सागर और फारसके उत्तरीय सागरका कहीं ठीक स्वरूप नहीं है।

अथर्ववेद (१९.३८.२) में समुद्रोत्पन्न वस्तुओंका और (४.१० में) समुद्रोत्पन्न मुक्ता (शंख-कृशन) का उल्लेख है। दो समुद्रोंका वर्णन अथर्ववेद (११.५.६) में भी है। शतपथ-ब्राह्मण (१.६.३.११) में दो, पूर्व और पश्चिम, सागरोंका उल्लेख है।

यहां यह बात भी ध्यानमें रखनेकी है कि भूकम्प आदिके कारण कभी समुद्र सूख जाते थे, कभी पर्वत समतल हो जाते थे और कभी नदियां अपनी धाराएं बदल देती थीं। इस तरह कभी कभी ये सब स्थानान्तरित भी हो जाते थे। कदाचित् इसीलिये इन्द्रके द्वारा पृथ्वी और पर्वतोंका दृढ़ करना लिखा है (१.६२.५; २.१२.२ आदि)।

पर्वत

पर्वतका एक नाम भूधर है, जिसका अर्थ होता है 'पृथ्वी-धारक'। इसका इतना ही मतलब है कि पृथ्वीपर पर्वत स्थिर वस्तु है। वैदिक साहित्यमें पर्वतका नाम बहुत बार आया है। रूपकके रूपमें कहीं-कहीं बादलोंको भी पर्वत कहा गया है।

मैत्रायणी-संहिता (१.१०.१३) और काठक-संहिता (३६.७) में कहा गया है कि पूर्व कालमें पर्वतोंके पंख होते थे, जिससे अपनी इच्छाके अनुसार पर्वत कहीं भी जाकर उतर सकते थे। इससे अव्यवस्था हो जाती थी; इसीलिये इन्द्रने पर्वतोंके पंखोंको काट डाला। परन्तु यह वर्षाके रूपकसे बनी हुई कवि-कल्पना है—भूगोलकी अज्ञानजन्य कल्पना नहीं।

पर्वतोंसे नदियां निकलीं, ऐसा भी उल्लेख बहुत है। निविड़ कान्तारमें रहनेवाले सिंहका भी उल्लेख है। परन्तु पर्वतोंके अधिक नाम नहीं पाये जाते। हिमालय शब्दसे हिमालयका भी नाम नहीं आया है। जहां-कहीं हिमालयका उल्लेख अभीष्ट हुआ, वहां 'हिमवत्' शब्द आया है। हिमालयकी लम्बाई-चौड़ाई कहीं भी नहीं लिखी है।

ऋग्वेद-संहिता (१०.३४.१) में मूजवत् पर्वतका नाम आया है। अन्तमें मौजवत शब्द है, जिसको सायणने सोमका विशेषण बताया है और अर्थ लिखा है, मूजवत् पर्वतपर उत्पन्न सोमलता। यास्कने भी यही अर्थ किया है (निरुक्त ९.८)। अथर्ववेद (५.२२) और तैत्तिरीय-संहिता (१.८.६.२) से ज्ञात होता है कि मूजवान् पर्वत गान्धार वा बाह्लीक प्रदेशकी तरफ, उत्तरा-खंडमें, था। यजुर्वेदके तृतीय अध्यायमें मूजवान् या मूजवत्का उल्लेख है। कदाचित् आर्य-निवासकी उत्तरी सीमा यही पर्वत था। कुछ लोग मूजवान्को कैलास पर्वत भी कहते हैं। महाभारत (१४.८.१) में लिखा है–

"गिरेर्हिमवतः पृष्ठे मुञ्जवान् नाम पर्वतः।
तप्यते तत्र भगवान् तपो नित्यमुमापतिः॥"

इससे भी उक्त मतका समर्थन होता है। जो हो; परन्तु यह निस्सन्दिग्ध है कि भारतका उत्तर-प्रदेशस्थ पर्वत मूजवान् था।

हिमालयमें त्रिककुद् वा त्रिककुभ् नामके एक त्रिकूट पर्वतका उल्लेख आया है। यहांसे एक विशेष प्रकारका अंजन आता था। यह वितस्ता वा झेलम नदीके उद्गम-स्थानसे उत्तर था। कदाचित् इससे भी उत्तर मूजवान् था।

तैत्तिरीय-आरण्यक (१.३१) में इन तीन पर्वतोंके नाम आये हैं– 'सुदर्शन, क्रौञ्च और मैनाग'। क्रौञ्च और मैनाग (मैनाक) के नाम तो पुराणोंमें पाये जाते हैं; परन्तु सुदर्शनका पता नहीं। कुछ लोग मेरुको ही सुदर्शन मानते हैं; क्योंकि परवर्ती संस्कृत-साहित्यमें मेरुका पर्याय-

वाची सुदर्शन आया है। उक्त आरण्यकमें कहा गया है कि इन तीनों पर्वतोंमें कुबेर वा कुबेर-पुत्रका नगर है।

इसी आरण्यक (१.७) में महामेरुका नाम आया है। कहा गया है कि इस पर्वतको कश्यप नामका आठवां सूर्य कभी छोड़ता नहीं। इससे सूचित होता है कि यहां महामेरुसे सुमेरु (North Pole) समझना चाहिये।

कुछ लोगोंके मतसे ऋग्वेद (१.३५.८) में तीन मरुस्थलोंका उल्लेख है; परन्तु ये मरुस्थल कहां थे, यह जाननेका कोई उपाय नहीं है।

सिन्धु-प्रदेशके दक्षिणमें समुद्र-तटपर एक मरुस्थलका उल्लेख भी ऋग्वेदमें है (१०.६३.१५)। इस स्थलकी वालुकाराशिने उड़-उड़कर कितने ही स्थानोंको अनुर्वर और वालुकामय बना डाला था।

नदियाँ

आर्य लोग नदियोंके बड़े भक्त थे। वे नदियोंके तटोंपर रहना बहुत पसन्द करते थे। ऋग्वेदमें अनेकानेक नदियोंका विवरण आया है। अनेक नदियोंके नाम तो ज्योंके त्यों हैं; परन्तु कुछके नाम बदल गये हैं। आर्य लोग ज्यों ज्यों आगे बढ़ते गये, त्यों त्यों उन्हें नयी नयी नदियां और नये-नये देश मिलते गये। औपनिवेशिकोंकी स्वाभाविक प्रवृत्तिके अनुसार नयी नदियों और नये देशोंको आर्य वे ही नाम देते गये, जो आर्योंके पुराने देशों और नदियोंके नाम थे।

जैसे इंगलैंडके यार्क शहरके नामपर अमेरिकामें एक शहरका नाम 'न्यूयार्क' रखा गया और इंगलैंडके वेल्सके अनुकरणपर आस्ट्रेलियामें एक प्रदेशका नाम 'न्यू साउथ वेल्स' रखा गया; वैसे ही मथुराकी नकलपर दक्षिण भारतमें 'मदुरा' रखा गया और पंजाबकी इरावती नदीकी नकलपर बर्माकी एक नदीका नाम इरावती रखा गया। इसी तरह वैदिक यमुना, सरयू और गोमतीसे भिन्न; परन्तु इन्हीं नामोंको धारण करनेवाली आधुनिक नदियां पायी जाती हैं।

नदियोंका प्रवाह भी एक-सा नहीं रहता। ईसाके पहले १ म शताब्दीमें वक्षु (Oxus) नदी कास्पियन सागरमें गिरती थी; परन्तु इन दिनों अराल सागरमें पहुँचती है। अरबोंकी भारतपर चढ़ाईके समय हकरा वा वाहिन्दा नामकी एक बड़ी नदी पंजाबके दक्षिणमें बहती थी; परन्तु इन दिनों वह अपने पुराने सूखे हुए मार्गोंको लेकर योंही पड़ी है। दरभंगा जिलेकी कमला नदीकी धारा तो अभी हालमें ही बदली है। जिस समय सिन्धका 'मोहन जो दड़ो' शहर बना था, उस समय उसके पास ही सिन्धु नदी बहती थी; परन्तु अब वह कई मील दूर हट गयी है। सभी देशोंकी जलवायु धीरे-धीरे बदलती है, जिससे वर्षामें परिवर्तन होता है। इस कारण भी नदियोंकी धारा बदल जाती है। इसलिये यह जोर देकर नहीं कहा जा सकता कि वैदिक साहित्यमें जो नदी-स्थान निर्दिष्ट हैं, वे ही अब तक हैं वा नदियोंके नाम-रूप भी वे ही हैं।

ऋग्वेदमें **"सप्त सिन्धवः"** और **"सप्त स्रवतः"** शब्द कई बार आये हैं, जिनका अर्थ है 'सात नदियां'। परन्तु पंजाबमें या कहीं भी ऐसी सात नदियोंके नाम नहीं पाये जाते। दक्षिण भारतकी नर्मदा, गोदावरी और कावेरी नदियोंके नाम वैदिक साहित्यमें नहीं आये हैं; इसलिये जल-शुद्धिवाले श्लोककी सात नदियां * यहां विवक्षित नहीं है। फलतः अनुमान होता है कि 'सब नदी' के अर्थमें ही 'सात नदियों'का प्रयोग हुआ है। हो सकता है कि आर्योंके आदिनिवासके पास 'सात नदियां' रही हों और 'सब नदी' के अर्थमें 'सात नदी' कहनेका उन्हें अभ्यास हो गया हो।

*** "गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।**
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥"

ऋग्वेदके १०म मण्डलके ७५वें सूक्तका नाम 'नदीसूक्त' है। इसमें जगती छन्दमें ९ मन्त्र हैं और इसके ऋषि हैं प्रियमेध-पुत्र सिन्धुक्षित्। इस सूक्तमें अनेक नदियोंके नाम पाये जाते हैं। इसके पांचवें मन्त्रमें सिन्धुके पूर्वी तटकी नदियोंके नाम क्रमशः आये हैं और छठे मन्त्रमें सिन्धु तथा उसकी पश्चिम सीमावाली नदियोंके नाम हैं। वैदिक साहित्यमें इन नदियोंके नाम पाये जाते हैं–

अंशुमती, अञ्जसी, अनितभा, असिक्नी, आपया, आर्जीकीया, कुभा, कुलिशी, क्रुमु, गंगा, गोमती, जह्नावी, तृष्टामा, दृषद्वती, परुष्णी, मरुद्वृधा, मेहत्नू, यमुना, यव्यावती, रथस्या, रसा, वरणावती, वितस्ता, विपाश्, विबाली, वीरपत्नी, शिफा, शुतुद्री, श्वेत्या, सदानीरा, सरयू वा सरयु, सरस्वती, सिन्धु, सुदामा, सुवास्तु, सुषोमा, सुसर्त्तु और हरि-यूपीया। अब इनका विवरण देखना चाहिये।

१. **अंशुमती**–ऋग्वेद (८. ९५.१४) में इसका नाम आया है। इसके तटपर महाशक्तिशाली कृष्ण नामका असुर रहता था। वह इन्द्रका परम शत्रु था। उसको युद्धमें इन्द्रने मार दिया था, जिसका उल्लख इसके अगले १५वें मन्त्रमें किया गया हैं। अंशुमती कहां बहती थी, इसका ठीक पता नहीं चलता।

२. **अञ्जसी**–ऋग्वेद (१. १०४. ४) में कुलिशी और वीरपत्नी नदियोंके नामोंके साथ इसका नाम आया है। इसके तटपर कुयव नामका असुर रहता था। कदाचित् यह पश्चिमोत्तार सीमा प्रांतकी नदी है।

३. **अनितभा**–ऋग्वेद (५. ५३. ९) में रसा, कुभा, सरस्वती और सरयुके साथ अनितभाका नाम आया है। यह सिन्धकी कोई पश्चिमी सहायक नदी है।

४. **असिक्नी**–ऋग्वेद (१०. ७५. ५) में गंगा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्री आदिके साथ ही इसका नाम आया है। यास्कके मतसे

(निरुक्त ६. २६) यह वर्तमान चिनाव वा चन्द्रभागा नदी है । ऋग्वेद के ८. २८.२५ में सिन्धु और समुद्रोंके साथ इसका उल्लेख है । वहां लिखा है कि इसके तटपर रोगापहारी बड़ी-बड़ी जड़ी-बूटियाँ होती थीं । ग्रीक (यूनानी) इस नदीको "अकेसिनेस्" कहते थे ।

५. आपया—ऋग्वेद (३. २३. ४) में सिन्धु और दृषद्वतीके साथ इसका नाम आया है । महाभारत (३. ६३. ६८) का मत है कि यह कुरुक्षेत्रकी एक नदी है ।

६. आर्जीकीया—ऋग्वेदके नदीसूक्त (१०. ७५. ५.) में ६ नदियों के नामोंके साथ इसका नाम आया है । यास्कके मतसे (निरुक्त ६. २६) यह विपाश् (व्यास) नदीका ही एक नाम है । कहा जाता है कि यास्कके पहले इसका नाम "उरुञ्जिरा" था ।

७. कुभा—ऋग्वेदके ५. ५३. ६ और १०. ७५. ६ में अनेक नदियोंके साथ इसका नाम आया है । यूनानी इसे कोफेन कहते थे । यह सिन्धुकी पश्चिमी सहायक नदी है । इसका वर्तमान नाम 'काबुल' नदी है ।

८. कुलिशी—ऋग्वेद (१. १०४. ३) में अञ्जसी और वीरपत्नी नदियों के साथ इसका नाम आया है । यह बाह्लीक प्रदेशकी कोई नदी होगी ।

९. क्रुमु—ऋग्वेद (५.५३.१०.७५.६) में कई नदियोंके नामोंके साथ इसका नाम आया है । इसका वर्त्तमान नाम कुर्रम नदी है ।

१०. गंगा—ऋग्वेद १०.७५.५ में गंगाका, कई नदियोंके साथ, नाम आया है । ६.४५.३१ में "**उरुः कक्षो न गाङ्ग्यः**" शब्द आये हैं । इनका तात्पर्य यह है कि 'गंगाके ऊँचे तटकी तरह ऊँचे स्थान पर बृबु अवस्थित हुए ।' बृबु शिल्पकलाचार्य थे । 'नीतिमञ्जरी' और मनुस्मृतिमें भी बृबुकी बातें हैं । जैमिनीय-ब्राह्मण (३.१८३),

शतपथ-ब्राह्मण (१३. ५.४.११) और तैत्तिरीय आरण्यक (२. १०) में भी गंगाका उल्लेख है ।

११. **गोमती**–अनेक नदियोंके साथ १०.७५.६ में गोमतीका नाम आया है । ऋग्वेदके ५.६१.१९ में भी इसका उल्लेख है । राजा रथवीति इसीके तटपर रहते थे । श्यावाश्व ऋषिके पिता अर्च-नानाने रथवीतिके लिये सोमयाग कराया था और इन्हीं राजा की कन्यासे अपना विवाह भी किया था। यह सिन्धुकी पश्चिमी सहायक नदी है । अब यह गोमती नहीं रही । इसका नाम गोमल है और यह अफगानिस्तानकी नदी है ।

१२. **जह्नावी**–ऋग्वेद (३.५८.६) में जह्नावी शब्द आया है। सायणने इसका अर्थ 'जह्नु-कुलजा' किया है। कुछके मतसे यह भी कोई नदी है । यह गंगा तो नहीं है। सिन्धुके पश्चिम, पांचकोटाके पूर्व और बुनार प्रदेशके उत्तरमें, जह्नावी प्रदेश है । इसे उक्त मन्त्रमें **'पुराणमोकः'** (पुराना घर) भी कहा गया है। कदाचित् जह्नावी यहीं बहती थी । ठीक पता नहीं चलता ।

१३. **तृष्टामा**–ऋग्वेद (१०.७५.६.) में इसका नाम आया है । यह सिन्धुकी पश्चिमी सहायक नदी है। चित्रालमें पूर्वकी ओर बहती है।

१४. **दृषद्वती**–ऋग्वेद (३.२३.४) में आपया और सरस्वतीके साथ इसका नाम आया है। कहा जाता है कि ऋग्वेद (१०.५३.८) में अश्मन्वती नदीका जो नाम आया है, वह इसी नदीका है । कुछ लोग यह भी कहते हैं कि राजपूतानेकी वालुका-राशिमें विलुप्त 'घग्घर' नदीका ही नाम दृषद्वती है । कईका मत है कि सरस्वतीके दक्षिणमें यह नदी बहती थी। मनुस्मृति (२.७) में कहा गया है कि 'सरस्वती और दृषद्वती देवनदियां हैं; इनके बीच देव-निर्मित देश ब्रह्मावर्त है'–

"सरस्वती-दृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ।
तं देव-निर्मितं देशं ब्रह्मावर्त्तं प्रचक्षते ।।"

ताण्ड्यमहाब्राह्मण (२५. १०. १४-१५ और २५.१३.२-४) में भी इसका उल्लेख है।

१५. परुष्णी–ऋग्वेद ५.५२.६; ७.१८. ८-६; १०.७५.५ आदिमें इसका उल्लेख है। शत्रुओंने इसके तटको भ्रष्ट किया था। इन्द्रकी कृपासे सुदास राजाने इसके तटको ठीक किया था। पंजाबकी इरावती वा वर्तमान रावीका नाम परुष्णी है। निरुक्त (६. २६) का भी यही मत है।

१६. मरुद्वृधा–ऋग्वेद (१०.७५.५) में इसका नाम चिनाव (असिक्नी) और झेलम (वितस्ता)के बीच आया है। इसलिये इसे चिनाबकी पश्चिमवाली 'मरुवर्दवन' नामकी सहायक नदी माना जाता है। अरल स्टाइनका भी यही मत है।

१७. मेहत्नू–ऋग्वेद (१०.७५.६) देखनेसे ज्ञात होता है कि यह सिन्धुकी पश्चिमी सहायक नदी है।

१८. यमुना–ऋग्वेद (५.५२.१७;) ७.८.१६ और १०.७५.५ में इसका नाम आया है। हार्पकिसके मतसे रावीका नाम यमुना है। कोई चिनावको यमुना बताता है, कोई झेलमको। परन्तु इन मतोंका कोई भी आधार नहीं है। यह वर्त्तमान यमुना ही है। अथर्व-संहिता (४.६.१०), ऐतरेय-ब्राह्मण (८.२३), शतपथ-ब्राह्मण (१३.५.४.११), ताण्ड्यमहाब्राह्मण (६.४.१०; २५.१०.२३; २५.१३.४), जैमिनीय-ब्राह्मण (३.२८३), आपस्तम्बीय एकाग्निकाण्ड (२.११.१२) आदिमें भी यमुनाका विवरण आया है।

१६. यव्यावती–ऋग्वेदके ६.२७.६ में लिखा है कि यव्यावतीके तटपर वरशिख असुरके एक सौ तीस पुत्र मारे गये थे। ताण्ड्यमहा-ब्राह्मणमें भी इसका उल्लेख है (२५.७.२)। ऋग्वेदके उक्त मन्त्रके

पहलेके ५ वें मन्त्रमें हरियूपीया नदीका नाम आया है। सायणके मतसे यव्यावती और हरियूपीया एक ही नदीके नाम हैं। यह नदी कहां थी, इस बातका ठीक पता नहीं चलता। कदाचित् यह कोई पंजाबी नदी थी।

२०. **रथस्या**–जैमिनीय-ब्राह्मण (३.२३५) में इसका नाम तो आया है; परन्तु स्थानका पता नहीं लगता।

२१. **रसा**–ऋग्वेदके १.११२.१२; ५.५३.९; १०.७५.६ तथा जैमिनीय-ब्राह्मणके २.४४० में इसका विवरण मिलता है। यह सिन्धुकी पश्चिमी सहायक नदी मानी जाती है। पारसी लोग इसे 'रहा' कहा करते थे। कुछ लोगोंके मतसे यह अफगानिस्तान और बिलोचिस्तानके उत्तरमें प्रवाहित होनेवाली नदी है। इसे खुरासानकी नदी भी कहा जाता है।

२२. **वरणावती**–अथर्ववेद (४.७.१) में इसका नाम मिलता है। सायणके मतसे यह एक औषध है। कुछ लोग इसे काशीकी वरुणा वा वरणा नदी कहते हैं।

२३. **वितस्ता**–ऋग्वेद (१०.७५.५) में अनेक नदियोंके नामोंके साथ इसका नाम आया है। कश्मीरमें इसे अबतक 'व्यथ' कहा जाता है। यूनानी इसका नाम 'हीदास्पेस' रख गये हैं। यह वर्त्तमान झेलम नदी है। आश्चर्य है कि यास्कने (९.२६ में) इसका स्पष्ट परिचय नहीं दिया है।

२४. **विपाश्**–ऋग्वेदके ४.३०.११ में कहा गया है कि 'इन्द्रके द्वारा विचूर्णित उषा देवीका 'शकट' विपाशा नदीके तटपर गिर पड़ा।' ३.३३ के १ म और ३ य मन्त्रोंमें सतलज (शुतुद्री) के साथ विपाश्का उल्लेख है। एक तरहसे सारे ३३ वें सूक्तमें विपाश्का वर्णन है। सायणाचार्यने लिखा है कि 'राजा पिजवनके पुत्र सुदासके पुरोहित विश्वामित्र एक बार पौरोहित्य कर्मसे बहुतसा धन लेकर व्यास

(विपाश्) और सतलजके संगम-स्थलपर पहुंचे। विश्वामित्रने अगाध-गंभीर नदियोंकी प्रथम तीन मन्त्रोंसे स्तुति की। पीछे नदियोंने जल घटाकर उन्हें पार जानेकी अनुमति दी।' इस तरह सारे सूक्तमें उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपककी भरमार है। गोपथ-ब्राह्मण (१.२७) में भी इसका नाम आया है। यह वर्तमान व्यास नदी है। अरबोंके भारताक्रमणके समय यह नदी 'हकरा' पहुंचती थी।

२५. **विबाली**—ऋग्वेदके ४.३०.१२ में यह कोई अपरिज्ञात नदी है।

२६. **वीरपत्नी**—कुलिशी नदीके साथ ऋग्वेदके १.१०४.३में इसका उल्लेख है। कदाचित् यह बाह्लीक प्रदेशकी एक नदी है।

२७. **शिफा**—ऋग्वेद (१.१०४.३) में इसका उल्लेख है। किसीके मतसे शिफा समुद्रका नाम भी हो सकता है। इसके स्थानका ठीक पता नहीं चलता।

२८. **शुतुद्री**—ऋग्वेदके ३.३३.१ और १०.७५.५ में इसका नाम और विवरण है। यह वर्त्तमान सतलज नदी है। अरबोंके हमलेके समय यह नदी व्याससे न मिलकर सीधे हकराको जाती थी।

२९. **श्वेत्या**—ऋग्वेद (१०.७५.६) की यह नदी सिन्धुकी पश्चिमी सहायक नदी थी। डेरा इस्माइल खां जिलेमें यह 'अर्जुनी' नामसे प्रसिद्ध है।

३०. **सदानीरा**—शतपथब्राह्मण (१.४.१.१४) आदिमें इसका उल्लेख है। शतपथके विवरणसे ज्ञात होता है कि कोसल और विदेह प्रदेशोंकी सीमा यही नदी थी। इसके वर्त्तमान नामके सम्बन्धमें बड़ा विवाद है। जर्मन वेद-ज्ञाता वेबरने इसका नाम गण्डकी बताया है। परन्तु कदाचित् वर्त्तमान विदेह और कोसल वैदिक विदेह-कोसलसे भिन्न हैं। इस लिये सम्भवतः सदानीरा गण्डकी नहीं हो सकती। कुछ

लोगोंके मतसे सदानीराका ही नाम करतोया है। परन्तु करतोया उत्तर बंगालकी नदी है और विदेह (दरभंगा जिला आदि) के पूर्वमें है, पश्चिममें नहीं। इसलिये कोषकारोंका यह लिखना ठीक नहीं कि करतोया और सदानीरा एक ही नदीका नाम है। इसके निश्चित स्थानका पता नहीं।

३१. सरयू वा सरयु—ऋग्वेद (४.३०.१८) में लिखा है कि 'सरयू नदीके पारमें रहनेवाले अर्ण और चित्ररथ राजाओंका इन्द्रने बध किया था।' ऋग्वेद (५.५३.९) में रसा, अनितभा, कुभा, क्रुमु, सिन्धु आदिके साथ भी सरयु (सरयू नहीं) का नाम आया है। इससे तो विदित होता है कि यह कोई पश्चिमी नदी है। इसी वेदके १०.६४.९ में सिन्धु और सरस्वतीके साथ सरयूका उल्लेख है। पारसियोंकी "अवस्ता"में 'हरोयु' नामकी एक नदीका नाम आया है, जो कि वर्त्तमान 'हरिरुद्' (वा हरीरुद) नदी है। कुछ लोग कहते हैं कि सरयू और हरिरुद् एक ही हैं। अनेक लोगोंके मतसे यह वर्त्तमान सरयू ही है; परन्तु ऋग्वेदमें न तो गंगासे पूर्व किसी नदीका नाम ही है, न उन दिनों अवध तक आर्योंके आनेका कदाचित् कोई प्रमाण ही मिलता है।

३२. सरस्वती—ऋग्वेदके अनेकानेक स्थलोंमें सरस्वतीका विवरण है। कमसे कम ३५ स्थानोंमें तो सरस्वतीका स्पष्ट उल्लेख है। इसके तटपर कितने ही यज्ञ और युद्ध हुए थे। अनेक मन्त्रोंमें सरस्वतीको बड़ी ही दिव्य स्तुति की गयी है। ऋग्वेदके २.४१.१६ में सरस्वतीको मातृगण, नदियों और देवोंमें श्रेष्ठ कहा गया है। इससे ज्ञात होता है कि आर्योंकी दृष्टिमें गंगासे भी बढ़कर सरस्वती नदी थी। तैत्तिरीय-संहिता (७.२.१.४), अथर्वसंहिता (६.३०.१), तैत्तिरीय-ब्राह्मण (२.४.८.७), मन्त्रब्राह्मण (२.१.१६), ताण्ड्यमहाब्राह्मण (२५.१०.१ और १६), जैमिनीय-ब्राह्मण (२.२९७ और ३.१२०), ऐतरेय-ब्राह्मण (२.१९), शांखायन-ब्राह्मण (१२.३) और शतपथ-ब्राह्मण (१.४.१.

१४) आदिमें भी सरस्वतीकी बड़ी महिमा गायी गयी है। कुछ लोग कहते हैं कि कई मन्त्रोंमें सिन्धुके लिये ही सरस्वती शब्द आया है। परन्तु इस विषयमें कोई ठोस प्रमाण नहीं है। मैकडानल और कीथके मतसे भी ऋग्वेदमें सरस्वती शब्द सर्वत्र सरस्वतीके लिये ही आया है। अनेक का मत है कि कुरुक्षेत्रकी सरस्वती ही वैदिक सरस्वती है। यह इन दिनों पटियाला राज्यमें विलुप्त हो चुकी है।

किन्तु पुराणवादियोंके विश्वासानुसार सरस्वती पृथ्वीके भीतर ही भीतर आकर प्रयागमें गंगा और यमुनाके साथ मिल गयी है। इन्हीं तीनोंका नाम त्रिवेणी है। तांड्य-महाब्राह्मणमें सरस्वतीके लुप्त होनेके स्थानका और जैमिनीय-ब्राह्मणमें पुनः बाहर निकलनेके स्थानका उल्लेख है। पहले पहल क्षीण धारामें सरस्वती बहती थी, इस बातका भी उल्लेख जैमिनीय-ब्राह्मणमें है। ऐतरेय-ब्राह्मणसे विदित होता है कि सरस्वतीसे कुछ दूरपर मरुदेश (Desert) था। इसलिये यह बात भी निराधार नहीं कि राजपूतानेकी मरुभूमि बीकानेर (विनशन) में सरस्वती विलुप्त हुई है। इसका उत्पत्ति-स्थान मीरपुर पर्वत माना गया है। सरस्वतीके उत्पत्ति-स्थानपर तुषार-क्षेत्र (Glacial lake) था। यही तुषार-क्षेत्र पसीज कर सरस्वतीको पुष्ट करता था। इस तुषार-क्षेत्रको ऋवेदमें "सरस्वान्" कहा गया है। ऋग्वेद (३.२३.४) में सरस्वती और दृषद्वतीके बीचकी भूमिको 'उत्तम स्थान' कहा गया है। कुछ लोगोंकी धारणा है कि कभी सरस्वती सिंधुके साथ मिलकर पश्चिम समुद्रमें गिरती थी। परन्तु ऋग्वेदमें इसका कोई प्रमाण नहीं। हां, देवतावाची सरस्वती शब्द भी कहीं-कहीं अवश्य आया है। सरस्वतीके लुप्त होनेके दो स्थान—बीकानेर और पटियाला माने जाते हैं।

३३. सिन्धु—ऋग्वेदके अनेक स्थानोंमें सिन्धु शब्द आया है। अथर्ववेद (६.२४.१; ७.४५.१; १२.१.३ और १४.१.४३), माध्यन्दिन

संहिता (८.५६.१), जैमिनीय-ब्राह्मण (३.२३७) आदिमें भी सिन्धु शब्द आया है। सिन्धु शब्द कहीं समुद्रके लिये, कहीं नदीके लिये और कहीं खास नदीके लिये भी आया है। निस्सन्देह अधिकांश स्थानोंमें वर्त्तमान सिन्धु नदी ही वैदिक सिन्धु है। आर्य लोग सिन्धुके बड़े ही भक्त थे। अनेक स्थानोंमें सिन्धुका बड़ा विमल वर्णन किया गया है।

सिन्धु नदीको ईरानी (पारसी) लोग "हिन्दू" कहते थे। कहते हैं कि इसीलिये सिन्धुके पार रहनेवाले हिन्दू कहलाये और इस देशका नाम हिन्दुस्थान पड़ा। अमेरिकाके लोग तो इस देशमें रहनेवाले हिन्दू, मुसलमान, ईसाई–सबको हिन्दू कहते हैं। ग्रीक सिन्धु-को "इन्दस्" कहते थे। इसी इन्दस् वा इंडस्से इंडिया शब्द बना है।

सिन्धुके तटपर अच्छे घोड़े होते थे। इसीलिये संस्कृतमें घोड़ेका एक नाम सैन्धव हो गया। बृहदारण्यकोपनिषद् (२.४.१२ और ४.५. १३) में नमकके लिये भी सैन्धव शब्द आया है। अथर्वसंहिता (१९. ३८.२)* में सैन्धव गुग्गुलूका नाम आया है।

सिन्धुके घोड़े बिक्रीके लिये बाहर भेजे जाते थे। वहां सूती और ऊनी कपड़े भी होते थे। सिन्धुतटपर बकरों और भेड़ोंके लोमसे सुन्दर कपड़े, शाल और कम्बल तैयार किये जाते थे। हिमालय और बाह्लीक (वल्ख-बुखारा-हिरात) से सिन्धु प्रदेशमें स्वर्ण, मणि, रत्न आदि बेचनेके लिये लाये जाते थे। सिन्धुसे मोती निकाले जाते थे। सिन्धुतटपर फूलोंकी अधिकताके कारण मधु (शहद) भी बहुत होता था। सिन्धु-तटोंपर समृद्ध जनपद थे; धनाधिपति और राजा-महाराजा भी बहुत रहा करते थे।

---

* जहां-जहां केवल ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद शब्दआये हैं, वहां-वहां शाकल, माध्यन्दिन, कौथुम और शौनक संहिताओंको समझना चाहिये।

३४. **सुदामा**–ताण्ड्य-महाब्राह्मण (२२.१८.७) में एक सुदामन् (सुदामा) नदीका नाम आया है, जिसके तटपर एक यज्ञका होना लिखा है। पता नहीं, यह कौन नदी थी।

३५. **सुवास्तु**–यास्काचार्यने लिखा है (निरुक्त ४.२.७) कि सुवास्तु नदीका नाम है। इसके तटपर (तुग्व) तीर्थ था। यास्कने ऋग्वेदके जिस मन्त्र-खण्डको उद्धृत करके यह अपना मत दिया है, वह इस तरह है–"**सुवास्त्वा अधितुग्वनि।**" यह सिन्धुकी सहायक नदी कुभाकी सहायिका है। यह अफगानिस्तानकी वर्त्तमान स्वात् नदी है। यूनानियोंने इसे "सोआस्तस्" लिखा है।

३६. **सुषोमा**–ऋग्वेद (१०.७५.५) में इसका नाम आया है। यह सिन्धुकी पूर्वी सहायक नदी है। मेगास्थनीजने इसे सोयानस् (सोआमस्) लिखा है। इसका वर्त्तमान नाम सोहान है।

३७. **सुसर्त्तु**–ऋग्वेदके नदी-सूक्त (१०.७५.६) में इसका नाम आया है। यह सिन्धुकी पश्चिमी सहायक नदी है। कुछ सज्जनोंकी रायसे स्वात्का ही नाम सुसर्त्तु है।

३८. **हरियूपीया**–ऋग्वेद (६.२७.५) में इसका नाम आया है। कहा गया है कि 'इन्द्रने चायमान राजाके अभ्यवर्ती नामक पुत्रको धन देनेके लिये वरशिखके पुत्रों और वरशिखके गोत्रोत्पन्न वृचीवान्के पुत्रोंको मार डाला था।' ऋग्वेदके जर्मन अनुवादक लुड्विगने लिखा है कि हरियूपीया नगरीका नाम है। सायणके मतसे यव्यावती और हरियूपीया एक ही नदीका नाम है। हिलेब्रांट्ड् (हिलेब्रान्त) के मतसे यह कुर्रमकी सहायक नदी इर्याब या इलिआब है। कुछ लोग कहते हैं कि यह हिरात (अफगानिस्तान) की हरिरुद् नदी है। हार्पकिसके मतसे यह सरयूका नाम है। इस तरह यहां "**मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना**" की उक्ति खूब चरितार्थ हो रही है।

इस प्रकार वैदिक साहित्यमें पंजाब, कुरुक्षेत्र, सिन्धु, राजपूताना, अफगानिस्तान आदि की नदियोंके नाम आये हैं। आर्य-संस्कृतिके केन्द्र सिन्धु और सरस्वतीके तट तथा कुरुक्षेत्र आदि थे। दक्षिण और पूर्व भारतका उल्लेख तो वैदिक साहित्यमें नगण्य है।

देश अथवा प्रदेश

समुद्र, पर्वत और नदी प्राकृतिक वस्तुएँ हैं। इनके सम्बन्धमें मन्त्र-संहिताओं, ब्राह्मण-ग्रन्थों, आरण्यकों और उपनिषदोंमें जो कुछ लिखा गया है, वह पाठकोंके सामने उपस्थित किया जा चुका। अब यह देखना है कि मनुष्य-कृत देश, प्रदेश और नगरके सम्बन्धमें वैदिक साहित्यका क्या अभिमत है। वैदिक और लौकिक संस्कृतमें जाति-वाचक शब्द अधिक आये हैं, जिनसे जातियों और उनके रहनेके स्थानोंका अर्थ एक साथ ही निकलता है। ऐसे शब्द सदा बहुवचनमें आते हैं। ऐसे शब्दोंको जनपद-वाची कहा जाता है। आर्य जिस ओर जाते थे, अपने पुराने प्रिय नामोंके अनुसार गन्तव्य स्थानोंके भी नाम रख डालते थे। इसलिये स्थानोंका निर्णय करनेमें कठिनाई होती है।

पूर्व आदि दिशाओंमें रहनेवालोंके लिये वैदिक साहित्यमें प्राच्य, उदीच्य, अपाच्य आदि शब्दोंका प्रयोग हुआ है। ऐतरेयब्राह्मण (८.१४) में, ऐन्द्र-महाभिषेकके प्रसंगमें, प्राच्य प्रभृति देशोंमें, राज्याभिषेकका उल्लेख है। कहा गया है कि पूर्वमें रहनेवालों (प्राच्यों) के राजाका अभिषेक साम्राज्यके लिये होता है, दक्षिणमें सात्वतोंके राजाका अभि-षेक होता है भौज्यके लिये, पश्चिममें नीच्य (निम्नस्थ ?) और अपाच्य (पश्चिममें रहनेवाले) लोगोंके राजाका अभिषेक होता है स्वराज्यके लिये। उत्तर कुरुओं और उत्तर मद्रोंके राजाका अभिषेक वैराज्यके लिये होता है तथा "ध्रुवमध्यम दिशा"के कुरु-पंचालोंके राजाका अभिषेक राज्यके लिये होता है।

संस्कृत-साहित्यके सर्वश्रेष्ठ वैयाकरण पाणिनि वर्त्तमान अटक जिलेके पास जनमे थे। उधर संस्कृतका अत्यधिक प्रचार था; इसलिये ब्राह्मण-ग्रन्थोंका मत है कि उदीच्यों (उत्तर दिशामें रहनेवालों) की बोली बड़ी शुद्ध थी (शतपथब्राह्मण ३.२.३.१५; ११.४.१.१; शांखायन-ब्राह्मण ७.६; गोपथब्राह्मण १.३.६)। प्राच्योंका उल्लेख भी शतपथब्राह्मण (१.७.३.८; १३.८.१.५; १३.८.२.१) में है।

वैदिक साहित्यमें ये जनपदवाची नाम आये हैं–अंग, अंध्र, कम्बोज, काशी, कीकट, कुरु, उत्तरकुरु, कोसल, गन्धारि, चेदि, नैषिध, पञ्चाल, पारावत, पुण्ड्र, बह्लीक, वाहीक, । भरत, मगध, मत्स्य, मद्र, उत्तर मद्र, महावृष, वंग, विदेह, विदर्भ आदि। प्रत्येकका विवरण इस प्रकार मिलता है–

१. **अंग**–अथर्ववेदसंहिता (५.२२.१४) में गन्धारि और मगधों तथा गोपथब्राह्मण (२.९) में मगधोंके साथ अंगोंका उल्लेख है। वैदिक अंगदेश कहां था, इसका पता तो ऐतिहासिकोंको नहीं है; परन्तु उनका अनुमान है कि चूंकि गोपथब्राह्मण बहुत पीछेकी रचना है; इसलिये उस समय तक कदाचित् अंग लोग बिहार पहुँच चुके थे। इस तरह अथर्ववेदके अंग अन्धकारमें हैं और गोपथब्राह्मणके समयके अंग कुछ प्रकाशमें हैं। परन्तु अनुमानके सिवा आधार कुछ नहीं है। राजा कर्ण अंगदेशाधिपति थे। मुंगेर–भागलपुरके जिलोंको अंग-देश माना गया है।

२. **अन्ध्र**–इन दिनों मद्रासका उत्तरी भाग आन्ध्र कहाता है। ऐतरेय-ब्राह्मण (७.१८) का कहना है कि विश्वामित्रने जब अजीगर्त्तके पुत्र शुनःशेपको अपने ज्येष्ठ पुत्रके रूपमें ग्रहण किया, तब उनके पुत्रोंने इस प्रबन्धको अस्वीकृत कर दिया। इसपर विश्वामित्रने क्रुद्ध होकर शाप दे दिया और उनके सब पुत्र अन्ध्र, पुण्ड्र शबर, पुलिन्द, मूतिब आदि

उपान्तवासी दस्युजातियोंमें परिणत हो गये। ऐतिहासिक कालमें अन्ध्र-लोग दक्षिणापथवासी हो रहे।

३. कम्बोज—मद्रगार आचार्यके शिष्य काम्बोज औपमन्यव थे। वंशब्राह्मणमें ऐसा लेख है। इससे अनुमान लगाया जाता है कि कम्बोज लोग भारतके पश्चिमोत्तरके रहनेवाले थे।

४. काशी वा काश्य—कोसलों और विदेहोंके साथ काश्य (काशी) लोगोंका नाम आता है; परन्तु वर्त्तमान काशी और वैदिक काशी एक ही थे, इसका कोई ठोस प्रमाण नहीं पाया जाता। वैदिक काश्य पंजाबसे मध्यदेश तक तो आ चुके थे; परन्तु वर्त्तमान काशी पहुंचनेका कोई पता नहीं मिलता। हो सकता है कि काश्य लोग अपना नाम लिये यहां आये हों और वही नाम वर्त्तमान काशीका रख दिया हो।

काशी वा काश्य लोगोंका उल्लेख इन ग्रन्थोंमें है—अथर्ववेदसंहिता (पैप्पलाद-शाखा ५.२२.१४), शतपथब्राह्मण (१३.५.४.१६), जैमिनीयब्राह्मण (२.३.२६), बृहदारण्यकोपनिषद् (२.१.१; ३.८.२), कौषीतकि-उपनिषद् (४.१), गोपथब्राह्मण (१.२.६) इत्यादि।

५. कीकट—ऋग्वेद (३.५३.१४) कहता है—

"किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिरं दुह्रे न तपन्ति घर्मम्।"

अर्थात् 'इन्द्र, अनार्योंके निवास-योग्य देशोंमें कीकट लोगोंके बीच तुम्हारे लिये गायें क्या करेंगी? न तो वे सोमके साथ मिलाने योग्य दुग्ध देती हैं और न वे दुग्ध द्वारा पात्रोंको ही पूर्ण करती हैं।'

इससे और निरुक्त (६.२२) से विदित होता है कि कीकट देश अनार्यदेश था, जहां दुर्दशा-ग्रस्ता बहुतसी गायें रहती थीं। कोष-कारोंने दक्षिण मगध वा पूरे मगधको कीकट लिखा है; परन्तु ऋग्वेदीय कीकट प्रदेश बिहारसे बहुत दूर, व्यास और सतलजके दक्षिण पार, था।

६. **कुरु**—ऋग्वेद (१०.३३.४) में त्रसदस्युके पुत्र राजा कुरुश्रवणका नाम आया है, जो 'श्रेष्ठ दाता' बताये गये हैं। कुछ लोगोंका अनुमान है कि कुरु और पूरु (पुराणोंके पुरु) एक ही थे। दोनों ही भरत-वंशीय थे। ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें कुरुओंका बार बार उल्लेख है। कुरुओंका देश धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र था।

७. **उत्तर कुरु**—ऐतरेयब्राह्मण (८.१४) से पता चलता है कि हिमालयके उत्तरको लोग उत्तर कुरु कहते थे। उत्तर कुरुओंका देश भी "देवक्षेत्र" था (ऐतरेयब्राह्मण ८.२३)।

८ **कोसल**—शतपथब्राह्मण (१.४.१.१७; १३.५.४.४), जैमिनीय-ब्राह्मण (२.३२९) और प्रश्नोपनिषद् (६.१) आदिमें जहां कहीं कोसलोंका नाम आया है, विदेहोंके साथ ही आया है। ऐतिहासिकोंकी राय है कि पश्चिममें ही कहीं कोसलों और विदेहोंके देश थे। वर्त्तमान कोसल (अवध आदि) और विदेह (मिथिला आदि) तक वैदिक आर्य नहीं पहुँचे थे; इसलिये वर्त्तमान कोसल और विदेहसे वैदिक कोसल और विदेह भिन्न थे। वैदिक कोसल और विदेहकी नकलपर ही वर्त्तमान कोसल और विदेहके नाम रखे गये।

९. **गन्धार वा गन्धारि**—ऋग्वेद (१.१२६.७) का मन्त्र-खण्ड है—

"सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका।"

आशय यह कि 'मैं गन्धारि देशकी भेंड़ोंकी तरह लोम-पूर्णा हूँ।'

इससे ज्ञात होता है कि गन्धारि देशमें अच्छी पशमवाली भेंड़ें रहती थीं। अथर्वसंहिता (५.२२.१४) और छान्दोग्योपनिषद् (६.१४.१) में भी ये नाम आये हैं। गन्धार और गन्धारि एक ही हैं। यही वर्त्तमान कन्दाहार हैं।

१०. **चेदि**—चेदि-देशाधिपति शिशुपाल था। परन्तु वेदका चेदि शिशुपालवाला चेदि देश नहीं है। ऋग्वेद (८.५.३७ और ३९) में चेदिवंशीय कशु राजाका वर्णन है। कशु महादानी थे। एक बार उन्होंने

एक सौ ऊँट और एक हजार गायें दान दी थीं। ३९ वें मन्त्रमें यह भी कहा गया है कि 'जिस मार्गसे चेदि लोग जाते हैं, उस मार्गसे दूसरा नहीं जा सकता।' कदाचित् निविड़ कान्तारमें चेदि-देश था।

११. **नैषिध**—दक्षिणी राजा नड़ नैषि कहे गये हैं (शतपथब्राह्मण २.३.२.१ और २)। नैषिधों और बादके नैषधोंका भी निवास दक्षिणकी तरफ ही था। चारों वेदोंकी संहिताओंमें नैषिध वा नैषधका नाम नहीं है। कहा नहीं जा सकता कि किस देशसे दक्षिणका तात्पर्य शतपथका है।

१२. **पंचाल**—ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें कुरुओंके साथ पंचालोंका बार-बार नाम आया है। कुरुओंसे पूर्वकी ओर पंचाल था।

१३. **पारावत**—ऋग्वेद और ताण्ड्य-महाब्राह्मणमें पारावतोंकी चर्चा है। परन्तु इनके देशका कुछ पता नहीं चलता। कुछ लोग कहते हैं कि यह शब्द दूरके रहनेवालोंके लिये सामान्य रूपसे आया है।

१४. **पुण्ड्र**—संस्कृत-साहित्यमें पुण्ड्र और पौण्ड्रवर्द्धन नाम बिहारके लिये आये हैं। परन्तु ऐतरेयब्राह्मण (७.१८) आदिमें अन्ध्रोंके साथ ही पुण्ड्रोंका नाम आता है। कदाचित् वैदिक अन्ध्र और पुण्ड्र पास-पास थे।

१५. **बह्लिक**—शतपथब्राह्मण (१.२.९.३) में एक पुरुषका नाम 'बह्लिक-प्रतीपीय' है। अथर्ववेद-संहिता (५.२२.५, ७ और ९) से विदित होता है कि बह्लिक लोग उत्तरके रहनेवाले थे। कदाचित् ह्लिक, बह्लीक और वर्त्तमान बल्ख अभिन्न वा एक ही हैं।

१६. **बाह्लीक**—ये पहले पश्चिमोत्तर सीमाके निवासी थे। बादमें पंजाबमें आ बसे। शतपथ-ब्राह्मण (१.७.३.८) में वाहीकोंका उल्लेख है।

१७. **भरत**—वैदिक साहित्यमें सबसे प्रसिद्ध वंश भरतोंका है। वेद में सर्वत्र भरतोंका नाम और विवरण पाये जाते हैं। परन्तु भरतोंका

निवास-स्थान एक स्थानपर नहीं था। ऋग्वेद (७. १८. ५) में भरतवंशीय राजा सुदास रावी नदीके तटवासी ज्ञात होते हैं। इसी वेदके ३. ३३. ११–१२ मन्त्रोंमें भरतोंको व्यास और सतलजके उस पार जाते हम पाते हैं। ३.२३.४ में भरतोंको सरस्वती और दृषद्वतीके पास देखा जाता है। जैमिनीयब्राह्मण (३.२३७) से विदित होता है कि भरत सिन्धुतीर-निवासी थे। वस्तुतः आर्योंमें भरत लोग महान् शक्तिशाली थे। इसीसे सारे देशका नाम भारत पड़ा। सारे देशमें भरतोंकी अबाध गति थी।

१८. **मगध**—ऋग्वेदमें तो मगधोंका कहीं नाम तक नहीं है। यजुर्वेद की माध्यन्दिन-संहिता (३०.३२) में वेश्या, जुआड़ी आदिके साथ मगधोंका नाम आया है। ये गाते-बजाते भी थे; इसलिये काफी बदनाम थे। वैदिक साहित्यमें तो मगध बदनाम हैं ही, स्मृतियोंमें भी ये नीची निगाहसे देखे गये हैं–

"अंग-वंग-कलिंगेषु सौराष्ट्र-मगधेषु च।
तीर्थयात्रां विना गच्छन् पुनः संस्कारमर्हति॥"

अर्थात् 'अंग (मुंगेर-भागलपुर), वंग (बंगाल), कलिंग (उड़ीसा), सौराष्ट्र (काठियावाड़) और मगध (पटना, गया आदि) में तीर्थ-यात्राके विना जानेसे फिरसे उपनयनादि संस्कार करके शुद्ध होना पड़ता है।'

ऋग्वेद (३.५३.१४) में कीकट शब्द आया है, जिसका अर्थ मगध भी किया जाता है। परन्तु इसी मन्त्रमें इसे अनार्य-भूमि भी कहा गया है। जो हो, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वैदिक मगधसे वर्त्तमान मगध दूर पर ही होना चाहिये। अथर्ववेद (५.२२.१४), वाजसनेय-माध्यन्दिन-संहिता (३०.५.२२) और तैत्तिरीय-ब्राह्मण (३.४.१.१) में मगधोंका उल्लेख है।

१६. **मत्स्य**—ऋग्वेदमें तो नहीं; परन्तु शतपथ-ब्राह्मण (१३.५.४.६), गोपथब्राह्मण (१.२.६), कौषीतकि-उपनिषद् (४.१) आदिमें मत्स्योंका उल्लेख है। कहा जाता है कि मत्स्य-पूर्ण समुद्र रहनेके कारण जयपुर (राजपूताना) आदिको मत्स्यदेश माना गया है। परन्तु वैदिक मत्स्य और आधुनिक मत्स्य दो थे या एक ही, यह जाननेका कोई भी उपाय नहीं है।

२०. **मद्र**—बृहदारण्यकोपनिषद् (३.३.१; ३.७.१) में मद्रोंका उल्लेख है। हिमालयकी ओर कहीं इनका देश वा प्रदेश था।

२१. **उत्तर मद्र**—ऐतरेय-ब्राह्मणके मतसे उत्तर मद्रोंका निवास हिमालयके उत्तरमें था।

२२. **महावृष**—अथर्ववेदसंहिता (५.२२.४.५,८), जैमिनीयब्राह्मण (१.२३४), जैमिनीय-उपनिषद्ब्राह्मण (३.४०.२); छान्दोग्योपनिषद् (४.२.५) आदिमें महावृषोंका उल्लेख है। ये भी उत्तरापथवासी थे।

२३. **बंग**—बंगोंका उल्लेख ऐतरेय-आरण्यक (२.१.१) में है। वहां "वङ्गावगधाः" पाठ है। कहा जाता है कि "**वङ्गमगधाः**" के लिये यह भ्रान्त पाठ है। मगधोंके साथ वङ्गों वा वङ्गियों (बंगालियों) का उल्लेख होनेसे वङ्ग भी अनार्य-निवास ही विदित होता है। स्मृतिकारोंने भी ऐसा ही माना है। वैदिक साहित्यमें बंगोंका और उल्लेख नहीं है। ऐतिहासिक तो ऐतरेयारण्यकको आधुनिक ग्रन्थ मानते हैं। जो हो, अब तो वङ्ग और वर्त्तमान बंगाल एक ही माने जाते हैं।

२४. **विदेह**—इनका उल्लेख 'विदेघ' शब्दसे भी है। इनका सभी स्थलोंपर कोसलोंके साथ ही उल्लेख है। इससे इतना तो मालूम पड़ता है कि दोनों पास ही पास रहते होंगे। थे पश्चिममें ही कहीं रहते थे। शतपथ-ब्राह्मण (१.४.१.१०), ताण्ड्य-महाब्राह्मण (२५.

१०.१७), कौषीतकि-उपनिषद् (४.१) तथा बृहदारण्यकोपनिषद्के कई स्थानोंपर इनका उल्लेख है।

२५. **विदर्भ**—वर्त्तमान बरारको विदर्भ कहा जाता है; परन्तु वैदिक विदर्भोंका विदर्भ इससे कितनी दूरपर था, इसका पता नहीं। केवल जैमिनीय-ब्राह्मण (२.४४२) में इस शब्दका उल्लेख है।

वैदिक नगर आदि

इन जनपदवाची (जाति और देशको एक साथ बतानेवाले) शब्दोंके अतिरिक्त नगरों और स्थान-विशेषको बतानेवाले शब्द भी वैदिक साहित्य में आये हैं, जिनसे अनेक महत्त्व-पूर्ण स्थानोंका परिज्ञान हो जाता है। उनका विवरण पढ़िये।

१. **काम्पिल**—कदाचित् काम्पिल पंचाल देशकी राजधानी था। तैत्तिरीय-संहिता (७.४.१९.१), मैत्रायणी-संहिता (३.१२.२०), काठक-संहिता (आश्वमेधिक ४.८), माध्यन्दिन-संहिता (२३.१८), तैत्तिरीय-ब्राह्मण (३.९.६), शतपथ-ब्राह्मण (१३.२.८.३) आदिमें इसका नाम आया है।

२. **कारपशव**—यह यमुनाका कोई तीरवर्ती स्थान था। इसका उल्लेख ताण्ड्य-महाब्राह्मण (२५.१०.२३) में है।

३. **कारोटी**—यहीं 'तुर कावषेय'ने अग्नि-चयन किया था। शतपथ-ब्राह्मण (९.५.२.१५) में इसका उल्लेख आया है। यह कोई अज्ञात स्थान है।

४. **कुरुक्षेत्र**—ब्राह्मणों और उपनिषदोंमें कुरुक्षेत्रका बार-बार उल्लेख है। यह 'देव-पूजाकी पुण्य-भूमि और सारे प्राणियोंका उत्पत्ति-स्थान' भी बताया गया है—"**यदनु देवानां देवयजनं तदनु सर्वेषां भूतानां ब्रह्म-सदनम्।**" इसीलिये अनेक विद्वानोंने कुरुक्षेत्रको आर्यों और प्राणियोंका आदि उत्पत्ति-स्थान कहा है। कुरुक्षेत्रकी सरस्वती नदीके पास ही आदिम आर्य-निवास था। इस सिद्धान्तके विरुद्ध कोई अखण्डनीय

युक्ति भी नहीं है । जे० बी० हाल्डेनके मतसे भी मानवोत्पत्तिका स्थान यही है ।

५. कौशाम्बी–शतपथ-ब्राह्मण (१२. २. २. १३) और गोपथ-ब्राह्मण (१. २. २४) में कौशाम्बेय शब्द आया है । हरि स्वामीके मतानुसार इसका अर्थ है कौशाम्बीका निवासी । पीछेके संस्कृत-साहित्यमें कौशाम्बीको मगधके वत्सराजकी राजधानी बताया गया है । पता नहीं, वैदिक कौशाम्बी कहां थी ।

६. **तूर्घ्न**–कुरुक्षेत्रके उत्तरी भागका नाम तूर्घ्न था । तैत्तिरीय आरण्यक (५. १. १) में इसका नाम आया है ।

७. **त्रिप्लक्ष**–दृषद्वतीके लुप्त होनेका स्थान । यह यमुनाके पास हीं था । ताण्ड्य-महाब्राह्मण (२५. १३. ४) में इसका उल्लेख है ।

८. **नाड़पित्**—शतपथब्राह्मण (१३. ५. ४. १३) में कहा गया है–"**शकुन्तला नाड़पित्यप्सरा भरतं दधे ।**" अर्थात् 'नाड़पित् स्थानमें अप्सरा शकुन्तलाने भरतको जन्म दिया ।' भगवान् जाने, इन दिनों नाड़पित् कहां है ।

९. नैमिष वा नैमिश–इसी नैमिष वा नैमिषारण्यमें सूतजीने शौनकादि अठासी हजार ऋषियोंको अठारह पुराण सुनाये थे । यहीं महाभारतका प्रथम प्रचार हुआ था । इसका वर्त्तमान नाम 'निमसार' है । काठकसंहिता (१०. ६), ताण्ड्यमहाब्राह्मण (२५. ६. ४), जैमिनीय-ब्राह्मण (१. ३६३) कौषीतकि–ब्राह्मण (२६. ५ और २८. ४), छान्दोग्योपनिषद् (१. २. १३) आदिमें नैमिषारण्यका विवरण है ।

१०. परीणाह–ताण्ड्यमहाब्राह्मण (२५. १३. १) और जैमिनीय-ब्राह्मण (२. ३००) में इसका नाम आया है । कुरुक्षेत्रके पश्चिममें यह स्थान माना जाता है ।

११. प्लक्ष प्रास्रवण–यह विनशन वा बीकानेरसे ४४ दिनोंके रास्ते

पर माना जाता है। ताण्ड्यमहाब्राह्मण (२५.१०.१६ और २२) में इसका विवरण है।

१२. **रैक्वपर्ण**—छान्दोग्योपनिषद् (४.२.५) में इसका उल्लेख है। महावृषोंके देशमें रैक्वपर्ण कोई स्थान होगा।

१३. **विनशन**—ताण्ड्य-महाब्राह्मण (२५.१०.१) और जैमिनीय-उपनिषद्-ब्राह्मण (४.२६) में इसका उल्लेख है। डा० अविनाशचन्द्र दासके मतसे विनशन वर्त्तमान बीकानेर है। इनके मतसे यहीं सरस्वती विलुप्त हुई थी, पटियालेमें नहीं।

१४. **शर्यणावत्**—ऋग्वेद (८.६.३९) में कहा गया है कि शर्यणावत् नामका स्थान कुरुक्षेत्रके पास है। इसके पास ही एक तडाग है। कुछ लोगोंके मतसे कुरुक्षेत्रके तालाबका नाम ही शर्यणावत् है।

१५. **साचीगुण**—यह पश्चिम भारतका (भरतोंके देशका) कोई स्थान होगा। ऐतरेयब्राह्मण (८.२३) में इसका उल्लेख है।

१६. **स्थूलार्म**—ताण्ड्यमहाब्राह्मण (२५.१०.१८) में इसका नाम आया है। भाष्यकार सायणाचार्यके मतसे यह सरस्वतीका ह्रद् है।

ऋषि और महर्षि

नीचे ऋग्वेदादिके उन ऋषियों और महर्षियोंके नाम दिये जाते हैं, जिनकी या जिनके वंशजों और ब्राह्मण-शिष्योंकी आज्ञा और अनुमतिसे राजा-महाराजा देशका शासन करते थे। ये ही ऋषि-महर्षि वैदिक साहित्यके राजा-महाराजाओंके गुरु-पुरोहित और व्यास थे। इन्हीं तपोधन महापुरुषोंने विशाल वैदिक साहित्यको कण्ठस्थ करके उसकी रक्षा की थी। इन्होंने और इनके शिष्यों और वंशजोंने ही विपुल-विराट् संस्कृत-साहित्यका सृजन किया है। ये ही भारतीय सभ्यता और संस्कृतिके जनक और संरक्षक हैं। ये ऋषि-महर्षि नहीं हुए रहते, तो या तो हिन्दूजाति जंगली रहती या संसारसे मिट गयी होती। इन

ब्रह्मण्य-गर्व-धारी, प्रातःस्मरणीय और स्वनामधन्य ऋषि-महर्षियोंकी पूज्य नामावली यह है--

मधुच्छन्दा, मेधातिथि, कण्व, शुनःशेप अजीगर्ति, हिरण्यस्तूप आंगिरस, घोर कण्व, प्रस्कण्व कण्व, सव्य आङ्गिरस, नोधा गौतम, पराशर शक्त्य, गौतम रहूगण, कुत्स आंगिरस, कश्यप मारीच, ऋजाश्व आम्बरीष, दैर्घतमस, परुच्छेद दैवोदासी, दीर्घतमस औतथ्य, अगस्त्य, विषशान्ति अगस्त्य, कक्षीवान्, एतश, तुर्वीति, दध्यङ् अथर्वा, दधीचि, गोतम, अत्रि, रेभ, भरद्वाज, कलि, वृश, स्यूमरश्मि, विमद, ऋतस्तुभ, ध्वसन्ति, पुरुषन्ति, पुरुकुत्स, सदस्यु, त्रिशोक, खेल, अश्व, वश, परावृज, श्रुतर्य, नर्य, बन्दन, नमी, ऋभुगण, शर्यु, श्याव, वामदेव, विश्वामित्र, वसिष्ठ, परुच्छेद, गृत्समद, अंगिरा, सोमाहुति, वत्रि, सुतम्भर, च्यवन, भेष, अर्चनाना, श्यावाश्व, सप्तवध्रि, एवय, भौम आत्रेय, सत्यश्रवा, अवस्यु, पौर, बाहुवृक्त, श्रुतविद्, शंयु, पुरुमीह्ळ, अजमीह्ळ, ऋजिश्वा, अतियाज, द्वित, विश्वमना, स्थूलयूप, पुरु, अयास्य, आप्त्य त्रित कुत्स, नारद, अवत्सार, रेणु, ऋषभ, यम, कवष, विश्वक, ताम्ब, पार्थ्य, मायव, वत्सप्रि, देवमुनि, हविर्द्धान, विवस्वान्, शंख, दमन, वसुक्न, अभितपा, श्रुतबन्धु, विप्रबन्धु, गय, वसुकर्ण, सुमित्र, बृहस्पति, जरत्कर्ण, वैश्वानर, नारायण, अरुण, शार्यात, अर्बुद, मुद्गल, अप्रतिरथ, दुर्मित्र, दिव्य, जमदग्नि, जैमिनि, जूति, पृथु, बृहद्दिव आदि आदि। ऋग्वेद में लोपामुद्रा, अपाला, ममता, घोषा, विश्ववारा, सूर्या, जुहू आदि ऋषिकाओंके भी रचित वा आविष्कृत मन्त्र और सूक्त अनेक हैं।

राजर्षि और राजा-महाराजा

ऊपर भारतके समुद्र, पर्वत, नदी, देश, प्रदेश, नगर आदिके जो नाम दिये गये हैं, उनके पालक और शासक नीचे लिखे राजर्षि और राजा-महाराजा तथा इनके वंशज थे-

पुरुरवा, नहुष, पिजवन, दिवोदास, सुदास, शर्याति, शार्यात, अतिथिग्व, ऋजिश्वान्, सुश्रवा, तुर्वश, यदु, मनु, राजर्षि अन्तक, तुग्र भुज्यु, राजर्षि मान्धाता, राजर्षि वैन पृथि, राजर्षि पठर्वा, जाहुष, पृथुश्रवा, राजर्षि पेदु, इष्टाश्व, इष्टरश्मि, मशर्शार, स्वनय, रातहव्य, दुर्योणि, भरत, भरतगण, तृत्सुगण, सहदेव, सोमक, अर्ण, चित्ररथ, त्रसदस्यु, स्वश्व, श्रुतरथ, दुष्यन्त, क्षत्रश्री, प्रस्तोक, वृषभ, वेतसु, अभ्यवर्ती, चयमान, सृञ्जय, शांत, कवि, गाथ, प्रगाथ, याद्व, पाशद्युम्न, अनु, द्रुह्यु, राम, वेन, अरुण, यौवनाश्व, विभिन्दु, आसंग, राजर्षि रुशम, राजर्षि श्यावक, राजर्षि कृप, पाकस्थामा, कशु परशु, तिरिन्दिर, पक्थ, वरु, सहस्रबाहु, वपु ध्वस्र, ययाति, शन्तनु, पृथु आदि आदि। वैदिक ग्रन्थोंमें खोज-ढूंढ़ करने पर कुछ और भी ऋषियों और राजाओंके नाम पाये जा सकते हैं।

ऋषियों और राजाओंके ये नाम ऋग्वेदादिसे दिये गये हैं। परन्तु ये सारे नाम मन्त्रोंमें ही नहीं हैं। बहुतसे नाम सायण-भाष्यसे भी लिये गये हैं। सायणके मतसे उन वेदमन्त्रोंका तात्पर्य इन अप्रकट और परोक्ष नामों और इनकी कथाओंसे ही है।

प्रायः इन सारे नामों और इनकी कथाओंके विशिष्ट विवरण पुराणोंमें आये हैं। इन राजाओंके द्वारा शासित समस्त देशों-प्रदेशों के स्पष्ट विवरण भी पुराणोंमें आये हैं। राजाओंमें वे राजर्षि कहे जाते थे, जो ब्रह्मज्ञानी होते थे।

पशु और पक्षी

ऋग्वेदके १० म मण्डलका १४६वां सूक्त "**अरण्यानी-सूक्त**" कहाता है। इसमें बृहद् वनका बड़ा ही मार्मिक और हृदय-ग्राही वर्णन है। इसमें कुल ६ मन्त्र हैं। प्रत्येक सहृदय कवि इन्हें देखकर प्रभावित होता है। ऋग्वेदके "श्रद्धा-सूक्त" (१० मण्डल, १५१ सूक्त) के अव-

लम्बपर हिन्दीमें "कामायनी" नामका एक महाकाव्य रचा भी जा चुका है।

अब यह देखना है कि इस बृहत् वनमें, अन्य वनोंमें अथवा वैदिक भारतके अन्य स्थानोंमें कैसे पशु और पक्षी रहते थे।

ऋग्वेद आदिमें इन पशु-पक्षियोंका उल्लेख है—गौ, अश्व, मेष, महिष, उष्ट्र, छाग, गर्दभ, हस्ती, कुक्कुर, सिंह, वृष, गौर मृग (वन्य महिष वा Bison), हरिण, कस्तूरी मृग, कृष्णसार मृग, वराह, उलूक, शुक, गृध्र, वृष्ण, शकुन (बड़ा कौवा), श्येन (बाज), वार्तिक (बत्तख), कपिञ्जल (तित्तिर), चक्रवाक, सर्प, मण्डूक, गोधा, वृश्चिक, मत्स्य, अश्वतर (खच्चर)।

वैदिक गृहस्थ अधिकतया गौ, भेंड़ और बकरा पालते थे। तबका बकरा बड़ा होता था; क्योंकि वह रथ भी खींचता था (ऋ. १.१३८ ४)। कुत्ते भी बोझ ढोने और शिकारके काममें आते थे (ऋ.८.४६.२)। लदनीके सिवा गदहे भी रथ खींचते थे। अश्विनीकुमारोंका रथ गदहे खीचते थे (ऋ. १.३४.९)। घोड़े चढ़ने, रथमें जोतने, हल खींचने और बोझ ढोनेके काम आते थे।

गौको अघ्न्या— अवध्या कहा गया है। गायको रुद्रोंकी माता, वसुओंकी पुत्री, आदित्योंकी भगिनी, अदितिस्वरूपा और अमृतका उत्पत्ति-स्थान माना गया है। ऋग्वेद (६. २८) में गौको इन्द्र आदि देवोंके बराबर कहा गया है। यही अठाईसवां सूक्त गोसूक्त है, जिसमें गौकी बड़ी महिमा है। वस्तुतः चारो वेदोंमें गायका बड़ा माहात्म्य कहा गया है। यजुर्वेद (माध्यन्दिन) में गोघातकको प्राण-दण्ड देनेकी आज्ञा दी गयी है। एक स्थान (१३.४३) पर कहा गया है कि 'अदितिस्वरूपा गौकी हिंसा मत करो'—**"गां मा हिंसीरदितिं विराजम्।"** इसके आगे कहा गया है—'हजारों मनुष्योंकी जीवन-रक्षिणी गौको नहीं मारना चाहिये (१३. ४९)।' अथर्ववेदमें भी ऐसे अनेक वचन आये हैं।

ऋग्वेदमें हाथीके लिये हस्त, इभ, वारण आदि शब्द आय हैं। मतंग ऋषिने हाथीको पालतू जानवर बनानेका कार्य सर्व-प्रथम किया था; इसलिये हाथीका एक नाम "मातंग" भी पड़ गया।

ऋग्वेद (८. ५६. २२)में कहा गया है कि पुरोहित वशने राजा पृथुश्रवासे सत्तर हजार घोड़ों, दो हजार ऊँटों, काले रंगकी एक हजार घोड़ियों और तीन अंगोंमें शुभ्र दस हजार गायोंको दानमें पाया था।

इस तरह आर्य लोग पशुओंके लिये बड़े धनी थे—उनके यहां दूध-दहीकी नदी बहती थी। उनके पास सभी ऐश्वर्य और वैभव थे।

वृक्ष और अन्न

ऋग्वेदमें अश्वत्थ, शमी, पलाश, शाल्मली, खदिर, शिंशपा आदिका उल्लेख है। ऐतरेयब्राह्मण (३.३५.४) में वटवृक्षका विवरण है। आम और कटहलका उल्लेख ऋग्वेदमें नहीं है। ईखका नाम आया है। मधुका बड़ा उल्लेख है। जौका और उसके सत्तूका तो अनेक स्थलोंमें वर्णन है। जौ (यव) यज्ञीय अन्न माना गया है। तिल, मूँग, सरसों, ब्रीहि, गोधूम (गेहूँ) का उल्लेख यजुर्वेदमें है। प्रसिद्ध ऐतिहासिक एच. जी. वेल्सके मतसे नौ हजार वर्ष पहले मेसोपोटामिया और एशिया माइनरसे भारतमें गेहूँ आया था। तो क्या ऐतिहासिक कहेंगे कि नौ हजार वर्षसे पहले वह वेद-ग्रंथ बन गया था, जिसमें गेहूँका नाम नहीं है ? परन्तु यूरोपीय और उनके अनुयायी एतद्देशीय ऐतिहासिक तो ऐसा नहीं मानते।

धातु आदि

ऋग्वेदम स्वर्ण, रौप्य, ताम्र, लौह आदिका उल्लेख है। स्त्री, पुरु, दोनों ही आभूषण धारण करते थे। लोहे और तांबेके विविध अस्त्र बनते थे। हिमालय और बाह्लीकमें कीमती रत्न पाये जाते थे। रत्नोंको मणि भी कहा जाता था। मुक्ता (मोती) का वर्णन है। धनी लोग घोड़ोंको मुक्ता-माला पहनाते थे।

निष्कर्ष

संक्षेपमें वैदिक भूगोलका यही विवरण है। इससे विदित होता है कि आर्यावर्त्तके चारों ओर समुद्र था। आर्य-राज्य अफगानिस्तान, बिलोचिस्तान, सिन्ध, राजपूताना, विन्ध्य गिरि, हिमालय और उत्तर प्रदेश (युक्तप्रांत) के पश्चिमी भाग तक फैला था। आर्यावर्त्तमें अनेकानेक नदियां थीं, पर्वत थे, बड़े-बड़े देश, प्रदेश और नगर थे। तपोधन ऋषियों और चक्रवर्ती राजाओंका यहां निवास था। आर्य बड़े प्रतापी योद्धा थे। व सोनेके थालोंमें खाते थे, हजार स्तम्भोंवाले महल बनाते थे और स्वर्णाभूषण तथा मणि-माणिक्य धारण करते थे। कोई दुःखी और दरिद्र नहीं था। सभी आस्तिक, विनीत और सुखैश्वर्यसे सम्पन्न थे। सभी छल, कपट, मद, मत्सरता और प्रवञ्चनासे रहित थे; इसलिये सबकी समयपर मृत्यु होती थी। समयपर वर्षा होती थी; क्योंकि यथाविधि यज्ञ किये जाते थे। आर्योंका ऐहलौकिक और पारलौकिक अभ्युदय चरम सीमापर था। पशु-पक्षी तक सरस-सुखद जीवन बिताते थे। त्याग और तपस्याकी मूर्त्ति ऋषि-महर्षि देश-विदेशमें ज्ञानकी दिव्य और भव्य मन्दाकिनी बहाया करते थे; इसीलिये पाप-ताप और शोक-सन्तापका नाम भी नहीं था।

वैदिक साहित्यके बादके ग्रंथोंमें इन बातोंका बड़े विस्तारसे विवरण दिया गया है। पाणिनिकी अष्टाध्यायीसे ज्ञात होता है कि भारतमें सैकड़ों गण-तन्त्र राज्य हो चुके हैं। अशोकके समय आर्य-राज्य हजार कोससे भी अधिक फैला था। वैदिक राष्ट्रके आदर्शोंको पूर्ण रूपसे जानने और समझनेके लिये वैदिक साहित्यका मन्थन करना चाहिये। स्थानाभावके कारण यहां अधिक नहीं लिखा जा सकता।

द्वाविंश अध्याय

वेद और खगोल

वैदिक साहित्यमें विश्वके तीन विभाग माने गये हैं–पृथ्वी (भूः), अन्तरिक्ष (भुवः) और द्युलोक (स्वः)। पृथ्वीपर मनुष्यादि, अन्तरिक्ष वा वायुलोक पर मेघ, विद्युत् और वायु तथा द्युलोक वा स्वर्गमें सूर्य रहते हैं। निघण्टु (वैदिक कोष) में देवताओंके नाम तीन विभागोंमें दिये गये हैं। प्रथममें पृथ्वीपर रहनेवाले देवता है, द्वितीयमें अन्तरिक्षमें रहनेवाले और तृतीयमें स्वर्गनिवासी देवता हैं। निखिल वैदिक साहित्यमें ऐसा ही लोक-विभाग पाया जाता है।

ऋग्वेद (१०.८९.४) में लिखा है–जैसे अक्षके द्वारा दो चक्र, दृढ़ रूपसे, धृत हैं, वैसे ही इन्द्रने पृथ्वी और द्युलोकको दृढ़ किया है। सूर्यके उदय और अस्तमनके सम्बन्धमें ऋग्वेदके ऐतरेय ब्राह्मणमें कहा गया है कि सूर्यके एक भागमें प्रकाश (दिन) है और दूसरेमें अन्धकार (रात्रि) है। सूर्य जब पूर्वसे पश्चिमकी ओर चलता है तब प्रकाशवाला भाग हमारी तरफ रहता है और अन्धकार वाला भाग ऊपर। इसी लिये हमें दिनमें प्रकाश मिलता है। पश्चिमी आकाशमें पहुँचकर सूर्य अन्धकारवाला अंश हमारी तरफ और प्रकाशवाला अंश देवोंकी तरफ करके पूर्व दिशामें लौट आता है। इसीलिये रात्रिमें पृथ्वी अन्धकारमें रहती हैं। ऋग्वेदके अनेक स्थलों (१. ११५. ५०; ५. ८१. ४; ६. ९. १०.; ७. ८. १०; १०.३७. ३)का ऐसा ही तात्पर्य है।

ऋग्वेदके १म मण्डलके ३५ वें सूक्तमें ग्यारह मन्त्र हैं और सबके सब सूर्यके वर्णनसे पूर्ण हैं। सूर्यका अन्तरिक्षमें भ्रमण, प्रातःसे सायं तक उदय-नियम, राशि-विवरण, सूर्यके कारण चन्द्रमाकी स्थिति, किरणोंसे रोगादिकी निवृत्ति, सूर्यके द्वारा भूलोक और द्युलोकका

प्रकाशन आदि बातें इस एक ही सूक्तसे विदित होती हैं । इस सूक्तके आठवें मन्त्रमें कहा गया विवरण देखिये—

"अष्टौ व्यख्यत् ककुभः पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून् । हिरण्याक्षः सविता देवः आगाद्दधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि ॥"

अर्थात् 'सूर्यने पृथ्वीकी आठों दिशाएँ (चार दिशाएँ और चार उनके कोने) प्रकाशित की हैं । सूर्यने प्राणियोंके तीनों संसारो और सप्त सिन्धुओंको भी प्रकाशित किया है । सोनेकी आंखोंवाले सविता वा सूर्य हव्यदाता यजमानको वरणीय द्रव्य दान देकर यहां आवें ।

इससे विदित होता है कि आर्य ही आठ दिशाओं और सप्त सिन्धुओंके आविष्कारक थे ।

इसी १म मण्डलके ८४वें सूक्तका १५वां मन्त्र है–

"अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् ।

इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥"

अर्थात् 'इस गतिशील चन्द्रमण्डलमें अन्तर्हित जो तेज है, वह आदित्य-किरण ही है, ऐसा जाना ।'

इस मन्त्रपर भाष्य करते हुए सायणाचार्यने निरुक्त (२. ६) उद्धृत किया है—"**आदित्यतः अस्य दीप्तिर्भवति**" अर्थात् सूर्यकी ही किरण चन्द्रमामें प्रदीप्त होती है । इससे तो ज्ञात होता है कि आर्य ही खगोल-विद्याकी इस बातके आदि ज्ञाता हैं ।

वैज्ञानिकोंका मत है कि अपनी अद्भुत शक्तिके कारण सूर्यकी किरणें अनेक रोगोंको विनष्ट कर देती हैं । ऋग्वेदके तीन मन्त्रों (१. ५०. ११–१३) में कहा गया है–'अनुरूप दीप्तिवाले सूर्य आज उदित होकर और उन्नत आकाशमें चढ़कर मेरा हृद्‌रोग वा मानस रोग और हरिमाण (पीतवर्ण) रोग या शरीर-रोग विनष्ट करो । मैं अपने हरिमाण रोगको शुक और सारिका पक्षियोंपर न्यस्त करता हूँ । अपना हरिमाण रोग हरिद्रा वा हरिताल वृक्षपर स्थापित करता हूँ ।

अनिष्टकारी रोगके विनाशके लिये आदित्य समस्त तेजके साथ उदित हुए हैं। मैं इस रोगका विनाश-कर्ता नहीं, सूर्य ही हैं।'

इस सन्दर्भसे विदित होता है कि सूर्योपासनासे सारे शारीरिक और मानसिक रोग विनष्ट हो जाते हैं। सूर्योपासकोंके लिये ये तीनों मन्त्र प्रधान हैं। प्रायः प्रत्येक सूर्योपासक, अपनी आधि-व्याधिकी शान्तिके लिये, इन मन्त्रोंको जपा करता है। सायणाचार्यने लिखा है कि इन मन्त्रोंका जप करनेसे ही प्रस्कण्व ऋषिका चर्मरोग विनष्ट हुआ था। सूर्य-नमस्कारके साथ भी इन मन्त्रोंका जप किया जाता है। प्रो० विलसनने हृद्रोगका अर्थ "Sickness of my heart" और हरिमाणका "Yellowness of my body" किया है।

ऋग्वेद (२. २७. १) में सूर्यके ये छः रूप माने गये हैं–मित्र, अर्यमा, भग, वरुण, दक्ष और अंश। एक स्थल (ऋग्वेद ६.११४.३) पर सूर्यके सात प्रकार माने गये हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मणमें इन आठ सूर्योंका उल्लेख है–धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र और विवस्वान्। शतपथ-ब्राह्मणमें १२ महीनोंके १२ सूर्य माने गये हैं। महाभारत (आदि-पर्व, १२१ अध्याय) में इन द्वादश आदित्योंके द्वादश नाम आये हैं–धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान, पूषा, त्वष्टा, सविता और विष्णु। परन्तु वस्तुतः सूर्य एक ही हैं –कर्म, काल और परिस्थितिके अनुसार ये विविध नाम रखे गये हैं। इस तरह आर्योंको सूर्यके प्रत्येक रूपका पूर्ण ज्ञान था।

ऋग्वेद (१. ५०. ८) का मन्त्र है–

"सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य। शोचिष्केशं विचक्षण॥"

अर्थात् 'दीप्तिमान् और सर्व-प्रकाशक सूर्य, हरित् नामके सात घोड़े (किरणें) रथमें तुम्हें ले जाते हैं। ज्योति वा किरण ही तुम्हारा केश है।'

ऋग्वेदके २. १२. १२ में भी सात किरणोंका उल्लेख है। इसी वेदके १. १६४. २ में सूर्यके सात घोड़ों (किरणों) की बात तो है ही; साथ ही यह भी लिखा है कि घोड़ा (किरण) एक ही है, जो सात नामोंसे सूर्य-रथ ढोता है।

इसी प्रकार ५. ४५.९ में भी सूर्यकी सात किरणोंकी बात है।

ऋग्वेद (१. १२३. ८) में कहा गया है कि 'उषा सूर्यसे ३० योजन आगे रहती है।' इसपर सायणाचार्यने लिखा है—'सूर्य प्रति दिन ५०५९ योजन भ्रमण करते हैं। इस तरह सूर्य, प्रत्येक दण्डमें, ७९ योजन घूमते हैं। चूंकि उषा सूर्यसे ३० योजन पूर्वगामिनी है; इसलिये सूर्योदयसे प्रायः आधा घंटा पहले उषाका उदय मानना चाहिये।' कुछ यूरोपियोंके मतसे सूर्य प्रतिदिन २०००० मील चलते हैं। परन्तु सूर्यकी गति उनके अक्ष वा परिधिमें ही होती है।

ऋग्वेद, १म मण्डल, १६४ सूक्तके दो मन्त्रों (११–१२)में अनेक ज्ञातव्य विषय पाये जाते हैं। वे मंत्र ये हैं–

"द्वादशारं न हि तज्जराय वर्वर्त्ति चक्रं परिद्यामृतस्य।
आपुत्रा अग्ने मिथुनासा अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः॥"

अर्थात् 'सत्यात्मक सूर्यका, बारह अरों, खूँटों वा राशियोंसे युक्त, चक्र स्वर्गके चारों ओर बार बार भ्रमण करता और कभी भी पुराना नहीं होता है। अग्नि, इस चक्रमें पुत्र-स्वरूप होकर सात सौ वीस (३६० दिन और २६० रात्रियां) निवास करते हैं।'

इसके आगेका मन्त्र है–

"पञ्चपादपितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम्।
अथेमे अन्य अपरे विचक्षणं सप्त चक्रे षड़र आहुरर्पितम्॥"

अर्थात् 'पांच पैरों (ऋतुओं) और बारह रूपों (महीनों)से युक्त आदित्य जिस समय द्युलोकके पूर्वार्द्धमें रहते हैं, उस समय उन्हें कोई-

कोई पुरीषी वा जलदाता कहते हैं। दूसरे कोई-कोई छः अरों (ऋतुओं) और सात चक्रोंसे (किरणोंसे) संयुक्त रथपर द्योतमान सूर्यको अर्पित करते हैं, जब कि वह द्युलोकके दूसरे आधेमें रहते हैं।'

यद्यपि ऋतु छः हैं; परन्तु हेमन्त और शिशिरको एक करके उन दिनों "पञ्च ऋतु" कहनेकी भी परिपाटी ी। 'पूर्वार्द्ध' और 'दूसरे आधे' का तात्पर्य सूर्यके दक्षिणायन और उत्तरायणसे है। इस तरह इन दोनों मन्त्रोंसे ही अनेक खगोल-विषय ज्ञात हो जाते हैं।

ऋग्वेद (१.१५५.६) में कालके ये ९४ अंश बताये गये हैं-संवत्सर, दो अयन, पांच ऋतु, बारह मास, चौबीस पक्ष, तीस अहोरात्र, आठ पहर और बारह राशियां।

ऋग्वेद ५.४० के ५ वें मन्त्र में कहा गया है कि 'जब स्वर्भानु (पृथ्वी ?) नामक असुरने तुम्हें (सूर्यको) अन्धकारसे (छायासे ?) ढक लिया था, उस समय सारे भुवन इस तरह दीख रहे थे, जैसे वहांवाले सब लोग अपने-अपने स्थानोंको नहीं जान रहे हैं अर्थात मूढ़ हैं।'

इस मन्त्रमें स्पष्ट ही सूर्य-ग्रहणका उल्लेख है।

ऋग्वेद ७.६० के ३ रे मन्त्रमें कहा गया है कि 'जैसे गोपालक गोसमूहको भली भांति देखता है,वैसे ही सात घोड़ोंको रथमें जोतकर और उदित होकर सूर्य सारे प्राणियों और संसारके सारे स्थानोंको देखते हैं।' इसी प्रकार ७.६६.११ में सूर्य (मित्र, वरुण और अर्यमा) के द्वारा वर्ष, मास और दिनका बनाया जाना भी लिखा है।

७.८७.१ में सूर्यके द्वारा दिनसे रात्रिका अलग किया जाना लिखा है। ९.५४.२ में तीस दिनों और तीस रात्रियोंका उल्लेख है।

ऋग्वेद १.२५का ८ वां मन्त्र है--

"वेद मासो धृत-व्रतो द्वादश प्रजावतः। वेदा य उपजायते॥'

तात्पर्य यह कि 'जो व्रतावलम्बन करके अपने अपने फलोत्पादक

बारह महीनोंको जानते हैं और उत्पन्न होनेवाले तेरहवें मासको भी जानते हैं।'

भाव यह है कि पृथिवीके चारो ओर सूर्यकी गतिसे जो वर्ष-गणना की जाती है, उसमें १२ अमावस्याओंकी गणना करनेसे कई दिन कम हो जाते हैं। इसीलिये सौर और चान्द्र वर्षोंमें सामञ्जस्य करनेके लिये चान्द्र वर्षके प्रति तृतीय वर्षमें एक अधिक मास वा मलिम्लुच रखा जाता है। इस मन्त्रसे विदित होता है कि वैदिक साहित्यमें दोनों वर्ष माने गये हैं और दोनोंका समन्वय भी भली भांति किया गया है। इसके पहलेके मन्त्रसे यह भी जाना जाता है कि आर्यलोग आकाश-चारण और समुद्र-विहरण भी करते थे।

यद्यपि खगोल और भूगोल विषय वैदिक साहित्यके नहीं हैं, तो भी प्रसंगतः वैदिक साहित्यमें इन दोनों विषयोंका उल्लेख पाया जाता है। जो लोग कहते हैं कि वैदिक साहित्यमें खगोलकी बातें नहीं है, उनका उत्तर इस विवरणसे हो जाता है। यह देखकर आश्चर्य होता है कि हजारों वर्ष पहले आर्योंकी कितनी उच्च संस्कृति थी, उनका मस्तिष्क कितना उदात्त था और आर्य कितने अगम्य विषयोंका आविष्कार कर चुके थे।

त्रयोविंश अध्याय

वेद और ज्यौतिष

अनेक विदेशी वेदाभ्यासी और एतद्देशीय वेदाध्यायी कहते हैं कि 'वैदिक आर्योंको न तो सूर्यकी गतिका ज्ञान था, न पृथ्वीकी स्थिरताका पता था। उन्हें न तो अंक-विद्याकी जानकारी थी, न बीजगणितकी और न रेखा-गणितका ही परिज्ञान था।' कोई कहता है, 'आर्योंने ये विद्याएँ अरबवालोंसे सीखी' और किसीके मतसे 'ग्रीकों और रोमनोंसे प्राप्त कीं।' कुछ चाल्डिया और बेबीलोनियासे इन विद्याओंका यहां आना मानते हैं।

यहां इस बातका विचार करना है कि वैदिक आर्य ये विद्याएँ जानते थे या नहीं।

लेखककी धारणा है कि जो लोग केवल दूसरोंकी लिखी वेद-सम्बन्धिनी समालोचनाओं और टीका-टिप्पनियोंपर ही विशेषतः निर्भर रहते हैं, वे ही उक्त विचार-सरणिका अनुधावन करते हैं। परन्तु जो निरुक्त और प्रातिशाख्योंका विधिवत् अध्ययन कर चुके हैं और जिन्हें मूल वैदिक साहित्य समझनेकी क्षमता प्राप्त है, वे ही प्रामाणिक रूपसे वेदोक्त विषयोंपर सम्मति देनेके अधिकारी हैं। ऐसे अनेक अधिकारी विद्वान् तो मानते हैं कि आर्योंको इन सारी विद्याओंका ज्ञान ही नहीं था, वरंच वे ही इन सारी विद्याओंके जनक थे——दूसरोंसे उधार लेनेकी बात तो अलग रहे।

छः वेदांगोंमें एक अंग ज्यौतिष माना गया है (मुण्डकोपनिषद् १. ५)। छान्दोग्योपनिषद् (७. १. २) में ज्यौतिष-विद्या और नक्षत्र-विद्याका विवरण है। शतपथ-ब्राह्मण (२. १. ३. ३) का कहना है कि उत्तरायणमें सूर्य देवोंके और दक्षिणायनमें पितरोंके

अधिपति होते हैं ।' इस तरह सूर्यकी उत्तरायण-दक्षिणायन गतियोंका आर्योंको पूर्ण ज्ञान था । ऋग्वेदके १. २४. १० में सप्तर्षियोंकी गतिका उल्लेख है । मन्त्रमें **'ऋक्षाः'** शब्द आया है, जिसका अर्थ सायणने **'सप्त नक्षत्र'** किया है । ऋच् धातुका अर्थ उज्ज्वल है और इसीसे ऋक्ष शब्द बना है; इसलिये नक्षत्रों और सप्तर्षियों (सप्त ताराओं)का नाम कुछ लोग 'उज्ज्वल भालू' रखे हुए हैं। यूरोपमें भी इन्हें Great Bear कहा जाता है । मैक्समूलरकी भी यही राय है । फलतः आर्योंको नक्षत्रोंकी गतिका ज्ञान था ।

यजुर्वेद (३३. ४३) में एक मन्त्र है–

"आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥"

अर्थात् 'सूर्यदेव अपने आकर्षण-गुणसे मंगलादि लोकों और पृथिवीको अपनी अपनी कक्षामें रखते हुए और उन्हें अपने चारों ओर नचाते हुए तथा स्वर्णके समान चमकीले शरीरसे लोक-लोकान्तरोंको प्रकाशित करते हुए चले जा रहे हैं ।'

यह मन्त्र ऋग्वेद (१.३५.२) में भी है । इससे ज्ञात होता है कि सूर्य अपने ग्रहोपग्रहोंको लिये-दिये भ्रमण कर रहे हैं ।

ऋग्वेदका ही एक दूसरा मन्त्र (८.१२.३०) है–

"यदा सूर्यममुं दिवि शुक्रं ज्योतिरधारयः ।
आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥"

अर्थात् 'इन्द्रदेव, जिस समय तुमने उज्ज्वल-ज्योति सूर्यको आकाशमें स्थापित किया, उसी समय पृथिव्यादि लोकोंको अपनी अपनी कक्षामें नियन्त्रित किया ।'

ऋग्वेदके अगले मन्त्र (१०.१४९. १)में इस विषयका और भी स्पष्ट विवरण है–

"सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णादस्कम्भने सविता द्यामदृंहत् ।"

अर्थात् 'अपने आकर्षणसे सूर्यने पृथिवीको बांधा है। सूर्यने निराधार आकाशमें द्युलोक-स्थित ग्रहोंको भी दृढ़ रूपसे बांध रखा है।'

ऋग्वेदका ही एक मन्त्र और (१०. १८९. १) देखिये—

"आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्स्वः॥"

अर्थात् 'गतिपरायण और तेजस्वी सूर्य उदित होकर अपनी माता पूर्व दिशाका आलिंगन करते हैं। अनन्तर अपने पिता आकाश की परिक्रमा करते हैं।'

इन उद्धरणोंसे यह निर्विवाद रूपसे सिद्ध होता है कि वैदिक ऋषियोंको पृथ्वी आदि ग्रहोंका सूर्यकी परिक्रमा करना पूर्ण रूपसे विदित था। उन्हें इस बातका भी पता था कि स्वयं सूर्य भी स्थिर न रहकर अपने अक्षपर भ्रमण (आवर्त्तन) करते हुए अपने ग्रह-परिवारके साथ आकाशमें किसी निर्दिष्ट स्थान (महासूर्य) की ओर चले जा रहे हैं।

इन प्रमाणोंके रहते हुए भी पृथिवीको सौर जगत्का केन्द्र माननेवाले यवनोंके संसर्गसे और वैदिक ज्ञानके प्रचारके अभावसे भास्कराचार्य, लल्ल, श्रीपति और ब्रह्मगुप्तने तथा संस्कृत-साहित्यके अनेक ग्रन्थकारोंने लिख डाला कि पृथ्वी 'स्थिरा' है!

पहले लिखा जा चुका है कि आर्योंको चान्द्र मास, मलमास आदिका पूर्ण ज्ञान था। उन्हें चान्द्र नक्षत्रोंका भी पूर्ण ज्ञान था। मघा, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनीका उल्लेख ऋग्वेद (१०. ८५. १३) में है। कृष्ण यजुर्वेद, अथर्ववेद, तैत्तिरीय ब्राह्मण आदिमें सभी चान्द्र नक्षत्रोंके नाम हैं।

ज्यौतिष-विद्याके अन्तर्गत अंकगणित, वीजगणित, रेखा-गणित आदिको आर्योंने माना है। इस विद्यामें ईसासे बहुत पहले आर्योंने दक्षता प्राप्त की थी। इस बातका समर्थन बेली, लाप्लास, प्लेफेयर आदि

यूरोपीयोंने भी किया है। हरमन हेकलने तो यह भी लिखा है कि ब्राह्मण ही बीजगणितके आदि रचयिता हैं। वस्तुतः शतोत्तर गणना और शून्य तो संसारको आर्योकी ही देन हैं।

फिनिशियन रीतिमें ९ के लिये नौ लकीरें खींची जाती थीं और ९० के लिये अंग्रेजीके चार 'एच 'अक्षर लिखे जाते थे। यूनानी लोगोंकी सबसे बड़ी संख्याका नाम Myriad (मिरियड) था। रोमवालोंकी सबसे बड़ी संख्या Mille (मिल्ली) थी। मिरियड दस हजार और मिल्ली एक हजारको कहा जाता है। इस विद्यामें ग्रीक और रोमन आर्योंके शिष्यसे हैं।

तैत्तिरीय-संहिता, मैत्रायणी-संहिता, काठकसंहिता आदिमें शतोत्तर गणनाका उल्लेख है। ऋग्वेद (८. ५६. २२) में कहा गया है—"मैंने साठ हजार और अयुत (दस हजार) अश्वोंको प्राप्त किया है।" यजुर्वेद (१७. २) में १ पर १२ शून्य देकर दस खरब तककी संख्याका उल्लेख है!

अनुयोगद्वारसूत्र (१०० बी. सी.) में तो असंख्य तक गणना की गयी है। इसमें दसपर एक सौ चालीस बिन्दुओंको रखकर संख्या कही गयी है! पिंगलके छन्दःसूत्रमें (२०० बी. सी.) में भी शून्यका पूरा उपयोग किया गया है। जिनभद्रने लिखा है कि 'संख्याओंको लिखनेमें शून्यका प्रयोग किया जाता था।' सिद्धसेनने "तत्त्वार्थाधिगमसूत्र"की टीकामें, बड़ी संखाएँ लिखनेमें, शून्यका उपयोग दिखाया है। यजुर्वेदमें शत, सहस्र, अयुत, नियुत, प्रयुत, अर्बुद, न्यर्बुद, समुद्र, अन्त, परार्द्ध तकका उल्लेख है। इन सारी संख्याओंमें शून्यका प्रयोग किया जाता है। संस्कृतके अंकगणित और बीजगणितके ग्रन्थोंमें तो शून्यके सम्बन्धमें अध्याय और परिच्छेद तक पाये जाते हैं।

यूरोपमें छठी शताब्दीसे ही आर्य-अंकोंकी चर्चा चल पड़ी थी। आठवीं शतीमें अरबके देशोंने इसे अपनाया। पिसाके लियोनार्डोने, १३ वीं

शतीमें, मिश्र, सीरिया, यूनान, टली आदि देशोंकी अंक-विद्याका अध्ययन कर निश्चय किया कि 'हिन्दुओंकी अंक-विद्या-प्रणाली सर्वोत्तम है।' उन्होंने इस प्रणालीका यूरोपमें प्रचार करनेका बड़ा प्रयत्न किया। १५ वीं शतीसे १७ वीं शतीतक यूरोपने इसी आर्य-प्रणालीको लिया। इन दिनों इन्हीं वैदिक अंकोंको "अन्ताराष्ट्रिय रूपमें भारतीय अंक" कह कर भारतके नेताओंने राजाभाषा हिन्दीमें ले लेनेकी घोषणा की है।

वर्गमूल, घनमूल आदिके आविष्कारक भी आर्यभट्ट, भास्कराचार्य आदि थे। अरबके इब्न बहशीय, जहीज, अबल-अल-मसूदी आदिने भी इस बातको अंगीकार किया है।

आर्यभट्ट, भास्कराचार्य आदिने ही बींजगणितका भी आविष्कार किया है। वर्ग-समीकरण, उच्च आघात आदिके जन्मदाता आर्य ही थे।

ज्यामितिका आदि जनक वैदिक साहित्य है। कल्पसूत्रोंके अन्तर्गत 'शुल्व-सूत्रों'में यज्ञ-वेदियोंकी रचना बतायी गयी है। विविध यज्ञोंमें विभिन्न प्रकारकी वेदियां बनायी जाती हैं। इस तरह शुल्वसूत्रोंम भुजासे कर्णका सम्बन्ध, वर्गके समान आयत, वर्गके समान वृत्त आदि आदि का पूरा विचार किया गया है। आधुनिक विद्वान् इन सूत्रोंका निर्माण-काल १००० बी. सी. मानते हैं। परन्तु एक हजार बी. सी. में तो संसारके अधिकांश देशोंके निवासी जंगली थे—घोर अज्ञानान्धकारमें डूबे हुए थे। उन्हें वैदिक आर्योंने ही प्रथम प्रकाश दिया। बेली साहबका विचार है कि 'ईसाके हजारों वर्ष पूर्व आर्य (हिन्दू) वैज्ञानिक ग्रह-गणना करते थे।' फ्रेंच विद्वान् लाप्लासका मत है कि 'ईसाके ३०० वर्ष पहले हिन्दू ग्रहोंका स्थान १'' (१ विकला) तक निकाल लेते थे।' प्लेफेयर भी इस मतसे सहमत हैं।

प्रसिद्ध विद्वान् कोलब्रूकने लिखा है कि 'क्रान्ति-मण्डल और पृथिवीकी अयनांशगतिके आदि जनक आर्य या हिन्दू हैं।'

चतुर्विंश अध्याय

वैदिक राष्ट्रकी रूप-रेखा

यों तो साम्राज्य, स्वराज्य, राज्य, महाराज्य आदि शब्द वैदिक साहित्य की ही देन हे; परन्तु उसकी सबसे बड़ी देन 'राष्ट्र' शब्द है। वैदिक ग्रन्थोंमें राष्ट्र शब्दका अत्यधिक उल्लेख है। स्वयं ऋग्वेदमें यह शब्द अनेकानेक बार आया है। इस शब्दमें आर्योंकी बड़ी भावना, बड़ी मार्मिकता और प्रोज्ज्वल अनुभूति निबद्ध है। इस शब्दमें देश, 'राज्य', जाति और संस्कृति निहित है।

राष्ट्रके अभ्युदयके लिये आर्य अपना सर्वस्व देनेके लिये तैयार रहते थे और राष्ट्रकी रक्षाके लिये अपने प्राणतकका हवन करनेको आर्य सदा सन्नद्ध रहते थे। उनकी प्रबल अभिलाषा थी—'वरुण राष्ट्रको अविचल करें, बृहस्पति राष्ट्रको स्थिर करें, इन्द्र राष्ट्रको सुदृढ़ करें और अग्निदेव राष्ट्रको निश्चल रूपसे धारण करें'—

"ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः।
ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम्॥"

ऋग्वेद १०.१७३.५

आर्योंकी एकमात्र यही कामना थी—

" आराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्।"

यजुर्वेद २२.२२

(हमारे राष्ट्रमें क्षत्रिय वीर, धनुर्धर, लक्ष्यवेधी और महारथी हों।)

आर्योंकी उत्कट उत्कण्ठा थी—

"वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः।" यजुर्वेद ९.२३

(अपने राष्ट्रमें नेता बनकर हम जागरण-शील रहें।) आर्योंका दृढ़ विश्वास था—

"ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति।"

अथर्ववेद ५.१.७

(ब्रह्मचर्य-रूप तपके ही बलसे राजा राष्ट्रकी रक्षा कर सकता है।)

वैदिक साहित्यसे लेकर स्मृति, रामायण, महाभारत, पुराण, तन्त्रतकमें 'राष्ट्र'की महत्ता बतायी गयी है।

आर्य इस शब्दके इतने प्रेमी थे कि उन्होंने इसे विदेशोंतकमें प्रचार द्वारा पहुँचाया। इन दिनों श्याम (थाईलैंड) के बच्चे तक अपनी थाई भाषा में, बड़े प्रेम और श्रद्धासे, राष्ट्र, राष्ट्रपाल, राष्ट्रमन्त्री, सहराष्ट्र, सुराष्ट्र, प्रजाराष्ट्र आदि शब्दोंका व्यवहार किया करते हैं।

यह कहा जा चुका है कि राष्ट्र-रक्षाके लिये आर्य प्राणतक देनेको उद्यत रहते थे। आर्य-प्रजा राजासे बार-बार यही आग्रह करती थी—

"अभिवृत्य सपत्नानभि या नो अरातयः।
अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो न इरस्यति॥"

ऋग्वेद १०.१७४.२

(जो विपक्षी हैं, जो हमारे हिंसक शत्रु हैं, जो सेना लेकर हमारे राष्ट्र में युद्ध करनेको आते हैं और जो हमसे द्वेष करते हैं, राजन्, उन्हें अभिभूत करो।)

अभिषेक कर लेनेके अनन्तर राजासे आर्य कहते थे—

"आ त्वाहार्षमन्तरेधि ध्रुवस्तिष्ठा विचाचलिः।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधि भ्रशत्॥"

ऋग्वेद १०.१७३.१

(राजन्, तुम्हें राष्ट्रपति बनाया गया। तुम इस देशके प्रभु हुए हो। अटल, अविचल और स्थिर रहो। प्रजा (विश्) तुम्हें चाहें। तुम्हारा राष्ट्र नष्ट न होने पावे।)

"इहैवैधि माप च्योष्ठाः पर्वत इवाविचाचलिः।
इन्द्रा इवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमुधारय॥"

ऋग्वेद १०.१७३.२

(तुम यहीं पर्वतके समान अविचल होकर रहो। राज्यच्युत नहीं होना। इन्द्रके सदृश निश्चल होकर यहां रहो। यहां राष्ट्रको धारण करो।)

"अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम्।
अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः॥"

अथर्ववेद १२.१.५४

(मैं अपनी मातृभूमिके लिये और उसके दुःख-विमोचनके लिये सब प्रकारके कष्ट सहनेको तैयार हूँ—वे कष्ट जिस ओरसे आवें, चाहे जिस समय आवें, मुझे चिन्ता नहीं।)

"यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा।
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान् हन्मि दोहतः॥"

अथर्ववेद १२.१.५८

(अपनी मातृभूमिके सम्बन्धमें जो कहता हूँ, वह उसकी सहायताके लिये है। मैं ज्योतिःपूर्ण, वर्चस्वशाली और बुद्धियुक्त होकर मातृभूमिका दोहन करनेवाले शत्रुओंका विनाश करता हूँ।)

ऋग्वेद, १०म मण्डल, १७३ वें सूक्तसे तथा अथर्ववेदके ३.५.६ और ६.८७.१ से स्पष्ट विदित होता है कि राजा वा राष्ट्रपतिका चुनाव होता था, कोई जन्मना राजा कदाचित् ही होता था। अथर्वके ३.४ से ज्ञात होता है कि प्रजाके विरुद्ध राजा राज्य नहीं कर सकता था और मनमानी करने पर राजा पद-च्युत कर दिया जाता था। अथर्वके एक मन्त्र (३.३.६) से यह भी विदित होता है कि राष्ट्र-सभाके बहुमतके अनुसार ही राजाका निर्वाचन होता था।

वैदिक साहित्यमें जनताको 'विशः (विश्का बहुवचन) कहा जाता था। जनता ही अपनेमेंसे योग्यतम व्यक्तिको राजा चुनती थी, जिसे

मन्त्रोंमें 'विश्पति' कहा गया है। यूरोपीय वेदाभ्यासी कहते हैं कि 'विशः अपनेको सजात मानते थे और अपने राजाको पितामहकी तरह। आर्योंकी राज्य-संस्था पितामह-तन्त्र (Patriarchal) ही थी।' परन्तु वैदिक राज्य-व्यवस्थाके अनेक रूप थे, जिन्हें आगे लिखा जायगा। केवल पितामह-तन्त्रके प्रचलनका कोई ठोस प्रमाण नहीं है। जनताकी प्रत्येक टुकड़ी 'ग्राम' कहलाती थी। ग्रामका अर्थ समुदाय है। प्रत्येक ग्रामका सामाजिक संघटन था। ग्रामका नेता 'ग्रामणी' कहलाता था। अपने ऊपर विपत्ति आनेपर अर्थात् अपनी रक्षाके लिये वा आक्रमणके लिये विशःके विविध ग्राम एकत्र होते थे। इसी एकत्रीकरणका नाम "**संग्राम**" पड़ा। पीछे यही "संग्राम" युद्धके अर्थमें रूढ़ हो गया।

संग्राममें स्थल-सेना और रथारोहिणी सेना होती थी। पदातिक अपना अपना शस्त्रास्त्र लाते थे। रथी अपने रथपर आते थे। धनुष्, वाण, भाला, बरछा, कृपाण, फरसा, मुद्गर आदिका युद्धमें बाहुल्य रहता था। योद्धा सोने और लोहेके कवच पहनकर रण-भूमिमें उतरते थे। वाणोंकी अनी (शल्य) धातुकी होती थी। विषधर वाण भी कभी-कभी काममें लाये जाते थे। धनुर्वाणके आर्य बड़े प्रशंसक थे। यजुर्वेद (२९.३९) में कहा गया है—

'धनुष्से हम गौएँ जीतें, धनुष्से युद्ध जीतें, धनुष्से तीक्ष्ण समर जीतें। धनुष् शत्रुकी कामनाएँ कुचलता है। धनुष्से हम सारी दिशाएँ जीत डालें।'

ठीक इसी आशयका मन्त्र ऋग्वेद, ६ मण्डल, ७५ सूक्तका दूसरा मन्त्र भी है। इस ७५ वें सूक्तके १९ मन्त्रोंमें रणांगणका और शस्त्रास्त्रोंका बड़ा साहसिक और मार्मिक वर्णन है। ५ वां मन्त्र कहता है—

'यह तूणीर अनेक वाणोंका पिता है। कितने ही वाण इसके पुत्र हैं। वाण निकालनेके समय यह तूणीर 'त्रिश्चा' शब्द करता है। यह योद्धा के पृष्ठ-देशमें निबद्ध रहकर युद्धकालमें वाणोंका प्रसव करता हुआ सारी सेनाको जीत डालता है।'

७ वां मन्त्र ऐसा विवरण देता है–

'घोड़े टापोंसे धूलि उड़ाते हुए और रथके साथ सवेग जाते हुए हिन-हिनाते हैं। घोड़े पलायन न करके हिंसक शत्रुओंको टापोंसे पीटते हैं।'

'वाण शोभन पंख धारण करता है। इसके दांत मृग-शृंग हैं। यह ज्या वा तांतसे भली भांति बद्ध है। यह प्रेरित होकर पतित होता है।' (११ वां मन्त्र)।

'वाण, हमें परिवर्द्धित करो। हमारा शरीर पाषाणकी तरह हो।' (१२ वां मन्त्र)

'कशा (चाबुक), ज्ञानी सारथि तुम्हारे द्वारा अश्वोंके ऊरु और जघन में मारते हैं। संग्राममें तुम अश्वोंको प्रेरित करो।' (१३ वां मन्त्र)

'हस्तघ्न' (ज्याके आघातसे हाथको बजानेके लिये बॅधा हुआ चर्म) ज्याके आघातका निवारण करता हुआ सर्पकी तरह शरीरके द्वारा प्रकोष्ठ (जानुसे मणिबन्धतक) को परिवेष्टित करता है, सारे ज्ञातव्य विषयोंको जानता है और पौरुषशाली होकर चारों ओरसे रक्षा करता है।' (१४ वां मन्त्र)

'जो विषाक्त है, जिसका अग्रभाग हिंसक और जिसका मुख लौहमय है, उस वाण-देवताको नमस्कार।' (१५ वां मन्त्र)

'मन्त्र द्वारा तेज किये गये और हिंसा-परायण वाण, तुम छोड़े जाकर गिरो, जाओ और शत्रुओंपर पड़ जाओ। किसी भी शत्रुको जीते-जी नहीं छोड़ना।' (१६ वां मन्त्र)

यह सारा सूक्त देखनेपर आर्योंकी समरभूमिकी सारी 'भूमिका' सामने नाचने लगती हैं। इस संग्रामका नेता राजा होता था। पहले ही मन्त्रमें कहा गया है–

'युद्ध छिड़ जानेपर राजा जिस समय लौहमय कवच पहनकर जाता है, उस समय मालूम पड़ता है कि वह साक्षात् मेघ है।'

समूचा सूक्त पढ़ जानेपर आर्य-जीवनकी एक मार्मिक झांकी मिलती है। यह सूक्त कण्ठस्थ करने योग्य है। वस्तुतः यह समस्त सूक्त युद्ध-भूमिका वीर-गान है; प्रत्येक मन्त्रमें योद्धा अपने शस्त्रसे बातें करता और प्रेरणा प्राप्त करता है।

आर्योंमें आपसमें तो बहुत कम, परन्तु दासों और दस्युओंके साथ बहुत युद्ध होते थे। दास अनार्य और जंगली थे। वे काले (**कृष्णत्वक्**) और चिपटी नाकवाले (**अनासः, निनीसाः**) थे। उनकी बोली भी 'अव्यक्त' होती थी। आर्य गोरे रंग, उभरे माथे, नुकीली नाक और स्पष्ट ठोड़ीके थे। आर्य-अनार्य-युद्धको ही कुछ लोग "देवासुर-संग्राम" कहते हैं।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि राजाको विशः वा जनता चुनती थी। परन्तु कभी-कभी राजाके उत्तराधिकारी भी राजा बनाये जाते थे। ऐसे लोगोंकी राजा बननेकी विधिवत् स्वीकृति विशः ही देते थे। इनकी स्वीकृति वा 'वरण' होनेके बाद ही किसी भी राजाका अभिषेक होता था और वह राज-पदका अधिकारी होता था। 'वरण'के बाद राजा देशकी रक्षा और अभ्युदय करनेके लिये 'प्रतिज्ञा' करता था। इस प्रतिज्ञाके विपरीत आचरण करनेपर राजाको पद-च्युत कर दिया जाता था। राजा को राज्यके रूपमें थाती सौंपी जाती थी।

विशःकी एक समिति होती थी, जिसके हाथमें राज्यकी बागडोर रहती थी। समिति चाहे जैसे राजाको नचाती थी। समितिका असन्तोष राजाके लिये काल था। वस्तुतः राजाका चुनाव, पद-च्युति, पुनर्वरण आदि समिति ही करती थी। राज्यके सारे प्रश्नोंपर विचार करना वा निर्णय करना और राज्यकी नीति स्थिर करना समितिके ही काम थे। राजनीतिके अतिरिक्त सामाजिक और अन्य सामुदायिक विषयोंका भी विवेचन समिति करती थी। समितिका सारा विवाद बड़ी ही शान्तिके

साथ होता था। प्रत्येक सदस्य अपना मत देनेमें स्वतन्त्र था। हां, वक्ता लोग अपने वाक्पाटवसे सदस्योंको अपनी ओर मिलानेकी पूरी चेष्टा करते थे। समितिका एक 'पति' (**'ईशान'**) होता था। राजा भी समिति में जाता था।

समितिमें ग्रामणी, सूत (सारथि), रथकार और कर्मकार (हथियार बनानेवाले) अवश्य रहते थे। समितिके आधार ग्राम थे। समितिमें प्रत्येक ग्रामका प्रतिनिधित्व रहता था या प्रत्येक ग्रामके सभी वयस्क रहते थे, इसका ठीक-ठीक उल्लेख नहीं मिलता।

समितिके सिवा **'सभा'** नामकी संस्था भी थी। कदाचित् सभा कुछ चुने हुए लोगोंकी छोटी-सी संस्था थी और समिति सभी विशःकी संस्था थी। कुछ लोगोंका मत है कि सभा प्रत्येक ग्रामके लोगोंकी संस्था थी। सभामें वृद्ध, युवा—सभी होते थे। अन्य कार्योंके अतिरिक्त सभामें मनोरंजनकी बातें भी होती थीं—यह गोष्ठीका भी काम देती थी। पशु-पालनकी चर्चा सभाका विशेष कार्य था। न्यायालयका कार्य भी सभा ही करती थी।

इन दोनोंके अतिरिक्त युद्धार्थ 'सेना' रहती थी। देश-रक्षाका कार्य विशेषतः इसीके जिम्मे था।

'विदथ' नामकी एक चौथी संस्था भी थी, जो यज्ञ-यागादि-विषयक शुद्ध धार्मिक संस्था थी।

राजाका अभिषेक-सम्बन्धी क्रिया-कलाप बड़ा विशद होता था। राजा को राजा बनानेवाले (**'राजानो राजकृतः'**) मुख्य राज्याधिकारी पुरोहित, सेनापति और ग्रामणी आदि थे। अभिषेकके समय सूत, रथकार, कर्मकार, ग्रामणी, पुरोहित, सेनापति आदि एकत्र होकर राजाको पलाश वृक्षकी एक शाखा देते थे। शाखाका नाम **'पर्ण'** और **'मणि'** था। यही राज्यकी थातीका सांकेतिक चिन्ह था। 'मणि' देनेवाले **'रत्नी'** कहलाते थे। भावी

राजा राजसूय-यज्ञ करता था, जिसमें प्रजाके प्रतिनिधि 'रत्नियों'की पूजा करता था। पश्चात् 'पृथ्वी माता'से अनुमति मांगता था। अभिषेक मिश्रित जलसे किया जाता था। गंगा, सरस्वती आदि नदियों और राजाके अपने ग्रामके एक जलाशयका जल मिलानेसे मिश्रित जल कहलाता था। अनन्तर राजाको किरीट, मुकुट आदि पहनाये जाते थे। सभी कार्योंके वेद-मन्त्रोंसे सम्पन्न हो जानेपर अभिषेक हो जानेकी घोषणा (**'आवित्'**) की जाती थी।

अन्तको राजा प्रतिज्ञा करता था कि "यदि मैं प्रजाका द्रोह करूँ, तो अपने जीवन, अपने पुण्य-फल, अपनी सन्तान आदि सबसे वंचित किया जाऊँ।" शपथके अनन्तर बाघकी छाल बिछाये हुए तख्तपर राजा चढ़ता था और पुरोहित उसके ऊपर मन्त्राभिषिक्त जल छिड़कते हुए कहते थे—"देवताओ, अमुक बापके बेटे और अमुक विशःके अमुक राजाको राज-शक्ति ('क्षत्र') के लिये दृढ़ बनाओ और जन-राज्यके लिये इसे शत्रु-रहित करो।"

पुनः पुरोहित राजासे कहते—'यह राज्य तुम्हें कृषिके लिये, रक्षा ('क्षेम') के लिये, समृद्धिके लिये और पुष्टिके लिये दिया गया। तुम इसके संचालक ('यन्ता'), नियामक ('यमन') और ध्रुव धारण-कर्त्ता हो।' इसके बाद ही राज्यकी उक्त थाती राजाको सौंपी जाती थी।

पश्चात् राजाकी पीठपर दण्डसे हल्की चोट की जाती थी। यह इसलिये कि 'राजा भी दण्डसे रहित नहीं है।' अनेक छोटी छोटी क्रियाएँ भी होती थीं। अनन्तर राजा पृथ्वी माताको नमस्कार करता और राजाको अन्य सब नमस्कार करते थे। सर्वान्तमें राजाको तलवार दी जाती थी और वह सबके सामने तलवारको फिराकर सबका सहयोग मांगता था।

इस अभिषेकके द्वारा राजाके ऊपर एक बड़ा उत्तरदायित्व पड़ता था, जिसे निभानेके लिये राजा विशःसे 'कर' लेनेका अधिकारी हो जाता था।

परन्तु सर्वत्र और सदा राजा ही 'विश्पति' वा 'विशांपति' नहीं होता था। अनेक बार अनेक जन-राज्योंका शासन उक्त समिति करती थी।

ब्राह्मण-ग्रन्थमें इन आठ प्रकारके राज्योंका उल्लेख है–

"स्वस्ति। साम्राज्यं, भौज्यं, स्वाराज्यं, वैराज्यं, पारमेष्ठ्यं राज्यं, महाराज्यं, आधिपत्यमयं, समन्तपर्यायी स्यात्; सार्वभौमः सार्वायुषः आन्ताद् आपरार्द्धात्; पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकराड् इति।"

(ऐतरेय-ब्राह्मण, ८ अध्याय)

१. इनमें पहला **साम्राज्य** है। वर्त्तमान साम्राज्यसे यह बहुत भिन्न था। अत्याचार और अन्यायको मिटानेके लिये दूसरोंको आर्य लोग अवश्य परास्त करते थे। परास्त करके वहांके किसी योग्यतम पुरुषको राज्य सौंपकर उसे माण्डलिक बना लेते थे। साथ ही अपना विधान भी वहां लागू कर देते थे। बस, इतना ही आर्योंका साम्राज्य था। वे न तो पराजित राज्यको लूटते थे, न आग लगाते थे। रामचन्द्रजीने भी अत्याचारी रावण को पराजित किया था; परन्तु लंकाका लूटना और आग लगाना तो दूर रहे, लंकाके भीतर रामजी गये तक नहीं! विभीषणको माण्डलिक राजा बनाकर और आर्य-विधान देकर अयोध्या चले आये।

२. दूसरा **भौज्य** था। यह प्राकृतिक सीमावाला होता था। जैसे इन दिनों ब्रिटेन है। वह चारो ओरसे जलसे घिरा हुआ है। भौज्यमें यह नियम था कि 'प्राकृतिक सीमामें बँधे हुए देशके ऊपर ही शासक राज्य करें, दूसरों पर आक्रमण न करें।' भारत भी भौज्य था; परन्तु पाकिस्तान बन जानेके कारण ऐसा नहीं रहा। भारतके शासक दूसरे देशकी केवल बलसे नहीं, धर्मसे विजय करते थे। विजित देशके साथ वैसा ही व्यवहार किया जाता था, जैसा श्रीरामजीने लंकाके प्रति किया था।

३. तीसरा **स्वाराज्य** या **स्वराज्य** था। इसमें आत्मशुद्धिपर विशेष जोर दिया जाता था। यम, नियमका पालन निष्काम होकर करना पड़ता था। वैदिक स्वराज्यमें अधिकार और राज्य-प्रसारकी वासना नहीं थी—चोरबाजारी, भ्रष्टाचारका तो नामतक नहीं था।

४. चौथे **वैराज्यमें** राजा नहीं रहता था। सारी जाति मिलकर नियम बनाती और शासन करती थी। यह शासन एक छोटेसे दायरेमें ही चल सकता था। इसमें कोई एक विशेष पुरुष शासन-भार नहीं संभालता था।

५. पांचवें **पारमेष्ठ्य राज्यका** तात्पर्य परमेश्वर-राज्यसे है। इसे ही इन दिनों राम-राज्य कहा जा रहा है। इसमें मानवीय दोषोंका सुधार किया जाता है। सबको परमेश्वरकी समान सन्तान मानकर सबको समानाधिकार दिया जाता है। परमेश्वरको सर्वत्र सतत उपस्थित मानकर शासक शासन करते हैं। इसलिये इसे आदर्श राज्य माना जाता है। इसमें दोष आनेकी कम सम्भावना रहती है।

६. **महाराज्यमें** कई छोटे-छोटे राज्य मिले होते थे। यह संघ-राज्य की तरह था। यथेष्ट शक्तिशाली होता था। सभी सम्मिलित होकर शासन-विधान बनाते थे; शासनमें सभी लघु राज्योंका समान अधिकार रहता था।

७. सातवां **आधिपत्यमय** राज्य था। अधिपति ही इसमें सर्वेसर्वा था। उसीके बनाये नियम इसमें चलते थे। राजकर्मचारियोंकी विशेष शक्ति रहती थी। परन्तु आजकलकी दुनियामें फैली नौकरशाही वा 'ब्यूरोक्रसी'से यह राज्य भिन्न था। इसमें ऐसे दोष नहीं आ सके थे।

८. अन्तिम आठवां **समन्तपर्यायी** राज्य कहा गया है। 'सामन्त' माण्डलिक राजाओंको कहा जाता है। किसी बड़े शासकके अधीन माण्डलिक होते हैं। कई सूर्यवंशी शासकों (भरत, राम आदि) के अधीन सामन्त-राज्य थे; परन्तु मध्ययुगीन सामन्त-राज्योंसे वे भिन्न थे। उनमें निरंकुशता नहीं थी।

इन आठों राज्योंके रहते भी वैदिक आर्योंका प्रख्यात और प्रिय राज्य '**जन-राज्य**' वा '**गण-राज्य**' (Republic) ही था। इसे **जान-राज्य** भी कहा जाता था। यह राज्य **सर्व-सम्मति वा बहु-मत**

से संचालित राज्य था। इसका विवरण हम पहले दे आये हैं। इसीके लिये ऋषि और विशः लालायित रहते थे—

"व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये।" ऋग्वेद ५.६६.६

(सुविस्तीर्ण और बहुमतसे रक्षित स्वराज्य (अपने राज्य) की भलाईके लिये हम यत्न करते रहेंगे।)

पञ्चविंश अध्याय

वैदिक संस्कृतिकी व्यापकता

क्लोपीडिया ऑव रिलिजन ऐंड एथिक्स" (भाग ७, जिल्द २) में किग साहबने लिखा है—'प्राचीन पोलिनेशियन गाथाओंमें वैदिक भावोंका आभास मिलता है। स्वर्ग-नरक, पृथ्वी-आकाश और लोक-परलोकके सम्बन्धमें पोलिनेशियावालोंके विचार पढ़नेसे ज्ञात होता है, मानो वहांके द्वीप-द्वीपसे प्रशान्त महासागरके जलमें वैदिक मन्त्र प्रति-ध्वनित हो रहे हैं।' डा० रैंडीने भी अपने "पोलिनेशियन रिलिजन"में पोलिनेशियाकी कितनी ही गाथाओंका अनुवाद करके दिखाया है कि उनमें वैदिक भावोंसे कितनी समानता है।

इतना ही नहीं, जिन बेबीलोनिया और चाल्डियासे वेदोंमें 'उधार' शब्द आनेकी बात कही जाती है, वे भी वैदिक संस्कृतिके प्रभावके नीचे थे। बेबीलोनिया (बाबिलन)को आर्य लोग बभ्रु कहते थे और बेबीलोनि-यनको वाभ्रव्य। अपने "Aryan witness" में रेवरेण्ड के० एम० बनर्जीने सिद्ध किया है कि 'ऋग्वेदका '**बल**' (असुर) ही बेबीलोनियाका बेल था'—यह बात पहले भी लिखी गयी है। पहले यह भी कहा गया है कि चाल्डियावालोंके अपने देश (मेसोपोटामिया)के बोगाजकूई नामक स्थानमें जर्मन पुरातत्त्ववेत्ता ह्यूगो विन्करने खोदाई करायी थी। इस उत्खननमें उन्हें एक ऐसा अभिलेख मिला था, जिसमें 'मित्तनी' और 'हिताइत' नामकी दो जातियोंने एक ऐसा सन्धिपत्र लिखा था, जिसमें इन्द्र, वरुण, अर्यमा, पूषा आदि वैदिक देवताओंको साक्षी माना गया है। इस अभिलेख ('वा शिलालेख') का काल उन्होंने १५०० बी० सी० अर्थात्

ईसासे डेढ़ हजार वर्ष पहले माना है। इसका निष्कर्ष यह है कि आजसे साढ़े तीन हजार वर्षसे भी पहले चाल्डिया ही क्यों, सारा मध्य एशिया वैदिक संस्कृतिका शिष्य था, अनुयायी था, ऋणी था और वहांकी प्रतिष्ठित जातियां वैदिक धर्मके सामने सिर झुकाती थीं। वहांकी फिनिशियन जाति (जिसे आर्य 'पणि' कहते थे) वरुणकी परम भक्त थी—उनके घर-घरमें वरुण-पूजा होती थी। हिन्दूकुश, काकेशस, ईरान, यूरोप आदिमें भी हिन्दू संस्कृतिके चिह्न पाये जाते हैं और हिन्दूधर्मका प्रभाव देखा जाता है।

थियासाफिकल सोसाइटीकी जन्मदात्री मैडम ब्लावस्कीने तो स्पष्ट ही लिखा है कि 'आर्यधर्म संसारका आदि धर्म है। ऋषि लोग भी इस धर्मके प्रचारक थे, प्रवर्त्तक नहीं। इसीसे क्रमशः पारसी, यहूदी, ईसाई और मुसलमानधर्म (इस्लाम) निकले हैं।' विश्व-प्रसिद्ध लेखक **रोमाँ रोलांने** तो बड़ी दृढ़ताके साथ लिखा है—'मैंने यूरोप और एशियाके सभी धर्मोका अध्ययन किया है; परन्तु उन सबमें मुझे हिन्दूधर्म ही श्रेष्ठ दिखाई दिया। मेरा विश्वास है कि एक दिन इसके सामने संसारको सिर झुकाना होगा।'

धर्मसे लेकर संस्कृतिके प्रत्येक क्षेत्रमें निष्पक्ष विदेशियोंने हिन्दुओंका लोहा माना है। पोलैंडकी विदुषी **दिनोवास्काने** लिखा है—'गहराईमें पैठा हुआ समस्त प्राणियोंका एकात्म-बोध हिन्दुओंमें लक्षित होता है।' आठवीं सदीका प्रसिद्ध विद्वान् '**अल्जहोम**' हिन्दू संस्कृतिपर मुग्ध है। उसने लिखा है—'ध्यानकी प्रणालीका जन्म हिन्दुओंने ही दिया है। ज्यौतिष, गणित, आयुर्वेद और अन्य विद्याओंमें हिन्दू बढ़े हुए हैं। प्रतिमा-निर्माण, चित्र-लेखन, वास्तुकला आदिको हिन्दुओंने पूर्णता तक पहुँचा दिया है। उनके पास काव्य, दर्शन, साहित्य तथा नैतिक शास्त्रोंका संग्रह है।'

संसारके प्राचीन धर्मोंपर हिन्दूधर्मके प्रभावकी बातें पहले सप्रमाण लिखी जा चुकी हैं। यहां अधिक उद्धरण देनेका न तो स्थल है और न आवश्यकता ही। मुख्य बात यह है कि भारतसे पश्चिमके देशोंसे भी अधिक भारतसे पूर्वके देश श्याम, मलाया, मलक्का, हिन्दचीन, कम्बोडिया, जावा,

बाली, सुमात्रा, फिलीपाइन, चीन, जापान तथा अमेरिकामें वैदिक धर्म और संस्कृतिके अनेकानेक प्रामाणिक चिन्ह पाये जाते हैं। किसी-किसी देशमें तो भारतके किसी-किसी प्रान्त (वा राज्य) से भी अधिक वैदिक संस्कृतिके चिन्ह पाये जाते हैं।

रैंगोजिनने लिखा है–"ऋग्वेदका समाज बड़ी सादगी (निष्कपटता) और सुन्दरताका था।" इसी सादगी-सुन्दरताका दान देकर आर्योंको विश्व को आदर्श बनाना था। उनका सिद्धान्त ही था–"कृणुध्व विश्वमार्यम्" (संसारको उच्च-गुण-सम्पन्न = आर्य बनाओ)। इसी सिद्धान्तके अनुसार आर्योंने विश्वमें अपनी संस्कृतिका प्रचार किया था। वैदिक संस्कृति, आर्य-संस्कृति अथवा हिन्दू संस्कृतिका पूर्ण विकास वेदोंसे लेकर तन्त्रशास्त्र और उपपुराण तक हुआ है। सारी परम्परा वेदोंके आधारपर है। कुछ वेद-भक्तोंके मतसे वैदिक साहित्यसे भिन्न संस्कृत-वाङ्मयके किसी भी ग्रन्थमें कोई भी संस्कृति नहीं है।

बर्मा और लंका तो कभी भारतके ही अंग थे। इन दोनों देशोंमें सदासे हिन्दू रहते आये हैं और सदा वैदिक संस्कृतिका प्रचार रहा है। इनमें अनेकानेक प्राचीन चिन्ह तो हैं ही, अबतक भी वैदिक देवोंके मन्दिरादि बनते रहते हैं।

श्याम (थाईलैण्ड)में कल्पसूत्रोंके विधानानुसार १२–१३ वर्षकी उम्रमें प्रत्येक बालकका शिखा-मुण्डन होता है––इस संस्कारसे वहांके मुसल-मानोंके बच्चे भी नहीं बचने पाते। राजाके राज्याभिषेकके अवसरपर गायत्री-मन्त्रका पाठ किया जाता है; राजा भी इसका उच्चारण करता है। राजा भरतकी तरह खड़ाऊँ लेकर राज्य करता है। हवन-यज्ञ भी होता है। इस देशका प्राचीन नाम द्वारावती है। यहांके सभी राजा श्रीरामचन्द्र के अवतार माने जाते हैं। प्रत्येक राजाके नामके साथ प्रायः 'राम' शब्द रहता है। छठे रामने 'अयुधिया' (अयोध्या) नामकी राजधानी स्थापित की थी। उत्तरी श्याममें 'लवपुरी' आजतक है। यहांके मन्दिरोंमें ऋषियों,

विष्णु और लक्ष्मीकी मूर्तियां हैं। '**सुखोदय**' और '**स्वर्गलोक**' नामके नगरोंमें सुन्दर मन्दिर हैं। गायत्रीके अवलम्बपर जिस बाल्मीकि रामायण-की रचना की गयी है, उसके दृश्य श्यामकी वर्त्तमान राजधानी (बैंकक) के बौद्ध विहारके चांदीके फाटकपर अंकित हैं। रामायणकी कथाका यथेष्ट प्रचार भी है।

श्यामकी थाई भाषामें प्रतिशत ५० शब्द संस्कृतके हैं। इन शब्दोंके पर्यायवाची थाई शब्द भी नहीं हैं। पारिभाषिक शब्द केवल संस्कृतके हैं। स्त्री-पुरुषोंके तो संस्कृत नाम हैं ही, नगरों और सड़कों तकके नाम संस्कृत में हैं। नगरोंके नाम हैं 'सुराष्ट्रधानी', इन्द्रपुरी, प्राचीन पुरी आदि। परस्पर साक्षात्कार होनेपर एक दूसरेको हाथ जोड़कर '**स्वस्ति**' कहता है। विवाहको स्वयंवर कहा जाता है और विवाहमें जलाभिषेक और मन्त्रो-च्चारण किया जाता है। यहांके लोग कथाको '**कथा**', व्याख्यानको '**सुन्दर वचन**', मृत्युको '**दिवंगत**' और शवको '**शव**' कहते हैं। दाह-संस्कार भी किया जाता है। यहांके "**विविधभाण्डार-स्थान**" (अजायबघर) में हजार —एक मतसे दो हजार वर्षोंकी भारतीय वस्तुएँ रखी हैं। यहां प्रायः सभी शिल्पी होते हैं। शिल्प-विभागका चिन्ह गणेशकी मूर्ति है। अभी थोड़े दिन हुए यहांके "**शिल्पाकरण-नाट्यशाला**" में सावित्री-सत्यवान्का नाटक खेला गया था। इसी वर्ष बैंकंक विश्वविद्यालयसे १०० छात्र संस्कृत लेकर पास हुए हैं। इनमें ५० छात्राएं हैं।

श्याममें रामायणका नाम '**रामकीर्ति**' है। राम-लीला भारतसे भी यहां अधिक प्रिय है। स्थान-स्थानपर रामलीलाकी धूम मचा करती है। यहांके विधानका आधार मनुस्मृति है, जिसे '**रथ्य मनु**' कहा जाता है। पातिव्रत्य धर्मपर लोगोंका दृढ़ विश्वास है। यहांके लोगोंका अटल विश्वास है कि सीताजीके शरीरसे पातिव्रत्य-रूपी आगका गोला निकला करता था; इसीसे रावण उन्हें छू नहीं सका! बहुत तो श्याममें ही रामावतार का होना भी मानते हैं! श्यामके जंगी लाटके सुपुत्र अमेरिका और यूरोपमें

एम० ए०, पी-एच० डी० करनेके पश्चात् बौद्ध भिक्षु हो गये थे। इस आश्रमका उनका नाम था **डा० धम्मरक्खित एम० ए०, पी-एच० डी०।** इन पंक्तियोंके लेखकसे आपका एक सप्ताहतक साथ था। डा० धम्मरक्खित बराबर कहा करते थे कि 'रामावतार और तेईस बुद्धावतार श्याममें ही हुए थे ! केवल बुद्धका चौबीसवां अवतार ही कपिलवस्तु (जि० वस्ती) में हुआ था!' इसमें सन्देह नहीं कि पांचवीं शताब्दीमें यहां बौद्ध धर्मका प्रचार हुआ और लाखों श्यामी बौद्ध हो गये।

इस विषयमें जिन्हें अधिक जानना हो, वे ग्राहमकी "**श्याम**" और स्वामी सदानन्दकी "**थाईलैंड**" (१९४१) नामक पुस्तकें देखें।

मलायाका प्राचीन नाम '**मलय**' है। वायुपुराणमें मलयका उल्लेख है। यहां इन दिनों भी "**श्रीथमरात**"में वेद-भक्त ब्राह्मणोंकी बस्तियां हैं। कैम्ब्रिजसे प्रकाशित अपनी रिपोर्ट (१९२७)में इवान्स साहबने लिखा है, "यहांके निवासी हिन्दू हैं"। डा० वेल्सकी भी यही राय है। दूसरी शताब्दीसे लेकर छठी तक यहां संस्कृतका प्रचार था। पुराणोंके कटह-द्वीपके नामपर यहां **कटाह-राज्य** स्थापित किया गया था। कटाह वा केडाह पहाड़ीपर एक मन्दिरमें दुर्गा, नन्दी, गणेश आदिकी बड़ी सुन्दर प्रतिमाएँ हैं। यहां भी रामायणका प्रचार है; परन्तु उसका नाम है "**हिकायत सेरीराम**"। वैदिक संस्कृतिके और चिह्न भी यहां अनेक हैं।

मलायाके पास ही **मलक्का** है। यह 'जावानीज' शब्द है, जिसका अर्थ है मिलनेका स्थान। विलकिंसके मतसे यह भी हिन्दू-राज्य था। विन्सेंटने १९३४ के "**मलायाके इतिहास**" में लिखा है, "हिन्दू राज्यके समय यहां वैदिक धर्मका पूरा प्रचार था—विद्वानोंका बड़ा सम्मान होता था।" पुर्तगाली लेखक अल्बुकर्कने लिखा है, 'यहांके राजाका नाम '**परमीसुरा**' (परमेश्वर) था।' चीनी लेखक हैयूके मतसे '१५३७ ई० तक यहांके लोग नागराक्षरोंका ही प्रयोग करते थे।' अबतक **जेहोर** और **तेराक**के सुलतान अपने नामके आगे '**श्री**' लिखते हैं।

हिन्दचीनकी राजधानी अनामका प्राचीन नाम **चम्पा** है। इसके प्राचीन इतिहासमें लिखा है–'चम्पाके निवासी वानरोंकी सन्तान हैं।' यहांवाले रामायणकी सारी घटनाएँ चम्पामें ही हुई बताते हैं! इनके प्रथम राजा **श्रीराम** थे। इसके पश्चात् भद्रवर्मन, गंगराज, देववर्मन, विजयवर्मन, रुद्रवर्मन, शम्भुवर्मन आदि हुए। अनन्तर भृगुवंशका राज्य हुआ, जिसमें इन्द्रवर्मन नामका महाप्रतापी राजा था। इसने ही शिवलिंगों की स्थापना करायी थी।

हिन्दचीनमें चौथी शताब्दीमें चार राज्य थे–कौठार, पाण्डुरंग, विजय और इन्द्रपुरी (अमरावती)। डेढ़ हजार वर्षोतक यहां हिन्दुओंका राज्य था। १५४३ से चम्पा परतन्त्रता-पाशमें बँधी।

यहां जो शिलालेख मिले हैं, उनसे ज्ञात होता है कि उपनिषद्की हैमवती उमा और महेश्वरकी उपासना यहां अत्यधिक प्रचलित थी। महेश्वरकी उपासना महादेव, पशुपति, शिव, देवलिंगेश्वर, धर्मलिंगेश्वर आदि नामोंसे की जाती थी। विष्णु, ब्रह्मा, गरुड़, वासुकि आदिका उल्लेख शिलालेखोंमें है। इनकी पूजा भी की जाती थी। वरुण, अग्नि, यमराज, सूर्य आदि वैदिक देवोंकी उपासना भी की जाती थी। यहांकी शिल्पकला भारतीय थी। चार वर्ण थे। विवाहमें वंश और गोत्रका विचार किया जाता था। ब्रह्म-हत्याको महापातक माना जाता था। भाषा संस्कृतमयी थी।

हिन्दचीनमें इतस्ततः ध्वस्त मन्दिर पाये जाते हैं। इन दिनों यहांके साहित्यमें रामायण, महाभारत, शिवपुराण, लिंगपुराण आदिकी कथाएँ पायी जाती हैं। ७ वीं शताब्दीमें यहां बौद्ध मतका प्रवेश हुआ। इस देशके सम्बन्धमें जो सज्जन अधिक जानना चाहें, वे डा० रमेशचन्द्र मजुमदारकी "**चम्पा**" पुस्तक देखें।

कम्बोडियाका प्राचीन नाम **कम्बोज** है। यहांके निवासी काम्बोज कहाते थे। मनुस्मृतिमें इन्हें कर्म-पतित क्षत्रिय कहा गया है। यहांके

प्राचीन इतिहासमें कहा गया है, 'कौण्डिन्यने कम्बोज आकर 'सोमा'से विवाह किया था, जिससे राजवंश चला।' परन्तु "**वाकसेई चामक्रोम**" शिलालेखमें कहा गया है कि 'कम्बु नामके राजासे कम्बुज प्रजा उत्पन्न हुई है।' कम्बुजसे कम्बोज बना। दूसरीसे १४ वीं शताब्दीतक यहां वैदिक संस्कृतिका बोलबाला था। १४ वी शतीतक हिन्दू-राज्य भी था। राजाओं की उपाधि वर्मा थी। यहां शिव और विष्णु, हर और हरि, दोनोंकी उपासना की जाती थी। अंकोर (प्राचीन यशोधरपुर)में एक ऐसा विष्णु-मन्दिर था, जिसकी परिखा ७०० फुट चौड़ी थी! चारों कोनोंपर चार बुर्जें १८० फुट ऊँची थीं। मन्दिरकी दीवारोंपर अप्सराओं, देव-देवियोंके चित्र थे। संस्कृतमें यहां कई शिलालेख भी मिले हैं। एकमें लिखा है– 'सोम शर्मा नामके ब्राह्मणने एक स्थानपर रामायण, महाभारत और पुरागोंके प्रतिदिन पाठका प्रबन्ध किया था।' राजमहलमें अबतक इन्द्रकी तलवार रखी है, जिसका उत्सवोंमें धूमधामसे जुलूस निकाला जाता है। यहां '**अंकुरथोम**' नामका शैव और '**अंकुरभट**' नामका वैष्णव मन्दिर हैं।

जावामें प्रम्बानम् और **पानातरम्** नामके विश्व-प्रसिद्ध मन्दिर हैं। इनपर महाभारत और रामायणके श्लोक अंकित हैं। जावामें भी रामयण और रामलीलाका, विकृत रूपमें, प्रचार है। मुसलमान भी इसमें सम्मिलित होते हैं। जावा (हिन्देशिया) के वर्त्तमान राष्ट्रपति मुसलमान हैं; परन्तु उनकी स्त्रीका नाम पद्मावती है और पुत्रीका सत्यवती। जावाके सम्बन्धमें जिन्हें विशेष जानना हो, वे डा० कालीदास नागकी "Greater India" पुस्तक देख सकते हैं।

बाली-द्वीप छः सौ वर्ष पहले सोलहो आने आर्यद्वीप था। श्याम की ही तरह वहां वैदिक संस्कृतिका प्रचार था–बहुत कुछ अबतक है। विना अर्थ समझे भी अबतक वहांके लोग मंत्र पढ़ते हैं! गंगा और सिन्धुके लिये दस-बारह स्तोत्र प्रचलित हैं। उनकी पूजा-विधि सनातनी पूजा-विधि से बहुत मिलती है। वे पूजाके समय वस्त्र-धारण, पाद-प्रक्षालन, आचमन,

अंग-न्यास, करतल-न्यास, प्राणायाम आदि सब कुछ आर्य-रीति और आर्यमन्त्रोंसे करते हैं। उनका शरीर-शुद्धिका मन्त्र है–**"ओं प्रसादस्थिति-शरीर-शिव-शुचि-निमलाय नमः"**। इस मन्त्रको वे **"मन्त्राणि शरीर"** कहते हैं। प्रत्येक अंगपर भस्म-धारण भी करते हैं। उनका बीज-मन्त्र है, **अं उं मं**। यहां शैव और तान्त्रिक क्रियाएँ प्रचलित हैं। उनका इष्ट मन्त्र है–**ओं महादेवाय नमः** और **ओं शिवाय नमः**। उनकी दैनिक पूजा-विधि और पूजा-परिक्रमा देखने ही योग्य होती है। अभी भारतके प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरूके बाली जानेपर बालीके ब्राह्मणोंने वेद-मन्त्र पढ़ते हुए उनके मार्गमें पुष्प-वर्षा की थी। बालीमें वैदिक धर्म और संस्कृति के पुनर्जागरणके लिये स्व० प० सत्याचरण शास्त्री बालीमें बहुत दिन थे। उन्होंने बँगलामें बालीपर एक पुस्तक भी लिखी थी।

सुमात्राको वाल्मीकीय रामायण (किष्किन्धा-काण्ड), महाभारत (वनपर्व) और कौटिल्यके अर्थशास्त्रमें **"स्वर्णभूमि"** और **"सुवर्णद्वीप"** कहा गया है। यहां सोना निकलता भी है। ऐतिहासिकोंने इसे सुवर्ण-द्वीप सिद्ध किया है। ७ वीं शताब्दीसे १४ वीं शतीतक यहां **'श्रीविजय-राज्य'** वा **'शैलेन्द्र-राज्य'**का शासन था। इसमें सारा हिन्देशिया तथा मलय और श्याम भी सम्मिलित थे। श्यामकी ही तरह यहां बहुत हिन्दू-मूर्तियां हैं और रामायण आदिका प्रचार भी है। यहां **इन्द्ररालय** (इन्द्रालय) नामका एक पर्वत भी है। इस द्वीपकी विस्तृत बातें जाननेके लिये डा० रमेशचन्द्र मजुमदारकी **"सुवर्ण-द्वीप"** पुस्तकका अध्ययन करना चाहिये।

फिलीपाइनमें पहली शताब्दीसे ही वैदिक संस्कृतिका प्रभाव पड़ा है। "फिलीपाइन मेगजिन" (१९२८) में प्रो० बेयर साहबने लिखा है–"यहां रीति-रस्म, आभूषण आदिको देखते हुए मेरा दृढ़ मत है कि यहांकी संस्कृतिका मूल स्रोत भारत है।" प्रोफेसर क्रोबरका भी यही मत है। "पीपुल्स ऑव दि फिलीपाइन्स"में स्वीकार किया गया है कि 'धार्मिक विचार, नाम, शब्द, लेखशैली, कला-कौशल—सबपर प्रत्यक्ष हिन्दू-प्रभाव

पड़ा है।' यहां भी ग्रहणका कारण राहु माना जाता है। दिनके पांच भाग माने जाते हैं–**महेश्वर, काल, श्री, ब्रह्मा और विष्णु**। यहांकी भाषा 'तगलाग'में संस्कृत-शब्दोंकी भरमार है। देव-मूर्तियां भी यत्र-तत्र पायी जाती हैं। डा० रायकी **"फिलीपाइन और भारत"** (१६३०)में फ़िली-पाइनपर वैदिक संस्कृतिके प्रभावकी विशेष विवृति है।

चीनका उल्लेख बालमीकि-रामायण (किष्किन्धा-काण्ड), महा-भारत (शान्तिपर्व, ६५.१३), विष्णुपुराण (१.६.२१), मनुस्मृति, कौटिल्यके अर्थशास्त्र, शकुन्तला आदिमें है। भारतीय धर्म और संस्कृति का अध्ययन करनेके लिये १८७ चीनी यात्री समुद्रों, पर्वतों और विकट कन्दराओंको पार कर भारत आते रहे। इनमें १०५ का तो पूरा पता लग चुका है। ३७ तो आते-जाते ही मर गये। छः भारतमें मरे। भारतपर कुछ यात्रियोंने कुछ नहीं लिखा और कुछने लिखकर खो दिया। मूल ग्रन्थ तो इनमेंसे किसीका भी नहीं पाया जाता। कुछ ग्रन्थोंका मठोंसे उद्धार करके अंग्रेजीमें अनुवाद किया गया है। अनुवाद ही अब प्राप्य है। हुएन सांग, फाहियान, इत्सिग, पांकु, फां ये, वां सिउ, सि तन शु, सुंग शी, ल्यु ह सु, तो केन तो, तु यु, वंग चिन योके ग्रन्थानुवादोंमें भारतीय विवरण पाया जाता है।

यहांका प्राचीन मत ताओ-वाद है। ताओके विचार सोलहो आने अद्वैत वेदान्तसे मिलते हैं। महात्मा ताओका 'योकिंग' ग्रन्थ ३४६८ बी० सी० में बना माना जाता है। इसमें ठीक चार युगोंका वर्णन है। दूसरे महात्मा कनफूशस हो गये हैं, जो आर्योंकी ही तरह पितृ-पूजन, श्राद्ध, उपासना आदि मानते थे। मनुजीके "पिता रक्षति"के अनुसार चीनमें भी कुमारियोंकी रक्षा, विवाह आदि पिता ही करता है। डा० क्रीलने "The Birth of China" नामका एक ग्रन्थ लिखा है, जिसमें उन्होंने स्पष्ट स्वीकार किया है कि 'चीनी रीति-रस्मों और उपासनाओंमें वैदिक संस्कृतिकी झलक दिखाई देती है।' मन्त्रको चीनमें **'मण्डारिन'**

कहा जाता है। यहां ईसासे दो सौ वर्ष पहले (२ री बी० सी० में) बौद्ध मतका प्रचार हुआ। आज तो करोड़ों चीनी बौद्ध हैं।

जापानके सम्राट् सूर्य-पुत्र कहाते हैं। यहांका राज-धर्म और प्रतिष्ठित धर्म शिन्तो-वाद है। इसमें पितृ-पूजा और राजभक्ति आदि हिन्दू-प्रभावके द्योतक हैं। यहांके **'ईसी मन्दिर'**में गुरुकुलोंकी तरह अरणि-मन्थनके द्वारा अग्नि उत्पन्न करके उसका पूजन किया जाता है। शिन्तो धर्ममें भी वैदिक अश्वमेध यज्ञकी तरह यज्ञका विधान है। जापानमें भी **"अपुत्रस्य गतिर्नास्ति"**पर दृढ़ विश्वास है। गोद लेनेकी भी प्रथा है। सरदारको समुराई (सामरिक) कहा जाता है।

अमेरिका—हिन्दू शब्द सिन्धु शब्दसे निकला है—यह बात प्रायः सभी देशी-विदेशी ऐतिहासिक मानते हैं। कुछ तो कहते हैं कि 'सिन्धु' शब्दसे भी हिन्दू शब्द प्राचीन है और अपनी विशिष्ट उच्चारण-प्रणालीके कारण आर्योंने हिन्दूका उच्चारण सिन्धु कर डाला (वीर सावरकरका "हिन्दुत्व")। इस दृष्टिसे तो आर्य शब्दसे हिन्दू शब्द नवीनतर नहीं है। फलतः हिन्दूधर्मका अर्थ वैदिक धर्म है और हिन्दूसंस्कृतिका अर्थ वैदिक संस्कृति है।

"वैदिक संस्कृतिकी व्यापकता"का प्रमाण हिन्द महासागर, हिन्दू-कुश पर्वत, पूर्वी हिन्द द्वीप-समूह (हिन्देशिया आदि) और अमेरिकामें पश्चिमी हिन्द द्वीप-समूह (ट्रिनीडाड, जमैका, ब्रिटिश गायना आदि) हैं। पूर्वी हिन्द द्वीपोंको अंग्रेजीमें 'ईस्ट इंडीज' और पश्चिमी हिन्द द्वीपों को 'वेस्ट इंडीज' कहा जाता है। अमेरिकामें 'रेड इंडियन' (लाल भारतीय) नामकी एक जाति है, जिसमें हमारी ही तरह अग्नि-संस्कार और सूर्य-पूजा प्रचलित है।

एक अज्ञात-नामा नाविकने **"पेरिप्लस आव दि ईरिथ्रियन सी"** नामकी दैनिक घटनावली लिखी है, जिसमें कहा गया है कि 'दो हजार वर्ष पहले समुद्र-मार्गसे भारतीय संसारमें व्यापार करते थे।' इसी समुद्र-मार्गसे

आर्य अमेरिका पहुँचे थे। इसके बहुत पीछे कोलम्बस अमेरिका पहुँचा था। स्वयं कोलम्बसने ही लिखा है–'अमेरिकामें हिन्दू और मंगोलियन आकृतिके हजारों मनुष्य पाये जाते हैं। यहां हिन्दू-रीति-प्रथाएँ बहुत हैं। शिक्षा-प्रणाली हिन्दुओंकी तरह है। अमेरिकामें गणेश, इन्द्र आदिकी पूजा होती है। पुरोहित-प्रथा भी है। हिन्दुओंकी ही तरह विवाह-संस्कार और शव-दाहकी प्रथा है।'

अमेरिकाके मेक्सिकोमें पुनर्जन्म और आत्माकी अमरता मानी जाती थी। इन्द्र और यमलोकको भी मेक्सिकन मानते थे। दाह-क्रिया भी की जाती थी। हां, दाह-संस्कारमें सोमपायी वेद-ज्ञाता विप्रोंके द्वारा दाह-विधि थी, जो लुप्त हो गयी है। सती-प्रथा थी। राजाके साथ अवश्य ही कुछ स्त्रियां जल जाती थीं। जो नहीं जलती थीं, वह हिन्दू विधवाओंकी तरह रहती थीं। पुत्रोत्पत्तिके समय देव-पूजन, अग्नि-संस्कार, नान्दीमुख-श्राद्ध आदि होते थे। ज्योतिषी भविष्य जीवनकी बातें बताते थे। अनन्तर नाम-करण होता था। ज्योतिषीके सम्बन्ध-विचारके पश्चात् लड़के-लड़कियोंका विवाह मां-बाप करते थे। विवाहमें गठ-बन्धन होता था। स्त्रियां मां, बाप, भाईके साथ ही घरसे बाहर जा सकती थीं। यह बात तो अबतक है। स्त्री अबध्य थी। पुरोहित ज्येष्ठ पुत्रको राज्याभिषिक्त करता था, मुकुट पहनाता था और प्रजा-पालन आदिकी प्रतिज्ञा कराता था। मेक्सिकोकी प्रजा "**आस्तिक**" जातिकी कही जाती है।

मध्य अमेरिकाकी "**माया**" जातिमें भी प्रायः ये सब बातें थीं। इनमें गुरुकुलके समान शिक्षा प्रचलित थी। पुरोहित ही शिक्षक और गुरुकुलके संचालक थे। ब्राह्म मुहूर्त्तमें उठना, स्नान करना, अघमर्षण, अग्नि-रक्षण, यज्ञ, पुराण-पाठ आदि सब कुछ किये जाते थे। सामन्तोंके लड़के सामरिक विद्यापीठमें पढ़ते थे। स्पेनके फ्रेडरिक टामसनने लिखा है–'यहांकी धर्म-भावना और असत्यसे घृणा देखकर चकित हूँ।' देवमन्दिर बहुत थे। देवदासी-प्रथा भी थी। देवदासियां एक ही बार भोजन करती थीं। वे

अग्नि-रक्षण करती थीं। यदि उनसे बातें करते कोई युवक पकड़ा जाता, तो उसे प्राण-दण्डकी सजा दी जाती थी! अग्निमें अन्नाहुति करनेके बाद ही लोग भोजन करते थे। युद्धके पहले भी हवन किया जाता था।

दक्षिण अमेरिकाकी "**इन्का**" जातिमें भी बहुत कुछ ऐसी बातें थीं। इस जातिके लोग हिन्दुओंकी ही तरह पुनर्जन्म, वर्ण, जाति, आश्रम, ग्रहण लगनेपर स्नान, दान, मूर्त्तिपूजा आदि सब मानते थे। इनमें गणेश और नागकी पूजा भी प्रचलित थी। दक्षिण अमेरिकाके पेरू राज्यमें दतिया के सूर्यमन्दिरकी तरह देवोंकी प्रतिमाएँ (शिवलिंग आदि) मिली हैं। यहांके लोग चार युग मानते थे। यहां कोई वेश्या नहीं थी।

इन सारी बातोंको देखकर पोकोक साहबने अभिमत प्रकट किया है—'हमारी जातिके आनेके बहुत पहले अमेरिकामें भारतीय ऋषियोंके भ्रमणके महान् वृत्तान्त निस्संदिग्ध और सत्य हैं।' जोन्स साहबने लिखा है—'पेरूमें सूर्यवंशी राम सीतापति और कौशल्याके पुत्र माने जाते हैं। इनका जाति अपनेको इसी वंशका मानती है और 'रामसीतोत्सव' मनाती है।' इन दिनों इसे '**रामसीतव**' कहा जाता है। यह रामलीला ही है। इसमें राम-रावण-युद्ध होता है। "**हिन्दू अमेरिका**"के लेखक श्रीचमनलाल ने स्वयं पेरूके 'चिलपनसिनको'में इस 'रामसीतव'को देखा है। इस ग्रन्थ में उक्त विषयोंका विशद विवरण दिया गया है।

स्व० डा० एनी बेसेंटके मतसे 'ग्रीसके मेसोडोनियामें ६००० वर्ष पहले वैदिक संस्कृति पहुँची थी।' ग्रीक और रोमन दर्शनोंपर तो प्रत्यक्ष ही वैदिक हिन्दू-दर्शनोंका प्रभाव पड़ा है। जर्मनीका राजकीय चिह्न वैदिक 'स्वस्तिक' है ही।

कर्नल टाडका कहना है, 'सम्राट् समुद्रराजने मिस्रमें राज्य स्थापित किया था।'

मास्कोमें भारतीय राजदूत डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्ने अभी कहा है कि 'मैंने रूसके एक विश्वविद्यालयमें १७०३ में छपे प्रथम रूसी समाचार-

पत्रमें पढ़ा था कि 'भारतीय सम्राट्ने रूसमें उपहार भेजा था।' रूसके बाकू में अभी हालतक दुर्गाकी प्रतिमा थी——मन्दिर तो अबतक है।

इस विषयको अधिक बढ़ानेकी यहां आवश्यकता नहीं है। जिन पाठकोंको समस्त विश्वमें वैदिक-आर्य-संस्कृतिका प्रभाव पड़ा देखना हो, वे निम्नलिखित विद्वानोंकी निम्नलिखित पुस्तकें, निबन्ध, लेख और नक्शे देखें—

श्रीकाशीनाथ तैलंग काले—"पुराण-निरीक्षण", श्रीदुर्गादास लाहिड़ी—"पृथिवीर इतिहास", श्रीहरविलास शारदा—"हिन्दू सुपीरियारिटी", श्रीबैजनाथ काशीनाथ राजवाड़े और श्रीकेशव लक्ष्मण दफ्तरी——"सहविचार", श्रीविष्णु हरि वडेर एम० ए०—"चित्रमय जगत्", मई, १९३१, श्रीयुत नन्दलाल दे—"रसातल आर दि अंडर वर्ल्ड", कर्नल विलफोर्ड—"एशियाटिक रिसर्चेज", खण्ड ११ तथा एम० एम० याज्ञिक—"नक्शा"। इन भारत-प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वानोंने वर्त्तमान संसारके समस्त महाद्वीपों, द्वीपों, देशों, सागरों, महासागरों, पर्वतों, वनों, नदियों, झीलों आदिके वैदिक, महाभारतीय और पुराणकालीन नाम देकर अकाट्य प्रमाणों, तर्कों और युक्तियोंसे सिद्ध किया है कि 'अखिल विश्वमें आर्योंका राज्य था और वैदिक धर्म तथा वैदिक संस्कृतिकी पताका संसार भरमें फहराती थी।'

संसारकी प्राचीनतम जातियों और देशोंमें वैदिक धर्मके प्रभावकी चर्चा इस ग्रन्थके 'विषय-प्रवेश'में भी कुछ की गयी है और आवश्यक जानकर यहां विश्वमें वैदिक संस्कृतिकी व्यापकताका थोड़ा-सा विवरण दिया गया है। वेद-विद्यार्थीके लिये इन दोनों विषयोंकी जानकारी रखना आवश्यक है।

षड्विंश अध्याय

वेद और अवस्ता

अनेक वेदज्ञाताओं और ऐतिहासिकोंके मतसे आर्य और ईरानी एक ही जातिकी दो शाखाएँ हैं। दोनों ही अग्नि-पूजक हैं। दोनों ही गोरक्षक हैं। दोनोंके ही धर्म-ग्रन्थोंमें अनेकानेक शब्द, कुछ रूप बदलकर, आये हैं।

इससे भिन्न विचार रखनेवाले सज्जन कहते हैं कि 'ईरानी अनार्य हैं, दस्यु हैं और असुर-पूजक हैं। दोनोंकी मान्यताओंमें बड़ा भेद है। दोनों के धर्म-प्रचारकों, परम्पराओं और धर्मोंमें सदा तनातनी और शत्रुता रही है। एक इस पार है और एक उस पार।'

इस तरह दो मतवाद प्रचलित हैं। इन मतवादोंपर शापुरजी कावसजी होडीवाला, शेहेरियारजी आदि तथा अनेक पाश्चात्त्य और पौरस्त्य विद्वानों ने बड़ा विचार किया है, कितने ही ग्रन्थ लिखे हैं। अतीव संक्षेपमें दो-चार बातें यहां लिखी जायंगी।

पहले कहा गया है कि जैसे आर्योंका सर्वस्व वैदिक साहित्य है, वैसे ही ईरानियोंका गाथा और अवस्ता हैं। अवस्ताका प्रकाशन "सेक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट" पुस्तक-मालामें, जेन्द टीकाके साथ, १८९५ ई०में, डर्मेस्टर के द्वारा हुआ था। अवस्ताके २१ भागोंमेंसे दोको तो नशेमें आकर सिकन्दर ने नष्ट कर डाला और कुछको उसके कर्मचारी ग्रीस उठा ले गये। शेष भाग छपे हैं।

ईरानियोंकी अहुनवद, बोहुक्षथ्रू, उश्तवद, स्पेन्तोमद और बहिश्तोइश्त नामकी पांच गाथाएँ, १८९४ में, मील्स साहब द्वारा छापी गयीं। ये पांचों

'अहुरमज्द'के पवित्र वचनोंका संग्रह कही जाती हैं। विश्वको इनका प्रकाश ईरानियोंके पैगम्बर **जरथुस्त्र** द्वारा मिला है।

आर्य इन्द्र-पूजक थे, देवोपासक थे और ईरानी अहुरमज्द के पूजक थे, असुरोपासक थे। वैदिक साहित्यमें असुरोंको भला-बुरा कहा गया है और जरथुस्त्री साहित्यमें इन्द्र और देवोंकी निन्दा की गयी है। होडीवालेका मत है कि ऋग्वेदमें स्वयं **जरथुस्त्रकी** निन्दा की गयी है— **जरथुस्त्रको जलाकर** मार डालनेकी बात तक लिखी है।

होडीवालेका दृढ़ विश्वास है कि '**जरूथ**' नामसे ऋग्वेदमें **जरथुस्त्र** का उल्लेख है। यदि यह बात सच हो, तो अवश्य ही जरूथको ऋषियोंन जला डाला था। ऋग्वेदके एक मन्त्र (७.१.७) का अंश है—

"विश्वा अग्नेऽप दहारातीर्येभिस्तपोभिरदहो जरूथम्।"

अर्थात् 'अग्निदेव, जिस तेजसे तुमने कर्कश शब्दवाले **जरूथ**को जलाया, उसीसे राक्षसोंको जलाओ।'

दूसरा मन्त्र है—

"त्वामग्ने समिधानो वसिष्ठो जरूथं हन्यक्षि राये पुरन्धिम्।" ऋग्वेद ७.९.६

अर्थात् 'अग्नि, वसिष्ठ तुम्हें समिद्ध करते हैं। तुम कर्कश बोलनेवाले **जरूथ** राक्षसको मारो—जलाओ।'

ये दोनों मन्त्र ७ वें मण्डलके हैं। १० वें मण्डलके एक मन्त्र (१०. ८०.३) में भी ऐसी ही बात है—

"अग्निर्ह त्यं जरतः कर्णमावाग्निरद्भ्यो निरदहज्जरूथम्।"

अर्थात् 'अग्निने जरत्कर्ण नामके ऋषिकी रक्षा की। अग्निने जलसे निकालकर **जरूथ** नामके शत्रुको जलाया।'

पहले दो मन्त्रोंमें सायणाचार्यने जरूथका अर्थ 'कर्कश-शब्दकर्त्ता राक्षस' किया है और तीसरे मन्त्रमें जरूथका अर्थ 'जरूथ नामक शत्रु' किया है।

परन्तु होडीवाले और कुछ अन्य वेदाभ्यासियोंके मतसे तीनों मन्त्रोंमें जरूथ संज्ञा है, उसका यौगिक अर्थ करनेकी आवश्यकता ही नहीं।

इन तीनों मन्त्रोंसे ज्ञात होता है कि जरूथको आगमें जलाकर ही मारा गया था। पारसियोंके दीनकर्द, बेहेरामयश्त, दाहेस्तान आदि ग्रन्थोंसे भी जाना जाता है कि जरथुस्त्रकी मृत्यु **अग्निके ही द्वारा** हुई थी।

फलतः केवल ऐतिहासिक दृष्टिसे विचार करनेपर ज्ञात होता है कि ऋग्वेदका 'जरूथ' पारसियों (ईरानियों)का पैगम्बर जरथुस्त्र है।

पारसियोंके धर्मग्रन्थोंमें जरथुस्त्रको दस्यु (**दख्युमा**) और दस्युओंमें विद्वान् (**दख्युनाम सूरो**) भी कहा गया है। पारसी साहित्यमें दस्युका अर्थ सम्मानपरक है। परन्तु वैदिक साहित्यमें दस्युका अर्थ 'काटना' है। दस्यु और असुर एक ही हैं। वेदमें दोनोंको राक्षस माना गया है। इन असुरोंका देवोंके साथ सदा युद्ध चलता ही रहता था। कुछ लोगोंके मतसे यही युद्ध देवासुर-संग्राम है। कई असुरोंको **'पणि'** कहते हैं। वेदोंमें पणियोंके विरोधमें बहुत कुछ कहा गया है। पणि पक्के देव-द्रोही थे। पणियोंको कुछ लोग फिनिशियन भी कहते हैं। ये बड़े व्यापारी और धनी थे।

अहुनवद-गाथामें एक स्थान (हा० २८.७) पर आया है—

"दाइदी तू आमइंते वीश्तास्पाइ इषम मइव्याया।"

इसमें वीश्तास्पका नाम आया है। इसे भी ऋग्वेदके नीचेके मन्त्रमें पारसी विद्वानोंने खोज निकाला है—

"किमिष्टाश्व इष्टरश्मिरेत ईशानासस्तरुष ऋञ्जते नॄन्॥"

ऋग्वेद १.१२२.१३

कहते हैं, इस मन्त्रका **इष्टाश्व** गाथाका **वीश्तास्प** है। वीश्तास्प गुश्तहम वंशका था। पारसी कहते हैं, इस मन्त्रका **इष्टरश्मि गुश्तहम** है।

जो हो, सायणाचार्यने इष्टाश्व और इष्टरश्मिको राजा माना है।

उपेक्षाके भावसे ही मन्त्रमें इनके नाम आये हैं। दोनों देव-शत्रु भी कहे गये हैं।

ऋग्वेदका एक मन्त्र (१.१००.१७) है–

"एतत्यत्त इन्द्र वृष्ण उक्थं वार्षागिरा अभि गृणन्ति राधः।
ऋजाश्वः प्रष्टिभिरम्बरीषः सहदेवो भयमानः सुराधाः॥"

सायणाचार्यने इसका अर्थ यों लिखा है–

'अभीष्टदाता इन्द्र, वृषागिरके पुत्र ऋजाश्व, अम्बरीष, सहदेव, भयमान और सुराधा तुम्हारी प्रसन्नताके लिये तुम्हारा यह स्तोत्र करते हैं।'

"**कामा-स्मारक-ग्रन्थ**"में शेहेरियारजीने लिखा है कि इस मन्त्रका 'ऋजाश्व' पारसियोंका '**अरजास्प**' है। अरजास्पके पिताका नाम "**बानदरे मैनो**" था, जिसका अर्थ निर्भय है। यह शब्द 'भयमानका' अपभ्रंश है। **भयमान** ऋजाश्वका बाप ही है। अरजास्पके भाईका नाम 'हुमयक' था। सो, यह हुमयक भी सुराधाके नामसे इसी मन्त्रमें बैठा है! कारण, हुमयक और सुराधा–दोनोंका अर्थ एक ही (धनी) है। नहीं कहा जा सकता कि उक्त पारसी समालोचकोंकी इस अनल्प कल्पनामें कितना सत्यांश है। जिन सज्जनोंको इस सम्बन्धमें अधिक जानना हो, वे डा० ए० बनर्जी शास्त्री की "**असुर इंडिया**" पुस्तक देखें।

बहुत समालोचक ऐसे भी हैं, जिनका मत है कि 'पारसी गाथाओंमें विशुद्ध एकेश्वर-वाद है। पीछे, अवस्ता-कालमें, पारसी अनेक देवताओं (यजहों) के उपासक बन गये।' परन्तु गाथाओंमें भी वैदिक आचार-विचारकी बहुत-सी बातें हैं। गाथाओंमें जरथुस्त्र ही नहीं, अन्य ऐतिहासिक व्यक्तियोंका भी विवरण है। परन्तु अबतक जरथुस्त्रका जो विवरण दिया गया है और जितनी बातें लिखी गयी हैं, वे ही इस बातके यथेष्ट प्रमाण हैं कि ऋग्वेदकी प्रणालीपर ही उसके पात्रों और विवरणोंको लेकर गाथाओंका निर्माण किया गया है। अवस्तामें तो अधिकांश वैदिक देवता विभिन्न उच्चारणके साथ विभिन्न रूपोंमें गृहीत हैं। वैदिक विश्वास

और परम्परा भी बहुत कुछ गृहीत हैं। अवस्तामें यमको मित्र कहा गया है। यमके पिता विवस्वान्‌को अवस्तामें 'विवनघत्' लिखा गया है। वैदिक पुस्तकोंकी तरह ही अवस्ताकी यमपुरीमें भी पुण्यात्मा रहते हैं। प्रसिद्ध कवि फिरदौसीने अपने "**शाहनामा**"में मित्रको यमशिद् लिखा है। यमशिद् नामी सम्राट् थे।

अवस्तामें एक स्थानपर कहा गया है, 'बेबीलोन नगरको आर्यशून्य करनेके लिये वृत्रासुरने 'अह्निशूर' नामक देवीकी उपासना की थी। परन्तु इस प्रयत्नमें वह असफल रहा।' अनन्तर इन्द्रने वृत्रको मार डाला, जिसका उल्लेख ऋग्वेदके अनेक मन्त्रों (१.४.८; १.८५.१३ आदि) में है। देवीभागवत और अन्य कई पुराणोंमें कहा गया है, 'ब्रह्मासे वर पाकर वृत्रासुर त्रिलोक-विजयी हो गया था। अन्तको दधीचि ऋषिकी हड्डियोंसे विश्वकर्माने वज्रका निर्माण किया, जिससे इन्द्रने वृत्रका बध कर डाला।' पुराणोंकी यह कथा निराधार नहीं है। स्वयं ऋग्वेद (१. ८५.१३) में स्पष्ट ही लिखा है कि 'इन्द्रने दधीचिकी हड्डियोंसे वृत्रका बध किया था।'

अवस्तामें वृत्रको 'बेरेथ्रघ्न' लिखा गया है और इन्द्रको कट्टर शत्रु माना गया है। इधर ऋग्वेद (१.४.५) में इन्द्रके निन्दकों—शत्रुओंको इस देश और अन्य देशोंसे निकाल देनेकी बात कही गयी है। इसी मन्त्रके आधारपर लोग कहते हैं कि 'इन्द्रद्रोही होनेके कारण पारसियोंको भारतसे निकाल दिया गया था।' परन्तु उधर अवस्ता (दसवें फर्गाद)में इन्द्रको पापमति कहा गया है और संसारभरसे इन्द्र-पूजकोंको निकाल देनेकी बात कही गयी है। यह भी कहा गया है कि 'फारसके राजा साइरस (Cyrus) ने जिस तरह टाइग्रीस नदीका प्रवाह रोककर बेबीलोनको जीता था, उसी तरह वृत्रने भी आर्यभूमिको अधिकृत करना चाहा था।' जो हो, परन्तु अवस्ताके कथनानुसार भी ज्ञात होता है कि एक समय बेबीलोन नगर आर्योंके अधिकारमें था।

मैक्समूलर साहबकी तो धारणा है कि 'वृत्र-युद्धके ऊपर ही होमरके 'इलियड' ग्रन्थमें 'ट्राय-युद्ध'की कल्पना है। वेदका पणि-गण ट्राय-युद्धका 'पैरिस' है।' ग्रीसके जियस और अपोलो देवताओंकी कथाएँ भी इन्द्रकथा से मिलती है।

जरथुस्त्र और बेरेथ्घ्न आदिकी ही बात नहीं, अवस्तामें अन्य वैदिक पात्र भी इसी तरह गृहीत हैं। ऋग्वेद (१.५२.५) में त्रितका उल्लेख है, जो असुरोंके घोर शत्रु थे। तैत्तिरीय-संहिताके अनुसार सायणने लिखा है कि 'त्रित अग्निके पूजक थे। एक बार जल पीने जाकर त्रित कुएँमें गिर पड़े। यह देखकर असुरोंने कुएँपर एक 'ढक्कन' दे दिया। पीछे उसे भिन्न करके त्रित कुएँसे बाहर आये।'

अवस्ताके अनुसार 'थ्रेतन' नामसे ईरानी त्रितकी उपासना करते हैं। उनके ये प्राचीन देवता हैं। फिरदौसीने शाहनामामें लिखा है, 'फारसमें तीन मस्तकोंवाले जोहक नामके एक राजा थे। उन्हें फिरुद्दीनने जीता था।' तो क्या अवस्ताके थ्रेतन ही जोहक हैं?

इटली, ग्रीस और जर्मनीमें भी त्रैतनकी कथा प्रचलित है। उनमें भी यह उपास्य देवता हैं। ग्रीकोंमें Triton नामके एक जल-देव भी हैं। ग्रीकोंके जियसकी कन्याका नाम Trilogeneia था।

जिस मन्त्रमें त्रितका उल्लेख है, उसीमें बल नामके असुरके वधकी बात है। १.११.५ में भी बलका उल्लेख है। रेवरेंड कृष्णमोहन बनर्जी ने अपने "Aryan witness" में लिखा है कि 'ऋग्वेदका बल ही बेबीलोनाधिपति बेल था।' यह बात पहले भी लिखी गयी है।

अवस्ताके अनुसार ईरानी सूर्यके उपासक हैं। सूर्यको वे 'खोरसेद' कहते हैं। ग्रीकों, रोमनों और ट्यूटनोंमें भी सूर्य-पूजा है। ग्रीक सूर्यको हेलिओस और सूर्यवंशको हेलिनेस कहते हैं। सूर्यको रोमन 'सोल' और ट्यूटन 'टिर' कहते हैं।

ईरानी वायुपूजक भी हैं। Pan (पान) नामसे ग्रीक और रोमन भी वायुकी पूजा करते हैं।

अवस्तामें अग्नि-पूजाका विशद उल्लेख है। अग्नि ईरानियोंके अतीव प्रिय देवता हैं। वे **'अतर'** नामसे अग्निकी उपासना करते हैं। पारसियों के फारस और भारतमें ऐसे अनेक अग्नि-कुण्ड हैं, जिनमें सैकड़ों वर्षोंसे अखण्ड अग्नि प्रज्वलित है। लैटिन-भाषा-भाषी अग्निको Ignis, और स्लाव Ognis कहते हैं। ये सब जातियां अग्निकी उपासिका हैं। Prometheus (संस्कृत--प्रमन्थ) नामसे ग्रीक अग्निकी उपासना करते हैं।

अवस्तामें वैदिक सोमका नाम **"हउमा"** है। 'थियासाफिकल सोसा-इटी' की जन्मदात्री मैडम ब्लावस्कीके मतसे सोम और बाइबिलका ज्ञान-वृक्ष (Tree of Knowledge) एक ही पदार्थ हैं।

अवस्तामें मित्रको मिथ् और वरुणको वरण कहा गया है। ग्रीक वरुण को उरानोस (Uranos) कहते और उन्हें सभी देवोंके पिता मानते हैं।

अवस्तामें असुरको अहुर और यातुधान (राक्षस)को यातुमान लिखा गया है।

वैदिक साहित्यमें अग्निको नाराशंस भी कहते हैं। इसे ईरानी "नैर्यो-संघ" कहते और इसकी पूजा करते हैं।

मैक्समूलर साहबने यह भी लिखा है कि 'ऋग्वेदका वृसय असुर (१. ९३.४) इलियडका Brises है।'

डा० राजेन्द्रलाल मित्रने "Indo-Aryans"में लिखा है कि वेदमें उषाके जो अर्जुनि, ब्रिसया, दहना, सरमा, अहना और सरण्यू नाम हैं, वे ग्रीक आदिमें भी विकृत रूपसे प्रचलित हैं। ग्रीक उषाको Eos, अर्जुनिको Argynoris, ब्रिसयाको Brisis, दहनाको Daphne, सरमाको Helen, अहनाको Athena और सरण्यूको Erynis कहते हैं। लैटिन-भाषाभाषी अहनाको minerva कहते हैं।

"Mythology of Aryan Nations"में काक्सने लिखा है, 'अर्जुनिसे ही Argos और Aroadia शब्द उत्पन्न हैं।'

जैसे सरण्यूने अश्व-रूप धारण कर अश्विनीकुमारोंको जन्म दिया था वैसे ही एरिनिज नामकी ग्रीक देवीने घोड़ीका रूप धारण कर अरियेन और डिस्पोनाको पैदा किया था। अश्विनीकुमारोंको ग्रीक कैस्टर और पोलक कहते हैं।

पारसी साहित्यमें एक व्यक्तिका नाम **जामास्प वएतस** है। ऋग्वेद (६.१६.८) के मन्त्रमें वेतसु नामक असुरका उल्लेख है। शेहेरियारजीकी राय है कि जामास्प वएतस और वेतसु एक ही हैं।

मैक्समूलरका मत है कि 'आर्य शब्दसे ही ईरान, अर्मनी, आयरन आरियाई, आयर्लैंड, एरिन आदि शब्द उत्पन्न हैं और ये सब शब्द संसार आर्योंकी अवाध गति और आधिपत्यके परिचायक हैं।'

अवस्तामें आर्योंका निवास-स्थान "आर्येनेबेजो" (**आर्याणां बीजम्**) कहा गया है। और भी ऐसे अनेक विषय अवस्तामें आये हैं, जिनका वैदिक साहित्यके साथ तुलनात्मक अध्ययन करनेपर बड़ा मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन होता है। यहां विशेष लिखनेका स्थल नहीं है। हमें यहां इतना ही देखना है कि आर्य और ईरानी एक ही जातिकी दो शाखाएँ हैं या नहीं? अबतक दिये गये विवरणसे क्या परिणाम निकलता है?

ऐतिहासिक कहते हैं कि 'दोनों एक ही जातिके हैं। दस्यु, पणि, असुर भी एक ही हैं। पणि व्यापारी और धनाधिपति थे। आर्य शासक थे इसलिये इन्होंने पणियोंसे धन चाहा, कर बढ़ाया। इसीपर पणियोंसे झगड़ा हो गया। पणियोंको देशसे निकाल दिया गया। तबसे पणि (पारसी) असुर-पूजक हो गये। पहले असुर शब्दका अर्थ बुरा नहीं था। पीछे आर्योंने असुर, दस्यु आदि शब्दोंका बुरा अर्थ लिख डाला।'

इसमें सन्देह नहीं कि ऋग्वेद (१.५४.३) में "बली" अर्थमें असुर शब्द का प्रयोग हुआ है। इसी तरह १.२४.१४ में "अनिष्ट हटानेवाला"

अर्थमें, १.३५.१० में "प्राणदाता"के अर्थमें तथा चार और मन्त्रों (१. ३५.७; १.६४.२; १.१०८.६; १.११०.३) में अच्छे अर्थोंमें असुर शब्द आया है।

परन्तु वैदिक और संस्कृत साहित्योंमें ऐसे अगणित शब्द हैं, जिनके कितने ही अर्थ होते हैं। 'अश्विनौ' शब्दको लीजिये। निरुक्तकारने (१२. १) इस शब्दके स्वर्ग-मर्त्य, अहोरात्र तथा सूर्य-चन्द्र आदि कई अर्थ दिखाये हैं। किसी शब्दकी अर्थ-विविधताके कारण ऐतिहासिक तथ्यका कैसे निर्णय होगा? इन स्थानोंको छोड़कर वैदिक साहित्यमें असुर शब्द का प्रयोग दैत्य, राक्षस, नास्तिक, प्राण-घातक आदि अर्थोंमें आया है। आर्य-ईरानीके झगड़ेका कहीं वैदिक साहित्यमें उल्लेख भी नही मिलता। पणियोंसे धन मांगने या कर बढ़ानेकी बात भी तो किसी भी मन्त्रमें नहीं पायी जाती।

अच्छा, असुर शब्दका अर्थ तो आर्योंने आगे चलकर बुरा कर दिया; परन्तु जरूथ, वृत्र, यातुधान, इष्टाश्व आदि शब्दोंके तो कहीं भी अर्थ नहीं बदले गये। इनके अर्थ तो अनार्य, राक्षस, यज्ञद्रोही, दस्यु और नास्तिक आदि ही सदा किये गये हैं। इसलिये अनेकानेक वेदज्ञोंमें यह बात मानी जाती है कि जरूथ, वृत्र आदि अनार्य और असुर थे तथा इनके अनुयायी ईरानी वा पारसी भी अनार्य थे। ईरानपर आर्योंके आधिपत्यके कारण ये कुछ वैदिक देवोंकी भी पूजा करने लगे और वैदिक साहित्यके अनेकानेक शब्द गाथाओं और अवस्ता आदि ईरानी साहित्यमें भर गये। गाथा शब्द भी वैदिक है। बहुत लोग 'अवस्ता'को भी **अवस्था** शब्दका तद्भव रूप बताते हैं। दुर्गादास लाहिड़ीके मतसे तो परशुरामजीने ही फारस वा पारसको बसाया था।

सप्तविंश अध्याय

वेद और गोजाति

आर्यजातिमें सदासे गौकी प्रतिष्ठा और पूजा होती आयी है। इसका नाम ही "**अघ्न्या**" रख दिया गया है। कहा गया है--"**अघ्न्या इति गवां नाम क एनां हन्तुमर्हति ?**" अर्थात् 'गोजातिका नाम ही अघ्न्या (न मारने योग्य) है; इसे कौन मार सकता है?' गौओंके विना आर्योंका यज्ञ नहीं हो सकता था--"**गावो यज्ञस्य हि फलं गोषु यज्ञाः प्रतिष्ठिताः**" अर्थात् 'यज्ञफलका कारण गौएँ है, गौओंमें ही यज्ञ प्रतिष्ठित हैं।' गौओंके समादरका यह प्रधान कारण है। हविष्यके विना यज्ञ नही हो सकता और गोदुग्धके विना हविष्य बन नही सकता। इसलिये गायका एक नाम "**हविर्दुघा**" भी रखा गया। विना गोबरके यज्ञ-वेदी पोती नहीं जा सकती और विना कंडोंके यज्ञाग्नि प्रज्वलित नहीं किया जा सकता। "**पंचगव्य**"का पान किये विना यजमान यज्ञ करनेका अधिकारी नहीं हो सकता और गोमूत्र तथा गोबरके विना पंचगव्य बन नहीं सकता। गोघृतके विना यज्ञमें हवन नहीं हो सकता और हवनके विना यज्ञ ही नही हो सकता।

यज्ञ-धूमसे मेघ बनते हैं, मेघ जल बरसाते हैं, जलसे अन्न और तृण होते हैं और अन्न-तृणसे प्राणियोंका प्रतिपालन तथा जीवन-धारण होता है; इसलिये समस्त विश्वका आधार गौएँ हैं। विना गौओंके सारा विश्व नष्ट हो सकता है; इसलिये आर्योंका मत है कि "**एतद् वै विश्वरूपं सर्वरूपं विश्वरूपम्**" अर्थात् 'सम्पूर्ण-विश्व-रूप गायें हैं--विश्वमें जो कुछ है, सो सब गोरूप है।'

इसीलिये एक-एक राजा और ऋषि हजारों हजार गायें रखते थे--ऋग्वेदके अनेकानेक स्थानोंपर ऐसा उल्लेख है। गोजातिके विकासके लिये अच्छे सांड़ोंका रखना आवश्यक है; इसलिये सुलक्षण सांड़ रखे जाते थे।

पारस्कर-गृह्यसूत्र, ३ काण्ड, ९ कण्डिकामें अच्छे-बुरे सांड़ोंके लक्षण दिये हुए हैं।

ऋग्वेदमें दो **गोसूक्त** अत्यन्त प्रख्यात हैं। एक है छठे मण्डलका अठाईसवां सूक्त और दूसरा है दशम मण्डलका १६९ वां सूक्त। इनके सिवा ऋग्वेदमें ही नहीं, सभी वेदोंमें गौका महत्त्व बताया गया है। कुछ उदाहरण देखिये—

"वशां देवा उपजीवन्ति वशां मनुष्या उत।
वशेदं सर्वसमवत् यावत्सूर्यो विपश्यति॥"

अथर्ववेद १०.१०.३४

(जहांतक सूर्यका प्रकाश पहुँचता है, गायें सबको समान रूपसे लाभ पहुँचाती हैं। देव, मनुष्य, राक्षस—सभी गोदुग्धसे लाभ उठाते हैं।)

"माता रुद्राणं दुहिता वसूनां स्वसाऽऽदित्यानाममृतस्य नाभिः।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं बधिष्ट॥"

ऋग्वेद ८.१००.१५

(जो गौ रुद्रोंकी माता, वसुओंकी पुत्री, आदित्योंकी भगिनी और दुग्धका निवास-स्थान है, मनुष्यो, उस निरपराध और अदितिरूपिणी गो—देवीका बध नहीं करना।)

ऋग्वेदके छठे मण्डलके २८ वें सूक्तमें सब आठ मन्त्र हैं, जिनमेंसे २ रे और ८ वें मन्त्रोंमें इन्द्रकी स्तुति है, शेष मन्त्र गो-विषयक हैं। तीसरा मन्त्र है—

"न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति।
देवांश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित्ताभिः सचते गोपतिः सह॥"

(हमारे समीपसे गौएँ नष्ट न हों। हमारी गौओंको चोर नहीं चुरावें। हमारी गौओंपर शत्रुओंका शस्त्र पतित न हो। गोस्वामी यजमान जिन गौओंसे इन्द्रादिका यजन करते हैं और जिन गौओंको इन्द्रके लिये प्रदान करते हैं, उनके साथ वे चिर काल तक रहें।)

"गावो भगो गाव इन्द्रो मे अच्छान् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामीद्धृदा मनसा चिदिन्द्रम्॥ ५॥"

(गौएँ हमारे लिये धन हों। इन्द्र हमें गौएँ प्रदान करें। गौएँ हव्य-श्रेष्ठ सोमरस (आज्यादि गव्यके साथ) का भक्षण प्रदान करें। हे मनुष्यो, गौएँ ही इन्द्र हैं, जिनकी कामना हम श्रद्धायुक्त मनसे करते हैं।)

एक मन्त्र और उद्धृत किया जाना आवश्यक है। यह अथर्ववेद (४ २१. ६) में भी है–

"यूयं गावो मेदयथा कृशंचिदश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम्।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु॥ ६॥"

(गायो, तुम हमें पुष्ट करो। दुर्बल और कुरूपको सुन्दर बनाओ। कल्याणमयी वाक् कहनेवाली गायो, हमारे घरको मंगलमय करो (गौओं से संयुक्त करो)। गायो, यज्ञ-सभाओंमें तुम्हारा महान् यश बखाना जाता है।)

दशम मण्डलका १६९ वां सूक्त चार मन्त्रोंमें परिपूर्ण है। चारों ही मन्त्र गोजातिका सच्चा स्वरूप और उसके प्रति आर्य-जातिकी सम्पूर्ण श्रद्धा व्यक्त करते हैं। मन्त्र ये हैं–

"मयोभूर्वातो अभि वातूस्रा ऊर्जस्वतीरोषधीरा रिशन्ताम्।
पीवस्वतीर्जीवधन्याः पिबन्त्ववसाय पद्वते रुद्र मृल॥१॥"

(सुखकर वायु गायोंकी ओर वहे। गायें बलकारक तृण, पत्र आदिका आस्वादन करें। ये प्रभूत और प्राण-परितृप्ति-कारक जल पान करें। रुद्रदेव, चरण-युक्त और अन्न-स्वरूपिणी गायोंको स्वच्छन्दतासे रखो।)

"याः सरूपा विरूपा एकरूपा यासामग्निरिष्ट्या नामानि वेद।
या अंगिरसस्तपसेह चक्रुस्ताभ्यः पर्जन्य महि शर्म यच्छ॥२॥"

(कभी गायें समान वर्णोंकी होती हैं, कभी विभिन्न वर्णोंकी और कभी एक वर्णकी। यज्ञमें अग्नि उनको जानते हैं। तपस्याके द्वारा अंगिरा की सन्तानोंने उनको बनाया है। पर्जन्यदेव, गायोंको सुख दो।)

**"या देवेषु तन्वमैरयन्त यासां सोमो विश्वा रूपाणि वेद।
ता अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः प्रजावतीरिन्द्र गोष्ठे रिरीहि ॥३॥"**

(देवोंके यज्ञके लिये गायें अपने शरीरको दिया करती हैं। सोम उनकी अशेष आहुतियोंको जानते हैं। इन्द्र, उन्हें दूधसे परिपूर्ण करके और सन्तान-युक्त बनाकर हमारे लिये गोष्ठमें भेज दो।)

**"प्रजापतिर्मह्यमेता रराणो विश्वैर्देवैः पितृभिः संविदानः।
शिवाः सतीरुप नो गोष्ठमोकस्तासां वयं प्रजया संसदेम ॥४॥"**

(देवों और पितरोंसे परामर्श करके प्रजापतिने मुझे इन गायोंको दिया है। इन समस्त गायोंको कल्याण-युक्त करके वह हमारे गोष्ठमें रखते हैं, ताकि हम गायोंकी सन्तति प्राप्त कर सकें।)

इन मन्त्रोंसे ज्ञात होता है कि आर्य लोगोंकी सबसे प्रिय वस्तु गाय थी। वे गायोंको स्वादिष्ट तृण खिलाना, तृप्तिकर जल पिलाना और उन्हें सुखसे रखना अपना परम धर्म समझते थे। आर्योंकी प्रबल अभिलाषा थी अपने गोष्ठमें स्वस्थ, सुन्दर, स्वच्छ और मंगलमयी गायोंके रखने और उनके सन्तानवती होते रहनेकी। गायोंके विना आर्योंका न तो यज्ञ हो सकता था, न वे स्वस्थ और पुष्ट ही रह सकते थे। धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, शारीरिक—सभी तरहके लाभ गायोंसे होते है। इसीलिये आर्य उन्हें प्राणोंसे बढ़कर मानते थे। उन्होंने अपने 'पूर्णावतार' भगवान् कृष्णका नाम ही 'गोपाल' रख दिया है।

जो कोई गौओंको चुराता या मारता था, उसे आर्य लोग राक्षस कहते और मार डालते थे। पणियोंने एक बार गायें चुराकर छिपा दी थीं। इन्द्रने उन्हें खोज निकाला, अनेक पणियोंको मार डाला और अन्तिम काण्ड यह हुआ कि पणि आर्योंके चिर शत्रु बन गये!

हां, ऋग्वेद (१.६१.१२) में "गोर्न" उपमार्थक शब्द आया है, जिसे देखकर प्रो० विलसन और रमानाथ सरस्वतीने अनुमान लगाया है कि 'आर्य लोग गोमांसका व्यवहार करते थे।' परन्तु इन सज्जनोंका अनुमान

व्यर्थ है। सायणने इसका अर्थ किया है–'जैसे पशुको कसाई काटते हैं।' यहां गोका अर्थ साधारण पशु है और साधारण पशुको काटनेवाले भी 'कसाई' थे, आर्य नहीं। कुछ लोगोंका विचार है कि 'यज्ञमें गौ आदि पशुओंका वध होता था।' परन्तु वेदोंमें एक भी ऐसा मन्त्र वा मन्त्रांश नहीं है, जिससे इस विचारका अनुमोदन होता हो। गोमेध, अश्वमेध आदि में जो मेध शब्द है, उसका अर्थ 'पवित्र' है। यज्ञको अध्वर कहा जाता है, जिसका अर्थ 'निर्मल' है। यज्ञ शब्दका अर्थ भी पूजन है। फिर पशु-बधकी बात कहांसे आयी ?

ऋग्वेदके १.२१.५ में पहले पहल 'रक्षः' शब्द आया है, जिसे 'भक्षक' कहा गया है। राक्षस प्राणि-हन्ता और मांस-भक्षक थे; इसलिये इसी मन्त्रमें इनके निर्वंश होनेकी बात लिखी गयी है। इसी वेदके १०.८७.२ में स्पष्ट लिखा है कि 'अग्निदेव, जो मांस-भक्षक राक्षस हैं, उन्हें जला डालो, काट डालो।' भला जो मांस-भक्षकोंको समूल नष्ट कर देनेकी प्रार्थना देवोंसे बार-बार करता है, वह कैसे मांस-व्यवहार कर सकता है ? जिस आर्य-की परम लालसा थी, 'मित्रकी दृष्टिसे सारे प्राणियोंको देखू' (यजुर्वेद १८.३८), वह कैसे किसीको कष्ट भी पहुँचा सकता है, बधकी बात तो अलग रहे ?

'गोर्न'की तरह सन्देह यजुवदकी वाजसनेय-संहिता (पुरुषमेधप्रकरण), तैत्तिरीय-ब्राह्मण (अश्वमेध-प्रकरण), आश्वलायनगृह्यसूत्र (१ अध्याय) आदिमें भी उठाया जाता है; परन्तु इन स्थानोंमें भी दूसरे ही अर्थ हैं, मांस-समर्थक अर्थ एकमें भी नहीं है। 'यज्ञपरिभाषासूत्र' आदि वैदिक साहित्य-के अन्य ग्रन्थोंमें जहां कहीं मांस-व्यवहारकी बात आयी है, वहां या तो दूसरे ही अर्थ हैं या क्षेपक हैं अथवा यह माना जा सकता है कि कुछ कुरुचिके लोग (राक्षस) पहले भी थे, जो मांस-भक्षक थे; इसी लिये हीन-दृष्टिसे देखे जाते थे। वस्तुतः गोपूजाके ग्रन्थोंमें गोभक्षणकी बात आना असम्भव है।

अष्टाविंश अध्याय

वेद और विमान

अमेरिकन महिला ह्वीलर विल्लाक्सने "Sublimity of the Vedas" (पृष्ठ ८३) में लिखा है—'वैदिक ऋषियोंको विद्युत्, रेडियो, एलेक्ट्रन, विमान आदि सभी बातोंका ज्ञान था।' अपने "त्रयी-चतुष्टय"में भारत-प्रसिद्ध वेद-विद्वान् स्व० प० सत्यव्रत सामश्रमीने भी लिखा है कि 'वेदोंमें सारे विज्ञान, सूक्ष्म रूपसे, विद्यमान है।' बड़ोदामे **'यन्त्रसर्वस्व'** नामका एक हस्तलिखित ग्रन्थ मिला है, जिसके लेखक भरद्वाज ऋषि है। ग्रन्थके '**वैमानिक प्रकरण**'मे लिखा है कि 'वेदोके आधारपर ही इस ग्रन्थको बनाया गया है।' इसमें इतने प्राचीन वैमानिक ग्रन्थोंके नाम दिये हुए हैं—मयकी 'विमानचन्द्रिका' तथा 'यानबिन्दु', 'आकाश-यानरहस्य', 'व्योमयानतन्त्र' और 'व्योमयानार्कप्रकाश'। **'यन्त्रसर्वस्व** के उक्त प्रकारणमें बत्तीस प्रकारके वैमानिक रहस्य बताये गये हैं। प्रत्येक विमानमें दूरबीनका रहना भी लिखा है। प्रत्येकमें गति वक्र करने दूसरे विमानवालोंसे बातें करने, दूसरे विमानकी वस्तुएँ देखने, दूसरे विमान की दिशा जानने, दूसरे विमानवालोंको बेहोश करने और शत्रु-विमानको नष्ट करनेके भी यन्त्र लगे रहते थे।

यहां देखना है कि क्या वेदोंमें विमानकी बातें पायी जाती हैं? ऋग्वेद (१.३४.२)में अश्विनीकुमारोंके ऐसे रथका उल्लेख है, जो तीन चक्कों और तीन स्तम्भोंवाला है। तीनों खम्भे 'अवलम्बनके लिये हैं। यह भी लिखा है कि 'चन्द्रमाका वेनाके साथ विवाहके समय इस रथको लोगोंने पहले पहल जाना।' क्या यह कोई अद्भुत रथ है या विमान है? परन्तु रथमें न तो तीन चक्के ही रहते हैं, न तीन खम्भे ही।

इसी १ म मण्डलके ३४ वें सूक्तके १२ वें मन्त्रमें 'त्रिकोण और त्रिलोक में चलनेवाले रथ'का उल्लेख है। क्या यह त्रिलोकचारी विमान है? रथ तो त्रिकोण नहीं होता, न तीनों लोकोंमें चल ही सकता है।

१.४७.२ में फिर कहा गया है—'अश्विद्वय, अपने त्रिविध-बन्धन-काष्ठों से युक्त, त्रिकोण वा त्रिलोकमें वर्त्तमान और सुरूप रथके साथ आओ।' यहां भी १.३४.२ की ही बातें हैं।

१.११२.१२ में अश्विनीकुमारोंके 'अश्वरहित रथ'का उल्लेख है। इसके 'विजयके लिये चलाने'की बात भी लिखी गयी है। 'अश्व-रहित रथ' तो यान्त्रिक ही हो सकता है। रथका अर्थ यान वा सवारी भी होता है। तो क्या यह विमान ही है?

आगे १.११८.१ में तो और भी स्पष्ट विवरण मिलता है। पूरा मन्त्र देखिये—

"आ वां रथो अश्विना श्येनपत्वा सुमृलीकः स्ववां यात्वर्वाङ।
यो मर्त्यस्य मनसो जवीयान् त्रिबन्धुरो वृषणा वातरंहाः॥"

आचार्य सायणने इसका अर्थ यों किया है—'अश्विद्वय, तुम्हारा बाज पक्षीकी तरह शीघ्रगन्ता, सुखकर और सम्पन्न रथ हमारे सम्मुख आवे। अभीष्टवर्षक-द्वय, तुम्हारा रथ मनुष्यके मनकी तरह वेगवान्, त्रिविध बन्धनोंसे युक्त और वायुवेगी है।'

बाज पक्षीकी तरह शीघ्रगामी तथा मन और वायुकी तरह वेगशाली रथ तो घोड़ोंवाला नहीं हो सकता। यदि सायणका अर्थ ठीक माना जाय, तो ऐसा रथ वायुयान ही हो सकता है। मन्त्रमें घोड़ेका कहीं नाम भी नहीं है।

१.१२०.१० में फिर अश्व-रहित रथका उल्लेख है। कहा गया है—

"अश्विनोरसनं रथमनश्वं वाजिनीवतोः। तेनाहं भूरि चाकन॥"

अर्थात् 'मैंने अन्नदाता अश्विद्वयका अश्व-शून्य और गमनशाली रथ प्राप्त किया है। इससे मैं अनेक प्रकारके लाभ प्राप्त करनेकी इच्छा करता हूँ।'

अबतक तो यह अश्वरहित रथ अश्विनीकुमारोंके ही पास था; परन्तु अब इसे कक्षीवान् ऋषि पाकर तरह-तरहके मनसूबे बांधने लगे ! अभिनव और अद्भुत वस्तु पाकर ऐसे मनोरथ होते ही हैं।

४.३६.१ में तो स्पष्ट ही आकाशचारी रथका उल्लेख है। मन्त्र ऐसा है–

"अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो रथस्त्रिचक्रः परि वर्तते रजः।
महत्तद्वो देव्यस्य प्रवाचनं द्यामृभवः पृथिवीं यच्च पुष्यथ ॥"

अर्थात् 'ऋभुओ, तुम्हारा कर्म स्तुत्य है। तुम्हारे द्वारा प्रदत्त अश्विनी-कुमारोंका त्रिचक्र रथ अश्वके विना और लगामके विना अन्तरिक्ष (आकाश) में परिभ्रमण करता है। जिसके द्वारा तुम लोग द्यावापृथिवी-का पोषण करते हो, वह रथ-निर्माण-रूप महान् कार्य तुम लोगोंके देवत्व-को प्रसिद्ध करता है।'

अश्वके विना आकाशचारी रथ क्या है ? कदाचित् कोई भी उत्तर देगा 'विमान'।

४.७७.३ में भी 'मन और वायुकी तरह वेगशाली' और 'दुर्गम मार्गों का अतिक्रम करनेवाले रथ'का उल्लेख है।

१०.३९.१२ में १.११८.१ की ही तरह मनके सदृश वेगवान् रथका उल्लेख है। ४.३६.१ की तरह इस मन्त्रमें भी ऋभुओंके द्वारा अश्विनी-कुमारोंको प्रदत्त रथकी बात है।

इन समस्त मन्त्रोंसे ज्ञात होता है कि अश्विनीकुमार और ऋभु लोग ऐसे **विमान** रखते ही नहीं थे, स्वयं **बनाते** भी थे। ये लोग वैज्ञानिक ही नहीं, वैद्य भी थे। खेल नामक राजाकी पत्नी विशप्लाकी जांघ टूट गयी थी, जिसे अश्विनीकुमारोंने नयी और **नकली जांघ** बनाकर दे दी और वह चंगी हो गयी। ऋजाश्व राजाके पिताकी अन्धी आंखें भी इन्होंने अच्छी कर दी थीं। कक्षीवान् ऋषिकी ब्रह्मवादिनी घोषा नामकी कन्याका अश्विद्वयने **कुष्ठ रोग दूर** कर दिया था। प्रथम मण्डलके ११६ वें और ११७ वें सूक्तोंमें इस तरहके अश्विद्वयके अनूठे कार्योंकी एक तालिका ही

दी हुई है। १.१८२.५ से विदित होता है कि इन्होंने **पंखोंवाली एक नाव** भी बनायी थी। ऋभुगण नानी वैद्य थे। इनकी इस शक्तिका उल्लेख १.२०.४ में है। अन्य मन्त्रोंमें भी इनके अद्भुत कार्योंका उल्लेख है।

इसमें सन्देह नहीं कि वैदिक साहित्यमें वैज्ञानिक विषयोंका अत्यन्त सूक्ष्म उल्लेख पाया जाता है। यही नहीं, वेदोंमें अन्य विषयोंका भी सूक्ष्म रूपोंमें ही उल्लेख है—इन विषयोंका विशद और विस्तृत उल्लेख संस्कृत साहित्यमें पाया जाता है। इसके साथ ही यह बात भी निस्सन्दिग्ध है कि अगणित उपयोगी ग्रन्थ अब नहीं पाये जाते। विनष्ट हो गये अथवा संसारके किसी कोनेमें हस्तलिखित और जीर्ण-शीर्ण अवस्थामें पड़े हुए हैं।

वेदका अर्थ ज्ञान है और उपनिषदोंके अनुसार ज्ञान और विज्ञानमें कोई भेद नहीं है। वैदिक साहित्यमें धर्म और विज्ञान, दोनों बातें हैं। आर्य-जातिमें धर्म और विज्ञानका कभी झगड़ा नहीं हुआ; क्योंकि आर्योंने दोनों को सदा साथ रखा; दोनोंसे दोनोंको समर्थित माना। इसीलिये आर्यजातिमें ऐसा कभी समय ही नहीं आया, जब कि धार्मिकोंकी ओरसे वैज्ञानिकोंपर अत्याचार हुआ हो। यह काम तो वह करता है, जिसका धर्म विज्ञान-विरुद्ध हो। ईसाइयोंमें यह बात हुई है।

१४८१ ई० में विज्ञान-वादियोंका दमन करनेके लिये ईसाइयोंने "Court of inquisition" नामकी विशेष अदालत स्थापित की थी, जिसमें ईसाई मतके विरुद्ध विज्ञानके किसी सिद्धान्तका प्रचार करनेवाले वैज्ञानिकोंपर अभियोग लगाकर उन्हें सजा दी जाती थी। यही नहीं, नाना तरहकी यन्त्रणाएँ देकर उनसे स्वीकार कराया जाता था कि 'उनका सिद्धान्त' झूठा है! जो स्वीकार नहीं करते थे, उन्हें जीते जी जला दिया जाता था! उक्त अदालतकी आज्ञासे प्रथम वर्षमें ही २००० विद्वान् जलाये गये! इस अदालतका अध्यक्ष 'तारकी माडा' नामका मनुष्य १८ वर्षोंतक रहा। इसके समयमें १०२२० वैज्ञानिक और उनके

भक्त जीते जी जलाये गये और ८७३२७ मनुष्योंको अन्य प्रकारके दण्डों से दण्डित किया गया!!! दूरदर्शक यन्त्र (Telescope) के आविष्कारक गैलेलियोको इसलिये जेलमें ठूस दिया गया कि वह पृथिवीका भ्रमण करना बताता था! ब्रूनोको इसलिये जीवित ही जला दिया गया कि वह सृष्टिमें पृथ्वीकी तरह अनेक लोक-लोकान्तर बतलाता था!

परन्तु अत्याचार कबतक चल सकता था? अन्तको विज्ञानकी विजय हुई—ईसाई धर्मके विरुद्ध वैज्ञानिक विषयोंको ईसाइयोंको मान लेना पड़ा!

हिन्दू-जातिने ऐसा अत्याचार कभी नहीं किया; क्योंकि उसका मूल धर्म-ग्रन्थ वेद और विज्ञान समानार्थक है; उसका धर्म और विज्ञान साथ-साथ सदासे चलते आ रहे हैं। अवश्य ही संस्कृत-साहित्यमें कहीं-कहीं विज्ञान-विरुद्ध बातें पायी जाती हैं; परन्तु उन्हीं सज्जनोंको ये बातें विशेष मिलती हैं, जो 'नीम हकीम' हैं, अज्ञ अथवा अल्पज्ञ हैं, जिनमें "पल्लव-ग्राही पाण्डित्य" है या जो दूसरोंकी आलोचनाएँ पढ़कर धारणा बना लेते हैं और मूल ग्रन्थ समझनेकी योग्यता नहीं रखते। अपने शास्त्र और विषयमें निष्णात तथा अन्वेषण-परायण अधिकारी विद्वान्से स्वाध्याय करनेपर विज्ञान-विरुद्ध बातोंकी गन्ध भी नहीं मिलेगी। यदि ऐसा करने पर भी कोई विज्ञान-विरुद्ध बात मिले, तो उसे क्षेपक समझना चाहिये।

एकोनत्रिंश अध्याय

वेद और अवतार

ऋग्वेद, प्रथम मण्डलके २२ वें सूक्तके १६ वेंसे इक्कीसवें मन्त्रतक विष्णुके वैभवका वर्णन है। इसी प्रसंगमे इस सूक्तके १७ वे मन्त्रमें विष्णु के वामनावतार या त्रिविक्रमावतारका वर्णन आया है। मन्त्र यह है–

"इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्। समूलमस्य पांसुरे॥"

अर्थात् 'वामनावतारधारी विष्णुने इस जगत्की परिक्रमा की। उन्होंने तीन प्रकारसे अपने पैर रखे और उनके धूलि-धूसरित पैरोंसे जगत् छिप गया।' १६ वें और १८ वें मन्त्रोंमें भी "पैरोंके परिक्रम"की बात है।

इसी मण्डलके १५४ वें सूक्तके देवता विष्णु है। इसके प्रथम मन्त्रमें ही **वामनावतार**की बात है। इसी वेदके ३.५४.१४ में भी यही कथा है। ऐतरेय-ब्राह्मण (६.१५) में लिखा है, 'देवों और असुरोंके बीच जब संसारका बटवारा होने लगा, तब इन्द्रने कहा–'अपने तीन पैरोंसे विष्णु जितना नाप सकें, उतना संसार देवोंके लिये रहेगा; शेष असुरोंके लिये होगा।' असुर भी इस प्रस्तावसे सहमत हो गये। पश्चात् विष्णुने अपने पाद-परिक्रमसे जगत्के साथ ही वाक्यको भी व्याप्त कर लिया।' शतपथ-ब्राह्मण (१.२.५)में उल्लेख है–'असुरोंने कहा कि 'वामनरूप विष्णुके शयन करनेपर जितना स्थान आवृत होगा, उतना देवोंका, शेष असुरोंका होगा।' इस प्रस्तावका समर्थन देवोंने किया और विष्णुने सारे संसारको आवृत कर उसे देवोंको दिलवा दिया।'

पुराणोंमें, विस्तृत रूपमें, विष्णुके इसी वामनावतारकी कथा आयी है। इसीलिये पुराण वेदोंके भाष्य कहे जाते हैं। इसी प्रकार वेदोंके एक-

एक मन्त्र और मन्त्रांशके आधारपर पुराणोंमें विशद विवरण किये गये हैं। दो-एक उदाहरण और लीजिये। यजुर्वेद (१६.२८) में आया है **"नमो नीलग्रीवाय"**। इसका अर्थ है, 'नील गलावाले शंकरको प्रणाम।' इसपर महीधर-भाष्य है, 'विष-भक्षणसे नीला हो गया है गला जिसका, उस शंकर को प्रणाम।'

ऋग्वेद (१.८४.१३) में कहा गया है कि 'दधीचिकी हड्डियोंसे इन्द्र ने वृत्रादिको ८१० ("नवतीर्नव" = नवगुण नवति) बार मारा था।' यह दधीचिवाली कथा पुराणोंमें विस्तृत रूपमें है।

ऋग्वेदके १०.९३.१४में 'दुःशीम, पृथवान्, वेन और बलशाली राम'के नाम आये हैं। इन राजाओंकी वृहत् गाथाएँ महाभारत, बाल्मीकिरामायण और पुराणोंमें पायी जाती हैं।

इसी प्रकार नहुष, उर्वशी, पुरूरवा, तुर्वश, यदु, मनु, मान्धाता, पृथु-श्रवा, सुदास, च्यवन आदि आदिका उल्लेख अथवा संक्षिप्त विवरण मूल वेदोंमें है और इन सबकी विशद कथाएँ पुराणादिमें है। पुराणों की इसी विशदतामें वैदिक मन्त्रोंके परम्परागत अर्थ पाये जाते हैं। इन पंक्तियोंके लेखकने **सम्पूर्ण ऋग्वेदका** जो **हिन्दी-अनुवाद** किया है, उसमें प्रत्येक अष्टक और मण्डलके पहले ऐसी कथाओंकी संक्षिप्त सूची दी है, जिनका विस्तार और भाष्य पुराणादिमें है। जिज्ञासु सज्जन उस ग्रन्थको देख सकते हैं।

त्रिंश अध्याय

वेद और अलंकार

वेदोंमें जैसे अनेकानेक विद्याओं, कलाओं और विज्ञानोंका संक्षिप्त उल्लेख है, वैसे ही अलंकारोंका भी है। ये अलंकार स्वाभाविक रूपमें ही पाये जाते हैं; आजकलकी तरह अस्वाभाविक अलंकार वेदोंमें नहीं हैं। वेदोंमें परोक्षवादके भी अलंकार है, जो "वस्तु व्यंग्य" की शैलीके है। ये स्वाभाविक अलंकारोंके विकसित रूप हैं। ये वर्ण्य विषयको ध्वनित करनेवाले और लाक्षणिक अधिक है। सभी वैदिक संहिताओंमें ऐसे अलंकार और व्यंजनाएँ बहुत हैं। इनके लिये वेद-भाष्य देखने चाहिये। कुछ उदाहरण यहां दिये जा रहे हैं।

ऋग्वेदका "अस्य वामीय सूक्त" अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसमें अनेक उच्च कोटिके विषय वर्णित हैं। यह १म मण्डलका १६४ वां सूक्त है। इसका सोलहवां मन्त्र है–

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति ॥"

(दो पक्षी (जीवात्मा और परमात्मा) मित्रताके साथ एक ही वृक्ष (शरीर) में रहते है। इनमें एक (जीवात्मा) स्वादु पिप्पल (कर्म-फल) का भक्षण करता और दूसरा (परमात्मा) कुछ भी भोग नहीं करता, केवल द्रष्टा है।)

इसमें दो पक्षी जीवात्मा और परमात्माके लिये, वृक्ष शरीरके लिये और पिप्पल कर्मफलके लिये उपमान बनकर आये हैं; इसलिये रूपकातिशयोक्ति अलंकार है। यहां परोक्षवाद और दार्शनिक रहस्यके लिये रूपकातिशयोक्तिका सहारा लिया गया है।

शास्त्रीय अलंकार तीन हैं—शब्दालंकार, अर्थालंकार और उभया-लंकार। आचार्य भरत मुनिने चार अलंकार-भेद माने हैं—उपमा, रूपक, दीपक और यमक। वस्तुतः उपमा आलंकारिक शैलीका हृदय है। रूपक, उत्प्रेक्षा आदि इसीसे निकले हैं। वेदोंमें उपमा और रूपक अधिक हैं। ऋग्वेद (१.२५.४)का एक मन्त्र है—

"परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्य इष्टये। वयो न वसतीरुप॥"

सायणाचार्यने इसका अर्थ लिखा है—'जैसे चिड़ियां अपने घोंसलोंकी ओर दौड़ती हैं, उसी प्रकार हमारी क्रोध-शून्य चिन्ताएँ भी धन-प्राप्तिकी ओर दौड़ रही हैं।' यहां **उपमालंकार** है। इस सूक्तके १ ले और ३ रे मन्त्रोंमें भी उपमा है। इसी मण्डलके ३० वें सूक्तके २ रे और ४ थे मन्त्रों-में भी उपमा है। उपमाकी गणनाकी इयत्ता नहीं है; इस वेदमें यह अलंकार भरा पड़ा है। इसी प्रकार सामवेद (२.७.८), यजुर्वेद (३.६०) और अथर्ववेद(२० काण्ड)में भी **उपमालंकार** है। अथर्ववेदकी पैप्पलाद-संहिताका प्रथम मन्त्र है—

"शन्नो देवीरभिष्टये शन्नो भवन्तु पीतये।"

(परमात्माकी शक्तियां हमारे अभीष्ट आनन्दके लिये सुखदायी हों, हमारी तृप्तिके लिये सुखदायी हों।) 'शन्नो'में **'लाटानुप्रास'** है। प्रथम 'शन्नो'के साथ 'भवन्तु' रहनेसे **'दीपकालंकार'** होता।

शुक्ल यजुर्वेद (१.४८) का मन्त्र है—

"यत्र वाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव।"

(जहां वाण बालकोंके शिखाहीन बालोंकी तरह गिरते हैं।) वाणाः और विशिखाः में **'पुनरुक्तवदाभास'** है।

एक उदाहरण और देखिये—

"अहरहरप्रयाव भरतो श्वायेव तिष्ठते घासमस्य रायस्पोषण सभिषा मदन्तोऽग्ने माते प्रतिवेशा रिषाय॥" (यजुर्वेद ११.७५)

(जैसे गृहके अश्वको प्रतिदिन घास दी जाती है, उसी प्रकार खाद्य और भोग्य सामग्री प्राप्त करते और तुझे प्रदान करते हुए तथा अन्न-धनकी समृद्धिसे हृष्ट और आनन्दित होते हुए हम तेरे पड़ोसीकी तरह तुझमें प्रविष्ट होकर कभी पतित न हों।) विम्ब-प्रतिविम्ब भाव होनेसे इसमें उपमा नहीं है--'**उदाहरण**' वा '**दृष्टान्त**' है।

इस तरह स्वाभाविक रीतिसे कुछ अन्य अलंकार भी वेदोंमें आ गये हैं; परन्तु मुख्य वैदिक अलंकार उपमा है। इसीसे अनेक अलंकार निकले हैं। यह श्रेष्ठ अलंकार है। इसे ही अपनाकर कालीदास अमर कवि हो गये—"**उपमा कालिदासस्य।**" वेदार्थ करते समय इस आलंकारिक शैलीपर भी दृष्टि रखनी चाहिये।

"**गोवाणी**" (पृष्ठ ३१-३२) का यह कहना प्रायः ठीक ही है—"**वेदभाषा उत्तम शैलीकी काव्य-रचना** है। संस्कृत-ग्रन्थोंमें उससे उत्तम अलंकार कम मिलेंगे। धर्मज्ञानके पूज्य नियमोंका देवी-देवताओंके रूपोंमें वर्णन किया गया है। ×××× जब वेद-मन्त्रोंका गलत अर्थ लगाओगे, तो वेदोंका कोई दोष नहीं है। ×××× जो व्यक्ति काव्य-रचना, **निरुक्त** और **अलंकार**की विद्यासे अनभिज्ञ है, वह वेदोंके वास्तविक भाव को समझ नहीं सकता।"

एकत्रिंश अध्याय

वेद और परलोक

ऋग्वेदके १०.५८ सूक्तमे १२ मन्त्र हैं और बारहोंमें मृतकके मनको लक्ष्य करके परलोकका वर्णन किया गया है। प्रथम मण्डल, ३५ सूक्तके दूसरे मन्त्रमें 'भुवनों'का उल्लेख है। ५ वें मन्त्रमें भी "भुवनानि" है। इस प्रकार अनेकानेक मन्त्रोंमें "भुवनानि" शब्द आया है। इसी ३५ वें सूक्तका छठा मन्त्र है—

"तिस्रो द्यावः सवितुर्द्वा उपस्थां एका यमस्य भुवने विराषाट् ।
आणिं न रथ्यममृताधि तस्थुरिह ब्रवीतु य उ तच्चिकेतत् ॥"

सायणाचार्यने इसका अर्थ लिखा है, 'द्युलोक आदि तीन लोक हैं। इनमें द्युलोक और भूलोक—दो सूर्यके पास हैं। तीसरा अन्तरिक्ष यमराज के लोकमें वा घरमें जानेका मार्ग है। जैसे रथ कीलका ऊपरी हिस्सा अवलम्बन करता है, उसी प्रकार चन्द्र आदि नक्षत्र सूर्यका अवलम्बन किये हुए हैं। जो सूर्यको जानते हैं, वे इस विषयमें बोलें।'

इस एक ही मन्त्रमें तीनों लोकोंका भी उल्लेख है और आकर्षण-शक्तिका भी।

ऋग्वेदके १० म मण्डलका १४ वां सूक्त यमलोक और पितृलोकके वर्णनसे परिपूर्ण है। इस सूक्तके देवता ये ही दोनों लोक हैं। १ ले मन्त्रमें कहा गया है, 'सत्कर्म करनेवालोंको यमराज सुखके देशमें ले जाते हैं। उनके पास ही सारा मनुष्य-समुदाय जाता है।' दूसरा मन्त्र यह है—

"यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या अनु स्वाः ॥"

अर्थात् 'सबमें मुख्य यम हमारे शुभाशुभको जानते हैं। यमके मार्ग का कोई विनाश नहीं कर सकता। जिस पथसे हमारे पूर्वज गये हैं, उसीसे अपने-अपने कर्मानुसार सारे जीव जाते हैं।'

सातवें मन्त्रमें कहा गया है—'जहां हमारे प्राचीन पितामह आदि गये हैं, उसी मार्गसे हे मृत पितः, जाओ और स्वधासे प्रहृष्टमना राजा यम और वरुणको देखो।'

आठवें मन्त्रका कहना है—'पितः, उत्तम स्वर्गमें अपने पितरोंके साथ मिलो—अपने धर्मानुष्ठानके फलसे मिलो।'

९ वें मन्त्रमें लिखा है—'श्मशान-घाटपर स्थित पिशाचादिको, इस स्थानसे चले जाओ। हट जाओ। दूर होओ। यमने मृत यजमानके लिये इस स्थानको बनाया है।' दसवें मन्त्रमें यमद्वारके रक्षक दो कुक्कुरोंका उल्लेख है। ११ वेंमें भी दोनों कुत्तोंका उल्लेख है और १२ वेंमें कुक्कुरों को लम्बी नाकोंवाले, प्राण-भक्षण करनेवाले और महाबलशाली कहा गया है। १३ वेंमें यमके लिये सोम प्रस्तुत करने और हवन करनेकी बात है। १६ वेंमें यमराज यज्ञाधिकारी बताये गये हैं।

१० म मण्डलके १५ वें सूक्तमें १४ मन्त्र हैं और सब पितृलोक तथा पितरोंके वर्णनसे पूर्ण हैं। १ ले मन्त्रमें 'उत्तम, मध्यम और अधम' नामकी तीन श्रेणियोंमें विभक्त पितरोंको बताया गया है। दूसरा मन्त्र यह है—

"इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु॥"

अर्थात् 'जो पितर (पितामहादि) आगे और जो (कनिष्ठ भ्राता आदि) पीछे मरे हैं, जो पृथिवीपर आये हैं अथवा जो भाग्यशाली लोगोंके बीचमें हैं, उन सबको आज प्रणाम है।'

अगले मन्त्रोंसे ज्ञात होता है कि पितरोंको यज्ञमें बुलाया जाता था, कुशोंपर बैठाया जाता था, उन्हें सोमरस दिया जाता था तथा देवोंके साथ ही पितरोंको भक्ष्य और पेय भी दिया जाता था। पितर इन्द्रके साथ रथपर

चलते थे। **'स्वधा'**के साथ जाने-अनजाने सभी पितरोंको भक्षणके लिये हवि दी जाती थी– यह बात १३ वें मन्त्रमें है। १४ वें मन्त्रसे विदित होता है कि सभी मृत व्यक्ति जलाये नही जाते थे। कर्मानुसार उत्तम गतिकी प्राप्ति बतायी गयी है।

ऋग्वेद १०.२.७ में 'पितृयान' का उल्लेख है। १०.१८.१ में **देवयान** और **पितृयान**–दोनोंका उल्लेख है। २ रे मन्त्रमें भी पितृयानकी बात है। १०.८८.१५ में दोनों यानोंका उल्लेख है।

ऋग्वेद ४.५.५ में विपथगामिनी, पतिविद्वेषिणी और दुष्टाचारिणी स्त्री तथा यज्ञ-विहीन, अग्निविद्वेषी, सत्यशून्य और असत्यवादी पुरुषके लिये नरक-प्राप्तिकी बात लिखी है।

इन सारे लोकोंका विवरण उपनिषदोंमें कुछ अधिक है और पुराणोंम अतीव विस्तृत रूपमें है।

द्वात्रिंश अध्याय

वेद और गायत्री

चौबीस अक्षरोंवाला प्रसिद्ध गायत्री-मन्त्र वैदिक मन्त्रोंमें अत्युच्च स्थान रखता है। यह गायत्री छन्दमें है; इसलिये इसका नाम गायत्री पड़ा। सविता (सूर्य वा विश्व-प्रसव-कर्त्ता परमात्मा)से सम्बन्धके कारण इसका एक नाम सावित्री भी है।

इस मन्त्रका महत्त्व इससे भी ज्ञात होता है कि यह तीनों वेदोंमें पाया जाता है। ऋग्वेद (३.६२.१०) और सामवेद (उत्तरार्चिक १३.३.३) में तो एक-एक बार ही आया है; परन्तु यजुर्वेदमें कई बार आया है—३.३५, ३०.२ और ३६.३। मन्त्र यह है—

"तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥"

सायणाचार्यने इसका इस प्रकार अर्थ किया है—'जो सविता हम लोगों की बुद्धिको प्रेरित करता है, सम्पूर्ण श्रुतियोंमें प्रसिद्ध उस द्योतमान जगत्स्रष्टा परमेश्वरके संभजनीय तेजका हम लोग ध्यान करते हैं।'

इसका अर्थ इस तरह भी किया जाता है—'विश्वके रचयिता परमात्मा (वा सूर्य) के श्रेष्ठ तेजका हम ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धिको (सत्कर्म में) प्रेरित करे।'

मन्त्रमें २३ ही अक्षर हैं, परन्तु सर्व-प्रथम ओंकार (ओ३म् वा ॐ) रहता है; इसलिये २४ अक्षर हो जाते हैं। कुछ आचार्य ओंकारके विना मन्त्रमें मन्त्रत्व ही नहीं मानते। बहुत लोग गायत्रीमें तेईस अक्षर ही मानकर इसका नाम 'निचृद् गायत्री' रखते हैं। कुछ लोग 'वरेण्यम्'का पाठ 'वरेणियम्' करके चौबीस अक्षर मानते हैं। इस मन्त्रके पहले 'भूः

भुवः स्वः' भी लोग लगाते हैं। इनका अर्थ है, पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ। कुछ लोग इन तीनोंका अर्थ सत्, चित्, आनन्द भी करते हैं। ब्रह्म-परक होनेसे इसका एक नाम 'ब्रह्म-गायत्री' भी है। इसमें तीन चरण हैं।

तैत्तिरीयारण्यक (१.११.२) में इस मन्त्रका विवरण है। छान्दोग्योपनिषद् (३.१२.१) का कहना है कि "**गायत्री वा इदं सर्वम्।**" अर्थात् 'ब्रह्माण्डमें जो कुछ है, वह गायत्री है।' बादरायणके ब्रह्मसूत्र (१.१.२५)) पर शारीरक-भाष्यमें शंकराचार्यने कहा है, 'गायत्री-मन्त्रके जपसे ब्रह्मकी प्राप्ति होती है।' मनुजीने लिखा है—'तीन वर्षतक सावधानी के साथ गायत्रीका जप करते रहनेसे जपकर्त्ताको परब्रह्मकी प्राप्ति होती है'—

"योऽधीतेऽहन्यहन्येतास्त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः।
स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्त्तिमान्॥" (मनुस्मृति २.८२)

भागवत गीतामें भगवान्ने कहा है—"मैं वेदोंमें गायत्री हूँ,'— "**गायत्री छन्दसामहम्**" (१०.३५)।

श्रीमद्भागवतको तो गायत्रीका भाष्य ही बताया गया है—"**गायत्री-भाष्यरूपोऽसौ वेदार्थपरिबृंहितः।**" माना जाता है कि भागवतके दशम स्कन्धकी 'रासपंचाध्यायी'में ब्रह्मगायत्री महामन्त्रको सर्वाङ्गीण मूर्ति प्रदान की गयी है।

उपनिषदोंमें प्रतिदिन सन्ध्या करनेकी आज्ञा दी गयी है। कहा गया है—"**अहरहः सन्ध्यामुपासीत।**"

कर्म तीन प्रकारके बताये गये हैं—नित्य, नैमित्तिक और काम्य। इनमें स्नान, सन्ध्या, गायत्री-मन्त्र-जप, हवन, देवपूजन और बलिवैश्वदेव आदि छः नित्य कर्म हैं। पर्व, तीर्थ आदिके कर्म नैमित्तिक हैं। फलाशासे हरिवंश, पुराण आदिका पाठ काम्य कर्म है। इनमें नैमित्तिक और काम्य कर्म करनेसे फल-प्राप्ति तो होती है; परन्तु नहीं करनेसे कोई बुरा फल नहीं मिलता। परन्तु नित्य कर्म और नित्य कर्मोंमें सर्व-श्रेष्ठ

गायत्री-जप न करनेसे जीवनमें विघ्न होता है; पाप भी होता है। मनु महाराज कहते हैं–

'पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेन्नैशमेनो व्यपोहति।
पश्चिमां तु समासीनो मलं हन्ति दिवाकृतम् ॥"

अर्थात् 'प्रातःकाल आसन लगाकर गायत्री जपनेसे रातका किया पाप नष्ट होता है और सायंकाल सन्ध्या (गायत्री-जप) करनेसे दिनका किया पाप विनष्ट होता है।'

यह बात मानी हुई है कि मनुष्य दिन और रातमें कितनी ही बार झूठ बोलता है, कितने ही प्राणियोंको कष्ट देता है और अपने स्वार्थ-साधन के लिये जानते-अनजानते क्या-क्या अनर्थ करता है! इन सब दुष्कर्मोंसे उत्पन्न बुरे फलोंको नष्ट करनेके लिये गायत्रीका प्रतिदिन दो बार जप करना अत्यावश्यक है। याज्ञवल्क्य आदिकी स्मृतियोंमें तो तीन बार जप करनेकी आज्ञा है।

जन्मसे आठवें वर्षमें ब्राह्मण, ग्यारहवेंमें क्षत्रिय और बारहवेंमें वैश्य के बालकोंके उपनयनकी विधि है। इन्हीं समयोंमें इन तीनोंको गायत्रीकी दीक्षा देनेकी भी विधि है। परन्तु सोलह वर्षतक ब्राह्मण, इक्कीस वर्षतक क्षत्रिय और बाईस वर्षतक वैश्यके बालकोंका उपनयन न किया जाय और गायत्रीकी दीक्षा न दी जाय, तो वे पतित हो जाते हैं, आर्यजातिकी निन्दा के पात्र बन जाते हैं और फिर उनका गायत्री-मन्त्रकी दीक्षा लेनेका अधिकार भी जाता रहता है–

"सावित्री-पतिता ह्येते भवन्त्यार्यविगर्हिताः।" (मनुस्मृति)

रात-दिन और दिन-रातकी सन्धि (संयोजक वेला) में, प्रातः और सायं कालमें, करणीय माने जानेके कारण इसका एक नाम सन्ध्या है। यह 'सन्ध्या सावित्री' साक्षात् ब्रह्मरूपिणी जगन्माता मानी गयी है—

"त्वमेव सन्ध्या सावित्री त्वं देवि, जननी परा।" (दुर्गासप्तशती)

इस प्रकार नाना शास्त्रोंमें गायत्रीकी विविध महिमाएँ बतायी गयी हैं। इसके जपके बड़े-बड़े फल और सिद्धियां कही गयी हैं। कितने ही तो इसी एक मन्त्रमें निखिल वेदोंका अन्तर्भाव मानते हैं। इसके साथ कई कर्मोंकी भी विधियां हैं—आचमन, अघमर्षण, शुद्धि-मन्त्र, प्राणायाम, विभिन्न न्यास आदि। इस मन्त्रपर इतने भाष्य और इतनी टीका-टिप्पनियां निकली हैं कि उनके बड़े-बड़े पोथे बन गये हैं। इसमें सन्देह नहीं कि वैदिक मन्त्रोंमें सर्वाधिक प्रतिष्ठा और प्रख्याति इसी **गायत्रीमन्त्रकी** है।

त्रयस्त्रिंश अध्याय

तीन वैदिक देवता

वेदोंमें इन्द्र और अग्नि प्रधान देवता हैं। केवल इन दोनोंके सम्बन्ध में वेदोंमें जितने मन्त्र हैं, उतने ही अन्य समस्त देवोंके सम्बन्धमें हैं। वैदिक संहिताओंमें इन्द्र और अग्निके सम्बन्धके प्रायः छः हजार मन्त्र हैं। इनमें साढ़े तीन हजार इन्द्रके और ढ़ाई हजार अग्निके मन्त्र हैं। इससे वैदिक साहित्यमें इन दोनों देवोंकी विशाल महत्ता सूचित होती है।

ऋग्वेदके नवम मण्डलमें सोम देवताके अधिकांश मन्त्र हैं। सामवेद के पूर्वार्द्धमें अग्निदेवता-विषयक ११४ मन्त्र हैं। इस प्रथम काण्डका नाम "**आग्नेय पर्व**" है। दूसरे काण्डमें इन्द्रदेवता-विषयक ३५२ मन्त्र है। इस का नाम "**ऐन्द्र पर्व**" है। तीसरे काण्डमें सोमदेवता-विषयक ११६ मन्त्र हैं। इसे "**पावमान पर्व**" कहा जाता है। इन क्रम-बद्ध मन्त्रोंके सिवा सारी वैदिक संहिताओंमें ऐसे हजारों छिट-फुट मन्त्र हैं, जो देवता-विषयक हैं। इन मन्त्रोंसे देवोंका वास्तव स्वरूप समझमें आ सकता है। इसी अभि-प्रायसे इन्द्र, अग्नि और सोम देवताओंके सम्बन्धमें यहां कुछ विवरण दिया जा रहा है।

इन्द्र

मन्त्रोंमें इन्द्रको परमात्मा, आत्मा, वीर, विद्युत् आदि कहा गया है। यूरोपीय वेदज्ञाता इन्द्रको "मेघस्थ विद्युत्" मानते हैं। परन्तु विचार करने पर इन्द्र बिजली ही नहीं, प्रत्युत सर्वशक्तिमान् विदित होते हैं। पाणिनि की "अष्टाध्यायी" (५.२.९३) की टीकामें भट्टोजी दीक्षितने इन्द्रियोंका

शासक इन्द्रको माना है। इन्द्रसे ही इन्द्रियोंको शक्ति मिलती है, ज्ञान मिलता है। फलतः यहां इन्द्र आत्मा हैं।

निरुक्त (१०.१.१९) ने इन्द्रको अन्नदाता, जलदाता, चन्द्र-रस-दाता, भूत-प्रकाशक, प्राण-दीपक, जगन्निर्माता, वैभव-शाली, शत्रु-हन्ता और याज्ञिकोंका सम्मान-कर्त्ता आदि बताया है। सब १५ प्रकारसे इन्द्रकी व्युत्पत्ति यास्कने की है। ऐतरेयोपनिषद् (४.३.१४ और ५.३ आदि) ने इन्द्रको आत्मा, ब्रह्मा, सर्व-देव आदि कहा है। बृहदारण्य-कोपनिषद् (१.५.१२), तैत्तिरीयोपनिषद् (२.८.१), मैत्रायणी-उपनिषद् (६.३३), प्रश्नोपनिषद् (२.९) आदिमें इन्द्रको क्रमशः अद्वितीय, आनन्द-रूप, सूर्य और प्राण कहा गया है।

ऐतरेय-ब्राह्मण (८.७), शतपथ-ब्राह्मण (८.५.३.२), जैमिनीय-ब्राह्मण (१.३३.२), गोपथ-ब्राह्मण (उत्तरार्द्ध, ४.११), तैत्तिरीय-ब्राह्मण (३.८.२३.२), कौषीतकि-ब्राह्मण (६.९) आदिमें इन्द्रको क्रमशः इन्द्रिय-रक्षक, सूर्य, वाणी, मन, राजा आदि बताया गया है। इसी प्रकार इन्द्रको कहीं (कौषीतकि-ब्राह्मण ६.१४) ब्रह्मा कहा गया है, कहीं (शत-पथ-ब्राह्मण ११.४.३.१२ और तैत्तिरीयब्राह्मण २.५.७.४) बलपति माना गया है, कहीं (ताण्ड्य-महाब्राह्मण ९.७.५) वीर्य कहा गया है, कहीं (शत-पथब्राह्मण ३.४.२.२) सर्वदेव बताया गया है, कहीं (कौषीतकि-ब्राह्मण ६.१४) देवोंमें बलिष्ठ कहा गया है और कहीं (कौषीतकि-ब्राह्मण १४.१) ज्योति माना गया है।

वैदिक संहिताओंमें इन्द्रको व्यापक (विभुः), विश्व-ज्ञाता (विश्व-वेदाः), सर्वश्रेष्ठ देवता (देवतमः), श्रेष्ठ पिता (पितृतमः), स्वयं तेज-श्शाली (स्वरोचिः), अमर (अमर्त्यः), धर्म-विधायक (धर्मकृत्), अच्युत (अनपच्युत्) आदि कहा गया है। ऋग्वेदके एक मन्त्र (१.५५.१) की उक्ति है, 'आकाशसे भी इन्द्रकी प्रभाव विस्तीर्ण है। महिमामें पृथिवी भी इन्द्रकी समता नहीं कर सकती। भीषण और बली इन्द्र मनुष्योंके

लिये शत्रुको जलाते हैं। जैसे सांड़ अपनी सींग रगड़ता है, वैसे ही इन्द्र तीक्ष्ण करनेके लिये अपना वज्र रगड़ते हैं।'

ऋग्वेद (२.२०.७) में कहा गया है, 'इन्द्र वृत्रासुरका विनाश करने वाले और शत्रु-पुरीको नष्ट करनेवाले हैं। उन्होंने मनुके लिये जल और पृथवीकी सृष्टि की। वह यज्ञ-कर्त्ताकी इच्छा-पूर्ति करें।'

इसी वेदके २.१५.२ में उल्लेख है—'आकाशमें इन्द्रने द्युलोकको स्थिर किया है। द्यावापृथिवी और अन्तरिक्षको अपने तेजसे पूर्ण किया है। उन्होंने विस्तीर्ण पृथिवीका धारण करके उसे प्रसिद्ध किया है।'

१.५४.८ में इन्द्रकी बुद्धि और बल अतुलनीय कहे गये हैं। ६.३०.४ में कहा गया है कि 'इन्द्रके समान न तो कोई मनुष्य है, न देवता ही है।' १.८०.१४ में लिखा है, 'वज्रधर इन्द्र, तुम्हारा गर्जन सुनकर स्थावर और जंगम कांपने लगते हैं! तुम्हारे कोप-भयसे त्वष्टा भी कांप जाते हैं।'

इन उद्धरणोंसे ज्ञात होता है कि आर्य लोग इन्द्र शब्दसे भी परमात्माको जानते थे। इन्द्रकी विभूति और ऐश्वर्यका जो वर्णन किया गया है, वह परमात्मामें घटित होता है। परन्तु साथ ही आर्य लोग इन्द्रको श्रेष्ठ देव और शूर-वीर भी मानते थे। अध्यात्म-दृष्टिसे इन्द्र परमात्मा थे, अधिदैव-दृष्टिसे श्रेष्ठ देव थे और अधिभूत-दृष्टिसे महान् योद्धा थे। सारे इन्द्र-विषयक विवरण पढ़नेसे ये बातें मालूम पड़ती हैं।

संहिताओंमें इन्द्रकी वीरताके द्योतक बहुत शब्द आये हैं—असुर-हन्ता (असुरहा), महाबली (सुवीरः, महावीरः, वीरतमः आदि), सारे शत्रुओंके विजेता (सजित्वानः), शत्रु-पुरियोंके नाशक (पुरन्दरः), सेना-धनी (वाजिनीवसुः), सेनापति (सेनानीः), महारथी (रथितमः), वज्रबाहु (वज्रहस्तः), असीम-तेजस्वी (अमितौजाः) आदि। इन्द्र विशेष ज्ञानी (सुवेदाः), मनुज-स्वामी (नृपतिः), प्रजा-स्वामी (विश्पतिः), धनाधिपति (वसुपतिः), गोपालक (गोपतिः), सर्व-कल्याण-कारी (भद्रकृत्) आदि भी बताये गये हैं।

ऋग्वेद १.५१.९ में इन्द्र धार्मिकोंके हितैषी कहे गये हैं। वे कई मन्त्रों (ऋ० २.१३.१०; ५.३२.११) में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद (पञ्च-जन) के रक्षक माने गये हैं। ऋग्वेद १.५५.५ में कहा गया है कि 'इन्द्र लोक-कल्याणके लिये ही युद्ध करते हैं।' ३.३०.१७ में 'दुष्ट-दलन-कर्त्ता' कहे गये हैं। १.४.९ में सौ यज्ञ करनेवाले (शतक्रतु) बताये गये हैं। १.१७८.३ में वीरोंके साथ उन्हें युद्धमें विजेता कहा गया है। इन्द्र शत्रुको कारागारमें रखनेवाले माने गये हैं (ऋ० १.५६.३)। इन्द्र को कपटियोंके साथ कपटी कहा गया है (ऋ० १.५१.५)। इन्द्र शत्रुके सौ नगरोंको नष्ट करनेवाले कहे गये हैं (ऋ० १.५३.८)। ऋग्वेद १.५३.९ में उल्लेख है, 'सुश्रवा राजाके साथ बीस राजा और साठ हजार निन्यानबे सैनिक इन्द्रसे लड़नेके लिये आये थे। इन्द्रने सबको पराजित कर दिया था।' २.१८.६ में कहा गया है कि 'इन्द्र सौ घोड़ोंके रथपर बैठाकर यज्ञमें बुलाये गये।' ३.३०.३ में इन्द्रके सुन्दर शिरस्त्राणका उल्लेख है। २.३५ ६ में इन्द्रके उच्चैःश्रवा घोड़ेका उल्लेख है।

ऋग्वेद १.८०.८ में कहा गया है कि 'इन्द्रके वज्र नब्बे नदियोंके ऊपर विस्तृत हुए थे।' २.११.१०; २.१६.३ आदिमें इन्द्रके वज्रकी बड़ी प्रशंसा की गयी है।

संहिताओंके मन्त्र जैसे इन्द्रको परमात्मा, देव-श्रेष्ठ और महाबली बताते हैं, वैसे ही ब्राह्मण-ग्रन्थों और उपनिषदोंके मन्त्र इन्द्रको अद्वितीय, आत्मा, जीवात्मा, प्राण आदि कहते हैं।

अग्नि, वरुण, वायु, मरुत्, सोम, विष्णु, बृहस्पति, पूषा, ऋभु, त्वष्टा, द्यावापृथिवी, ब्रह्मणस्पति और सूर्य आदिके साथ सैकड़ों संहिता-मन्त्रोंमें इन्द्रकी स्तुति की गयी है और उनका वर्णन किया गया है। इन्द्र-तत्त्व वैदिक साहित्यका एक विशिष्ट प्रतिपाद्य है।

अग्नि

पहले कहा जा चुका है कि संहिताओंमें अग्नि-सम्बन्धी ढाई हजार

मन्त्र हैं। अग्नि विश्वमें पुरुष-शक्ति (वैश्वानरः), धन-विजयी (धनञ्जयः), ज्ञानोत्पादक (जातवेदाः), शरीर-रक्षक (तनूनपात्), लाल घोड़ावाले (रोहिताश्वः), सुवर्ण-वीर्य (हिरण्य-रेताः), सात ज्वालावाले (सप्तार्चिः), सात जीभवाले (सप्त-जिह्वः), सारे देवोंके मुख (सर्वदेवमुखः) आदि कहे गये हैं।

ऋग्वेद १.३१में अग्निको राजा नहुषका सेनापति कहा गया है। इसी मन्त्रमें अग्निको अंगिरा (अंगारे ?)का पुत्र भी बताया गया है। इसी मन्त्रके आधारपर कई वेदज्ञ अग्निको ऋषि मानते हैं। परन्तु मन्त्रमें ऐसी कोई बात नहीं है। उसमें यज्ञ-कर्त्ता नहुषका यज्ञ सम्पन्न करनेके कारण अग्नि नेता (यज्ञमें अग्र-गन्ता) मात्र कहे गये हैं। १०.५.७ में कहा गया है कि 'अग्नि सृष्टिके पहले अव्यक्त थे और सृष्टि होनेपर व्यक्त हुए। अग्नि आकाशमें सूर्य-रूपसे जनमे हैं। अग्नि हमसे (आप्त्य त्रित ऋषिसे) पहले उत्पन्न हुए हैं। अग्नि यज्ञके पहले अवस्थित थे।' १.३१.१ में कहा गया है, 'अग्ने, देवोंमें प्रथम तुम अंगिरा ऋषि थे' अर्थात् तुम देवोंमें अंगिरा (अंगारे वा आग ?) थे अथवा 'यज्ञ-मण्डपमें प्रथम आनेके कारण तुम प्रथम ऋषि थे।' इसके अगले मन्त्रका भी ऐसा ही आशय है। उसमें वायुका अग्रगामी अग्निको बताया गया है। अग्नि शरीरधारी ऋषि थे, ऐसा किसी मन्त्रसे नहीं ज्ञात होता। यज्ञके प्रथम सम्पादक होनेके कारण अग्निकी प्रशंसा, नाना प्रकारसे, की गयी है। जड़-अग्निके अधिष्ठाता चेतन-अग्नि माने जाते थे; इसलिये इन्हें देव कहा गया है।

अग्निको 'मरण-धर्मवाले प्राणियोंमें अमर प्रकाश' कहा गया है (६.९.४)। इस मन्त्रमें जठराग्निका भी उल्लेख है। १.१४८.१ में कहा गया है—"काठके भीतर घुसकर वायुने विविध-रूप-शाली, समस्त देवोंके कार्यमें निपुण और देवोंको बुलानेवाले अग्निको बढ़ाया। पहले देवोंने अग्निको, विलक्षण प्रकाशवाले सूर्यकी तरह, मनुष्यों और ऋत्विकोंकी

यज्ञ-सिद्धिके लिये, स्थापित किया।' १.५८.३ में अग्निको धन-जयी और अमर कहा गया है। ४.६.२ में अग्निको देव-दूत बताया गया है।

भागवत गीताके ज्ञानाग्नि, इन्द्रियाग्नि आदि और गर्भोपनिषद् के 'ज्ञानाग्नि', 'दर्शनाग्नि', 'कोष्ठाग्नि' आदिके समान वेदोंमें भी अनेक अग्नियोंका उल्लेख है। वैदिक गार्हपत्याग्नि, आहवनीयाग्नि और दक्षिणाग्नि तो प्रसिद्ध हैं ही। परन्तु ऋग्वेदके १.२६.१०; ३.२४.४; ६.१०.२; ५.६.६ आदिमें अनेक अग्नियोंका वर्णन है।

अग्निको कहीं (ऋग्वेद ७.३.१) यज्ञ-दूत, कहीं (८.६०.१) होता, कहीं (४.६.८) हव्यभाजी और सुन्दर-वदन, कहीं (५.११.२) इन्द्रके समकक्ष, कहीं (१०.१२२.४) यज्ञकी पताका, कहीं (१०.२०.२) युवक और सबके मित्र, कहीं (३.२३.१) क्रान्त-कर्मा आदि कहा गया है।

इन्द्र और अग्निके मन्त्रोंमें उपमाएँ बहुत आयी हैं। जहां-कहीं इन्द्र और अग्निकी स्तुति की गयी है वा इनका वर्णन किया गया है, वहां इनके विशेषणोंकी भरमार है। ये विशेषण इनके गुण-बोधक हैं। इन विशेषणोंसे इन्द्र और अग्निका स्वरूप समझनेमें बड़ी सहायता मिलती है।

सूर्य, इन्द्र, मित्र, वरुण, अश्विनीकुमार, भग, पूषा, ब्रह्मणस्पति, सोम, मरुत्, वरुण, विष्णु, वायु आदिके साथ अनेकानेक मन्त्रोंमें अग्निकी स्तुति की गयी है, प्रशंसा की गयी है और वर्णन किया गया है।

इन्द्र और अग्निके सैकड़ों मन्त्र और मन्त्रांश कई-कई बार कहे गये हैं। सोम, मरुत्, मित्र, वरुण, अर्यमा आदि देवोंके मन्त्र भी पुनरुक्त हुए हैं। हो सकता है कि जटिल सन्दर्भोंको सुगम और बोध-गम्य बनानेके लिये वा विषयोंको दृढ़ करनेके लिये पुनरुक्तियां की गयी हों।

सोम

आर्य सोमके अत्यन्त अनुरागी थे। वैदिक संहिताओंके दशमांश मन्त्र सोमकी स्तुति, प्रशंसा और विवरणसे परिपूर्ण हैं। इन्द्र और अग्निको

छोड़कर वेदोंमें सोमके सम्बन्धमें जितने मन्त्र हैं, उतने किसी भी देवताके सम्बन्धमें नहीं हैं।

सोमको ओषधीश (वीरुधां पतिः—ऋग्वेद ९.११४.२; अथर्ववेद ५.२४.७), चन्द्र (इन्दु—ऋ० ९.८६.४१; ९.६६.२५), अमृत (पीयूष—ऋग्वेद ९.५१.२; ९.९७.३२), पवमान (९.६६.२५) आदि कहा गया है। ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें सोमको ज्योति (शतपथ-ब्राह्मण ५.१.५.२८), श्री (शतपथ० ४.१.३.९), राजा (तैत्तिरीय-ब्राह्मण २.५.७.३), चन्द्रमा (कौषीतकि-ब्राह्मण ७.१०; शतपथ० १०.४.२.१), प्रजापति (शतपथ० ५.१.३.७), विष्णु (शतपथ० ३.३.४.२१), वायु (शतपथ० ३.७.१.१), पर्ण (शतपथ० ६.५.१.१), पलाश (कौषीतकि-ब्राह्मण २.२), दधि (कौषीतकि० ८.९), यश (तैत्तिरीय-ब्राह्मण २.२.८.८), अन्न (ताण्ड्यमहाब्राह्मण ६.६.१), हवि (शतपथ० ३.५.३.२), ब्राह्मण (ताण्ड्य-महाब्राह्मण २३.१६.५), वीर्य (कौषीतकि० १३.७; शतपथ० ३.३.२.१), दुग्ध (शतपथ० १२.७.३.१३), पुरुष (तैत्तिरीय-ब्राह्मण १.३.३.४—"पुमान्वै सोमः स्त्री सुरा"), सुवर्ण (तैत्तिरीय-ब्राह्मण १.४.७.४—५) आदि बताया गया है।

ये सोमके गुण-बोधक विशेषण हैं—इन विशेषणोंके कुछ न कुछ गुण सोममें हैं। लाक्षणिक रूपसे सोमको चन्द्रमा भी कहा गया है। चन्द्रमाको देखकर जैसे हर्ष होता है, उमंग बढ़ती है, वैसे ही सोम-पानसे भी। सुश्रुत-संहिता, २९ अध्याय, २१—२२ श्लोकोंके अनुसार 'शुक्ल पक्षमें जैसे एक-एक कला चन्द्रमा बढ़ते-बढ़ते पूर्णिमाको पूर्णता प्राप्त करते हैं, वैसे ही सोम भी शुक्ल पक्षमें एक-एक पत्ता बढ़ते-बढ़ते पूर्णिमाको १५ पत्तियोंसे युक्त हो जाता है। सोमवल्लीमें सब १५ पत्ते होते हैं। कृष्ण-पक्षमें क्रमशः एक-एक पत्ता गिरता जाता है और जैसे अमावास्याको चन्द्रमा लुप्त हो जाते हैं, वैसे ही सोमके सारे पत्ते भी अमावास्याको लुप्त हो जाते हैं।' इन गुणोंकी समानताके कारण ही सोमको चन्द्रमा कहा गया है।

वस्तुतः सोम सबसे मूल्यवान् और शक्तिशाली जड़ी अथवा औषधि था। यह आरोग्य, आनन्द, वीर्य, प्रतिभा, मेधा आदि प्रदान करनेवाला था। इसीलिये इसकी लाक्षणिक रूपसे इतनी महिमा बखानी गयी है। अत्युपकारक होनेसे जैसे इन्द्र तथा अग्निकी स्तुतिमें इन्द्र और अग्नि को सब कुछ कह दिया गया है, वैसे ही अत्युपकारी होनेसे सोमका भी इतना गुण-गान किया गया है।

मूजवान् (हिमालयस्थ पर्वत), शर्यणावान् (कुरुक्षेत्रस्थ तड़ाग वा झील), आर्जीकीया (व्यास नदी), सुषोमा (सोहान नदी), सिन्धु आदि सोमकी उत्पत्तिके स्थान माने गये हैं। यह गिरिष्ठा (ऋग्वेद ९.६२.४; ९.१८.१) कहा गया है अर्थात् यह पर्वतपर होता था। हो सकता है कि इन नदियोंके उद्गम-स्थानके पर्वतोंपर भी सोम उत्पन्न होता हो।

सोमके सम्बन्धमें "**सामवेदकी संहिताएँ**" नामके अध्यायमें कुछ **विव-**रण दिया गया है; इसलिये यहां विशेष बातें ही लिखी जा रही हैं। सोम-वल्लीके पत्ते हरे, सांवले और कुछ-कुछ लाल बताये गये हैं। कुछ पत्ते सुनहले रंगके भी कहे गये हैं। इसके भांति-भांतिके वर्णन मिलते हैं।

युद्ध-भूमिमें जाते समय आर्य सोम पीते थे। पीते ही पीते उनमें उमंग, तरंग और प्रतिभा प्रस्फुटित हो जाती थी। स्तुति-पाठ और वक्तृत्वकी शक्ति बढ़ जाती थी। पान करनेवाला उच्च भावों और आनन्द में डूब जाता था। बुद्धि-वृद्धि करना इसका विशेष गुण था। यह बूढ़ेको तारुण्य प्रदान करता था। असीम बल बढ़ा देता था। शरीरको रोग-रहित कर देता था। जानवरोंको भी सोम-रस पिलाया जाता था। सोम-रस पीनेवाली गायोंके दूधमें सोमका गुण आ जाता था। इसमें घृत, दधि, दूध, मधु, जल, सत्तू आदि भी मिला दिये जाते थे। यज्ञमें १८ ऋत्विक्, ३३ देव और कुछ सदस्य इसे पीते थे। यज्ञमें सोमरसमें इक्कीस गायोंका दूध मिलानेकी भी विधि है।

ये ही सब कारण है कि देव और मनुष्य, सबकी इसमें चूड़ान्त आसक्ति थी।

सोमके सम्बन्धमें कितनी ही आलंकारिक कथाएँ भी वैदिक साहित्य में है। उनके यहां लिखनेकी आवश्यकता नही। आश्चर्य तो यह है कि इतनी महत्त्व-पूर्ण औषधि क्योंकर दुर्लभ्य हो गयी? वैदिक संहिताओंका दशमांश जिसके वर्णन, प्रशंसा और स्तुतिसे परिपूर्ण है, वह अनमोल वस्तु जगती-तलसे कैसे उठ गयी? हिमालय आदिमें सुश्रुतमें कहे २४ प्रकार के सोमकी प्राप्तिकी सम्भावना बतायी जाती है। क्या कुछ साहसी वेद-भक्त और वैद्य इसकी खोजके लिये चेष्टा नही कर सकते? यदि यह वस्तु उपलब्ध हो गयी, तो संसारमें युगान्तर उपस्थित हो जायगा।

संहिताओंके अनेकानेक मन्त्रोंमें पूषा, अदिति, रुद्र, वरुण, इन्द्र, अग्नि, सूर्य, बृहस्पति, अर्यमा, सविता आदिके साथ सोमका यशः—स्तवन किया गया है।

इन्द्र और अग्निकी तरह ही सोमके मन्त्रोंमें भी बड़ी उपमाएँ आयी हैं। मन्त्रोंमें सोमके गुण-बोधक विशेषण भी बहुत हैं। सोमके मन्त्रोंमें भी पुनरुक्तियां हैं। प्रत्येक देवताका स्वरूप समझनेके लिये उनकी उपमा ओं, उनके मन्त्रान्तर्गत विशेषणों और उनके पुनरुक्त मन्त्रोंका अध्ययन करना परमावश्यक है। जिस देवताका स्वरूप समझना हो, उसके सम्बन्ध के वैदिक साहित्यके समस्त मन्त्रोंका अध्ययन करना अनिवार्य है। नमूने के तौरपर यहां इन तीन देवोंका उल्लेख किया गया।

चतुस्त्रिंश अध्याय

वैदिक संहिताओंके पदपाठकार

पदों और शब्दोंका विच्छेद, स्वरांकन (अवग्रह तथा उदात्त, अनुदात्त, स्वरित) आदि बतानेवाले पदपाठकार कहे जाते हैं। ये भी एक तरहसे वैदिक संहिताओंके भाष्यकार है। पदपाठकार प्रायः ऋषि, महर्षि हैं। पदपाठोंके साहाय्यसे पदोंकी प्रकृति, प्रत्यय और समासोंका रूप आदि विदित हो जाते हैं। ये पदपाठ बड़े प्रामाणिक माने जाते हैं। अधिकांश विषयोंको बतानेके लिये पदपाठकार अवग्रह (ऽ)का प्रयोग करते हैं।

पदपाठ कई प्रकारके होते हैं। विभिन्न संहिताओंके विविध पद-च्छेद भी पाये जाते हैं। इन सबका तुलनात्मक अध्ययन करनेवाला ही प्रकृत वेदार्थ समझनेका अधिकारी है। वेदोंके भाष्य-टीका-कारोंने पद-पाठोंकी सहायता लेकर अपनी भाष्य-टीकाएँ लिखी हैं। पद-पाठ-कारों और भाष्य-टीका-कारोंका एक बड़ा समूह है, जिनके पद-पाठों और भाष्य-टीकाओंको देखकर वैदिक साहित्यकी विशालता और व्यापकताका अनुमान होता है।

ऋग्वेदीय पदपाठकार

ऋग्वेद (शाकल-संहिता) के पदपाठकार शाकल्य हैं। महर्षि सत्यश्रिय के तीन शिष्य थे—देवमित्र शाकल्य, शाकपूणि रथीतर और बाष्कलि भरद्वाज। ये तीनों ही शाखा-प्रवर्त्तक थे। पुराणोंसे विदित होता है कि शाकल्यने पांच संहिताएँ बनायी थीं। इन्हें 'स्थविर शाकल्य' और 'विदग्ध शाकल्य' भी कहा गया है। ऋक्प्रातिशाख्य और निरुक्तमें शाकल्यका उल्लेख है। शाकल्य राजर्षि जनकके विख्यात यज्ञमें उपस्थित थे। वहां इनका जनकसे संवाद हुआ था।

ऋग्वेदका शाकल्य-विरचित पद-पाठ कई स्थानोंमें छप चुका है। शाकल्यके पदपाठसे एक-दो स्थलोंपर यास्कका मत-भेद पाया जाता है। ऋग्वेदके बालखिल्य सूक्तोंका पदपाठ भी उपलब्ध है। परन्तु इसके कर्त्ता का पता नहीं चलता।

रावणका भी ऋग्वेदीय पदपाठ पाया जाता है। कहीं-कहीं शाकल्यसे रावणका मतभेद है। ऋग्वेदके १०.१२९.१ में शाकल्य '**कुहकस्य**'को दो पद मानते हैं—**कुह कस्य**। परन्तु रावणके मतसे कुहकस्य एक ही पद है, जिसका अर्थ किया गया है, **ऐन्द्रजालिकस्य**। परन्तु स्वरकी दृष्टिसे शाकल्य ऋषिका पाठ ही उपयुक्त है।

यजुर्वेदीय पद्पाठकार

तैत्तिरीय-संहिताके पदपाठकार महर्षि आत्रेय हैं। स्कन्द-महेश्वरने 'निरुक्त-भाष्य-टीका' (२.१३) में पदकार आत्रेयका उल्लेख किया है। बौधायन-गृह्यसूत्र (३.९.७) का मत है कि 'ऋषितर्पणमें पदपाठकार आत्रेयका भी स्मरण करना चाहिये।' **"तैत्तिरीय-संहिता-पदपाठः सस्वरः"** वैद्यनाथ शास्त्री और नारायण शास्त्रीने "कुम्भकोणम्"से प्रकाशित किया है। इस पद-पाठसे तैत्तिरीय-संहिताके भाष्यकार भट्ट भास्करका कहीं-कहीं मतभेद है।

मैत्रायणी-संहिताके दो प्रकारके पद-पाठ प्राप्त हैं। स्वर-चिह्नोंके विचारसे पहला पदपाठ ऋग्वेद-संहितासे मिलता है और दूसरा कापिष्ठल-संहितासे मिलता है। दोनों पदपाठोंके कर्त्ता अज्ञात हैं।

माध्यन्दिन-संहिताके पदपाठकार भी महर्षि शाकल्य हैं। भाष्यकार आनन्दबोध और महीधरका इस पदपाठसे यत्र-तत्र मत-द्वैध है। कुछ लोग कहते हैं कि मान्ध्यन्दिनके पदपाठकार शाकल्य नहीं हैं। तब कौन हैं? इसका उत्तर वे नहीं देते! परन्तु इस पद-पाठमें ही लिखा है कि 'यह शाकल्य-कृत है।'

काण्वसंहिताका भी पद-पाठ प्राप्त है; परन्तु इसके कर्त्ताका पता नहीं चलता।

सामवेदीय पदपाठकार

कौथुम-संहिताके पद-पाठकार गार्ग्य हैं। इसी पदपाठको लक्ष्य कर यास्कने निरुक्तमें अनेकानेक शब्दोंका अर्थ किया है। इस पदपाठमें नवीनता यह है कि इसमें शब्दोंको ही अलग-अलग नहीं किया गया है, शब्दांशोंका भी पदच्छेद किया गया है। जैसे—अन् + ये = अन्ये; मि + त्रम् = मित्रम्; स + ख्ये = सख्ये; चन्द्र + मसः = चन्द्रमसः; दुः + आत् = दूरात् इत्यादि।

अथर्ववेदीय पदपाठकार

शौनक-संहिताका पदपाठ प्राप्त है; परन्तु इसके कर्त्ताका नाम अज्ञात है। इसका पदपाठ प्रायः ऋग्वेदके समान ही है। इसमें अवग्रह (ऽ) के स्थानमें बिन्दु (०) दिया जाता है।

उपर्युक्त संहिताओंके पदपाठोंके अतिरिक्त अन्य संहिताओंके पदपाठ अनुपलब्ध हैं।

विशेष

शाकलसंहिता और शौनकसंहिताके पद-पाठोंमें अवग्रह दिखानेके लिये शब्दोंकी आवृत्ति नहीं की जाती। जैसे—

पुरःऽहितम् (ऋग्वेद १.१.१)।

त्रि ० सप्ताः (अथर्ववेद १.१.१)।

अन्य संहिताओंके पद-पाठोंमें अवग्रह दिखानेके लिये शब्दोंकी आवृत्ति की जाती है और प्रायः 'इति'का प्रयोग भी किया जाता है। जैसे—

श्रेष्ठतमायेति श्रेष्ठऽतमाय (यजुर्वेद १.१)।

श्रेष्ठतमायेति श्रेष्ठ ऽ त मा य (तैत्तिरीय १.१.१ और मैत्रायणी १.१.१)।

हु व्यं दा तये हु व्यं दा तये (सामवेद पू० १.१.१)।*

काण्वसंहिताके एक पदपाटमें भिन्न रीतिसे स्वरांकन होता है–

प्रजावतीरिति प्रजा ऽ वतीः (१.१)।

इसमें उदात्त, अनुदात्त और स्वरित, तीनोंके चिन्ह लगते हैं।

---

* इस "वैदिक साहित्य" ग्रन्थमें संक्षेप और सुगमताके लिये 'शाकल-संहिता'के स्थानपर ऋग्वेद, 'माध्यन्दिन-संहिता'के स्थानपर यजुर्वेद, 'कौथुमसंहिता'के स्थानपर सामवेद और 'शौनकसंहिता'के स्थानपर अथर्ववेद शब्दोंका सर्वत्र प्रयोग किया गया है। पाठक इस बातको बराबर ध्यानमें रखें। अन्य संहिताओंके तो नाम ही दिये गये हैं। यह बात पहले भी लिखी जा चुकी है।

पञ्चत्रिंश अध्याय

वैदिक भाष्य-टीका-कार

वेदोंके संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् आदि भागोंपर हजारों वर्षोंसे कितने ही भाष्य लिखे गये और कितनी ही टीकाएँ रची गयीं, तो भी मानवकी तृप्ति नहीं हुई। न मालूम अभी और कितनी भाष्य-टीकाएँ लिखी जायंगी, तो भी नहीं कहा जा सकता कि मनुष्य सन्तुष्ट हो जायगा। वेदोंके अगणित सूक्त और मन्त्र ऐसे हैं, जिनमेंसे एक-एकपर एक-एक ग्रन्थ लिखा जा सकता है। वैदिक साहित्य और वैदिक संस्कृतिकी गरिमा और महिमा भली भांति समझ जानेपर ऐसा समय आ सकता है, जब एक-एक सूक्त और एक-एक मन्त्रपर एक-एक ग्रन्थ लिखा जायगा।

अबतक वैदिक साहित्यपर इतनी भाष्य-टीकाएँ लिखी जा चुकी हैं, जिनकी विशालता देखकर महान् आश्चर्य होता है। अवश्य ही इनका अधिक भाग अप्रकाशित और अप्राप्य है। अनेक भाष्य-टीकाकारोंकी केवल नामावली मिलती है और अनेकके तो नाम तक नहीं मिलते—"केचन", "अन्य आह", "अपर आह", "कश्चिदाह", "सम्प्रदायविदः", "आचार्याः", "एके", "अन्ये", "अपरे" आदि देखकर अनुमान भर होता है।

स्थान-संकोचके कारण यहां केवल चारों वेदोंकी कुछ संहिताओंके भाष्य-टीका-कारों और निघण्टु-निरुक्तके भाष्य-टीकाकारोंका ही उल्लेख किया जायगा। इस उल्लेखसे विराट् वैदिक साहित्यका कुछ अनुमान लगाया जा सकेगा।

ऋग्वेद (शाकलसंहिता)

१ स्कन्द स्वामी

ऋग्वेदके ज्ञात भाष्यकारोंमें प्राचीनतम भाष्यकार स्कन्द स्वामी माने जाते हैं। हरिस्वामी, आत्मानन्द, वेंकट माधव, सायण, देवराज यज्वा आदिने स्कन्द स्वामीको अपने भाष्योंमें उद्धृत किया है। ये वलभीके निवासी थे। विक्रमीय संवत् ६८७ में इन्होंने ऋग्वेदपर भाष्य लिखकर पूरा किया। सायणाचार्यकी ही तरह स्कन्दका भाष्य भी याज्ञिक है। वेदार्थ समझनेमें स्कन्दने छन्दोज्ञानको अनावश्यक माना है; परन्तु प्रत्येक सूक्तके पहले अनुक्रमणियोंके देवता और ऋषिका ज्ञान करानेवाले श्लोकांशोंको उद्धृत किया है। इन्होंने "**केचित्**" लिखकर ऋग्वेदके प्राचीन भाष्यकारोंके मन्तव्योंको उद्धृत किया है। परन्तु अबतक इन प्राचीन भाष्यकारोंके नाम तक नहीं मिल सके !

ऋग्वेदके प्रथमाष्टकका सम्पूर्ण स्कन्द-भाष्य प्राप्त है। द्वितीयसे पंचम अष्टकोंतकका तो खण्डित स्कन्द-भाष्य ही उपलब्ध है। इस भाष्यका कुछ अंश प्रसिद्ध वेदज्ञ प० साम्बशिव शास्त्रीने प्रकाशित किया है। त्रिवेन्द्रम् और अड्यारके पुस्तकालयों तथा मद्रासके राजकीय पुस्तकालयमें स्कन्द-भाष्यके हस्त-लेख हैं।

वेंकट माधवके मतसे स्कन्द स्वामी, नारायण और उद्गीथने मिलकर ऋग्वेद-भाष्य लिखा। डा० कुन्हन राजाका भी यही मत है। कई वेद-ज्ञाताओंके मतसे ऋग्वेदके प्रथम भागोंपर स्कन्दने, मध्य भागोंपर नारायणने और अन्तिम भागोंपर उद्गीथने भाष्य लिखा था।

२ नारायण

ये स्कन्द स्वामीके सहकारी भाष्यकार थे। ऋग्वेदके पंचम और सप्तम अष्टकोंके कुछ अंशोंपर इनका भाष्य मिला है। नारायणने आश्वलायन-श्रौत-सूत्रपर एक वृत्ति भी लिखी है। इनका विशेष विवरण नहीं मिलता। कहते हैं, सामवेद-विवरणकार माधव इनके ही सुपुत्र थे।

३ उद्गीथ

जैसा कि लिखा जा चुका है, उद्गीथ स्कन्द स्वामीके सहकारी थे। ऋग्वेदके १० म मण्डल, ५ म सूक्त, ७ म मन्त्रसे लेकर ८३ वें सूक्तके ५ म मन्त्रतकका उद्गीथ-भाष्य उपलब्ध है। उद्गीथने निरुक्त, बृहद्देवता, देवतानुक्रमणी आदिका उल्लेख किया है। इन्होंने **"केचित्"** लिखकर प्राचीन भाष्यकारोंकी ओर भी संकेत किया है। आत्मानन्द और सायणाचार्यने अपने भाष्योंमें उद्गीथका उल्लेख किया है।

उद्गीथ-भाष्य भी याज्ञिक है। कुछ लोगोंका मत है कि अनेक स्थलों में सायण-भाष्य स्कन्द स्वामी और उद्गीथके भाष्योंकी छाया है। तीनों ही याज्ञिक भाष्यकार हैं; इसलिये ऐसी छाया मालूम पड़ सकती है। उद्गीथने प्रत्येक सूक्तके आरम्भमें अपनी संस्कृतमें ही ऋषि, देवता आदि का उल्लेख किया है। उद्गीथ-भाष्यके कुछ अंश छप चुके हैं।

कहा जाता है, उद्गीथ भी वलभीके निवासी थे।

४ हस्तामलक

सुप्रसिद्ध हस्तामलकने भी ऋग्वेदपर भाष्य लिखा था। हस्तामलक शंकराचार्यके प्रसिद्ध शिष्य थे। ये आश्वलायन-शाखी थे। इनका भाष्य विक्रमीय संवत् ७५७ में लिखा गया था। भाष्य अप्रकाशित है।

५ वेंकट माधव

ये चोल देश (कावेरी नदीके दक्षिणी तटके गोमान ग्राम) के निवासी थे। इनका गोत्र कौशिक था और इनकी माताका गोत्र वासिष्ठ था। इनके पितामहका नाम माधव था और पिताका नाम वेंकट वा वेंकटार्य था। इनके नानाका नाम भवगोल था और माताका नाम सुन्दरी था। इनके छोटे भाईका नाम संकर्षण था। इनके दो पुत्र थे, वेंकट और गोविन्द।

वेंकट माधवके 'ऋगर्थ-दीपिका'-भाष्यका प्रायः सम्पूर्ण हस्तलेख मिल चुका है। यह भाष्य लाहोरसे आधा छप भी चुका है। देशके विभाजनके

कारण इसका अवशिष्ट हस्तलेख पाकिस्तान सरकारके हाथमें चला गया है। नहीं कहा जा सकता कि यह मूल्यवान् भाष्य कबतक छपेगा। इसके प्रकाशक (मोतीलाल बनारसीदास) इसे शीघ्र छपानेकी चिन्तामें हैं।

यह भाष्य भी सायणके भाष्यकी ही तरह याज्ञिक है। यह भाष्य सायण-भाष्यके समान विस्तृत नहीं है, किसी टीकाकी तरह अत्यन्त संक्षिप्त है। वेंकट माधवका विश्वास था कि जो ब्राह्मण-ग्रन्थोंके विद्वान् नहीं हैं, वे ऋग्वेदार्थ नहीं समझ सकते। जो निरुक्त और व्याकरणके ही पण्डित हैं, वे ऋग्वेद-संहिताका केवल चतुर्थांश जानते हैं—

"संहितायास्तुरीयांशं विजानन्त्यधुनातनाः।
निरुक्त–व्याकरणयोरासीद्येषां परिश्रमः॥"

कुछ वेदज्ञोंका मत है कि वेंकट माधवके दो भाष्य थे। जो भाष्य प्रकाशित हो रहा है, वह प्रथम भाष्य है। अभी तो यही पूरा नहीं छपा; द्वितीय कब छपेगा, भगवान् जानें। प्रथमका चौथा भाग छप रहा है।

वेंकट माधवका काल ग्यारहवीं शताब्दी माना जाता है।

६ लक्ष्मण

इन्होंने वेद-भूषण नामका कोई वेद-भाष्य लिखा था, जो अप्राप्य है। इनका काल बारहवीं शताब्दी है।

७ धानुष्कयज्वा

कहा जाता है कि इन्होंने ऋक्, यजुः, साम—तीनों वेदोंपर भाष्य लिखा था। परन्तु किसी भी वेदपर इनका भाष्य उपलब्ध नहीं है। इनका समय तेरहवीं शती है।

८ आनन्दतीर्थ

ये मध्व-संप्रदाय (द्वैत सिद्धान्त) के आचार्य थे। इनके मध्व, पूर्णप्रज्ञ आदि भी नाम हैं। इन्होंने ऋग्वेदके प्रथम चालीस सूक्तोंपर ही भाष्य लिखा

था। इनका अर्थ भगवत्परक है। इन्होंने वेदका प्रतिपाद्य नारायणको बताया है। जयतीर्थने इस भाष्यपर टीका लिखी है। जयतीर्थकी टीकापर नरसिंहकी विवृति है। राघवेन्द्र यतिने तो इस भाष्यपर स्वतन्त्र व्याख्यान ही लिखा है। इन्हीं राघवेन्द्रके शिष्य नारायणने भी जयतीर्थकी टीकापर एक विवृति लिखी है।

आनन्दतीर्थका काल १२५५–१३३५ माना जाता है। ये ८० वर्ष तक जीवित थे।

९ आत्मानन्द

ऋग्वेदके १ म मण्डलके १६४ वें सूक्तका प्रथम मन्त्र "अस्य वामस्य" पदोंसे प्रारम्भ हुआ है; इसलिये इस सूक्तका नाम "**अस्य वामीय सूक्त**" रख दिया गया है। इसमें अत्युच्च कोटिकी आध्यात्मिक विवृति है। एक तरहसे यह सूक्त भी अद्वैतवादका आधार है। प्रसिद्ध अद्वैतवादी विद्वान् आत्मानन्दने इस सूक्तपर आध्यात्मिक भाष्य लिखा है। भाष्य महत्त्वपूर्ण है। भाष्यकारने अपने भाष्यमें अनेकानेक अलभ्य ग्रन्थोंका भी उल्लेख किया है। इनका काल तेरहवीं शताब्दी है।

१० सायण

वैदिक भाष्यकारोंमें सायण महाप्रतिभाशाली थे। वे मेधावी मनीषी ही नहीं, विजयनगरके बुक्क प्रथम, कम्पण, संगम (द्वितीय) और हरिहर (द्वितीय) के मन्त्री भी रह चुके थे। उन्होंने चम्प-नरेन्द्रको पराजित किया था।

सायणके पिताका नाम मायण, माताका श्रीमती, बड़े भाईका माधव, छोटे भाईका भोगनाथ, स्वामीका संगम और गुरुका नाम श्रीकण्ठनाथ था। सायणका गोत्र भारद्वाज और सूत्र बौधायन था। सायणके कम्पण, मायण और शिंगण नामके तीन पुत्र थे। सायण १४ वीं शताब्दीमें थे और ७२ वर्षकी अवस्थामें उन्होंने देह-त्याग किया था।

सायणका ऋग्वेद-भाष्य याज्ञिक है, यह लिखनेकी अब आवश्यकता नहीं। सायण-भाष्यमें स्कन्द स्वामी, नारायण और उद्गीथके याज्ञिक भाष्योंकी कहीं-कहीं झलक दिखाई देती है।

सायणकी वेद-शाखा तैत्तिरीय है। कहा जाता है कि ऋग्वेदका भाष्य लिखनेके पहले सायण तैत्तिरीय-संहिता, तैत्तिरीय-ब्राह्मण और तैत्तिरीयारण्यकपर भाष्य लिख चुके थे। सायणने काण्व, कौथुम और शौनक संहिताओंपर भी भाष्य लिखा है। सामवेदके प्रसिद्ध आठो ब्राह्मणों, ऐतरेयारण्यक, ऐतरेयोपनिषद् (दीपिका), सामप्रातिशाख्य आदिपर भी सायणका भाष्य उपलब्ध है। सायणके बनाये ये पांच ग्रन्थ भी हैं– सुभाषित-सुधानिधि, प्रायश्चित्त-सुधानिधि, अलंकार-सुधानिधि, पुरुषार्थ-सुधानिधि और यज्ञयन्त्र-सुधानिधि। सायण-विरचित एक धातुवृत्ति भी पायी जाती है।

सायणके वेद-भाष्योंके निर्माणमें नरहरि सोमयाजी, नारायण वाज-पेययाजी और पण्डरी दीक्षित आदि सहकारी थे।

सायण-भाष्यमें शाट्यायन, हारिद्रविक और चरक ब्राह्मण उद्धृत हैं। शाट्यायन-ब्राह्मण अब मिल चुका है। माधव भट्ट (वेंकट माधव), भट्टभास्कर, भरत स्वामी, कपर्दी स्वामी आदि भी सायण-भाष्यमें उद्धृत हैं।

राजनीतिमें दुरूह मन्त्रित्वका कार्य करते हुए भी सायणने कैसे इतने ग्रन्थ और भाष्य लिखे, यह स्मरण कर सायणकी अद्भुत और अद्वितीय प्रतिभा तथा मेधापर विस्मित और विमुग्ध होना पड़ता है! सायणके सब भाष्य, कई स्थानोंसे, छप चुके हैं।

वैदिक संहिताओंमें सबसे बड़ी शाकल-संहितापर वेंकट माधवका 'प्रायः' समग्र भाष्य उपलब्ध होनेपर भी अभीतक अधूरा ही छपा है। "प्रायः" इसलिये कि माधव-भाष्य कहीं-कहीं खण्डित है। वह अत्यन्त संक्षिप्त भी है। परन्तु सायण-भाष्य पूर्ण है, विस्तृत है और देश-विदेशमें

सम्पादित तथा प्रकाशित है। वस्तुतः वेद-विज्ञानकी ज्योति पानेके लिये एक बड़ा आधार महाविद्वान् सायणाचार्यके वेद-भाष्य हैं।

सायण अपने अग्रज माधवके इतने भक्त थे कि उनका नाम सायण-माधव वा केवल 'माधव' भी पड़ गया! सायणने अपने भाष्यको 'माधवीय' लिखा है। सायणने माधवसे अध्ययन भी किया था।

११ रावण

बहुत लोग सायण-भाष्यको ही ऋग्वेदीय रावण-भाष्य कहते हैं। उनकी धारणा है कि अक्षर-विपर्यय होकर सायणका रावण बन गया है। परन्तु बात ऐसी नहीं है। मल्लारि, दैवज्ञ सूर्य पण्डित आदिके लेखोंसे विदित होता है कि रावणका ऋग्वेद-भाष्य प्रसिद्ध भाष्योंमेंसे है। हाल साहबने तो रावण-भाष्यके प्राप्त अंशको प्रकाशित भी किया है। सायणका भाष्य आधिदैविक (याज्ञिक) है और रावणका भाष्य आध्यात्मिकता लिये हुए है। वेदान्ती आत्मानन्दका भाष्य प्रायः रावण-भाष्यके सदृश है।

रावणने यजुर्वेदपर भी भाष्य किया था, जो अनुपलब्ध है।

रावणने ऋग्वेदका पद-पाठ भी किया था। इसका कुछ हस्तलेख प्राप्त है। यह केवल ऋग्वेदके सप्तमाष्टकका है। उद्गीथ और दुर्गाचार्यने रावणके पद-पाठका समर्थन किया है।

यदि रावणके सम्पूर्ण ऋग्यजुर्भाष्य और पद-पाठ मिल जाते, तो भाष्यकार जगत्में युगान्तर उपस्थित हो जाता। अनेक सन्देहोंका निराकरण भी हो जाता और कुछ आध्यात्मिक वेदार्थका रहस्य भी स्पष्ट हो जाता।

वेद-भाष्यकार रावण लंकाधिपति रावण था या दूसरा? इस बातके निर्णयका कोई उपाय नहीं है। बाल्मीकि-रामायणसे यह तो पता चलता है कि रावण उद्भट विद्वान् था—वेद-वेदांग-पारग था।

संसारमें रावण, हिरण्यकशिपु, कंस जैसे कुख्यात नाम रखनेवाले भी तो कदाचित् ही मिलें!

तो क्या वेद-भाष्यकार लंकेश्वर ही था ? भगवान् जानें। भाष्यकार रावणका काल-निर्णय करना विकट कार्य है।

१२ मुद्गल

मुद्गल-भाष्य प्रथमाष्टकपर पूर्ण और चतुर्थाष्टकपर पांच अध्यायों तक मिलता है। मुद्गल सायणानुयायी हैं—एक तरहसे सायण-भाष्यका ही संक्षेप मुद्गल-भाष्य है। मुद्गलका काल १५ वीं शताब्दी है।

१३ चतुर्वेद स्वामी

इन्होंने ऋग्वेदके कुछ अंशोंपर भाष्य लिखा था। ये श्रीकृष्णके अनन्य अनुरागी भक्त थे। इन्होंने मन्त्रोंका अर्थ श्रीकृष्ण-परक किया है। इनके अर्थसे कोई भी भाष्यकार सहमत नहीं है। इन्होंने पूतना और कंस का बध, गोवर्द्धन-धारण, कौरव-पाण्डव-युद्ध, सब कुछ ऋग्वेदके एक ही मन्त्र (१०.११३.४) से निकाल डाले हैं ! इनकी अनल्प कल्पना निराली है ! ये १६ वीं शताब्दीमें थे।

१४ देव स्वामी

महाभारतके टीकाकार विमलबोधके लेखसे अनुमान होता है कि देव स्वामीने ऋग्वेदपर भाष्य लिखा था। ऋग्वेदके आश्वलायन-श्रौत-सूत्र और आश्वलायन-गृह्य-सूत्रपर देवस्वामीका भाष्य उपलब्ध है। यह विक्रमकी प्रथम शताब्दीके पूर्वके हैं।

१५ स्वामी दयानन्द

आधुनिक युगमें सर्वाधिक वेद-प्रचार स्वामी दयानन्द सरस्वतीने किया है। स्वामीजी वेद-विद्याके अनन्य भक्त और विद्वान् थे। उनके वेद-ज्ञानके कुछ विदेशी भी कायल थे।

स्वामीजीका जन्म संवत् १८८१ में (कदाचित् आश्विन-कृष्णा सप्तमीको) हुआ था। उनका नाम मूलजी वा मूलशंकर था। वे सामवेदी औदीच्य ब्राह्मण थे। उनके संन्यास-गुरु मथुराके स्वामी विरजानन्द थे। अपने गुरुदेवसे ही स्वामीजीने व्याकरण आदि पढ़े थे।

स्वामीजीने संवत् १६३३ (भाद्रपद-शुक्ला प्रतिपद्) में ऋग्वेदपर भाष्य लिखाना प्रारम्भ किया था। भाष्य सरल संस्कृतमें है। साथ ही भाष्यका हिन्दी-अनुवाद भी है। यह भाष्य विना पूर्ण किये ही स्वामीजी संवत् १६४० को दीपावलीके दिन स्वर्गवासी हो गये। ऋग्वेदके ७ म मण्डल, २ य सूक्त, २ य मन्त्रतक ही यह भाष्य हो सका था।

इसके पहले स्वामीजीने 'ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका' लिखी थी, जो संवत् १६३५ में ही छप चुकी थी। इसमें चारो वेदोंकी प्रस्तावना है।

स्वामी दयानन्द देवतावाद नहीं मानते। उन्होंने निरुक्तकारोंके तीन देवोंकी पूजा, याज्ञिकोंके तैंतीस देवोंकी स्तुति और पाश्चात्त्योंकी अग्नि आदि जड़ वस्तुओंकी आराधनाका खण्डन कर वेदमें एकेश्वरवादकी स्थापनाकी चेष्टा की है। उन्होंने अग्नि आदि अनेक देव-नामोंका अर्थ परमात्मपरक किया है। उनका मत है कि वैदिक सूक्त विभिन्न नामोंसे एक ईश्वरके ही गीत गाते हैं।

किसी भी पूर्व भाष्यकारके मतसे स्वामीजीका मत पूरा नहीं मिलता। वे अद्वैतवादी वेदान्ती भी नहीं थे। वे वेदोंको नित्य तो मानते हैं; परन्तु ब्राह्मणादिको नहीं। वे वेदोंमें इतिहास नहीं मानते। वैदिक शब्दोंको यौगिक और योगरूढ़ मानते हैं, रूढ़ि नहीं। वे वाचकलुप्तोपमासे अनेकानेक मन्त्रोंका भावार्थ निकालते हैं। स्वामीजी भी रावणकी ही तरह कहीं-कहीं शाकल्य-भिन्न पद-पाठ स्वीकार करते हैं। सर्वानुक्रमणीसे भिन्न कहीं-कहीं देवता भी मानते हैं। एक-एक शब्दके वे विविध अर्थ भी मानते हैं। वे इन्द्र शब्दका अर्थ कहीं ईश्वर, कहीं सूर्य, कहीं वायु, कहीं जीवात्मा और कहीं विद्वान् राजा करते हैं। योगी अरविन्द आदिने स्वामीजीकी शैलीका समर्थन किया है।

स्वामीजीने रावण-भाष्यका उल्लेख किया है।

प्रो० रुडाल्फ हार्नलेने लिखा है, कि 'जब मैंने अपना हस्तलेख दिया, तभी स्वामी दयानन्दने पहले पहल सम्पूर्ण अथर्ववेदको देखा।'

प० महेशचन्द्र न्यायरत्न, वर्त्तमान भारतीय कांग्रेसके जन्मदाता मि० ह्यूम, प्रो० ग्रिफिथ तथा अनेकानेक एतद्देशीय विद्वानोंने स्वामीजी के मतका खण्डन किया है।

कृष्ण यजुर्वेद (तैत्तिरीय-संहिता)

१ भव स्वामी

ये संवत् (विक्रमीय) से आठ सौ वर्ष पहले हुए थे। भट्ट भास्कर मिश्र ने अपने तैत्तिरीय-संहिता-भाष्यके प्रारम्भमें "**भवस्वाम्यादिभाष्य**" पद का उल्लेख किया है। इससे ज्ञात होता है कि भव स्वामीने तैत्तिरीयसंहिता पर भाष्य लिखा था। परन्तु अबतक यह भाष्य उपलब्ध नहीं है।

२ गुहदेव

गुहदेवका तैत्तिरीयसंहितापर भाष्य था। ये भव स्वामीके समकालीन थे। भट्ट भास्करने 'भवस्वाम्यादिभाष्य'में गुहदेव-भाष्यका भी ग्रहण किया है, ऐसा मत ऐतिहासिकोंका है। देवराज यज्वाने निघण्टु-भाष्यकी भूमिका में लिखा है कि 'गुहदेवका वेद-भाष्य था'।

३ भट्ट भास्कर

भट्ट भास्कर ११ वीं शताब्दीके भाष्यकार हैं। सायण और देवराज यज्वाने भट्ट भास्करको बहुत बार उद्धृत किया है।

ये शैव थे। अपने भाष्यके मंगल-श्लोकमें इन्होंने शिवजीको प्रणाम किया है। इनका भाष्य उच्च कोटिका है। इनके भाष्यका नाम '**ज्ञानयज्ञ**' है। भट्ट भास्करका 'प्रायः' सम्पूर्ण तैत्तिरीय-भाष्य छप चुका है। 'प्रायः' इसलिये कि तैत्तिरीयके चतुर्थ काण्डके कुछ अंशका भट्ट भास्करका भाष्य नहीं छपा है।

इनका गोत्र कौशिक है और पूरा नाम है भट्ट भास्कर मिश्र। इन्होंने अपने भाष्यमें 'केचित्', 'अपरे' लिखकर अपने पूर्ववर्त्ती भाष्यकारोंकी ओर संकेत किया है।

४ क्षुर

सायणाचार्यने अपनी धातुवृत्तिमें क्षुरके मतका उल्लेख पांच बार किया है। इससे ज्ञात होता है कि क्षुराचार्यने सम्पूर्ण तैत्तिरीय-संहितापर भाष्य लिखा था, जो अप्राप्य है। अनुमानतः क्षुर १४ वीं शताब्दीके थे।

५ सायण

सायणका भाष्य सम्पूर्ण तैत्तिरीय-संहितापर है। सायणका सर्वप्रथम वेद-भाष्य यही है। इसमें 'अन्ये', 'अपरे', 'एके' लिखकर सायणने दूसरों का मत दिया है। तैत्तिरीय-संहिताके १.८.१२ के भाष्यमें सायणने नरसिंह वर्मा और उनके पुत्र राजेन्द्र वर्माका उल्लेख किया है।

६ वेंकटेश

तैत्तिरीय-संहिताके ७ काण्डोंमेंसे अन्तिम तीन काण्डोंपर ही वेंकटेश का भाष्य है। यह ग्रन्थि-लिपिमें मिला था। अबतक अप्रकाशित है। इनका नाम वेंकटेश्वर और वेंकटनाथ भी पाया जाता है। ये १५ वीं शताब्दीमें थे।

७ बालकृष्ण

तैत्तिरीय-संहितापर इनका भाष्य है। अप्रकाशित और खण्डित है। इनके कालका कुछ पता नहीं चलता।

८ शत्रुघ्न

इनका तैत्तिरीय-भाष्य प्राप्त और प्रकाशित है। भाष्यका नाम "**मन्त्रार्थदीपिका**" है। यह पूर्ण नहीं है। ये १६ वीं शतीके अन्तमें थे।

शुक्ल यजुर्वेद (माध्यन्दिनसंहिता)

१ शौनक

माध्यन्दिन-संहिताके ३१ वें अध्याय (पुरुष-सूक्त) पर ऋषि शौनकका भाष्य उपलब्ध है। इसमें "अपरे", "केचित्" कहकर अन्य मतोंका भी है। इससे विदित होता है कि शौनकसे भी पहले इस संहितापर कई भाष्य थे। यह याज्ञिक है। पुरुष-सूक्तका विनियोग मोक्षमें माना गया है। इसमें वैष्णव-मतकी छाप है। यह अत्युच्च कोटिका भाष्य गिना जाता है।

२ उवट

ऋक्प्रातिशाख्य और यजु:प्रातिशाख्यपर भाष्य लिखनेवाले उवट का माध्यन्दिन-भाष्य अतीव विख्यात है। ११ वीं शतीके अन्तमें, महाराजा भोजके शासकत्वमें, अवन्ती राजधानीमें, उवटने यह भाष्य लिखा था। ये आनन्दपुर-निवासी वज्रटके पुत्र थे। वज्रट उद्भट विद्वान् थे। उवटका कहीं-कहीं **उव्वट** नाम भी पाया जाता है।

अनेक स्थानोंसे उवट-भाष्य प्रकाशित हो चुका है। इसके दो पाठ हैं—काशीपाठ और महाराष्ट्र-पाठ। काशीपाठमें पुरुषसूक्तपर उवटका अपना भाष्य है और महाराष्ट्र-पाठमें पुरुषसूक्तपर उक्त शौनकका भाष्य छपा है। काशी-संस्करणमें प० रामसकल मिश्रने उवट-भाष्यके दोनों पाठोंको अलग-अलग प्रकाशित किया है। उवट-भाष्य याज्ञिक वा आधिदैविक है। ५.२० में उवटने अवतारोंका वर्णन किया है। उवटने याजुष-सर्वानुक्रमणीके अनुसार ऋषि, देवता और छन्द नहीं रखे हैं। शत्रुघ्न और महीधरके भाष्य, अनेक स्थलोंमें, उवट-भाष्यकी छाया हैं।

३ गौरधर

गौरधर कश्मीरी ब्राह्मण थे। इनके पौत्र 'स्तुतिकुसुमांजलि'-कर्त्ता जगद्धरके कथनानुसार गौरधरने माध्यन्दिनपर "**वेदविलास**" नामकी एक टीका लिखी थी। ये १४ वीं शतीमें थे।

४ रावण

"रुद्रप्रयोग-दर्पण"—कर्त्ता पद्मनाभके लेखसे ज्ञात होता है कि रावण ने माध्यन्दिन-संहितापर भी भाष्य लिखा था।

५ महीधर

वाजसनेय-माध्यन्दिनपर काशीवासी महीधरका **वेददीप** नामका भाष्य अत्यन्त प्रसिद्ध और प्रचलित है। यह सत्रहवीं शतीमें लिखा गया। भाष्य याज्ञिक है।

कहते हैं, महीधरने "**मन्त्र-महोदधि**" नामका एक तान्त्रिक ग्रन्थ भी, संवत् १६४५ में लिखकर, पूर्ण किया था। तान्त्रिक महीधरके भाष्यके अनेक विरोधी भी हैं।

प० सत्यव्रत सामश्रमी और डा० लक्ष्मणस्वरूपके मतसे महीधरने १२ वीं शतीमें अपना भाष्य और ग्रन्थ लिखे थे।

६ स्वामी दयानन्द

स्वामी दयानन्द सरस्वतीके माध्यन्दिन-भाष्यका लेखन संवत् १९३४, पौष-कृष्णा त्रयोदशी, गुरुवारसे प्रारम्भ हुआ और १९३९ मार्गशीर्ष-कृष्णा प्रतिपदा, शनिवारको समाप्त हुआ। १९४६ के वैशाखमें यह प्रकाशित हो गया।

ऋग्वेद-भाष्यमें जो इनकी शैली है, वही इसमें भी है। इसमें यज्ञके अर्थ पूजा, स्तुति आदि तो हैं ही; 'संसारके पदार्थोंसे उपयोग लेना' भी यज्ञका अर्थ है। स्वामीजीके इस भाष्यका भी विरोध हुआ है।

शुक्लयजुर्वेद (काण्वसंहिता)

१ सायण

काण्वसंहिताके बीस अध्यायोंपर ही सायण-भाष्य मिलता है, अवशिष्ट २० अध्यायोंपर नहीं। शतपथ-ब्राह्मणके प्रथम काण्डके अन्तिम अध्यायोंका सायण-भाष्य जैसे लुप्त हो गया है, वैसे ही काण्व-संहिताके उत्तरार्द्धका सायण-भाष्य भी लुप्त हो गया है। सायणने शुक्ल यजुर्वेदकी १५ शाखाओंके नाम गिनाये हैं। 'अध्ययनकी सुगमताके लिये ही खण्ड और वर्ग किये गये हैं'—ऐसा भी सायणने माना है। इस भाष्यमें वासिष्ठ-रामायणको भी सायणने उद्धृत किया है। इस संहिताका ४० वां अध्याय भी माध्यन्दिनके ४० वें अध्यायके समान उपनिषदात्मक है।

२ आनन्दबोध

जातवेद भट्टोपाध्यायके पुत्र आनन्दबोधने सम्पूर्ण काण्वसंहितापर '**काण्ववेदमन्त्र-भाष्य-संग्रह**' लिखा है। परन्तु आजतक न तो सम्पूर्ण भाष्य

प्राप्त है, न प्रकाशित है। इसके कई खण्डित लेख मिल चुके हैं। आनन्द-बोधके कालका ठीक पता नहीं लग सका है।

३ अनन्ताचार्य

ये काण्वशाखीय ब्राह्मण थे। इनके पिताका नाम नागेशभट्ट वा नाग-देव और माताका नाम भागीरथी था। ये काशी-निवासी थे।

अनन्ताचार्यने काण्वसंहिताके २१ से ४० अध्यायोंपर **भावार्थदीपिका** नामकी टीका लिखी है। आनन्दबोध और अनन्ताचार्यकी भाष्य-टीकाएँ काण्वसंहिताके चालीसवें अध्यायपर म० म० प० बालशास्त्री आगाशेने छापी हैं।

अनन्ताचार्यने भाषिकसूत्र-भाष्य, यजुःप्रातिशाख्य-भाष्य और शतपथ-ब्राह्मण-भाष्य (१३ वें काण्डपर) भी बनाये हैं। इन्होंने **कण्वकण्ठाभरण** नामका एक ग्रन्थ लिखा है। इन्होंने **'वेदार्थदीपिका'** और **'कात्यायन-स्मार्त्तमन्त्रार्थ-दीपिका'** नामकी टीकाएँ भी लिखी हैं। ये अठारहवीं शताब्दी में हुए थे।

४ हलायुध

इन्होंने काण्वसंहिताके मन्त्रोंपर भाष्य लिखा है। इनका भाष्य खण्डित रूपमें यत्र-तत्र मिलता है। इनके भाष्यका नाम **ब्राह्मण-सर्वस्व** है। इनके लिखे मीमांसा-सर्वस्व, वैष्णव-सर्वस्व, शैव-सर्वस्व, पण्डित-सर्वस्व भी हैं। परन्तु सब अप्रकाशित और उपलब्ध नहीं हैं। ये १३ वीं शतीमें हुए थे।

विशेष

यजुर्वेदकी संहिताओंमें **'रुद्राध्याय'**का एक विशेष स्थान है। अनेका-नेक भाष्य-टीका-कारोंने केवल रुद्राध्यायपर ही अपनी भाष्य-टीकाएँ लिखी हैं। इसी तरह पुरुष-सूक्त और 'अस्य वामीय सूक्त' आदिपर भी अनेक भाष्य-टीकाएँ, स्वतन्त्र रूपसे, लिखी गयी हैं। अनेकानेक विद्वानोंने अपने अपने कल्पसूत्रोंमें आये मन्त्रोंपर ही भाष्य-टीकाएँ लिखी हैं। ऐसे भाष्य-

कारों और टीकाकारोंकी लम्बी सूची देश-विदेशके विभिन्न पुस्तकालयोंमें पायी जाती है। स्थान-संकोचके कारण ऐसे भाष्यकारों और टीकाकारों और उनकी विविध भाष्य-टीकाओंका उल्लेख नहीं किया जा सका।

सामवेद (कौथुमसंहिता)

१ माधव

प्रसिद्ध वेदज्ञ प० सत्यव्रत सामश्रमीने जो सायण-भाष्य-सहित कौथुम-संहिता छापी है, उसमें उन्होंने **'माधवीय विवरण'**को टिप्पनीके रूपमें प्रकाशित किया है। इस विवरणकी दो अशुद्ध पुस्तकें सामश्रमीजीको मिली थीं। उनका सम्पादन करके सर्वोत्तम भागोंको ही उन्होंने छापा है। सामश्रमीजीने ही संसारको सर्व-प्रथम इस पुस्तकका पता दिया था।

यह **सामविवरण** उच्च कोटिकी टीका है। संहिताके पूर्वार्द्धकी टीकाको 'छन्दसिका-विवरण' और उत्तरार्द्धकी टीकाको 'उत्तर-विवरण' कहा गया है।

कई वेदज्ञाता कहते हैं कि स्कन्द स्वामीके सहकारी नारायणके पुत्र ये ही माधव थे। स्कन्द स्वामीके भाष्यसे माधवने बड़ा लाभ उठाया है। स्कन्दके ऋग्वेद-भाष्यकी भूमिकाका बहुत कुछ रूपान्तर ही माधवकी सामवेदीय भूमिका है। माधवका काल सातवीं शती है।

२ भरत स्वामी

श्रीरंगपट्टमम्में रहकर १३ वीं शतीमें भरत स्वामीने अपना सामवेद-भाष्य लिखा था। इनका गोत्र कश्यप था। इनके पिताका नाम नारायण था और माताका यज्ञदा। संक्षिप्त होते हुए भी भाष्य सुन्दर है और सम्पूर्ण संहितापर है। परन्तु अबतक सम्पूर्ण भाष्य मुद्रित नहीं हुआ है। इन्होंने माधवसे बड़ी सहायता ली है।

३ सायण

वेदज्ञ-शिरोमणि आचार्य सायणने इस संहितापर भी भाष्य लिखा है। अपनी भूमिकामें सायणने सामवेदीय विषयोंका मार्मिक विवेचन किया

है। सायण 'छन्द आर्चिक'के छठे अध्यायको ही 'अरण्य-संहिता' मानते हैं। परन्तु सामश्रमीजीने इस बातका अनुमोदन नहीं किया है।

४ दैवज्ञ सूर्य पण्डित

ये गोदावरीके निकट पार्थ नगरके रहनेवाले थे। इनके पिताका नाम ज्ञानराज्य था। पिता और पुत्र प्रसिद्ध ज्योतिषी थे।

सूर्यने भागवत गीताकी अपनी 'परमार्थ-प्रपा' टीकामें लिखा है कि **'मैंने 'सामभाष्य'** लिखा है।' परन्तु वह अप्राप्य है। अपनी गीता-टीकाके अन्तमें सूर्यने लिखा है कि 'मैंने रावण-भाष्यका ज्ञान प्राप्त किया है।' इन्होंने 'लीलावती'पर भी टीका लिखी है। ये १६ वीं शताब्दी में थे।

अथर्ववेद (शौनकसंहिता)

१ सायण

शौनकसंहितापर केवल आचार्य सायणका भाष्य प्राप्त और प्रकाशित है। दूसरे किसी भी भाष्यकार वा टीकाकारकी कोई भी भाष्य-टीका इसपर नहीं है। सायणने अन्य वैदिक संहिताओंपर भाष्य लिखनेके बाद, सर्वान्तमें, यह भाष्य लिखा। उन्होंने भाष्यारम्भमें लिखा है—

"व्याख्याय वेद-त्रितयं आमुष्मिक-फल-प्रदम्।
ऐहिकामुष्मिकफलं चतुर्थं व्याचिकीर्षति॥"

आशय यह है कि 'परलोकमें फल देनेवाले तीनों वेदोंका भाष्य करनेके पश्चात् लोक, परलोक, दोनोंमें फल देनेवाले चतुर्थ वेदका भाष्य किया जाता है।'

इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिकामें सायणने अथर्ववेदके नौ भेद (संहिताएँ) ये गिनाये हैं—पैप्पलाद, तौद, मौद, शौनकीय, जाजल, जलद, ब्रह्मवद, देवदर्श और चारणवैद्य।

सायणका मत है कि 'पापाचरणसे रोग उत्पन्न होते हैं और आथर्वण-मन्त्रोंसे रोगोंकी निवृत्ति होती है।'

षट्त्रिंश अध्याय

निघण्टु और निरुक्तके भाष्य-टीका-कार

निघण्टु

कितने ही वेदज्ञ कहते हैं कि वर्त्तमान निघण्टु और निरुक्तके कर्त्ता महाभारतकालके ऋषि यास्क हैं। श्रीभगवद्दत्तजीका मत है कि अनेक निरुक्तकार हो गये है, जिन्होंने निरुक्तोंके साथ ही अपने-अपने निघण्टु (वैदिक-शब्द-कोष) भी बनाये। प्रत्येक निरुक्तकार पहले निघण्टु बनाकर अपना भाष्य आरम्भ करता था। इसीलिये निघण्टुको भी निरुक्त कहा गया है।

परन्तु अधिकांश वेदज्ञों और पुराणादिके मतसे प्राप्त निघण्टुको कश्यप प्रजापतिने बनाया है, जिसपर यास्कका निरुक्त है। १४ वीं शताब्दी के देवराज यज्वाने इसी निघण्टुपर स्वतन्त्र भाष्य लिखा है। देवराजका भाष्य-क्रम निरुक्तकारके भाष्य-क्रमसे भिन्न है। इनके सिवा कदाचित् कोई दूसरा निघण्टु-भाष्यकार हुआ भी नहीं। यदि हुआ भी हो, तो उसका भाष्य अप्राप्त है।

देवराजके पितामहका नाम भी देवराज यज्वा ही था। इनके पिताका नाम यज्ञेश्वर आर्य था। इनका गोत्र अत्रि था। ये किसी "रंगेशपुरी-पर्यन्त" नामके ग्रामके निवासी थे।

निघण्टुके तीन काण्डों (नैघण्टुक, नैगम और दैवत) मेंसे नैघण्टुक काण्डका निर्वचन देवराजने विशेष रूपसे किया है। देवराजने ऋग्वेदके स्कन्द-भाष्य और स्कन्द-महेश्वरकी निरुक्त-भाष्य-टीकासे यथेष्ट साहाय्य

प्राप्त किया है। देवराजने शब्द-निर्वचनमें प्राचीन प्रमाणोंको अधिक एकत्र किया है।

निघण्टु-भाष्यमें वैदिक शब्दों और निरुक्त-भाष्यमें वैदिक मन्त्रोंकी भाष्य-टीकाएँ की गयी हैं; इसलिये निघण्टु-निरुक्त-भाष्य-टीका-कार भी वैदिक भाष्य-टीका-कार माने जाते हैं।

निरुक्त

एक प्रकारसे निघण्टुका भाष्य निरुक्त है। यास्क-कृत विद्यमान निरुक्तपर एक अत्यन्त प्राचीन 'निरुक्त-वार्त्तिक' है। निरुक्तके भाष्यकार दुर्गाचार्यने और मण्डन मिश्रकी **'स्फोटसिद्धि'**की **गोपालिका** नामकी टीका के रचयिताने इस वार्त्तिकको उद्धृत किया है। **बृहद्देवता**में भी इसके उद्धरण हैं। स्व० प० बैजनाथ काशीनाथ राजवाड़ेका मत है कि 'बृहद्देवता' ही 'निरुक्त-वार्त्तिक' है। परन्तु कई वेदज्ञोंके मतसे निरुक्तवार्त्तिक स्वतन्त्र ग्रन्थ था। वह अनुपलब्ध है। उसके कर्त्ताका भी पता नहीं चलता।

१ बर्बरस्वामी

स्कन्द-महेश्वरकी 'निरुक्तभाष्य-टीका'से पता चलता है कि बर्बर स्वामीने निरुक्तपर एक विशद टीका लिखी थी। कुछ लोगोंके मतसे ये ही निरुक्तवार्त्तिककार थे। परन्तु इसमें अनुमानके अतिरिक्त कोई प्रमाण नहीं है। बर्बर स्वामीके कालका न तो पता है, न उनकी टीकाका ही।

२ दुर्गाचार्य

दुर्गाचार्य अत्यन्त प्राचीन भाष्यकार हैं। छठी शताब्दीमें ये कश्मीर के समीप रहते थे। संन्यासी थे। इनका गोत्र कापिष्ठल वासिष्ठ था।

इन्होंने निरुक्तपर जो वृत्ति वा टीका लिखी है, वह वैदिक साहित्यमें मूल्यवान् वस्तु समझी जाती है। इसके कितने ही संस्करण छप चुके हैं। इसमें अनेकानेक ऐसे प्राचीन ग्रन्थोंके प्रमाण दिये गये हैं, जो अबतक अप्राप्त हैं। इस वृत्तिमें कितने ही मत-वादोंका समीक्षण है। निरुक्तमें ये प्रधान मत दिये गये हैं—अधिदैव, अध्यात्म, आख्यान-समय, ऐतिहासिक, नैदान,

नैरुक्त, परिव्राजक, पूर्व याज्ञिक और याज्ञिक। इन सारे मतों और पक्षों की दुर्गाचार्यने आलोचना की है। दुर्गने रामायण और पुराणका भी उल्लेख किया है। दुर्गने वेदोंमें इतिहास माना है। दुर्ग स्कन्द स्वामीसे भी प्राचीन-तर कहे जाते हैं।

कलकत्ताके प० सत्यव्रत सामश्रमी और पूनाके श्रीबैजनाथ काशीनाथ राजवाड़ेने वैदिक साहित्यपर सर्वाधिक परिश्रम किया था। इन दोनों सज्जनोंने भी सम्पादित कर दुर्ग-वृत्तिके सुन्दर संस्करण निकाले हैं।

३ स्कन्द-महेश्वर

स्कन्द-महेश्वरकी निरुक्त-भाष्य-टीकाके साथ लाहोरके डा० लक्ष्मण स्वरूपने निरुक्तका अत्यन्त उपादेय संस्करण निकाला है। वैदिक साहित्य में यह संस्करण एक विशेष स्थान रखता है।

स्कन्द स्वामी ऋग्वेदके भाष्यकार थे। कहा जाता है कि स्कन्द स्वामी ने निरुक्तपर भाष्य लिखा था, जो स्वतन्त्र रूपसे अनुपलब्ध है। इस भाष्यके अनेक अंशोंको अपनी स्मृतिमें रखकर इसकी टीका महेश्वरने लिखी है। निरुक्तके तीसरे अध्याय आदिके समाप्ति-वाक्य टीकाको महेश्वर-कृत कहते भी हैं।

परन्तु कुछ वेदज्ञ कहते हैं, 'स्कन्द स्वामी महेश्वरके गुरु थे और दोनों गुरु-शिष्यने मिलकर निरुक्त-भाष्य-टीका लिखी है। स्कन्दके निरुक्त-भाष्यकी टीका केवल महेश्वरने नहीं लिखी है। प्रत्युत निरुक्त-रूपी जो निघण्टु-भाष्य है, उसकी टीका स्कन्द स्वामी और महेश्वरने मिलकर की।'

यदि स्कन्द और महेश्वर साथी वा गुरु-शिष्य थे, तो दोनों ही सातवीं शताब्दीके पुरुष हैं। दोनोंने ही वेदोंमें इतिहास माना है।

४ वररुचि

'निरुक्त-समुच्चय' नामका एक ग्रन्थ मिलता है। यह निरुक्तका न भाष्य है, न टीका। निरुक्तके मतानुकूल इसमें सौ मन्त्रोंकी व्याख्या है। इसमें चार कल्प हैं। पहलेमें कहा गया है—'निरुक्तके विना मन्त्रोंका न तो

विवरण हो सकता है, न अर्थ-ज्ञान ही। इसीलिये बड़ोंका कहना है कि 'निरुक्तको न जाननेवाला मन्त्रोंका निर्वचन नहीं कर सकता।' निरुक्त की प्रक्रियाके अनुसार ही मन्त्रोंका निर्वचन होना चाहिये।'

'निरुक्त-समुच्चय'के चतुर्थ कल्पमें इतने प्रकारके मन्त्रोंका उल्लेख किया गया है—प्रैष, आह्वान, स्तुति, निन्दा, संख्या, आशीः, कर्म, कत्थना, प्रश्न, वचन, शोधित, विकल्प, संकल्प, परिदेवना, अनुबन्ध, याच्ञा, प्रसव, संवाद, समुच्चय, प्रशंसा, शपथ, प्रतिशय, आचिख्यासा, प्रलाप, व्रीड़ा, उपधावन, आक्रोश, परिवाद, परित्राण आदि।

इस 'निरुक्त-समुच्चय'के कर्त्ता वररुचि हैं। ये पाणिनीय व्याकरणके वार्त्तिककार वररुचि नहीं हैं। ये दूसरे वररुचि थे। ये कदाचित् स्कन्द स्वामीके समकालीन थे।

दुर्ग और स्कन्द-महेश्वरकी भाष्य-टीकाओंसे ज्ञात होता है कि निरुक्त पर और भी कितनी ही भाष्य-टीकाएँ थीं, जो अभीतक अनुपलब्ध हैं।

सप्तत्रिंश अध्याय

कुछ आदर्श सूक्त

१ नासदीय सूक्त

ध्यानाभ्याससे मनको वशी करके ऋषियोंने जो अत्युच्च मनन और चिन्तन किये हैं, वे सूक्तोंमें उपनिबद्ध हैं। इन सूक्तोंमें भी कुछ सूक्त स्वाधीन चिन्तनकी सर्व-श्रेष्ठ कोटिकी चूड़ान्त सीमाको पहुँचे हैं। स्थितप्रज्ञ ऋषियों के इन आदर्श और अनूठे सूक्तोंको पढ़कर स्तब्ध और विस्मित हो जाना पड़ता है! इनमेंसे कुछको यहां दिया जा रहा है।

ऋग्वेदके १० म मण्डलके १२९ वें सूक्तका नाम **"नासदीय सूक्त"** है। इसके देवता (प्रतिपाद्य) परमात्मा हैं और ऋषि प्रजापति हैं। इसी सूक्तको लो० बालगंगाधर तिलकने अपने **"गीता-रहस्य"**के "विषय-प्रवेश"में मानव-जातिका **"सर्वश्रेष्ठ स्वाधीन चिन्तन"** कहा है। लोकमान्य ही नहीं, इस सूक्तकी मौलिक विचार धाराको पढ़कर संसार भरके वेद-ज्ञाता आश्चर्य-चकित हो रहते हैं! इसमें सब सात मन्त्र हैं और सातो एकसे एक बढ़कर प्रतापशाली हैं। इन्हीं मन्त्रोंके आधारपर हमारे यहां छहो शास्त्रोंकी सृष्टि हुई है और इन्हीं छहो दर्शनोंसे संसार भरके दर्शनोंकी उत्पत्ति हुई है।

"नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुहकस्य शर्मन्नम्भः किमासीद् गहनं गभीरम्॥ १॥"

(उस समय (प्रलय-दशामें) असत् (सियारकी सींगके समान अस्तित्व-हीन) नहीं था। जो सत् (जीवात्मा आदि) है, वह भी नहीं था। पृथिवी भी नहीं थी और आकाश तथा आकाशमें विद्यमान सातो भुवन भी नहीं

थे। आवरण (ब्रह्माण्ड) भी कहां था? किसका कहां स्थान था? क्या उस समय दुर्गम और गभीर जल था?)

"न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किञ्चनास॥ २॥"

(उस समय मृत्यु नहीं थी, अमरता भी नहीं थी, रात और दिनका भेद भी नहीं था। वायु-शून्य और आत्मावलम्बनसे श्वास-प्रश्वास-युक्त केवल एक ब्रह्म थे। उनके अतिरिक्त और कुछ नहीं था।)

"तम आसीत्तमसा गुह्लमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकम्॥ ३॥"

(सृष्टिके प्रथम अन्धकार (वा मायारूपी अज्ञान)से अन्धकार (वा जगत्कारण) ढका हुआ था। सभी अज्ञात और सब जलमय (वा अविभक्त) थे। अविद्यमान वस्तुके द्वारा वह सर्वव्यापी आच्छन्न था। तपस्याके प्रभावसे (वा प्रारब्ध-कर्मके फलोन्मुख होनेसे) वह एक तत्त्व (जीव) उत्पन्न हुआ।)

"कामस्तदग्रे समवर्तताधिमनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा॥ ४॥"

(सर्व-प्रथम परमात्माके मनमें काम (सृष्टिकी इच्छा) उत्पन्न हुआ। उससे सर्व-प्रथम बीज (उत्पत्ति-कारण) निकला। बुद्धिमान्ने बुद्धिके द्वारा अपने अन्तःकरणमें विचार करके अविद्यमान वस्तुसे विद्यमान वस्तुका उत्पत्ति-स्थान निरूपित किया।)

"तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासीदुपरि स्विदासीत्।
रेतोधा आसन् महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात् प्रयतिः परस्तात्॥५॥"

(बीजधारक पुरुष (भोक्ता) उत्पन्न हुए। (उन जीवोंके लिये) महिमाएँ (भोग्य) उत्पन्न हुईं। उन (भोक्ताओं) का कार्य-कलाप दोनों पार्श्वोंमें (नीचे और ऊपर) विस्तृत हुआ। नीचे स्वधा (अन्न) रहा और ऊपर प्रयति (भोक्ता) अवस्थित हुआ।)

**"को अद्धा वेद क इह प्र वोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव॥ ६॥"**

(प्रकृत तत्वको कौन जानता है ? कौन उसका वर्णन करे? यह सृष्टि किस उपादान कारणसे हुई ? किस निमित्त कारणसे ये विविध सृष्टियां हुईं ? देवता लोग इन सृष्टियोंके अनन्तर उत्पन्न हुए हैं। कहांसे सृष्टि हुई, यह कौन जानता है ?)

**"इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अंग वेद यदि वा न वेद ॥७॥"**

(ये नाना सृष्टियां कहांसे हुई, किसने सृष्टियां कीं और किसने नहीं कीं, यह सब वे ही जानें, जो इनके स्वामी परम धाममें रहते हैं। हो सकता है कि वे भी यह सब न जानते हों!)

ऋग्वेद १ म मण्डलके १६४ वें सूक्तका नाम **"अस्य वामीय सूक्त"** है। इसमें ५२ मन्त्र हैं। इनमेंसे ४ थे, ५ वें, ६ ठे, ३४ वें और ३७ वें मन्त्रों की चिन्तना अतीव उदात्त कोटिकी है।

२ संज्ञान-सूक्त

ऋग्वेद-संहिताका अन्तिम सूक्त है **संज्ञानसूक्त** वा **ऐकमत्यसूक्त।** सब चार ही मन्त्र हैं। इनमें आधुनिकतम गणतान्त्रिक विचारधाराकी प्राप्तिसे अनेक विद्वानोंकी धारणा है कि गणतन्त्र वा जन-तन्त्रकी प्रणाली के जनक ये ही मन्त्र हैं। प्रथम मन्त्रके देवता अग्नि हैं और शेषके ऐकमत्य (संज्ञान) हैं।

**"संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।
इलस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर॥ १॥"**

(अग्नि, तुम यथेच्छ फलदाता और प्रभु हो। तुम विशेष रूपसे प्राणियोंमें मिले हो। तुम यज्ञ-वेदीपर प्रज्वलित होते हो। हमें धन दो।)

"संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥ २॥"

(स्तोताओ, तुम मिलित होओ, एक साथ होकर स्तोत्र पढ़ो। तुम लोगोंका मन एकसा हो। जैसे प्राचीन देवता एकमत होकर अपना हविर्भाग स्वीकार करते हैं, वैसे ही तुम लोग भी एकमत होकर धन आदि ग्रहण करो।)

"समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥ ३॥"

(इन पुरोहितोंकी स्तुति एक-सी हो, इनका आगमन एक साथ हो तथा इनके मन (अन्तःकरण) और चित्त (विचारजन्य ज्ञान) एक-विध हों। पुरुहितो, मैं तुम्हें एक ही मन्त्रसे मन्त्रित (संस्कृत) करता हूँ और तुम्हारा, साधारण हविसे, हवन करता हूँ।)

"समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥ ४॥"

(यजमान-पुरोहितो, तुम्हारा अध्यवसाय एक हो, तुम्हारे हृदय एक हों और तुम्हारे मन एक हों। तुम लोगोंका सम्पूर्ण रूपसे संघटन हो।)

३ दानसूक्त

ऋग्वेदके दशम मण्डलका १०७ वां सूक्त "दक्षिणा-सूक्त" है और ११७ वां "दान-सूक्त" है। दोनोंमें ही उत्तम दाता, दान, देय, दानका पात्र और दानका फल आदिका विवरण है। दानके दुरुपयोगके इन दिनोंमें ते मन्त्र बड़े उपयोगी हैं। दोनों सूक्तोंके कुछ चुने हुए मन्त्र यहां दिये जाते हैं। दक्षिणा-सूक्तका ५ वां मन्त्र है—

"दक्षिणावान् प्रथमो हूत एधि दक्षिणावान् ग्रामणीरग्रमेति।
तमेव मन्ये नृपतिं जनानां य प्रथमो दक्षिणामाविवाय॥ ५॥"

(दाताको सबसे पहले बुलाया जाता है। वह ग्रामाध्यक्ष होता है और सबके आगे-आगे जाता है। जो सबसे पहले दक्षिणा देता है, उसे मैं (आंगिरस दिव्य ऋषि) सबका राजा मानता हूँ।)

"न भोजा ममृुर्न न्यर्थमीयुर्न रिष्यन्ति न व्यथन्ते ह भोजाः।
इदं यद्विश्वं भुवनं स्वश्चैतत् सर्वं दक्षिणैभ्यो ददाति॥ ८॥"

(दाताओं (के नामों) की मृत्यु नहीं होती। वे अमर (देवता) हो जाते हैं। दाता दरिद्र नहीं होते—वे क्लेश, व्यथा और दुःख भी नहीं पाते। इस पृथिवी वा स्वर्गमें जो कुछ है, सो सब उन्हें दक्षिणा देती है।)

"भोजमश्वाः सुष्ठु वाहो वहन्ति सुवृद्रथो वर्तते दक्षिणायाः।
भोजं देवासोऽवता भरेषु भोजः शत्रून्त्समनीकेषु जेता॥ ११॥"

(सुन्दर वहन करनेवाले अश्व दाताको ले जाते हैं। उसके लिये सुन्दर रथ विद्यमान रहता है। युद्धके समय देवता लोग दाताकी रक्षा करते हैं। युद्धमें दाता शत्रुओंको जीतता है।)

अब ११७ वें दानसूक्तके कुछ मन्त्र देखिये—

"य आध्राय चकमानाय पित्वोऽन्नवान्त्सन्रफितायोपजग्मुषे।
स्थिरं मनः कृणुते सेवते पुरोतो चित् स मर्डितारं न विन्दते॥ २॥"

(जिस समय कोई भूखा मनुष्य भीख मांगनेको उपस्थित होता है और अन्नकी याचना करता है, उस समय जो अन्नवाला होकर भी हृदयको निष्ठुर रखता और सामने ही भोजन करता है, उसे कोई सुख देनेवाला नहीं मिल सकता।)

"न स सखा यो न ददाति सख्ये सचाभुवे सचमानाय पित्वः।
अपास्मात् प्रेयान्न तदोको अस्ति पृणन्तमन्य मरणं चिदिच्छेत्॥ ४॥"

(अपना साथी पास आता है और मित्र होकर भी जो व्यक्ति उसे दान नहीं देता, वह मित्र कहाने योग्य नहीं है। उसके पाससे चल जाना ही उचित है। उसका गृह गृह ही नहीं है। उस समय किसी धनी दाताके यहां जाना ही उचित है।)

"पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान् द्राघीयांसमनु पश्येत पन्थाम्।
ओ हि वर्त्तन्ते रथ्येव चक्रान्यमन्यमुप तिष्ठन्ति रायः॥ ५॥"

(याचकको अवश्य धन देना चाहिये। दाताको अत्यन्त दीर्घ पुण्य-पथ मिलता है। जैसे रथ-चक्र नीचे-ऊपर घूमता है, वैसे ही धन भी कभी किसीके पास रहता है और कभी दूसरेके पास चला जाता है—कभी एक स्थानपर स्थिर नहीं रहता।)

"मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि बध इत् स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी॥ ६॥"

(जिसका मन उदार नहीं है, उसका भोजन करना वृथा है—उसका भोजन उसकी मृत्युके समान है। जो न तो देवताको देता है और न मित्र को देता है, जो स्वयं ही भोजन करता है, वह केवल पाप ही खाता है।)

४ भाषा-सूक्त

ऋग्वेदके इसी १० वें मण्डलका ७१ वां सूक्त भाषासूक्त कहाता ह। यह सूक्त विद्वानोंके विशेष मननकी वस्तु है। कुछ मन्त्र यहां उद्धृत किये जाते हैं।

"सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि॥ २॥"

(जैसे चलनीसे सत्तूको परिष्कृत किया जाता है, वैसे ही बुद्धिमान् लोग बुद्धिके बलसे भाषाको परिष्कृत करते हैं। उस समय विद्वान् लोग अपने अभ्युदयको जानते हैं। विद्वानोंके वचनमें मंगलमयी लक्ष्मी निवास करती हैं।)

"यज्ञेन वाचः पदवीयमायन्तामन्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम्।
तामाभृत्या व्यदधुः पुरुत्रा तां सप्त रेभा अभि सं नवन्ते॥ ३॥"

(बुद्धिमान् (विद्वान्) लोग यज्ञके द्वारा वचन (भाषा) का मार्ग पाते हैं। ऋषियोंके अन्तःकरणमें जो वाक् (प्रथम भाषा) थी, उसको उन्होंने प्राप्त किया। उस भाषाको उन्होंने सारे मनुष्योंको पढ़ाया। सातो छन्द उसी (वैदिक) भाषामें स्तुति करते हैं।)

"उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं वि सस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः ।।४।।"

(कोई-कोई देखकर वा समझकर भी भाषाको नहीं देखते वा समझते; कोई-कोई उसे सुनकर भी नहीं सुनते। किसी-किसीके पास तो वाग्देवी स्वयं वैसे ही प्रकट होती हैं, जैसे सुन्दर वस्त्र धारण करनेवाली भार्या अपने पतिके पास प्रकट होती है।)

"उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु।
अधेन्वा चरति माययैष वाचं शुश्रुवां अफलामपुष्पाम्।। ५ ।।"

(विद्वन्मण्डलीमें किसी-किसीकी प्रतिष्ठा है कि वह उत्तमभावग्राही है और उसके विना कोई कार्य नहीं हो सकता। (ऐसे लोगोंके कारण ही वेदार्थ-ज्ञान होता है।) कोई-कोई असार-वाक्यका प्रयोग करते हैं। वे वास्तवमें धेनु नहीं हैं, काल्पनिक, मायामात्र धेनु हैं।)

"अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वसमा बभूवुः।
आदघ्नास उपकक्षास उ त्वे ह्रदा इव स्नात्वा उत्वे ददृश्रे ।।७।।"

(जिन्हें आंखें हैं, कान हैं, ऐसे सखा (समानज्ञानी) मनके भावको (ज्ञानको) प्रकट करनेमें असाधारण होते हैं। कोई-कोई मुखतक जलवाले पुष्कर और कोई-कोई कमरतक जलवाले तड़ागके समान होते हैं। कोई-कोई स्नान करनेके उपयुक्त गभीर ह्रद्के समान होते हैं।)

"इमे ये नार्वाङ् न परश्चरन्ति न ब्राह्मणासो न सुतेकरासः।
त एते वाचमभिपद्य पापया सिरीस्तन्त्रं तन्वते अप्रजज्ञयः ।। ९ ।।"

(जो व्यक्ति इस लोकमें वेदज्ञ ब्राह्मणोंके और परलोकीय देवोंके साथ (यज्ञादिमें) कर्म नहीं करते, जो न तो स्तोता (ऋत्विक्) हैं, न सोम-यज्ञकर्त्ता हैं। वे पापाश्रित लौकिक भाषाकी शिक्षाके द्वारा, मूर्ख व्यक्तिके समान, लांगल-चालक (हल जोतनेवाले) बनकर कृषि-रूप बाना बुनते हैं।)

५ अरण्यानी-सूक्त

आश्रमोंका निष्कपट जीवन बितानेवाले, प्रकृतिके निविड़ नीड़में विहरण करनेवाले और वनानी देवीके अभय क्रोड़में विचरण करनेवाले आर्योंका स्वाभाविक प्रकृति-वर्णन कितना हृदयग्राही और कितना मनः-प्राण-विमुग्धकारी है, यह इस सूक्तके छः मन्त्रोंमें देखते ही बनता है। ऋग्वेद के १० म मण्डलके १४६ वें सूक्तके देवता अरण्यानी और ऋषि देवमुनि है।

"अरण्यान्यरण्यान्यसौ या प्रेव नश्यसि।
कथं ग्रामं न पृच्छसि न त्वा भीरिव विन्दतिम्॥ १॥"

(अरण्यानी (बृहद् वन), तुम देखते-देखते अन्तर्धान हो जातीं—इतनी दूर चली जाती हो कि दिखाई नहीं देतीं। तुम क्यों नहीं गांवमें जानेका मार्ग पूछती हो? अकेली रहनेमें तुम्हें डर नहीं लगता?)

"वृषारवाय वदते यदुपावति चिच्चिकः।
आघाटिभिरिव धावयन्नरण्यानिर्महीयते॥ २॥"

(इस गहन विपिनमें कोई जन्तु बैलकी तरह बोलता है, कोई "चीची" करके मानों उसका उत्तर देता है—मानों ये वीणाके पर्दे-पर्देमें बोलकर अरण्यानीका यश गाते हैं।)

"उत गाव इवादन्त्यूत वेश्मेव दृश्यते।
उतो अरण्यानिः सायं शकटीरिव सर्जति॥ ३॥"

(इस विपिनमें कहीं गायें चरती हैं और कहीं लता, गुल्म आदिका भवन दिखाई देता है। सन्ध्याकाल वनसे कितने ही शकट-से निकलते हैं।)

"गामंगैष आ ह्वयति दार्वंगैषो अपावधीत्।
वसन्नरण्यान्यां सायमक्रुक्षदिति मन्यते॥ ४॥"

(एक व्यक्ति गायको बुला रहा है और एक काठ काट रहा है। अरण्यानीमें जो व्यक्ति रहता है, वह रातको शब्द सुनता है।)

"न वा अरण्यानिर्हन्त्यन्यश्चेन्नाभिगच्छति।
स्वादो फलस्य जग्ध्वाय यथाकामं नि पद्यते॥ ५॥"

(अरण्यानी किसीको नहीं मारती। यदि बाघ, चोर आदि वहां न आवें, तो कोई डर नहीं। वनमें स्वादिष्ट फल खा-खाकर भली भांति काल-क्षेप किया जा सकता है।)

"आञ्जनगन्धिं सुरभिं बह्वन्नामकृषीवलाम्।
प्राहं मृगाणां मातरमरण्यानिमशंसिषम्॥ ६॥"

(मृगनाभि (कस्तूरी)के समान अरण्यानीका सौरभ है। वहां आहार भी है। वहां प्रथम कृषिका अभाव है। वह हरिणोंकी मातृरूपिणी है। इस प्रकार मैंने माता अरण्यानीकी स्तुति की।)

ऋग्वेद, १० म मण्डलका ९० वां सूक्त 'पुरुषसूक्त' कहलाता है। सुप्रसिद्ध गायत्री मन्त्रको छोड़कर 'पुरुष-सूक्त'के मन्त्र सर्वाधिक विख्यात हैं। इस सूक्तके समान तो कोई भी सूक्त विख्यात नहीं है। इसमें सब १६ मन्त्र हैं। कुछ नमूने देखिये। इसके देवता परमात्मा हैं और ऋषि नारायण है।

९ पुरुष-सूक्त

"पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥ २॥"

(जो कुछ हुआ है और जो कुछ होनेवाला है, सो सब परमात्मा (पुरुष) ही हैं। वह देवत्वके स्वामी हैं; क्योंकि प्राणियोंके कर्म-फल-भोग के लिये अपनी कारणावस्थाको छोड़कर जगदवस्थाको प्राप्त करते हैं।)

"एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥ ३॥"

(यह सारा ब्रह्माण्ड उनकी महिमा है—वह तो स्वयं अपनी महिमासे भी बड़े हैं। इन पुरुषका एक पाद (अंश) ही यह ब्रह्माण्ड है—इनके अविनाशी तीन पाद तो दिव्य लोकमें हैं।)

"तस्माद्विराडजायत विराजो अधि पूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः॥ ५॥"

(उन (पुरुष) से विराट् (ब्रह्माण्ड-देह) उत्पन्न हुआ और ब्रह्माण्ड-देहका आश्रय करके जीव-रूपसे पुरुष उत्पन्न हुए। वे देव-मनुष्यादि-रूप हुए। उन्होंने (परमात्माने) भूमि बनायी और जीवोंके शरीर ('पुरः') बनाये।)

इसके अनन्तर यज्ञ, यज्ञ-सामग्री, नाना प्राणियों, वेद, छन्द, ब्राह्मणादि चारों वर्णों, चन्द्र, सूर्य, दिशाओं आदिकी सृष्टि बतायी गयी है। इस सूक्त पर बड़े-बड़े भाष्य और टीका-टिप्पनियां की गयी हैं।

७ श्रद्धा-सूक्त

ऋग्वेद, १० म मण्डलका १५१ वां सूक्त श्रद्धा-सूक्त कहाता है। सूक्तके देवता और ऋषि श्रद्धा हैं। सब ५ मन्त्र हैं। मनुष्यकी उन्नतिका एक प्रधान कारण श्रद्धा या विश्वास है। गीतामें भगवान् कृष्णने कहा है—"**श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः**" अर्थात् 'मनुष्य श्रद्धा वा विश्वास का स्वरूप है; इसलिये जो जैसी श्रद्धा करता है, वह वैसा ही हो रहता है।' वस्तुतः विश्वासहीनका जीवन नीरस और शुष्क होता है और विश्वासी वा श्रद्धालुका जीवन सरस और फलदायक होता है—क्योंकि "**विश्वासः फलदायकः।**" इस श्रद्धाके प्रति आर्योंकी कैसी धारणा थी, यह नीचेके मन्त्रोंमें देखिये।

"श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धां भगस्य मूर्द्धनि वचसा वेदयामसि॥ १॥"

(श्रद्धाके द्वारा अग्नि प्रज्वलित होता है और श्रद्धाके द्वारा ही यज्ञ-सामग्रीकी आहुति दी जाती है। श्रद्धा सम्पत्तिके मस्तकपर रहनेवाली है—यह मैं स्पष्ट कहती हूँ।)

"श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते।
श्रद्धां हृदय्ययाकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु॥ ४॥"

(देवता और मनुष्य वायुको रक्षक पाकर श्रद्धाकी उपासना करते हैं। मनमें कोई संकल्प होनेपर लोग श्रद्धा (विश्वास)की शरणमें जाते हैं। श्रद्धा वा विश्वासके बलसे मनुष्य धन पाता है।)

"श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः॥ ५ ॥"

(हम लोग प्रातः, मध्याह्न और सूर्यास्तके समय श्रद्धाको ही बुलाते हैं। श्रद्धा-देवि, इस संसारमें हमें श्रद्धावान् करो—विश्वासी बनाओ।)

८ अथर्ववेदीय संज्ञान-सूक्त

ऋग्वेदकी ही तरह अथर्ववेद (पैप्पलाद-संहिता, ५.१९) में भी संज्ञान-सूक्त है, जिसमें सब सात मन्त्र हैं। एकता और संघटनका यह सूक्त आदर्श है। यह ध्यान रखना चाहिये कि वेदोंका अच्छा ज्ञान (संज्ञान) एकता वा संघटन कहा गया है।

"सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्योऽन्यमभिनवत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥ १ ॥"

(आप सबके बीचसे द्वेषको हटाकर मैं सहृदयता और संमनस्कताका प्रसार कर रहा हूँ। जैसे गौ (अघ्न्या) अपने बछड़ेसे प्रेम करती है, वैसे ही आप लोग परस्पर एक-दूसरेसे प्रेम करें।)

"अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवति संयतः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्॥ २ ॥"

(पिताके व्रतका पालक और माताकी आज्ञाका वाहक पुत्र हो। पत्नी पतिसे शान्तिमयी और मीठी वाणी बोलनेवाली हो।)

"मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥ ३ ॥"

(आपसमें भाई-भाई डाह न करें। बहिन-बहिन परस्पर ईर्ष्या न करें। आप सब एकमत और समान-व्रत होकर मीठा वचन बोलें।)

"ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट
संराधन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्योन्यस्मै वल्गु वदन्तो यात
समग्रास्थ सध्रीचीनान्॥ ५॥"

(श्रेष्ठत्वको अधिकृत करते हुए सब लोग हार्दिक प्रेमके साथ मिल कर रहो। कभी बिलग नहीं होना। एक दूसरेको प्रसन्न रखकर और एक साथ मिलकर भारी बोझको खींच ले चलो। परस्पर मीठे वचन बोला करो और अपने प्रेमी जनोंसे मिलकर रहा करो।)

"सध्रीचीनान् वः समनसः कृणोम्येकश्नुष्टीन् संवनेन सहृदः।
देवा इवेदममृतं रक्षमाणाः सायं प्रातः सुसमितिर्वो अस्तु॥ ७॥"

(समान-मार्ग-गामी आप सबको समान मनवाले बनाता हूँ, जिससे आप परस्पर प्रेमसे, समान भावोंके साथ, एक नेताका अनुधावन करें। जैसे देवता लोग समान-चेता होकर अमृतकी रक्षा करते हैं, वैसे ही सायं प्रातः आप लोगोंकी उत्तम समिति (संघटन-सभा) हो।)

६ पृथ्वी-सूक्त

अथर्ववेद (शौनक-संहिताके) १२ वें काण्डका प्रथम सूक्त पृथ्वी-सूक्त कहाता है। इसमें ६३ मन्त्र हैं। प्रत्येक मन्त्र देश-भक्तिसे ओत-प्रोत है। एक प्रकार से यह सूक्त आर्योंका "राष्ट्रिय गीत" है। कुछ मन्त्र उद्धृत किये जा रहे हैं।

"यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।
या बिभर्त्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु॥"

(जिसकी चार दिशाएँ हैं, जहां किसानी की जाती है, जो अनेक प्रकारसे प्राणियोंकी रक्षा करती है, वह मातृ-भूमि हमें गौओं और अन्नसे संयुक्त करे।)

"यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्त्तयन्।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु॥ ५"

(जहां हमारे पूर्वजोंने अद्‌भुत कार्य किये, जहां देवोंने असुरोंको मारा और जो गौओं, अश्वों और पक्षियोंकी माता है, वह जन्मभूमि हमें ऐश्वर्य और तेज दे।)

"यो नो द्वेषत् पृथिवि यः पृतन्यात् योऽभिदासान्मनसा यो बधेन।
तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि॥ १४॥"

(जो हमसे द्वेष करते हैं, जो सेना लेकर हमें सताने आते हैं, जो मनसे भी हमारी बुराई चाहते हैं और जो हमें मारनेको तैयार हैं, उन्हें, हे शत्रु-मर्दिनि, विनष्ट कर दे।)

"यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा।
पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छा वदामसि॥ २७॥"

(जहां चारो ओर वनस्पति और वृक्ष अडिग खड़े है, उस विश्वधारिका पृथिवी माताका हम गुणानुवाद करते है।)

"मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्ठा मोत्तरादधरादुत।
स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन् परिपन्थिनो वरीयो यावया बधम्॥ ३२॥"

(आगे-पीछे और ऊपर-नीचे कोई मुझपर प्रहार न करे। मातृभूमे, मेरे लिये तू मंगल कर। हिंसक, चोर और लुटेरे मेरा पता न पावें। इन्हें तू दूर भगा दे।)

"निधिं बिभ्रति बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे।
वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना॥ ४४॥"

(विविध वैभवोंवाली पृथिवी मुझे मणि और सुवर्ण प्रदान करे। प्रसन्नवदना, वरदात्री और धन-रत्न-धात्री वसुधे, हमें अमित वैभव प्रदान कर।)

"मल्वं बिभ्रती गुरुभृद् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः।
वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय॥ ४८॥"

(छोटे-बड़े पदार्थोंका धारण करनेवाली और पापी तथा सुकृतीके शवका भार वहन करनेवाली यह पृथ्वी है। इसे खोजकर सूकर-तनु-धारी वराह भगवान्‌ने प्राप्त किया।)

"उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम॥ ६२॥"

(मातृभूमि, तेरे जो प्रदेश हैं, वे रोग, क्षय और भयसे रहित हों। हम दीर्घायु हों, हम सदा सजग रहें और जान हथेलीपर लेकर तेरे लिये सर्वस्व त्यागनेको तैयार रहें।)

१० आग्नेय-सूक्त

अग्निसे ही यज्ञ होता है, हवन होता है और अग्निसे ही हविष्य आदि भोज्य पदार्थ बनते हैं। अग्नि (तेज, प्रकाश और उष्णता) से ही विश्वके अधिकांश कार्य चलते हैं और अग्निसे ही यह विश्व स्थिर है। यदि अग्नि न रहे, तो सारा विश्व विनष्ट हो जाय। इसीलिये आर्योंने ऋग्वेदमें सर्व-प्रथम अग्निका ही यश गाया और असंख्य मन्त्रोंमें अग्निकी प्रशंसा की। ऋग्वेदके प्रथम सूक्तका नाम ही है "आग्नेय सूक्त"। इसमें नौ मन्त्र हैं। कुछ मन्त्र उद्धृत किये जाते हैं। सूक्तके देवता अग्नि और ऋषि मधुच्छन्दा हैं।

"अग्निमीड़े पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्॥ १॥"

(यज्ञके पुरोहित, देवोंको बुलानेवाले ऋत्विक् और रत्नधारी अग्नि की मैं स्तुति करता हूँ।)

ऋग्वेदके अनेक मन्त्रोंमें अग्निको पुरोहित कहा गया है। वह पुरोहित (अग्रणी) इसलिये हैं कि अग्निके विना यज्ञ ही नहीं हो सकता। अग्नि देवोंको बुलानेवाले (होता) इसलिये हैं कि अग्निका प्रज्वलित होना ही देवोंके यज्ञमें आनेका कारण है। अग्निदेव ऋत्विक् (निर्दिष्ट समयमें यज्ञ-कर्त्ता) इसलिये हैं कि उन्हींके कारण निश्चित समयपर यज्ञ होता है। वह रत्नधारी इसलिये कहे गये हैं कि यज्ञ-फल-रूप रत्नों (धनों) के वह धारण (पोषण) करनेवाले हैं।

कोई भी जड़ पदार्थ स्वयं कार्य करनेमें असमर्थ है। यदि उसका कोई चेतन अधिष्ठाता हो, तो वह कार्य करनेमें समर्थ हो सकता है। इसी विचार से आर्य लोग जड़ अग्नि, वायु आदिके अतिरिक्त उनके अधिष्ठातृ-रूपसे अग्निदेव, वायुदेव आदि एक-एक चेतन देवता भी मानते थे। ऐसे असंख्य देव हैं और परमात्मा सबके अधिष्ठाता हैं। इसीलिये इन समस्त देवोंको ईश्वरांश माना गया है। फलतः शासक और अधिष्ठाताके रूपमें, कर्मानुसार, देवोंके अगणित नाम अवश्य हैं; परन्तु सबके चेतन-रूप होनेसे सामूहिक रूपसे सब देव एक ही हैं और वे ही परमात्मा हैं। वेदोंमें जड़ पदार्थोंका वर्णन चेतन-रूपसे करनेका यही तात्पर्य है।

"अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत। स देवां एह वक्षति॥ २॥"

(प्राचीन ऋषियोंने जिनकी स्तुति की थी, आधुनिक ऋषि जिनकी स्तुति करते हैं, वे अग्निदेव इस यज्ञमें देवताओंको बुलावें।)

"उपत्वाग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम्। नमो भरन्त एमसि॥७॥"

(अग्निदेव, हम अनुदिन, दिन-रात, अन्तर्बुद्धिके साथ तुम्हें प्रणाम करते-करते तुम्हारे पास आते हैं।)

"राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्। वर्धमानं स्वे दमे॥ ८॥"

(अग्निदेव, तुम प्रकाशक, यज्ञ-रक्षक, कर्मफलके द्योतक और यज्ञशालामें वर्धनशाली हो।)

"स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये॥ ९॥"

(जैसे पुत्र पिताको सरलतासे पा जाता है, उसी तरह हम भी तुम्हें पा सकें। हमारा मंगल करनेके लिये, अग्निदेव, हमारे पास निवास करो।)

११ ऐन्द्र सूक्त

ऋग्वेदमें सर्वाधिक मन्त्र इन्द्रके सम्बन्धमें हैं। इन्द्रके विविध रूप बताये गये हैं। वह कहीं परमात्मा, कहीं आत्मा, कहीं शतक्रतु (सौ यज्ञ करनेवाले), कहीं वृत्रहन् और कहीं वज्रभृत् कहे गये

हैं। कर्मानुसार इन्द्रके ये सब नाम पड़े हैं। ऋग्वेदके १ म मण्डलके ५ वें सूक्तमें १० मन्त्र हैं। इनमेंसे कुछ मन्त्र यहां दिये जा रहे हैं। इस सूक्तको 'ऐन्द्र सूक्त' भी कहा जाता है।

"आत्वेता निषीदतेन्द्रमभिप्रगायत। सखायः स्तोमवाहसः॥ १॥"

(स्तुति करनेवाले मित्रो, शीघ्र आओ, बैठो और इन्द्रको लक्ष्य कर गाओ।)

"स घानो योग आ भुवत्स राये स पुरन्ध्याम्। गमद्वाजेभिरा स नः॥३॥"

(अनन्त-गुण-सम्पन्न वे ही इन्द्र हमारे उद्देश्योंको सिद्ध करें, धन दें, बहुमुखी बुद्धि प्रदान करें और धनके साथ हमारे पास पधारें।)

"यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः। तस्मा इन्द्राय गायत॥४॥"

(रणांगणमें जिन देवताके रथ-युक्त अश्वोंके सामने शत्रु नहीं आते, उन्हीं इन्द्रके लिये गाओ।)

"त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः। इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो॥६॥"

(शोभनकर्मा इन्द्र, सोमपानके लिये, सदा ज्येष्ठ होनेके कारण, तुम सबके आगे रहते हो।)

"त्वां स्तोमा अवीवृधन्त्वामुक्था: शतक्रतो। त्वां वर्द्धन्तु नो गिरः॥८॥"

(सौ यज्ञोंके कर्त्ता इन्द्रदेव, तुम्हें सामवेद और ऋग्वेद—दोनों ही वेदोंके मन्त्र प्रतिष्ठित कर चुके हैं। हमारी स्तुति भी तुम्हें संवर्धित वा प्रतिष्ठित करे।)

इस मन्त्रमें पहले साममन्त्रों (स्तोमों) का नाम आया है और पीछे ऋक्मन्त्रों (उक्थों) का। जो लोग वेदोंको नित्य नहीं मानते और ऋग्वेद के पश्चात् सामवेदकी रचना मानते हैं, वे रमेशचन्द्र दत्त आदि यहां बड़े घबराये हैं। परन्तु सायणाचार्यके इस अर्थका वे खण्डन भी नहीं कर सके हैं।

१२ उषाके मन्त्र

उषःकालमें मनमें नयी स्फूर्ति और शरीरमें नया ओज उत्पन्न होता

है। उषःकालमें ही यज्ञादि अनुष्ठान और परमात्माकी उपासना की जाती है। इसीलिये आर्य उषाके भक्त होते थे। यहां उषाके कुछ मन्त्र दिये जाते हैं।

"उषो येते प्रयामेषु युञ्जते मनो दानाय सूरयः।
अत्राह तत्कण्व एषां कण्वतमो नाम गृणाति नृणाम्॥" ऋ० १.४८.४

(उषा, तुम्हारा आगमन होनेपर विद्वान् लोग दानकी ओर ध्यान देते हैं और अतिशय मेधावी कण्व ऋषि दानशील मनुष्योंका प्रसिद्ध नाम लेते हैं।)

"वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपच्चतुष्पदर्जुनि।
उषः प्रारन्नृतूंरनु दिवोऽन्तेभ्यस्परि॥"

(शुभ्रवर्ण उषा, तुम्हारे आगमनके समय द्विपद, चतुष्पद और पक्ष वाले पक्षी आकाश-मण्डलके नीचे अपने-अपने कार्यमें संलग्न हो जाते हैं।)

"व्युच्छन्ती हि रश्मिभिर्विश्वमाभासि रोचनम्।
तां त्वामुषर्वसूयवो गीर्भिः कण्वा अहूषत॥"

(उषा, अन्धकारका विनाश करके किरणोंसे जगत्को उद्भासित करो। कण्वपुत्रोंने धनार्थी होकर तुम्हारी स्तुति की है।) पीछे के ये दोनों मन्त्र ऋग्वेद के १.४६.३–४ हैं।

"सत्या सत्येभिर्महती महद्भिर्देवी देवेभिर्यजता यजत्रैः।
रुजद्दृलानि दददुस्त्रियाणां प्रति गाव उषसं वावशन्त॥"
ऋग्वेद ७.७५.७

(सत्यस्वरूपिणी, महती और यजनीया उषा देवी सत्य, महान् और यजनीय देवोंके साथ अत्यन्त घनान्धकारका भेदन करती हैं। उषा गौओंके चरनेके लिये प्रकाश देती हैं। गायें उषाकी कामना करती हैं।)

"एषा स्या नव्यमायुर्दधाना गूढ्वीतमो ज्योतिषोषा अबोधि।
अग्र एति युवतिरह्रयाणा प्राचिकितत् सूर्यं यज्ञमग्निम्॥"
ऋ० ७.८०.२

(यह वही उषा हैं, जो नव यौवन धारण करके अपने प्रभावके द्वारा निगूढ़ अन्धकारको विनष्ट करके (प्राणियोंको) जगाती हैं। लज्जाहीना युवतीकी तरह उषा सूर्यके सम्मुख आती और सूर्य, यज्ञ तथा अग्निको सावधान करती हैं।)

"जिह्मश्ये चरितवे मघोन्याभोगय इष्टये राय उ त्वम्।
दभ्रं पश्यद्भ्य उर्विया विचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा॥"
ऋग्वेद १.११३.५

(जो लोग टेढ़े-मेढ़े सोये थे, उनमेंसे किसीको भोगके लिये, किसीको यज्ञके लिये और किसीको धनके लिये—सबको अपने-अपने कर्मोंके लिये उषाने जागरित किया है। जो थोड़ा देख सकते हैं, विशेष रूपसे उनकी दृष्टिके लिये उषा अन्धकार दूर करती हैं। विशाल उषाने सारे भुवनोंको प्रकाशित किया है।)

"परायतीनामन्वेति पाथ आयतीनां प्रथमा शश्वतीनाम्।
व्युच्छन्ती जीवमुदीरयन्त्युषा मृतं कञ्चन बोधयन्ती॥"
ऋ० १.११३.८

(पहलेकी उषाएँ जिस अन्तरिक्ष-मार्गसे गयी हैं, उसीसे उषा जा रही हैं और आगे अनन्त उषाएँ भी उसी पथका अनुधावन करेंगी। उषा अन्धकारको दूर करके और प्राणियोंको जागरित करके संज्ञा-शून्य लोगोंको चैतन्य प्रदान करती हैं।)

"ईयुष्टे ये पूर्वतरामपश्यन् व्युच्छन्तीमुषसं मर्त्यासः।
अस्माभिरू नु प्रतिचक्ष्याभूदो ते यन्ति ये अपरीषु पश्यान्॥"
ऋग्वेद १.११३.११

(जिन मनुष्योंने अतीव प्राचीन समयमें आलोकका प्रसार करते हुए उषाको देखा था, वे इस समय नहीं हैं। हम उषाको देखते हैं। आगे जो लोग उषाको देखेंगे, वे आ रहे हैं।)

"उदीर्ध्वं जीवो असुर्न आगादप प्रागात्तम आ ज्योतिरेति।
आरैक पन्थां यातवे सूर्यायागन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः॥"
ऋग्वेद १.११३.१६

(मनुष्यो, उठो। हमारा शरीर-संचालक जीवन आ गया है। अन्धकार गया, आलोक आया। सूर्यको जानेके लिये उषाने मार्ग बना दिया है। उषा, जहां तुम ऐश्वर्य प्रदान करती हो, वहां हम जायँगे।)

"एता उत्या उषसः केतुमकृत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते।
निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः॥"
ऋग्वेद १.९२.१

(उषा देवियोंने आलोक द्वारा प्रकाश किया है। वे पहले पूर्व दिशा के अन्तरिक्षको प्रकाशित किया करती हैं। जैसे योद्धा अपने सारे हथियारों को परिमार्जित करते हैं, वैसे ही अपने तेजके द्वारा संसारका संस्कार करके गतिशीला और ओजस्विनी उषा माताएँ प्रतिदिन गमन करती हैं।)

"अधि पेशांसि वपते नृतूरिवापोर्णुते वक्ष उस्रेव वर्जहम्।
ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती गावो न व्रजं व्युषा आवर्तमः॥"
ऋग्वेद १.९२.४

(नर्तकीकी तरह उषा अपने रूपको प्रकट करती हैं। दूहनेके समय गायें जैसे अपना अधस्तन भाग प्रकट करती हैं, वैसे ही उषा भी अपना वक्ष प्रकट करती हैं। जैसे गायें अपने गोष्ठमें शीघ्र जाती हैं, वैसे ही उषा भी पूर्व दिशामें जाकर सारे संसारके अन्धकारको दूर करती हैं।)

"अतीरिष्म तमसस्पारमस्योषा उच्छन्ती वयुना कृणोति।
श्रिये छन्दो न स्मयते विभाति सुप्रतीका सौमनसायाजीगः॥"
ऋग्वेद १.९२.६

(हम रात्रिके अन्धकारको पार कर चुके हैं। उषाने प्राणियोंके ज्ञान

को जगाया है। प्रकाशवती उषा, तोषामोदकारीकी तरह, प्रीति प्राप्त करनेके लिये अपनी दीप्तिके द्वारा मानों हँस रही हैं। आलोक-विलासिताङ्गी उषाने हमारे सुखके लिये अन्धकारका विनाश किया है।)

१३ गृह-भूमिकी महत्ता

(पैप्पलादसंहिता, ३.२६)

"सूनृतावन्तः सुभगा इरावन्तो हसामुदाः।
अक्षुध्या अतृष्यासो गृहा मास्मद् बिभीतन॥ ३॥"

(जिन घरोंके निवासी आपसमें मधुर और सभ्य सम्भाषण करते हैं, जहां सौभाग्य रहता है, प्रीति-भोज होता है, जहां सब हँसी-खुशीसे रहते हैं और जहां न कोई भूखा है, न प्यासा, वहां कहींसे भयका संचार न हो।)

"येषामध्येति प्रवसन् येषु सौमनसो बहुः।
गृहानुपह्वयाम यान् ते नो जानन्त्वायतः॥४॥"

(प्रवासमें रहते हुए हमें जिनका बराबर ध्यान आया करता है, जिनमें सहृदयता भरी हुई है, उन घरोंका हम आवाहन करते हैं। वे हमको बाहरसे आये हुए जानें।)

"उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः।
अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः॥५॥"

(हमारे इन घरोंमें दुधार गाय हैं; इनमें भेड़, बकरी आदि भी बहुत हैं। अन्नको अमृत-तुल्य स्वादिष्ट बनानेवाले रस भी यहां हैं।)

"उपहूता भूरिधनाः सखायः स्वादुसन्मुदः।
अरिष्टाः सर्वपूरुषा गृहा नः सन्तु सर्वदा॥६॥"

(प्रचुर धनवाले मित्र इन घरोंमें आते हैं और हँसी-खुशी हमारे साथ स्वादिष्ट भोजनमें सम्मिलित होते हैं। हमारे गृहो, तुम्हारे अन्दर रहने वाले सारे प्राणी नीरोग और अक्षीण रहें, उनका किसी प्रकार ह्रास न हो।)

१४ "मा भैः"
(शौनकसंहिता २. १५)

"यथा वायुश्चान्तरिक्षं च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः ॥२॥"

(जिस प्रकार वायु और अन्तरिक्ष न डरते हैं, न क्षीण होते हैं, वैसे ही मेरे प्राण, तुम भी न डरो, न क्षीण हो।)

"यथा वीरश्च वीर्यं च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः ॥६॥"

(जैसे वीर और वीरत्व न डरते हैं, न क्षीण होते हैं, वैसे ही मेरे प्राण, तुम भी न डरो, न क्षीण हो।)

"यथा मृत्युश्चामृतं च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः ॥११॥"

(जैसे मृत्यु और अमृत न डरते हैं, न क्षीण होते हैं, वैसे ही मेरे प्राण, तुम भी न डरो, न क्षीण हो।)

"यथा सत्यं चानृतं च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः ॥१२॥"

(जैसे सत्य और अनृत न डरते हैं, न क्षीण होते हैं, वैसे ही मेरे प्राण, तुम भी न डरो, न क्षीण हो।)

"यथा भूतं च भव्यं च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः ॥१३॥"

(जैसे भूत और भव्य न डरते हैं, न क्षीण होते हैं, वैसे ही मेरे प्राण, तुम भी न डरो, न क्षीण हो।)

१५ दरिद्रता-नाशक सूक्त
(ऋग्वेद, १० म मण्डल, १५५ सूक्त)

"अरायि काणे विकटे गिरिं गच्छ सदान्वे।
शिरिम्बिठस्य सत्वभिस्तेभिष्ट्वा चातयामसि ॥१॥"

(दरिद्रते, तुम दान-विरोधिनी, कुशब्दवाली, विकट आकारवाली और क्रोधिनी हो। मैं (शिरिन्विठ) ऐसा उपाय करता हूँ, जिससे तुम्हें दूर करूंगा।)

"चत्तो इतश्चत्तामुतः सर्वा भ्रूणान्यारुषी।
अराय्यं ब्रह्मणस्पते तीक्ष्णशृङ्गोदषन्निहि ॥२॥"

(दरिद्रता वृक्ष, लता, शस्य आदिका अंकुर नष्ट करके दुर्भिक्ष ले आती है। उसे मैं इस लोक और उस लोकसे दूर करता हूँ। तेजःशाली ब्रह्मणस्पति, दान-द्रोहिणी इस दरिद्रताको यहांसे दूर कर आओ।)

"अदो यद्दारु प्लवते सिन्धो पारे अपूरुषम्।
तदा रभस्व दुर्हणो तेन गच्छ परस्तरम् ॥३॥"

(यह जो काठ समुद्र-तटके पास बहता है, उसका कोई कर्त्ता (स्वामी) नहीं है। विकृत आकृतिवाली अलक्ष्मी (दरिद्रता), इसीके ऊपर चढ़कर समुद्रके दूसरे पार चली जाओ।)

"यद्ध प्राचीरजगन्तोरो मण्डूरधाणिकीः।
हत इन्द्रस्य शत्रवः सर्वे बुद्बुदयाशवः ॥४॥"

(हिंसामयी और कुत्सित शब्दवाली अलक्ष्मियो, जिस समय तत्पर होकर तुम लोग शीघ्र गमनसे चली गयीं, उस समय इन्द्र (आर्य) के सब शत्रु, जल-बुद्बुदके समान, विलीन हो गये।)

१६ राजयक्ष्म-नाशक सूक्त

(ऋग्वेद, १० म मण्डल, १६३ सूक्त)

"अक्षिभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥१॥"

(तुम्हारे दोनो नेत्रों, दोनो कानों, दोनों नाकों, चिबुक, शिर, मस्तिष्क और जिह्वासे मैं यक्ष्मा रोगको दूर करता हूँ।)

"ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात्।
यक्ष्मं दोषण्यमंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते ॥२॥"

(तुम्हारे कण्ठों, धमनियों, स्नायु, अस्थि-सन्धि, दोनों भुजाओं, दोनों हाथों और दोनों स्कन्धोंसे मैं रोग दूर करता हूँ।)

"आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठो हृदयादधि।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां यक्नः प्लाशिभ्यो वि वृहामि ते ॥३॥"

(तुम्हारी अन्ननाड़ी, क्षुद्रनाड़ी, बृहद्दण्ड, हृदय-स्थान, मूत्राशय, यकृत और अन्यान्य मांस-पिण्डोंसे मैं रोगको दूर करता हूँ।)

"ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम्।
यक्ष्मं श्रोणिभ्यां भासदाद्भंसतो वि वृहामि ते ॥४॥"

(तुम्हारे दोनों उरुओं, दोनों जानुओं, दोनों गुल्मों, दोनों पाद-प्रान्तों, दोनों नितम्बों, कटिदेश और मलद्वारसे मैं रोगको दूर करता हूँ।)

"मेहनाद्वनंकरणाल्लोमभ्यस्ते नखेभ्यः।
यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिदं वि वृहामि ते ॥५॥"

(मूत्रोत्सर्ग करनेवाले पुरुषांग, लोमों और नखों—सर्वांग शरीरसे मैं रोगको दूर करता हूँ।)

"अंगादंगाल्लोम्नो लोम्नो जातं पर्वणि पर्वणि।
यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिदं वि वृहामि ते ॥६॥"

(प्रत्येक अंग, प्रत्येक लोम, शरीरके प्रत्येक सन्धि-स्थान और तुम्हारे सर्वांगमें जहां-कहीं रोग उत्पन्न हुआ है, वहांसे मैं उस रोगको दूर करता हूँ।)

अष्टत्रिंश अध्याय

वैदिक संहिताओंकी सूक्तियां

यों तो सूक्तों, सूक्तियों और सुन्दर उपदेशोंका संग्रह वैदिक संहिताए हैं ही ; परन्तु यहां उनमेंसे कुछ ऐसी उक्तियोंका उल्लेख किया जाता है, जो प्रतिदिन स्मरणीय हैं। इनके अनुसार चलकर अपने जीवनको महत्त्व-पूर्ण बनाया जा सकता है।

ऋग्वेद

१ एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति। (१.१६४.४६)

(परमात्मा एक हैं, तो भी विद्वान् लोग उन्हें अनेक नामोंसे पुकारते हैं।)

२ कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति। (१०.११४.५)

(कवि वा क्रान्तदर्शी लोग एक परमात्माकी कल्पना अनेक प्रकारसे करते हैं।)

३ असच्च सच्च। (१०.५.७)

(वह सत् और असत् अर्थात् व्यक्त और अव्यक्त, दोनों हैं।)

४ वृषभश्च धेनुः। (१०.५.७)

(वह पुरुष और स्त्री, दोनों हैं।)

५ हिरण्यगर्भः समवर्ततताग्रे। (१०.१२१.१)

(सर्व-प्रथम केवल परमात्मा थे।)

६ एको विश्वस्य भुवनस्य राजा। (६.३६.४)

(वह सारे लोकोंके स्वामी हैं।)

७ द्यावापृथिवी बिभर्ति। (१०.३१.८)

(परमात्मा द्यौ (स्वर्ग) और पृथिवीको धारण करते हैं।)

८ तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो यज्ञ उग्रः। (१०.१२०.१)
(जिनसे सूर्य उत्पन्न हुए हैं, वे सबसे ज्येष्ठ हैं।)

९ वपूंषि बिभ्रदभि नो विचेष्ट। (३.५५.९)
(वे नाना रूप धारण करते हुए भी हमें विशेष अनुग्रह-दृष्टिसे देखें।)

१० मा नो रीरिषो मा परा दाः। (१०.१२८.८)
(हमारा अनिष्ट नहीं करना, हमारे प्रतिकूल नहीं होना।)

११ उत देव अवहितं देवा उन्नयथा पुनः। (१०.१३७.१)
(देवो, मुझ पतितको ऊपर उठाओ।)

१२ उतागश्चक्रुषं देवा देवाजी वयथा पुनः। (१०.१३७.१)
(मुझ अपराधीको अपराधसे बचाओ। देवो, मुझे चिरंजीवी करो।)

१३ देवा न आयुः प्र तिरन्तु। (१.८९.२)
(देवगण हमारी आयुको बढ़ावें।)

१४ न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः। (४.३३.११)
(देवगण तपस्वीको छोड़कर दूसरेके मित्र नहीं होते।)

१५ न देवानामपि व्रतं शतात्मा च न जीवति। (१०.३३.९)
(एक सौ प्राण रहनेपर भी देवोंके नियमके विरुद्ध कोई नहीं जी सकता।)

१६ इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति। (८.२.१८)
(देवगण यज्ञ-कर्ता पुरुषार्थीको चाहते हैं—सोये हुएको नहीं।)

१७ स नः पर्षदति द्विषः। (१०.१८७.१)
(देव हमें शत्रुसे बचावें।)

१८ अपश्यं गोपामनिपद्यमानम्। (१०.१७७.३)
(मैंने देख लिया कि आत्माका कभी विनाश नहीं होता।)

१९ अजो भागस्तपसा तं तपस्व। (१०.१६.४)
(मनुष्यमें जो अंश (आत्मा) जन्म-रहित है, उसे तेजस्वी करो।)

२० अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः। (१.१६४.३५)
(सम्पूर्ण संसारकी नाभि यह यज्ञ है ।)
२१ मह्यं वातः पवताम्। (१०.१२८.२)
(मुझे वायु पवित्र करे ।)
२२ सत्या मनसो मे अस्तु। (१०.१२८.४)
(मेरी कामना पूरी हो ।)
२३ एनो मा नि गाम्। (१०.१२८.४)
(मैं पापमें न फसूं ।)
२४ ज्ञाती चित् सन्तौ न समं प्रणीतः। (१०.११७.६)
(एक वंशके होकर भी दो व्यक्ति समान-दानी नहीं होते ।)
२५ ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः। (६.७३.६)
(दुष्कर्मी मनुष्य सत्यके मार्गका पार नहीं कर सकते।)
२६ स्वस्ति पन्थामनुचेरम। (५.५१.१५)
(हम कल्याणवाही पथके पथिक हों ।)
२७ विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम्। (१.११४.१)
(इस ग्राममें सब लोग स्वस्थ और नीरोग रहें।)
२८ उद्बुध्यध्वं समनसः सखायः (१०.१०१.१)
(मित्रो, समान-मना होकर जागो ।)

यजुर्वेद

१ तमेव विदित्वाति मृत्युमेति। (३१.१८)
(उस परमात्माका ज्ञान प्राप्त करके ही मनुष्य मृत्युको लांघ सकता है।)
२ तस्मिन् तस्थुर्भुवनानि विश्वा। (३१.१९)
(परमात्मामें ही सारे लोक अवस्थित हैं।)
३ स ऽओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु। (३२.८)
(वह व्यापक परमात्मा सारी प्रजामें ओतप्रोत हैं।)

४ शं नः कुरु प्रजाभ्यः। (३६.२२)

(हमारी सन्तानोंका कल्याण करो।)

५ ऋतस्य पथा प्रेत। (७.४५)

(सत्यके पथपर चलो।)

६ अस्माकं सन्त्वाशिषः सत्याः। (२.१०)

(हमारी इच्छाएँ सच्ची हों।)

७ अहमनृतात्सत्यमुपैमि। (१.५)

(मैं असत्यसे बचकर सत्यके पास जाता हूँ।)

८ भूत्यै जागरणं अभूत्यै स्वपनम्। (३०.१७)

(जागना वैभव देनेवाला है और सोना वा आलस्यमें पड़े रहना दरिद्रताको बुलानेवाला है।)

९ यशः श्रीः श्रयतां मयि। (२९.४)

(मुझमें कीर्ति और वैभव हो।)

१० मा गृधः कस्यस्विद्धनम्। (४०.१)

(किसीकी सम्पत्तिका लालच मत करो।)

११ कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः। (४०.२)

(संसारमें कर्म करता हुआ मनुष्य सौ वर्ष जीनेकी इच्छा करे।)

१२ मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे। (३६.१८)

(हम आपसमें मित्रकी दृष्टिसे देखें।)

१३ सुसस्याः कृषीष्कृधि। (४.१०)

(बढ़िया अन्नवाली खेती करो।)

१४ पश्येम शरदः शतम्। (३६.२४)

(हम सौ वर्षोंतक देखते रहें वा जीवित रहें।)

१५ अदीनाः स्याम शरदः शतम्। (३६.२४)

(हम सौ वर्षोंतक सम्पन्न होकर जीवित रहें।)

१६ **तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।** (३४.१)

(मेरा मन कल्याणकारी संकल्पवाला हो।)

१७ **अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापतिः।** (१९.७७)

(परमात्माने झूठमें अश्रद्धा (अविश्वास)को और सत्यमें विश्वास को रखा है।)

अथर्ववेद

१ **य इत् तद्विदुस्ते अमृतत्वमानशुः।** (९.१०.१)

(जिन्होंने परमात्माको जान लिया, उन्हें मोक्ष मिल गया।)

२ **एक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः।** (२.२.१)

(एक मात्र परमात्मा ही प्रणाम और स्तुतिके योग्य हैं।)

३ **तस्य ते भक्तिवांसः स्यामः।** (६.७९.३)

(भगवन्, हम तेरे भक्त हों।)

४ **स नो मुञ्चत्वंहसः।** (४.२३.१)

(वह परमात्मा हमें पापसे बचावें।)

५ **तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योः।** (१०.८.४४)

(आत्म-ज्ञानी पुरुष मृत्युसे नहीं डरता।)

६ **वयं देवानां सुमतौ स्याम।** (६.४७.२)

(हम देवोंकी आराधनामें रहें।)

७ **प्रियं मा कृणु देवेषु।** (१९.६२.१)

(मुझे देवताओंका प्रिय बना।)

८ **सं श्रुतेन गमेमहि।** (१.१.४)

(हम वेदोपदेशके साथ-साथ चलें।)

९ **अयज्ञियो हतवर्चा भवति।** (१२.२.३७)

(यज्ञ-शून्य निस्तेज होता है।)

१० **सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।** (१९.१५.६)

(सारी दिशाएँ हमारी हितैषिणी हों।)

११ वयं सर्वेषु यशसः स्याम। (६.५८.२)
(हम सबमें यशस्वी हों।)
१२ मधुमती वाचमुदेयम्। (७.५२.८)
(मैं मीठी बात बोलूं।)
१३ मा नो द्विक्षत कश्चन। (१२.१.२४)
(हमारा द्वेषी कोई न रहे।)
१४ शं मे अस्तु अभयं मे अस्तु। (१९.९.१३)
(मुझे कल्याण मिले और भय न हो।)
१५ मा मा प्रापत पाप्मा मोत मृत्युः। (१७.१.२९)
(मेरे पास पाप और मृत्यु न आवे।)
१६ अरिष्टाः स्याम तन्वा सुवीराः। (५.३.५)
(हम शरीरसे नीरोग रहें और उदात्त वीर बनें।)
१७ आरोहणमाक्रमणं जीवतो जीवतोऽयनम्। (५.३०.७)
(ऊपर उठना और आगे बढ़ना प्रत्येक जीवका लक्ष्य है।)
१८ ज्योगेव दृशेम सूर्यम्। (१.३१.४)
(हम सूर्यको बहुत समयतक देखें वा चिर जीवित रहें।)
१९ मा जीवेभ्यः प्रमदः। (८.१.७)
(प्राणियोंकी ओर उपेक्षा मत करो।)
२० कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः। (७.५२.८)
(मेरे दाहिने हाथमें पुरुषार्थ है, तो बायें हाथमें सफलता रखी हुई है।)
२१ माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः। (१२.१.१२)
(मेरी माता भूमि है और मैं उसका पुत्र हूँ।)
२२ मां पुरा जरसो मृथाः। (५.३०.७)
(मनुज, तू बुढ़ापा आनेके पहले मत मर।)
२३ परैतु मृत्युरमृतं न एतु। (१८.३.६२)
(हमसे मृत्यु दूर भाग जाय और हमें अमरता मिले।)

२४ **सर्वमेव शमस्तु नः।** (१९.९.१४)
(हमारे लिये सब कल्याणकारी हो।)
२५ **शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर।** (३.२४.५)
(सैकड़ों हाथोंसे इकट्ठा करो और हजारों हाथोंसे बांटो।)
२६ **शिवं मह्यं मधुमदस्त्वन्नम्।** (६.७१.३)
(मेरा अन्न कल्याणकारी और मधुर हो।)
२७ **एवा मे अश्विना वर्चस्तेजोबलमोजश्च ध्रियताम्।** (९.१७)
(अश्विद्वय, मुझमें वर्चस्, तेज, बल और ओज बढ़ें।)

विशेष

१ **विश्वा स्पृध आर्येण दस्यून्।** (ऋग्वेद २.११.१९)।
(इन्द्रने आर्यके द्वारा प्रतिस्पर्द्धी शत्रुओंका नाश किया।)
२ **अपावृणोर्ज्योतिरार्याय** (ऋग्वेद २.११.१८)
(इन्द्र वा परमात्मन्, आर्यके लिये तुमने ज्योति दी है।)

उपसंहार

कृष्ण यजुर्वेदके तैत्तिरीय-ब्राह्मणमें कहा गया है, 'ऋषि भरद्वाजने जीवन भर तपस्या की। प्रसन्न होकर इन्द्र प्रकट हुए और भरद्वाजसे पूछा कि 'यदि तुम्हें एक जन्म और मिले, तो तुम उस जन्ममें क्या करोगे ?' भरद्वाजने उत्तर दिया—'मैं इस जन्मके समान ही तपस्या करता हुआ उस जन्ममें भी वेदाध्ययन करूँगा।' देवाधिपति इन्द्रने पुनः प्रश्न किया—'यदि तुम्हें पुनः एक जन्म और मिले, तो क्या करोगे ?' भरद्वाजने दृढ़ता-पूर्वक उत्तर दिया—'मैं उस जन्ममें भी तप करता हुआ वेदोंका स्वाध्याय करूँगा।' इस उत्तरके साथ ही भरद्वाजके सामने तीन पर्वत प्रकट हुए। इन्द्रने उन तीनोंमेंसे एक मुट्ठी भरकर कहा—'भरद्वाज, अबतक वेदोंको पढ़कर जो कुछ ज्ञान तुमने प्राप्त किया है और दूसरे जन्मोंमें जो कुछ ज्ञान पाओगे, सो सब इन पर्वतोंकी तुलनामें इस मुट्ठीके समान है। वेद तो अनन्त हैं—"अनन्ता वै वेदाः।"

वस्तुतः वेद अनन्त हैं; वेदोंका अन्त किसीको नहीं मिला। भारतके बड़े-बड़े तपोधन महर्षियोंने वेदाध्ययनमें अपने सारे जीवन खपा डाले; परन्तु वेद-समुद्रका थाह नहीं लगा, वह अथाह ही रहा! 'कितने ही जीवन भर वेदाध्ययन करके भी वेद-रहस्यको, वेदके यथार्थ तत्त्वको नहीं समझते' (ऋग्वेद १०.७१.४)। विश्वकी सभ्यतम जाति—आर्यजाति—ने वेदोंके आधारपर, वेदोंकी व्याख्यामें, हजारों हजार ग्रन्थ रच डाले, शास्त्र, धर्म-शास्त्र, पुराण, तन्त्र आदि बना डाले, विशाल साहित्य गढ़ डाला, हजारों और लाखों श्लोकोंके महाविराट् पोथे तैयार कर डाले; तो भी वेदोंकी

पूरी पड़ताल नहीं हुई, वेद सदाकी ही तरह अपार और अनन्त ही बने रहे! वेदका प्रत्येक मन्त्र इतना निगूढ़, इतना दुरूह और इतना सूक्ष्मभावापन्न है कि बड़े-बड़े ऋषि-महर्षियोंने एक-एक मन्त्रको लेकर एक-एक ग्रन्थ बना डाला, तो भी सन्तोष नहीं हुआ, प्रत्येक मन्त्र अगम्य ही रहा! कमसे काम उसका ऐसा राई-रत्ती रहस्य नहीं जाना गया, जिससे विद्वानोंकी जिज्ञासा शान्त और परितृप्त हो जाय। 'ऋषियोंके अन्तःकरणमें, समाधि-दशामें, जो दिव्य ज्ञान-ज्योति प्रस्फुरित हुई, उसे उन्होंने प्राप्त किया, उसे उन्होंने पाया और उसे संसारके मनुष्योंको पढ़ाया' (ऋग्वेद १०.७१.३); परन्तु उनकी ज्ञान-पिपासा बुझी नहीं, वे उपवेद, वेदांग और वेदान्त बनाते ही गये! प्रत्येक मन्त्रकी आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक आदि व्याख्याएँ की गयीं, तो भी वह मन्त्र उतना ही जटिल और विकट बना रहा, जितना व्याख्याओंके पहले था। महर्षि बाल्मीकिने वेदके चौबीस अक्षरों वाले गायत्री-मन्त्रको लिया और **एक-एक अक्षरपर एक-एक हजार** करके अपनी रामायणके चौबीस हजार श्लोक बनाये—"**चतुर्विंशति-साहस्रयं श्लोकानामुक्तवान् ऋषिः**"; परन्तु क्या किसीने आत्मपरितोष किया? किसीने कहा कि 'बाल्मीकिने तो गायत्रीकी अथसे इतितक गोपनीयता खोल डाली, अब इसपर कुछ लिखनेकी आवश्यकता नहीं रही?' बाल्मीकिके बाद गायत्री-मन्त्रकी सैकड़ों व्याख्याएँ हो चुकीं और अबतक नवाभिनव व्याख्याएँ हो रही हैं और पता नहीं, कबतक होती रहेंगी! गायत्री-मन्त्रपर दो-दो सौ रुपयेकी एक-एक पुस्तक लिखी गयी, तो भी विद्वानोंकी ज्ञान-पिपासा अतृप्त-जिह्वा ही बनी रही! ग्रिफिथ और विलसन, लुड्विग और लांगलोआ, मैकडानल और मैक्समूलर, राथ और वोहट्लिंग्क ने वेद-व्याख्यामें अपना जीवन ही बिता डाला; तो भी उनकी व्याख्याएँ 'अधूरी' हैं और अधूरी हैं उनके देश-वासियोंकी ही दृष्टिमें! श्री वसन्त जी० रेलेके "The Vedic Gods" की भूमिकामें प्रसिद्ध वेदाध्येता डा० ई० जे० टामसने लिखा है—"It will help the scholars

of India to realise, as we are learning in the west, that the great problem is not yet solved" अर्थात् 'इस पुस्तकसे भारतीयोंको मालूम हो जायगा—जैसा कि अब हम पश्चिमके विद्वान् अनुभव करने लगे हैं—कि वेदार्थका महत्त्व-पूर्ण प्रश्न अभीतक हल नहीं हुआ।' सचमुच भाष्यों, निरुक्तों और प्रातिशाख्योंका सांगोपांग मन्थन करके भी वेदोंके अनेकानेक मन्त्रोंका पूरा अर्थ अबतक नहीं ज्ञात हो सका है!

इतना सब होते हुए भी वेदने मानवजातिको पूर्ण निराश नहीं किया है, उसने वेदार्थ समझनेका एक मार्ग निकाला है। ऋग्वेद (१.७१.१) ने उपदेश दिया है—'वेदार्थ-ज्ञान गोपनीय है; वह सरस्वतीके प्रेमसे प्रकट होता है।' सो, जिसे सरस्वती-प्रेम है, जो सरस्वतीका अनन्य भक्त है, जिसने वेद-सरस्वतीकी पवित्रतम उपासनामें अपनेको अर्पित कर दिया है, उसे कुछ न कुछ वेदार्थ-ज्ञान होगा ही; सूक्ष्मतम और निगूढ़ अर्थ न सही, आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक अर्थ कुछ विदित होंगे ही। इसी आधार और आशापर अगम-अपार वैदिक साहित्यकी कुछ बातें इस ग्रन्थ में लिखी गयी हैं और आगे भी उनकी कुछ थोड़ी-सी चर्चा की जायगी। शारदा देवी ही जानें कि इस ग्रन्थमें वेदोंकी कुछ रूप-रेखा खींची जा सकी है या नहीं।

उपनिषद्में कहा गया है—"**यद्वै किञ्च मनुरवदत्तद्भेषजम्**" अर्थात् करुणापरवश होकर 'जो कुछ मनुजीने कहा है, वह मनुष्योंकी भलाईके लिये औषध है।' वही मनुजी कहते हैं—

> "**सर्वेषां स तु नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।**
> **वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे॥**"

तात्पर्य यह है कि वैदिक शब्दोंके आधारपर ही जगत्के प्राणियोंके नाम, कर्म और व्यवस्थाएँ अलग-अलग की गयीं।

पहले लिखा गया है कि वेदोंके नित्यत्व-प्रतिपादक आचार्योंने इसी श्लोकके आधारपर अपनी सम्मति दी है कि 'वेदोक्त नाम, कर्म और व्यवस्थापनको लेकर ही लोगोंने ऐतिहासिक पुरुषोंके नाम, कर्म और व्यवस्थापन रख दिये; वस्तुतः वेदोंमें इतिहासकी गन्धतक नहीं।'

मनुजी एक स्थानपर और लिखते हैं–

"भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिद्ध्यति॥"

आशय यह है कि 'भूत, भविष्य, वर्त्तमान–सब वेदसे ही सिद्ध होते हैं।' मानों वेद त्रिकाल-सूत्रधर है; उसकी आज्ञाके अनुसार सदा चलनेसे निश्चित रूपसे सफलता मिलती है।

परन्तु क्या-क्या वेदाज्ञाएँ हैं, यह जानना कुछ कठिन है। अबतक तो यह भी निर्णय नहीं हुआ कि वेद-मन्त्र कितने हैं। 'चरण-व्यूह, (५.१) में कहा गया है–

"लक्षं तु वेदाश्चत्वारो लक्षं भारतमेव च।"

अर्थात् 'चारो वेदोंके मन्त्र एक लाख हैं और महाभारतके श्लोक भी एक लाख हैं।' प्रसिद्ध विद्वान् प्रज्ञाचक्षु प० धनराज शास्त्रीने भी इन पंक्तियोंके लेखकसे कहा था, 'यदि कोई तैयार हो, तो मैं एक लाख वेद-मन्त्र लिखा सकता हूँ।"

परन्तु चारों वेदोंकी उपलब्ध ११ संहिताओंमें तो एक लाख तो क्या, पचास हजार भी मन्त्र नहीं हैं–महाभारतके भी एक लाख श्लोक नहीं मिलते। ऋग्वेदकी शाकल-संहिता सभी संहिताओंसे विशाल है। उसमें एक मन्त्र है–

"सहस्रधा पंचदशान्युक्था:" (ऋग्वेद १०.११४.८)।

अर्थात् 'ऋग्वेदीय मन्त्र १५ हजार हैं।' परन्तु ऋग्वेदकी प्राप्त शाकल-संहितामें तो केवल १०४६७ ही मन्त्र हैं और इनमेंसे सैकड़ों-हजारों मन्त्र यजुः, साम और अथर्वमें भी पाये जाते हैं। इसलिये यही कहा जा सकता है

कि अनुपलब्ध वेद-मन्त्र नष्ट, लुप्त वा गुप्त हैं। तो भी ११ संहिताओंके जितने मन्त्र उपलब्ध हैं और उनकी जितनी उल्लेखनीय आज्ञाएँ और सामयिक विषय वा बातें हैं, प्रायः उन सारे विषयों और बातोंका कुछ विशद विवेचन पिछले अध्यायोंमें किया गया है। साथ ही प्रत्येक विषयके विवेचनमें मूल ग्रन्थ, तर्क, युक्ति, प्रमाण तथा प्राचीन-नवीन और देशी-विदेशी टीकाकारोंकी आलोचनाओंको यथोचित आधार माना गया है। लेखक की धारणा है कि जो मूल वेदग्रन्थोंको समझनेकी क्षमता नहीं रखता, उसका सिद्धान्त वा निष्कर्ष कभी प्रामाणिक नहीं हो सकता।

वेदोत्पत्ति और विभिन्न मत-वाद

प्रसंगतः कई अध्यायोंमें लिखा जा चुका है कि वेदोंपर अनेक मतवाद प्रचलित हैं और ये मतवाद एकसे एक अनूठे और अद्भुत हैं। वेदार्थ करनेमें ये मतवाद कुछ सहायता करते हैं। वेद-विद्याके जिज्ञासुओंको इन सबका विस्तृत ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। यहां अत्यन्त संक्षेपमें सबका उल्लेख किया जाता है।

पहला मत स्वयं वेदका है। ऋग्वेद (१०.९०.९) का एक मन्त्र कहता है—

"तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥"

अर्थात् 'उस यज्ञसे ऋग्वेद और सामवेद उत्पन्न हुए। उसीसे गायत्री आदि छन्द और यजुर्वेद भी उत्पन्न हुए।' आशय यह है कि सर्वात्मक पुरुषके संकल्प-रूप होमसे युक्त मानस यज्ञसे ऋग्वेदादि उत्पन्न हुए। स्पष्ट तात्पर्य यह समझना चाहिये कि भगवान्ने इच्छा की और वेद उत्पन्न हुए। उत्पन्न होनेका अर्थ अभिव्यक्ति करके बहुत लोग कहते हैं कि नित्य वेद सृष्टिके समय ईश्वरेच्छासे अभिव्यक्त हुए। दूसरा मत कहता है कि भगवान् (पुरुष) से वेद उत्पन्न हुए; इसलिये वे ही वेद-कर्त्ता हैं। बृहदारण्यकोपनिषद् वेदोंको भगवान्का श्वास मानती है।

शतपथ-ब्राह्मण, निरुक्त और मनुजीका मत है कि सूर्य, अग्नि औ वायु देवताओंने वेदोंको बनाया अर्थात् इनके द्वारा वे संसारमें प्रकट हुए मनुजीने लिखा है—

"अग्निवायु-रविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञ-सिद्धयर्थं ऋग्यजुःसामलक्षणम्॥"

अर्थात् ऋग्यजुः-साम-रूप तीनों शाश्वत वेदोंको यज्ञ-सिद्धिके लिये अग्नि, वायु और सूर्यसे दूहा अर्थात् प्राप्त किया गया।

आर्यसमाजके स्वामी दयानन्द सरस्वती तो अग्नि, सूर्य, वायु और अंगिराको 'प्राथमिक ऋषि' मानते हैं, जिनके द्वारा सृष्टिके आदिमें चारो वेद प्रकट हुए। पश्चात् वेदार्थोंके साक्षात्कर्त्ता और व्याख्याता अनेकानेक ऋषि हुए, जिनके नामोंपर सूक्तादि प्रसिद्ध हुए। स्वामीजी वेदोंके शब्द, अर्थ और शब्दार्थ-सम्बन्ध तथा क्रम आदि भी नित्य मानते हैं। स्वामीजीका मत है कि 'वेदोंमें अनित्य व्यक्तियोंका वर्णन नहीं है।' प्रकृति-प्रत्यय के अर्थोंके आधारपर चलनेवाली यौगिक शैली ही आर्यसमाजमें वेदार्थ करनेकी ठीक शैली मानी जाती है। स्वामीजी वेदोंमें आये नामोंको ऐतिहासिक और भौगोलिक न मानकर यौगिक अर्थोंमें लेते हैं। वे वसिष्ठको ऋषि नहीं मानते; वसिष्ठ शब्दका अर्थ 'प्राण' करते हैं। इसी तरह भरद्वाज का अर्थ 'मन' और विश्वामित्रका अर्थ 'कान' किया गया है। इस प्रकार वेदोंमें जितने ऐतिहासिक और भौगोलिक नाम आये हैं, स्वामीजी और अन्य आर्यसमाजी विद्वानोंने सबका यौगिक अर्थ कर डालनेकी चेष्टा की है।

यास्कने भी यौगिक अर्थ किये हैं; परन्तु कहीं-कहीं उन्होंने इतिहास भी माना है। सायण, महीधर, उवट आदि 'वेदोंको प्रभुका ज्ञान' (अर्थात् ईश्वर-दत्त) मानते हैं और उन्हें ईश्वरीय गुणोंकी तरह 'नित्य' भी कहते हैं। तो भी उन्होंने ऐतिहासिक और भौगोलिक नामोंका यौगिक अर्थ नहीं किया है—इतिहास और भूगोलको भी माना है।

श्वेताश्वतरोपनिषद् (६.८) में कहा गया है–

"यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।"

अर्थात् 'जो सृष्टिके आदिमें ब्रह्माको उत्पन्न करता और उसके लिये वेदोंको भेजता है।' वंशब्राह्मणमें भी परम्परया वेदोंकी उत्पत्ति ब्रह्मासे बतायी गयी है। मनुजीका जो श्लोक पहले लिखा गया है, उसमें भी वेद-दोग्धा प्रजापति ही बताये गये हैं। इसी प्रकार मनुजीने 'नित्या वाक्' का ब्रह्मा द्वारा प्राप्त होना बताया है–**"नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।"** एक स्थानपर तो मनुजीने स्पष्ट कहा है–

"युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाता स्वयंभुवा॥"

अर्थात् ब्रह्माकी अनुज्ञासे महर्षियोंने, तपस्याके द्वारा, प्रलयावस्थामें छिपे हुए, इतिहासके साथ, वेदोंको प्राप्त किया।

इस श्लोकमें 'इतिहास'का नाम देखकर नित्यतावादी चौंक पड़ते और 'नित्य इतिहास'की व्याख्या कर डालते हैं! कहते हैं, 'उर्वशी-पुरूरवा, यम-यमी आदिका नित्य इतिहास वेदमें है, पौराणिक इतिहास नहीं।'

श्रीमद्भागवतका प्रथम श्लोकांश है–"'तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये" अर्थात् भगवान्ने ब्रह्माके लिये वेद-विस्तार किया। वेदान्त भी ब्रह्माके द्वारा ही वेद-प्राप्ति बताता है।

महाभारतने तो स्पष्ट ही लिखा है कि ब्रह्माने वेदोंको बनाया है। यह भी उल्लेख मिलता है कि अजपृश्नि ऋषिने तपोबलसे प्रसाद-रूपमें वेदोंको पाया। कहीं अंगिराका पाना भी लिखा है।

मणिकारके मतसे मत्स्य भगवान्के वाक्य ही वेद हैं।

सांख्यशास्त्र कहता है कि 'वेदोंके कर्त्ताका पता नहीं चलता; इसलिये वेद अपौरुषेय हैं।' योगशास्त्रका भी यही मत है।

न्यायशास्त्र वर्ण, शब्द—सबको अनित्य मानता है। नैयायिक वेदोंको आप्त और प्रवाह-नित्य मानते हैं—कूटस्थ नित्य नहीं।

वैशेषिक दर्शन अर्थ-रूप वेद-विद्याको अपौरुषेय मानता है; परन्तु शब्द-रूप वेदको अनित्य।

वैयाकरण कैयट भी अर्थरूप वेद-विद्याको अपौरुषेय मानते हैं।

परन्तु सबसे कट्टर मत जैमिनि ऋषिकी मीमांसाका है। मीमांसा स्पष्ट कहती है—"**आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानाम्**" (१.२.१)। अर्थात् 'वेद यज्ञ-क्रिया-रूप है; इसलिये इससे भिन्न अर्थात् यज्ञ-कर्मसे शून्य वाङ्मय निरर्थक हैं।' जैमिनिका यह भी दृढ़ मत है कि वर्णोंकी उत्पत्ति नहीं होती, अभिव्यक्ति होती है। कण्ठ, तालु आदि अभिव्यंजक हैं, उत्पादक नहीं। जैमिनि शब्द और शब्दार्थको भी नित्य मानते हैं। 'ऋषि शब्दार्थ-सम्बन्धके द्रष्टा थे—वे वेदको विश्वमें अभिव्यक्त भर करने वाले थे।' मीमांसा मन्त्र और फलका सम्बन्ध भी नित्य मानती है। जिस मन्त्रके जो देवता कहे गये हैं, उनकी शक्ति उस मन्त्रमें रहती है। मन्त्रोंमें चुम्बकमें खींचनेकी तरह, फल देनेकी, स्वर्गादि प्राप्त करानेकी स्वाभाविक शक्ति है। मीमांसाके मतसे पृथक् देवता और ईश्वर नहीं हैं। मीमांसा प्रधान वेद-रक्षक शास्त्र है; इसलिये एक पृथक् अध्यायमें इसपर कुछ अधिक विचार किया गया है।

परन्तु इन दिनों जिस मतका अधिक प्रचार, प्रामुख्य वा प्राबल्य हो रहा है, वह 'आर्ष मत' है। इस मतसे वसिष्ठ, अगस्त्य, भृगु, अंगिरा, अत्रि, कश्यप, विश्वामित्र आदिके द्वारा वेद बनाये गये हैं; ऋषियोंपर मन्त्रोंका 'इलहाम' वा अवतरण नहीं हुआ है। ऋग्वेद (१.१०९.२), में भी स्पष्ट कहा गया है—"**स्तोमं जनयामि नव्यम्**" अर्थात् 'मैं नया मन्त्र बनाता हूँ।' इसी वेदमें एक दूसरे स्थान (६.८.५) पर और कहा गया है—

"**युगे युगे विदथ्यं गृणद्भ्यो रयिं यशसं धेहि नव्यसीम्।**"

तात्पर्य यह है कि 'प्रत्येक युगमें (मन्त्रात्मक) नवीन स्तोत्र कहनेवाले हमको तुम, हे अग्नि, धन और यश प्रदान करो।'

वायुपुराण (५६ अध्याय) में कहा गया है—"**प्रतिमन्वरं चैव श्रुतिरन्या विधीयते**" (प्रत्येक मन्वन्तर-कालमें दूसरी श्रुति (मन्त्र) बनायी जाती है।)

निरुक्त (१०.४२) में आया है—"**तत्परुच्छेदस्य शीलम्**" अर्थात् परुच्छेद ऋषिका यह शील है कि 'वह अपनी रचनामें एक बार कहे शब्द को दुबारा ले आते हैं।' यह पूर्णतः सत्य है। प्रथम मण्डलके १२७ सूक्त से लेकर १३६ सूक्तोंतक १३ सूक्तोंके ऋषि दिवोदासके पुत्र परुच्छेद हैं। इन सारे सूक्तोंमें निरुक्तमें कही गयी विचित्रता अवश्य है। यही नहीं, अभूतपूर्व वस्तुके उत्पादनके अर्थमें जन्, कृ, तनु, सृज्, तक्ष आदि अनेक धातुओंका प्रयोग ऋग्वेद-संहिताके मन्त्रोंमें, कई स्थानोंमें, आया है। यह बात पहले भी लिखी जा चुकी है। इन धातुओंका प्रयोग ऐसे स्थानोंपर ऐसे ढंगसे आया है, जिससे विदित होता है कि ऋषि लोग आवश्यकतानुसार बराबर नये मन्त्र बनाया करते थे। इस सम्बन्धमें अधिक जाननेवाले सज्जन निम्नलिखित मन्त्रोंका सायण-भाष्य देखें—१.२०.१; १.३८.१४; १.४७.२; १.६३.६; १.१६६.१५; २.३६.८; ३.३०.२०; ४.६.११; ४.१६.२१; ६.१८.१५; ७.१८.४; ७.२२.६; ७.६४.१; ७.६७.६; ८.८.१७; ६.११४.२; १०.२३.६; १०.८०.७ आदि आदि। इनमेंसे आपको प्रत्येक मन्त्रमें मिलेगा, 'मन्त्र बनाया'। नमूनेके लिये एक मन्त्र देखिये—

"**ये च पूर्व ऋषयो ये च नूत्ना इन्द्र ब्रह्माणि जनयन्त विप्राः।**
अस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥"

सनातनधर्मावलम्बियोंके विश्वास-पात्र सायणाचार्यने इसका ऐसा अर्थ किया है—'जितने प्राचीन ऋषि हो गये हैं और जितने नवीन ऋषि हैं, हे इन्द्र, वे सभी तुम्हारे लिये मन्त्रात्मक स्तोत्र उत्पन्न करते हैं। तुम्हारा सख्य हमारे लिये मंगलमय हो। तुम सदा स्वस्ति द्वारा हमारा पालन करो।' (ऋग्वेद ७.२२.६)

इस तरह सिद्ध है कि 'ऋषिकृत और मनुष्य-रचित पुस्तक नित्य नहीं हो सकती। निरुक्तकारों और भाष्यकारोंके मतसे वेदोंमें इतिहास है और अनित्य इतिहासवाली पुस्तक कभी नित्य नहीं हो सकती।' आर्ष-मतवादियों का यही अभिमत है।

वेदोंके आविर्भाव और रचनाके सम्बन्धमें ये ही मतवाद हैं। इस पुस्तकमें इन मतोंकी जहां-तहां प्रायः झलक मिलेगी। वैदिक साहित्यके जिज्ञासुओंको इन सब मतोंका ज्ञान रखना आवश्यक है।

वैदिक साहित्य और आधुनिक विद्वान्

वैदिक साहित्यका पठन, पाठन, प्रचार, उद्धार, प्रकाशन, समीक्षण और भाष्य-टीका करनेवाले आधुनिक विद्वान् तीन श्रेणियोंमें विभक्त किये जा सकते हैं—आर्यसमाजी, सनातनी और विदेशी तथा विदेशियोंके एतद्देशीय अनुयायी। वैदिक साहित्यके ऊपर इन तीनों प्रकारके विद्वानों के दृष्टिकोणोंमें पृथ्वी-आकाशका भेद है। तीनोंके तीनों आपसमें कट्टर समालोचक हैं। पुस्तकमें यत्र-तत्र सारे मतवादोंका उल्लेख रहनेपर भी यहां तीनों दृष्टिकोणोंका उल्लेख कर देना आवश्यक है; क्योंकि तीनोंका पूरा दृष्टि-भेद जान लेनेपर वेदोंकी विषयावगतिमें साहाय्य मिलेगा।

आर्यसमाजके संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती वेदोंके परम भक्त थे। उन्होंने आर्यसमाजकी नींव वेदोंके आधारपर ही रखी थी। वे भारतमें ही नहीं, समस्त विश्वमें वेदोंका मेघ-मन्द्र-निनाद सुनना चाहते थे। वस्तुतः स्वामीजी वेद-प्रचारके लिये ही जिये और मरे। उन्होंने ऋग्वेदका तीन-चौथाई और यजुर्वेदका सम्पूर्ण भाष्य किया था। इसके सिवा उन्होंने कितने ही आलोचना-ग्रन्थ भी लिखे और वैदिक साहित्यके सम्बन्धमें अगणित व्याख्यान दिये तथा लेख लिखे।

स्वामीजीके बाद उनके अनुयायियोंने अनेक अमूल्य वेद-ग्रन्थोंके प्रकाशन, सम्पादन और अनुवाद किये। आर्यसमाजकी ओरसे चारों वेदोंकी

एक-एक संहिताका अनुवाद हो चुका है। कितनी ही वेद-संस्थाएँ भी स्थापित हो चुकी हैं। वेद-प्रचारके लिये कुछ पत्र-पत्रिकाएँ भी निकलती हैं।

यह सब होते हुए भी आर्यसमाजके वैदिक ग्रन्थ एकांगी दृष्टिसे देखे जाते हैं। सनातनी ही नहीं, विदेशी विद्वान् भी आर्यसमाजी वेदज्ञोंको उक्त दृष्टिसे ही देखते हैं। क्यों? इसके कई कारण हैं। आर्यसमाजी ऋग्वेदकी शाकल, यजुर्वेदकी माध्यन्दिन, सामवेदकी राणायणीय और अथर्ववेदकी शौनक संहिताओंको ही मूल चारो वेद मानते हैं; शेष संहिताओं को इन्हींकी शाखाएँ मानते हैं। आर्यसमाज देवतावाद नहीं मानता, याज्ञिक अर्थ भी नहीं मानता, भाषा-विज्ञानकी चिन्ता नहीं करता, वेदोंमें इतिहास नहीं मानता, वेदोंके ऐतिहासिक व्यक्तियों, नदियों, पर्वतों—सबका केवल यौगिक अर्थ करता है। आर्यसमाजके विचारसे वेदोंमें न तो अवतारवाद है, न श्राद्ध है, न मृत-पितृ-लोककी बात है। परन्तु मूल वेद-ग्रन्थ समझने वाले किसी निष्पक्ष विद्वान्के लिये ये सारे सिद्धान्त मानना असम्भव है। ये सारी बातें आर्य-परम्पराके विरुद्ध भी हैं। यही कारण है कि वेदोंका केवल आध्यात्मिक अर्थ करनेवाले सज्जन किसी भी अधिकारी वेद-विज्ञाता विद्वान्को अपने सिद्धान्तोंसे अबतक सन्तोष नहीं दिला सके।

दूसरे हैं सनातनधर्मी विद्वान्। वेदोंके मन्त्रोंके आध्यात्मिक, आधि-दैविक और आधिभौतिक आदि तीनों ही अर्थ यथाप्रसंग और यथास्थान विहित हैं। सनातनी इन तीनोंको मानते भी हैं, परम्परा-प्राप्त अर्थोंको भी मामते हैं। परन्तु गवेषणा करनेकी उनकी प्रवृत्ति 'नहीं सी' है। वैदिक साहित्यके किन-किन ग्रन्थोंकी सहायतासे किन-किन वैदिक प्रकरणोंकी संगति बैठेगी और किन-किन मन्त्रोंका अर्थ स्पष्ट होगा, कुछ सनातनी इसकी 'नहीं सी' आवश्यकता समझते हैं! जैसे आर्यसमाजी स्वर-पाठकी तरफ कुछ कम ध्यान देते हैं, वैसे ही सनातनी भाषा-विज्ञानकी तरफ कुछ कम। कुछ निश्चित मन्त्र कण्ठस्थ कर लिये और उनका यज्ञोंमें पाठ वा विवाह-यज्ञोपवीतके समय उच्चारण कर दिया, बस, वेदोंके प्रति कर्त्तव्य पूरा हो

गया ! कहनेको तो हर एक सनातनी पण्डित गर्वके साथ कहेगा—"**निष्कारणं ब्राह्मणेन षडङ्गो वेदोऽध्येतव्यः**" (बिना कारण, निष्काम भावसे, ब्राह्मण को छहो वेदांगोंके साथ वेद-स्वाध्याय करना चाहिये)। परन्तु कुछ पण्डित स्वार्थ और पुरोहिताईके लिये थोड़ेसे वेद-मन्त्र रट लेते हैं। इनमें अधिकांश वेदार्थ नहीं जानते। इन्हीं कारणोंसे ये न तो आर्यसमाजी वेदाभ्यासियों को कभी प्रभावित कर सके, न विदेशी वेद-विद्यार्थियोंको ही। ज्यौतिष, कर्मकाण्ड, व्याकरण आदिसे इन्हें अवकाश ही नहीं कि ये गवेषणा-परायण होकर विधिवत् वेदाध्यन करें और दूसरोंको प्रभावित करें ! क्या सनातन-धर्मावलम्बियोंमें स्व० प० सत्यव्रत सामश्रमीके समान अक्लान्त-परिश्रमी और अदम्य अन्वेषण-परायण एक भी वेद-ज्ञाता नहीं होगा ?

सनातनी द्विजाति मात्रके लिये वेदाधिकार मानते हैं। परन्तु द्विजाति में क्षत्रिय और वैश्य तो वेदाध्ययन छोड़ ही चुके; ब्राह्मणोंके लड़के भी यज्ञोपवीतके समय अपनी शाखाके कुछ मन्त्रतक कण्ठस्थ नहीं करते, न उन्हें मन्त्र कण्ठस्थ ही कराये जाते हैं ! दूसरोंकी बातें जाने दीजिये, वैदिकोंके सुपुत्र भी अब गायत्री-मन्त्रतकका कण्ठस्थ करना व्यर्थ समझने लगे हैं ! संस्कृत-पाठशालाओंमें ३०) रु० मासिकपर वैदिक रख लिये जाते हैं और वे 'रुद्री' "घोखाया" करते हैं !! हजारों वर्ष पहले निश्चित किये गये स्वरोंको ज्योंके त्यों पढ़नेवाले ब्राह्मणोंको ३०) रु० की 'चाकरी' दी जाती है !! इससे बढ़कर भी कोई महाश्चर्य होगा !!!

तीसरे दलमें हैं विदेशी वेदज्ञ और उनका अनुधावन करनेवाले। इस दलमें एकसे एक विचित्र सूझवाले पुरुष हैं। कुछ तो कहते हैं, ? 'सायण सड़े दिमागका आदमी था, वह क्या वेद जाने ?' कुछ कहते हैं, 'यास्क भी मूर्ख ही था—वेदोंको नित्य भी मानता है और वेदोंमें इतिहास भी मानता है।' कुछका तो खयाल है कि 'गर्म देश (भारत) में स्वतन्त्र विचार उत्पन्न हो ही नहीं सकते। वेदोंमें कोई स्वाधीन चिन्ता नहीं; वे तो भेंड़ चरानेवाले गड़ेरियोंके गीत हैं।' कुछ सबसे आगे बढ़कर कहते हैं—'दक्षिण अफ्रीकामें

हजार सिरवाले राक्षसकी जो कहानी है, उसीकी नकलपर 'सहस्रशीर्षा' लिखा गया है !' जिनका काम ही भारत, भारतवासी और वेदको नीच समझना है, उन उलटे विचार वालोंको कोई क्या उत्तर देगा ? परन्तु इनमें कदाचित् एक भी ऐसा 'वेद-ज्ञाता' नहीं है, जो प्रातिशाख्य और निरुक्त भी पढ़ा सके, मूल वेदोंका पढ़ाना वा समझना तो दूर रहा। और तो और, इनमें कदाचित् एक भी व्यक्ति एक भी मन्त्रका शुद्ध-शुद्ध उच्चारण करने वाला भी नहीं मिलेगा ! आर्य-धर्म और आर्य-संस्कृतिके विरोधी ऊल-जूलूल पुस्तकें पढ़कर ही ऐसी अनोखी राय कायम कर बैठते हैं !

ये वेदोंके ऊपर तरह-तरहके सन्देह-जाल बिछाते हैं। कहते हैं, 'वेदोंमें ओषधियां वैद्योंसे बातें करती हैं, द्यावा-पृथ्वी बोलती हैं, जल और वायु, चमस और स्रुवा—सबके सब चलते, वर देते या धन देते हैं। क्या ये चेतन हैं ? 'नही', तो जड़ पदार्थ ये सब कार्य कैसे करेंगे ?'

यह बात लिखी जा चुकी है कि वेद प्रधानतः आध्यात्मिक ग्रन्थ हैं, उनमें चेतनवादकी प्रधानता है। वैदिक मन्त्रोंके साथ विहार करने वाले ऋषि चेतनमें रमण करते हैं, चेतनगतप्राण हैं। ऐसे पुरुष सभी पदार्थोंको चेतनमय देखते हैं—वे चेतनके साथ ही खाते-पीते, सोते-जागते और बोलते-बतराते हैं। वे कुछ बनावट नहीं करते, वस्तुतः ऐसा अनुभव करते हैं। अभी भी यहांके वा किसी भी देशके महात्मा ऐसा ही अनुभव करते और जड़-पदार्थोंसे बातें करते हैं। जो **"आत्मवत् सर्वभूतेषु"** समझते हैं, वे पशु, पक्षी, कंकड़ और ठीकरेसे भी बातें करते हैं। भला जो वैद्य अपनी ओषधियोंसे बातें नहीं करता, वह क्या भेषजका मर्म जानेगा ? जो वीर अपनी तलवारसे बातें नहीं करता, वह भी कोई वीर है ? सच्चाई तो यह है कि अपनेमें चेतनका जितना ही अधिक विकास होगा, मनुष्य उतना ही जड़ वस्तुओंसे चेतनवत् व्यवहार करेगा। इसके विपरीत जिसमें चेतनका विकास नहीं है, जिसके मन, मस्तिष्क और प्राण जड़ानुगत हैं, वह तो मनुष्यको भी जड़ समझेगा और जड़की तरह ही उसपर भी नाना

प्रकारके अत्याचार करेगा। फलतः वेदमंत्रोंका चेतनानुगत होना उनकी अत्युच्च अध्यात्म-भूमिका है।

इनका दूसरा सन्देह है, 'वेदोंमें सब ओर देव ही देव हैं। सारे वैदिक साहित्यमें देवोंका ही गीत गाया गया है। क्यों?'

परमात्माकी दिव्य-गुण-सम्पन्न पृथक्-पृथक् शक्तियोंको देव कहा जाता है। ये दिव्य शक्तियां चारों तरफ हैं—बाहर, भीतर, सर्वत्र। प्रत्येक जड़ पदार्थका अधिष्ठाता एक देव है। ऋषि लोग वृक्ष, शाखा, पर्ण—सबमें देव ही देव देखते थे। अनुमान किया जा सकता है कि ऋषि लोग जब अपनेको चारों ओरसे देवोंसे घिरा हुआ अनुभव करते होंगे, तब उनका संसार कैसा आनन्दमय, स्वर्णमय रहा होगा! क्षण भरके लिये भी यदि आप अपनेको देवोंसे घिरा हुआ अनुभव करें, तो आपके सारे दुर्गुण भाग जायँगे और आप सद्गुणोंकी खान हो रहेंगे। यदि आप इन देवोंमें ही बिचरें, सोयें, जागें, तो आपका जीवन दिव्य हो जायगा, आपके सारे कार्य सिद्ध हो जायँगे और आपका संसार देवोंका नगर बन जायगा!

वैदिक ऋषियोंकी दृष्टि विशाल और व्यापक थी। उनकी माता पृथ्वी थी, उनका पिता द्यौ था, उनके शरीरमें तीनों लोक थे। वे प्रत्येक विषयमें सारे भुवनोंका स्मरण करते थे। वे अपने व्यष्टिको समष्टिसे संवलित रखते थे—साढ़े पांच 'फीट'में ही अपनेको कैद नहीं रखते थे। उनके मन विशाल थे, उनके वचन उदार थे, उनके कार्य व्यापक थे। वे अपनेमें विश्वको देखते थे और विश्वमें अपनेको देखते थे। जिस "Universal Brotherhood" (**'वसुधैव कुटुम्बकम्'**) के लिये इन दिनों लोग केवल चिल्लाते हैं, उनकी वे मूर्ति थे। ऐसे दिव्य पुरुषोंका सर्वत्र चेतन और देवता देखना बिलकुल स्वाभाविक है।

कुछ विदेशी और भारतीय यह भी कहते हैं कि 'वेदोंमें युद्धकी बड़ी बातें हैं—कुछ ही सूक्त ऐसे हैं, जिनमें लड़ाई-झगड़ेकी चर्चा नहीं है।' यह

ठीक है। परन्तु जीवन आरामतलबीमें नहीं है; जीवन है तपमें, जीवन है युद्धमें। वस्तुतस्तु जीवन ही संग्राम है। जीवन-रहस्य बतानेवाले वेदोंसे बढ़कर क्या कोई दूसरा स्थल भी युद्ध-वर्णनके लिये उपयुक्त होगा ?

कहावत है—"**सुन्दरमणिमय-भवने पश्यति पिपीलिका रन्ध्रम्**" (सुन्दर मणिके मकानमें भी चींटी छेद ही खोजती है) ! सो, जिन्हें हिन्दू, हिन्दूत्व, हिन्दूधर्म, हिन्दूसंस्कृति और हिन्दूसभ्यतामें केवल छेद ही ढूंढ़ने हैं, उन्हें तो वेदोंमें दोष ही दोष दिखाई देंगे ही। वस्तुतः दोष ही दिखानेके लिये अनेकानेक विदेशी विद्वान् और उनके अनुयायी वैदिक साहित्यके पीछे पड़े भी।

मैक्समूलरने दबी जबानसे एक स्थानपर स्वीकार भी किया था कि 'वेदोंकी 'पोल' खोलनेके लिये ही मैंने वेदानुवाद प्रारम्भ किया था।' पाश्चात्त्य देशोंमें यह कहावत प्रसिद्ध है–"Mock profundity and impotent reaching out after the inexpressible(श्रुतियोंमें गहराई तो है ; परन्तु थोथी है; उनके कर्त्ताओंने अगम्य तत्त्वोंतक पहुँचनेका प्रयास तो किया; परन्तु उनका प्रयास नपुंसक होनेसे असफल रहा!) अपने मनसे 'वेद-विद्या-वारिधि' बननेवालोंकी ऐसी ही सूझ होती है। मूल वेद-ग्रन्थ न समझनेवाले और हिन्दूधर्मसे द्वेष करनेवाले अन्य मत भी तो क्या दे सकते हैं !

इस बुद्धि-भेदने विषका काम किया। कहा जाने लगा कि 'अंग्रेजी भाषासे वेदमें अनेक शब्द उधार लिये गये हैं! अंग्रेजी Path शब्दसे ही वेदका 'पन्था' शब्द बना है! ऋग्वेदमें विदेशी भाषाओंके शब्दोंका एक 'अम्बार' ही है!' ऋग्वेदके "**सचा मना हिरण्यया**"में 'मना' बेबीलोनियन शब्द है! ऋग्वेदके आलिगी, विलिगी, तैमात, ताबुवम् आदि शब्द चाल्डियन वा काल्डियन भाषाके हैं ! मीन और पूजा शब्दोंको भी विदेशी बना दिया गया! 'हरप्पा' और 'मोहन जो दड़ो' की खोदाई करानेवाले

प्रो० एल० ए० वैडलने एक ग्रन्थ लिखा—**"इंडो-सुमेरियन सील्स डिसाइ-फर्ड"**। उसमें लिखा गया—'सुमेरियन संस्कृति और सभ्यताने ही आर्योंको सभ्य बनाया था। आर्य-सभ्यताकी जननी अनार्य-सभ्यता है। सुमर लोगोंके राजाओंके ही नाम पौराणिक राजाओंके हैं। वस्तुतः पौराणिक राजा भारतीय हैं ही नहीं! सुमर लोगोंके 'एदिन' शब्दसे सिन्धु शब्द बना है। सुमेरियन भाषाके 'मद्गल'से वैदिक 'मुद्गल' शब्द बना है! इसी प्रकार सुमेरियन कन्वसे कण्व, बरमसे ब्राह्मण और तप्स (अक्कदके सर्गुनका मन्त्री) से दक्ष बना' इत्यादि। मानों सारा वैदिक साहित्य विदेशी भाषाओं, इतिहासों और रीति-रस्मोंकी नकल है!!!

परन्तु सभी पाश्चात्य इस विचारधाराके नहीं हैं। उनमें अनेक निष्पक्ष भी हैं। कइयोंने अपनी ज्ञान-पिपासाको शान्त करनेके लिये ही अप्राप्य वेद-ग्रन्थोंके प्रकाशन और सम्पादन किये हैं। वे लाखों रुपये खर्च करके अलभ्य वैदिक ग्रन्थोंको प्रकाशमें ले आये हैं और वैदिक ग्रन्थोंकी उच्च गुणावलीके भक्त और प्रशंसक भी बन चुके हैं। फ्रांसके सुप्रसिद्ध विद्वान् वाल्टेयरका मत है, 'केवल इसी देन (ऋग्वेद) के लिये पूर्वका पश्चिम सदा ऋणी रहेगा।' "Sex and Sex-workship" (पृष्ठ ८) में वाल साहबने स्वीकार किया है कि 'हिन्दुओंका धर्म-ग्रन्थ ऋग्वेद संसारका सबसे प्राचीनतम ग्रन्थ है।' "The Bible in India" में जकोलियटने जोर देकर लिखा है, 'धर्म-ग्रन्थोंमें वेद ही एकमात्र ऐसा है, जिसके विचार वर्तमान विज्ञानसे मिलते हैं; क्योंकि वेदमें भी विज्ञानानुसार जगत्की रचनाका प्रतिपादन किया गया है।' क्यूजिनका मत है, "संसारकी प्राचीन जातियोंमें ईश्वरके लिये आये हुए सभी शब्द वैदिक 'देव' शब्दसे निकले हैं।"

यद्यपि काव्य-ग्रन्थोंकी तरह वैदिक ग्रन्थोंमें भाषाकी छटा नहीं है; किन्तु भावोंकी घटा अवश्य है। सीधी-सादी भाषामें निर्मल-हृदय और तपोधन ऋषियोंने जड़ और चेतनकी सारी पहेली खोलकर, दर्पणकी तरह,

रख दी है। आत्मा और पुनर्जन्म, सृष्टि और परलोक, जीवन और मरण तथा राजनीति और समाजनीतिके जटिल और विकट प्रश्नोंकी तहतक वेदोंके उपदेश, तीरकी तरह, पहुँचते हैं और हर एककी राई-रत्ती कहानी गा जाते हैं। मानवके कर्त्तव्य और जीवनके लक्ष्यके निगूढ़ रहस्यको वेद ऐसी सरस और सात्त्विक भाषामें समझाते हैं कि हठात् आमन्दाश्रु बहने लगते हैं! वेद ब्रह्म-द्रवकी ऐसी मधुर और मंजुल व्याख्या करते हैं, जिसका पाया जाना संसारकी किसी भी जातिके किसी भी साहित्यमें कठिन है। संसारके कई चोटीके विद्वानोंका मत है कि "वैदिक साहित्यके समान परमोपयोगी, अभ्युदयकारी, कल्याण-वाही और मंगल-दाता स्वाध्याय विश्वमें कहीं नहीं।" वस्तुतः वेदोंमें मानवीय उदात्त भावना अपने उच्चतम शिखरपर पहुँची हुई है।

अवश्य ही भागवत गीताकी तरह वेद भी साधु-संरक्षण और दुष्ट-दलनके लिये शस्त्र उठानेकी आज्ञा देते हैं। मनुष्योंमें जो राक्षस हैं, वे वस्तुतः "ताड़नके अधिकारी" हैं। दुष्ट-दमन नहीं करनेसे समाजका सारा ढांचा, मनुष्यकी सम्पूर्ण व्यवस्था और समस्त 'श्रुति-मार्ग ही भ्रष्ट' होनेका भय है; अतएव वेदका दण्ड देनेकी आज्ञा देना आवश्यक ही है।

पूजा, उपासना, परोपकार, भगवान्‌में मिलना आदि यज्ञके अर्थ हैं। यज्ञसे शिक्षा मिलती है कि 'भले काम किये जाओ और बुरे कामोंसे बचते रहो।' वेदकी आज्ञा है कि यज्ञके द्वारा अपनेको समाजमें, देशमें, विश्व की समस्त मानवजातिमें और सारे प्राणियोंमें मिला दो, अपनेमें सबको समझो और अपनेको सबमें समझो। मनको वशी कर अपनेको ब्रह्माण्डमें और क्रमशः ब्रह्माण्ड-पतिमें मिला दो। तुम्हें दिव्य ज्ञान, अखंड आनन्द और चिर शान्ति मिल जायगी। तुम 'शुद्ध-बुद्ध-मुक्त' हो जाओगे। यही तुम्हारे जीवनका लक्ष्य है, "**लक्ष्यं तदेवाक्षरं सौम्य, बिद्धि।**"

यही 'अक्षर'-प्राप्ति जीवनका लक्ष्य है। अवश्य ही इसका पथ कुछ विकट है। इसकी विकटता और जटिलता दूर करनेके लिये, इसे मानव मात्र के लिये सरस, सुन्दर और हृदय-ग्राही बनानेके लिये वैदिक मन्त्रोंमें द्विरुक्तियां तक की गयी हैं। जिज्ञासु पाठकोंके लिये वैदिक विषयोंको सुगम, सरल और बोध-गम्य बनानेके लिये कहीं इस वर्त्तमान पुस्तकमें भी पुनरुक्ति करनी पड़ी है।

पाठक यह बात ध्यानमें रखेंगे कि वैदिक भाषा विश्वकी प्राचीनतम भाषा है और इसके आविष्कारक वा निर्माता ऋषि-महर्षि भी अनन्त कालके पुरुष हैं। उनकी वर्णन करनेकी शैली भिन्न है, उनके चिन्तन और मननके ढंग पृथक् हैं, उनके भाव-प्रकटन और विषय-कथनकी दिशा अलग है। आजकलके मनुष्योंकी तरह न तो वे चिन्तन करते थे, न शब्दाडम्बरी भाषा लिखते थे, न अर्द्ध-पक्व भावाभिव्यञ्जन करते थे और न आधुनिक मानवोंकी तरह वे कूटनीतिज्ञ ही थे। ये ही कारण हैं कि उनकी भाषा और उनकी विषय-विवेचन-शैली दुरूह और अगम्य दिखाई देती है। परन्तु जिनकी नाड़ियोंमें अपने पूर्वज ऋषियोंका रक्त दौड़ रहा है, जो उनकी ही तरह सच्चे और सात्त्विक हैं और जो अपनी सभ्यता, अपनी संस्कृति, अपने जीवन-लक्ष्य और अपनी विमल वेद-विद्याके विज्ञान और रहस्यके वस्तुतः जिज्ञासु हैं, उनके लिये ऋषियोंकी भाषा और वर्णन-प्रणाली सुन्दर और सुखद, मदुल और मंजुल है।

महाविशाल वैदिक साहित्यके अधिकसे अधिक विषयोंका अत्यन्त संक्षेपमें परिचय और समालोचन देनेकी इस ग्रन्थमें चेष्टा की गयी है। इस बातका ध्यान रखा गया है कि कोई भी महत्त्वपूर्ण वेद-विषय छूटने न पावे। कृष्णगढ़, सुलतानगंज, भागलपुरसे प्रकाशित ऋग्वेदके हिन्दी-अनुवाद और वहींसे निकलनेवाली "गंगा" (मासिक पत्रिका) के विशेषांक "वेदांक" के सम्पादनके समय इन पंक्तियोंके लेखकने एक "वेद-रहस्य" नामक ग्रन्थ

लिखनेकी सूचना दी थी। जिन विषयोंके समावेशकी कामना "वेद-रहस्य"की सूचनामें की गयी थी, वे सारे विषय इस ग्रन्थमें आ गये हैं।

हो सकता है कि इस पुस्तकके प्रमेयों और प्रतिपाद्योंसे अनेक वेद-विज्ञाताओंका मत-भेद हो। यह भी हो सकता है कि लेखककी अल्पज्ञता, अज्ञता अथवा दृष्टि-दोषके कारण इसमें कोई त्रुटि रह गयी हो। किसी भी त्रुटि और कमीके लिये लेखक विज्ञ वाचकोंसे क्षमा-याचक है। वैदिक साहित्य हमारी अगाध महानिधि है। इसका जनतामें वितरण हो, जन-राज्यमें इसका महत्त्व और प्रचार बढ़े, इसके उपदेशानुसार हम अपनेको सुधारकर अपने जीवनोद्देश्यको प्राप्त करें, हमारा पथ मंगलमय और आनन्दवाहक हो—परम पितासे हम यही परम पावन प्रार्थना प्रतिदिन करें।

कूसी,
पो० ग्रा० दिलदारनगर,
जिला गाजीपुर।

रामगोविन्द त्रिवेदी
आषाढ़-पूर्णिमा, २००७ विक्रमीय

वैदिक ग्रन्थ, उनका मूल्य, निर्माणकाल आदि

वैदिक साहित्यके जिज्ञासु और प्रेमी पाठकोंकी जानकारीके लिये इस ग्रंथमें वर्णित अथवा अवश्य पठनीय वैदिक ग्रंथों तथा उनके समालोचना-ग्रंथोंकी सूची (मूल्य, प्रकाशन-समय, निर्माण-काल, प्राप्ति-स्थान आदिके साथ) विशेष रूपसे संग्रह करके यहां प्रकाशित की जा रही है। सूचीमें उपनिषदोंको इसलिये छोड़ दिया गया है कि उनका अत्यधिक प्रचार है। जिस वेदके जो ब्राह्मण, आरण्यक, सूत्र, प्रातिशाख्य आदि हैं, उसीमें उनका समावेश किया गया है। बी० सी० का अर्थ है ईसासे पहले। ऋग्वेदके निर्माण-कालके सम्बन्धमें पहले ही लिखा जा चुका है; शेषका यहां लिखा जा रहा है। निर्माणकालके सम्बन्धमें स्व० श्रीचिन्तामणि विनायक वैद्य का मत दिया गया है; क्योंकि वैद्यजीका मत अधिक पाठक जानना चाहते हैं। वैद्यजी बड़े संग्रही और गवेषणा-परायण थे। अनेक ऐतिहासिक वैद्यजी के विरोधी भी हैं; क्योंकि वैद्यजी वैदिक ग्रन्थोंका निर्माणकाल बहुत पीछे ले आये हैं—वैद्यजीके अनुमित निर्माणकालसे बहुत पहले ये ग्रन्थ बन चुके थे। वेदोंके नित्यतावादी तो वैद्यजीके विरोधी हैं ही। 'नि०' से निर्माणकाल समझना चाहिये।

ऋग्वेद

१ सायणाचार्य—शाकल-संहिता। संस्कृत-भाष्य। प्रो० मैक्समूलर और श्रीपशुपति आनन्द गजपति राय द्वारा सम्पादित। प्रथम संस्करण १८४९–७५ ई०। पांच भाग। द्वितीय संस्करण १८९०–९२। चार भाग। मूल्य ३००)

२ राजाराम शिवराम शास्त्री-सायणभाष्य। शकाब्द १८१०-१२। १५०)

३ दुर्गादास लाहिड़ी—सायणभाष्य। एक अष्टकका बँगलामें स्वतन्त्र अनुवाद। १६ भाग। पदपाठसहित। वंगाक्षर। १६२५ ई०। २५०)

४ वेंकट माधव—भाष्य। तीन भाग। अपूर्ण। १६४५–४६। १५०)

५ एफ० रोजन—यूरोपमें सर्व-प्रथम ऋग्वेदके प्रथम अष्टकका लैटिन भाषामें अनुवाद। १८३८ ई०। ३।=)

६ ए० लुड्विग—जर्मन अनुवाद। छः भाग। १८७६–८८ ई०। २००)

७ एच० ग्रासमान—जर्मन भाषामें पद्यबद्ध अनूदित। दो भाग। रोमन लिपि। १८७६–७७ ई०। ३०)

८ एच० ओल्डेनवर्ग—जर्मन अनुवाद। दो भाग। १८०६–१२। ३५)

६ थ्यूडोर आउफरेख्त—सम्पादित। रोमन लिपि। प्रथम संस्करण १८६२–७३। द्वितीय संस्करण १८७७। ३५)

१० एस० ए० लांगलोआ—फ्रेंच अनुवाद। चार भाग। १८५१। २०)

११ एच० एच० विलसन—अंग्रेजी अनुवाद। छः भाग। १८५०–८८। १२५)

१२ टी० एच० ग्रिफिथ—अंग्रेजी पद्यानुवाद। दो भाग। १८८६–६२। १५)

१३ प्रसन्नकुमार विद्यारत्न—प्रकाशित। सायणभाष्य। १८६३। १००)

१४ स्वामी दयानन्द सरस्वती—ऋग्वेदका हिन्दीभाष्य। पंचम अष्टकके पांचवें अध्यायतक। ४२)

१५ आर्य मुनिजी—ऋग्वेदका हिन्दीभाष्य। सप्तम-भाग-रहित। ३७)

१६ रामगोविन्द त्रिवेदी—सम्पूर्ण ऋग्वेदका हिन्दी अनुवाद। टिप्पनियों के साथ। आठ भाग। ज्ञातव्य विषयोंकी सूची। प्रथम संस्करण १६८८–६३ विक्रमीय। १६)

१७ सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव—केवल मराठी अनुवाद। १२)

१८ कोल्हटकर और पटवर्द्धन—मराठी अनुवाद। आठ भाग। पृष्ठ-संख्या १२४४। १०)

१९ एस० पी० पण्डित—केवल तीन मण्डल। मराठी और अंग्रेजी अनुवाद। ७५)

२० रमेशचन्द्र दत्त—केवल वंगानुवाद। दो भाग। १८८५-८७। २०)

२१ सायणाचार्य—ऐतरेय-ब्राह्मण। भाष्य। निर्माणकाल २५०० बी० सी०। दो भाग। काशीनाथ शास्त्री द्वारा। १८९६ ई०। १०)

२२ मार्टिन हाग—ऐतरेय-ब्राह्मण। अंग्रेजी अनुवाद। दो भाग। १८६३ ई०। ६)

२३ थ्यूडोर आउफरेख्त—ऐतरेय-ब्राह्मण। सम्पादित। रोमन लिपि। १८७९ ई०। १०)

२४ ए० बी० कीथ—ऋग्वेद-ब्राह्मण (ऐतरेय और कौषीतकि)। अंग्रेजी अनुवाद। दस भाग। १९२० ई०। ३४)

२५ बी० लिंडनर—कौषीतकि-ब्राह्मण। नि० २००० बी० सी०। सम्पादित। १८८७ ई०। ८)

२६ सत्यव्रत सामश्रमी—ऐतरेय-ब्राह्मण। सम्पादित। सायण-भाष्य। १९५२-१९६२। १०)

२७ सत्यव्रत सामश्रमी—ऐतरेयारण्यक। नि० १५०० बी० सी०। सायणभाष्य। १८७२-७६ ई०। ७)

२८ ए० बी० कीथ—शांखायन-आरण्यक। नि० १५०० बी० सी०। अंग्रेजी अनुवाद। ६)

२९ सत्यव्रत सामश्रमी—ऐतरेयालोचन। १८६३ ई०। ५)

३० ए० मैकडानल—बृहद्देवता। नि० ४०० बी० सी०। सटिप्पन। १९०४ ई०। २५)

३१ ए० मैकडानल—ऋक्-सर्वानुक्रमणी। नि० ३५० बी० सी०। 'वेदार्थदीपिका'—सहित। सटिप्पन। १८९६ ई०। १८)

३२ कुन्हन राजा—माधवीयानुक्रमणी। सम्पादित। अंग्रेजी भूमिका। १९३२ ई०। ३॥)

३३ जयदेव शर्मा—माधवीयानुक्रमणी। हिन्दी अनुवाद। १९४१। ३)

३४ ए० रेग्नियर—प्रातिशाख्य ड्यू ऋग्वद। तीन भाग। निर्माण-काल ४०० बी० सी०। सम्पादित। १८५७–५९ ई०। २१)

३५ मैक्समूलर—ऋग्वेद-प्रातिशाख्य। जर्मनमें टिप्पनी। नागराक्षर। १८५६–६९ ई०। ३९)

३६ शौनक—ऋग्वेद-प्रातिशाख्य (पार्षदसूत्र)। उवट भाष्य-सहित। १८९४–१९०३। ६)

३७ युगलकिशोर शर्मा—ऋग्वेद-प्रातिशाख्य। हिन्दी अनुवाद। १९०३। ६)

३८ मंगलदेव शास्त्री—ऋग्वेद-प्रातिशाख्य। सम्पादित। अंग्रेजी भूमिका। १९३१। ६॥)

३९ गोविन्द और अनृत—शांखायन-श्रौतसूत्र। नि० १२०० बी० सी०। टीका। १५)

४० राजेन्द्रलाल मित्र—आश्वलायन-श्रौतसूत्र। नि० १२०० बी० सी०। सम्पादित। १८६४–७४ ई०। ४०)

४१ ए० एफ० स्टेंस्लर—आश्वलायनगृह्यसूत्र। दो भाग। सम्पादित। १०)

४२ ए० ब्लूमफील्ड—'ऋग्वेद रिपिटीशन्स'। अंग्रेजी। दो भाग। ३४)

४३ अविनाशचन्द्र दास—'ऋग्वेदिक इंडिया'। अंग्रेजी। १९२७ ई०। १०)

४४ महेशचन्द्रराय तत्त्वनिधि—ऋग्वेदेर समालोचना। बँगला। ५)

४५ एफ० सैंडर—ऋग्वेद ऐंड 'एड्डा'। १८९३ ई०। ३।=)

कृष्ण यजुर्वेद

१ सायण—तैत्तिरीयसंहिता। भाष्य। निर्माणकाल ३१०० बी० सी०। दुर्गादास लाहिड़ी द्वारा प्रकाशित। ९ भाग। १४४)

२ सायण—संस्कृत-भाष्य। ६ खण्ड। ४८॥=)
३ ए० बी० कीथ—अंग्रेजी अनुवाद। दो भाग। १६१४ ई०। २५)
४ माधवाचार्य—संस्कृत-भाष्य। १८०२। २०)
५ भट्ट भास्कर—१० भाग। अपूर्ण। १८६६ ई०। ८०)
६ ए० वेबर—मैत्रायणी-संहिता। नि० ३००० बी० सी०। १८४७ ई०। ६५)
७ एल० श्रोडर—मैत्रायणी-संहिता। ४ भाग। १८८१—८६ ई०। ६०)
८ एल० श्रोडर—काठक-संहिता। ४ भाग। नि० ३००० बी० सी०। १६१०। ४०)
६ सायण—तैत्तिरीय-ब्राह्मण। नि० २८०० बी० सी०। १८६६। पूना १४॥)। कलकत्ता १८६० ई०। ४५)
१० भट्ट भास्कर—तैत्तिरीय-ब्राह्मण। ४ भाग। अपूर्ण।१८२१ ई०। १६)
११ सायण—तैत्तिरीय-आरण्यक। राजेन्द्रलाल मित्र द्वारा सम्पादित। दो भाग। १८७३ ई०। ३०)
१२ भट्ट भास्कर—तैत्तिरीय-आरण्यक। ३ भाग। १५)
१३ ह्विटने—तैत्तिरीय-प्रातिशाख्य। नि० ४०० बी० सी०। त्रिरत्नभाष्य-सहित। १८७१—१८७२। ३०)
१४ सोमयार्य—तैत्तिरीय-प्रातिशाख्य। १२)
१५ एम० विंटर्निट्ज—आपस्तम्बगृह्यसूत्र। नि० १४०० बी० सी०। १२॥)
१६ हरदत्त मिश्र—आपस्तम्बगृह्सूत्र। काशी। ३)। मद्रास। १०)
१७ आर० गार्वे—आपस्तम्ब-श्रौतसूत्र। नि० १४०० बी० सी०। दो भाग। १८८१-१६०३। २५)
१८ डब्ल्यू० कैलेंड—बौधायनधर्म-सूत्र। नि० १२५० बी० सी०। ६)
१६ गोविन्द स्वामी—संस्कृत-भाष्य। बौधायन-धर्मसूत्र। ८ भाग। ६)
२० डब्ल्यू० कैलेंड—बौधायन-श्रौतसूत्र। नि० १३०० बी० सी०। १६०४—१६२०। १३)

२१ डब्ल्यू० कैलेंड—बौधायन-गृह्यसूत्र। जर्मन। २)
२२ जे० क्रीस्र्टे—हिरण्यकेशी (सत्याषाढ़)—गृह्य-सूत्र।
नि० १००० बी० सी०। २५)
२३ गोपीनाथ और महादेव—हिरण्यकेशी-श्रौतसूत्र। २४।=)
२४ जे०एन० गिल्डनर—मानव-श्रौतसूत्र-चयन। नि० १००० बी०सी०। ५)
२५ भीमसेन शर्मा—मानवगृह्यसूत्र। हिन्दी अनुवाद। ५)
२६ रामकृष्ण हर्ष—सम्पादित। मानवगृह्यसूत्र।
अष्टावक्र-भाष्य-सहित। ५)
२७ जे० डब्ल्यू० स्रोलोमन—भारद्वाजगृह्यसूत्र। १२)
२८ डब्ल्यू० कैलेंड—काठकगृह्यसूत्र। ७॥)
२९ डब्ल्यू० कैलेंड—बाधूलसूत्र। १॥)
३० डब्ल्यू० कैलेंड—वैखानसगृह्यसूत्र। ३॥)
३१ देवपाल—लौगाक्षिगृह्यसूत्र। २॥)

शुक्ल यजुर्वेद

१ महीधर और उवट—वाजसनेय-माध्यन्दिन-संहिता।
निर्माणकाल ३००० बी० सी०। संस्कृतभाष्य। १८)
२ दुर्गादास लाहिड़ी—महीधरभाष्य। १८८५ ई०। १६)
३ सत्यव्रत सामश्रमी—वंगानुवाद और भाष्य। ३०)
४ स्वामी दयानन्द सरस्वती—हिन्दीभाष्य। १८)
५ ए० वेबर—प्रकाशित। १८४९—५२ ई०। ३५)
६ उदयप्रकाशदेव—मथुरा। १५)। पूर्णचन्द्र—भाषाटीका। इटावा। ५)
७ ज्वालाप्रसाद मिश्र—हिन्दी-भाष्य। १६)
८ टी० एच० ग्रिफिथ—अंग्रेजी पद्यानुवाद। १८९९ ई०। ४)
९ ए० वेबर—काण्वसंहिता। नि० ३००० बी० सी०।
प्रकाशित। १८५२ ई०। ३०)

१० सायण—काण्वसंहिता। २० अध्यायतक। ६)
११ जे० एगलिंग—शतपथ-ब्राह्मण। नि० ३००० बी० सी०।
अंग्रेजी अनुवाद। ५ भाग। ७४)
१२ ए० वेबर—सम्पादित। शतपथ-ब्राह्मण। सायण, हरिस्वामी
और द्विवेदगंगकी टीकाएँ। १९२४ ई०। ६०)
१३ सत्यव्रत सामश्रमी—शतपथ-ब्राह्मण।
सायण-भाष्य-सहित। १९१० ई०। ४०)
१४ डब्ल्यू० कैलेंड—शतपथ-ब्राह्मण। काण्वशाखा।
अंग्रेजी प्रस्तावना। १९२६ ई०। १०)
१५ ए० वेबर—कात्यायन-श्रौतसूत्र।
नि० १००० बी० सी०। १८५९। ३०)
१६ मनमोहन पाठक—सम्पादित। कात्यायन-श्रौतसूत्र।
कर्कभाष्य-सहित। ६)
१७ कर्कोपाध्याय, जयराम, गदाधर, हरिहर और विश्वनाथ—
पारस्करगृह्यसूत्र। नि० १००० बी० सी०। ३)
१८ मस्करी—भाष्य। गौतमधर्मसूत्र। ४।=)
१९ कात्यायन—शुक्ल-यजुर्वेदप्रातिशाख्य। उवटभाष्य।
६ खण्ड। नि० ४०० बी० सी०। ६)
२० कात्यायन—शुक्लयजुःसर्वानुक्रमसूत्र। ४)
२१ कात्यायन—शुल्वसूत्र। सी० मुलर द्वारा प्रकाशित। १॥)

सामवेद

१ दुर्गादास लाहिड़ी—प्रकाशित। कौथुमशाखा।
नि० ३१०० बी० सी०। सायण-भाष्य। १९२५ ई०। १२८)
२ थ्यूडोर बेनफे—जर्मन अनुवाद। १८४८ ई०। २५)
३ सत्यव्रत सामश्रमी—वंगानुवाद। सायण-भाष्य। १८७१–७८। १८)

४ तुलसीराम स्वामी—हिन्दीभाष्य। १२)
५ रामस्वरूप शर्मा—सायणभाष्य। १९२० ई०। १०)
६ टी० एच० ग्रिफिथ—अंग्रेजी पद्यानुवाद। १८९३ ई०। ४)
७ रजनीकान्त भट्टाचार्य—सम्पादित। १०)
८ जयदेव शर्मा विद्यालंकार—सामवेद-हिन्दी-भाष्य। ४)
९ जे० स्टीवेन्सन—अंग्रेजीमें अनूदित। राणायणीय-शाखा।
नि० ३१०० बी० सी०। १८४२ ई०। १०)
१० डब्ल्यू० कैलेंड—जैमिनीयशाखा। नि० ३००० बी० सी०। १३)
११ सायण—ताण्ड्यमहाब्राह्मण। नि० १४०० बी० सी०। ए० सी०
वेदान्त-वागीश द्वारा सम्पादित। दो भाग। १८६९—७४ ई०। २०)
१२ ए० बर्नेल—सामविधान-ब्राह्मण। नि० १५०० बी० सी०।
सायणभाष्य—सहित। १८७३ ई०। १२॥)
१३ सायण—सामविधान-ब्राह्मण। सत्यव्रत सामश्रमी द्वारा
सम्पादित। १८६६ ई०। ६।)
१४ डब्ल्यू० कैलेंड—आर्षेय-ब्राह्मण। १०)
१५ ए० बर्नेल—जैमिनीय-आर्षेय-ब्राह्मण।
नि० १५०० बी० सी०। १८७८। १०)
१६ एच० आर्टल—जैमिनीयोपनिषद्-ब्राह्मण। १९२१ ई०। १०॥)
१७ के० क्लेम—षड्विंश-ब्राह्मण। नि० १३०० बी० सी०।
१८९४ ई०। ८)
१८ एच० एफ० एलसिंग—षड्विंश-ब्राह्मण। १९०८ ई०। १२)
१९ ओ० बोहट्लिंगक—छान्दोग्योपनिषद्-ब्राह्मण। १८८९ ई०। २०)
२० सत्यव्रत सामश्रमी—मन्त्र-ब्राह्मण। १८९० ई०। १५)
२१ सत्यव्रत सामश्रमी—वंश-ब्राह्मण।
वंगानुवाद-सहित। १८९२ ई०। १।)
२२ सत्यव्रत सामश्रमी—देवताध्याय-ब्राह्मण। वंगानुवाद। २)

२३ सायणाचार्य—साम-प्रातिशाख्य। १२॥)

२४ आर० सायमन—सामवेद-पुष्पसूत्र।
नि० १००० बी० सी०। जर्मन अनुवाद। १६०८ ई०। १५)

२५ आर० सायमन—पंचविधसूत्र। जर्मन। ६)

२६ जी० पर्ट्‌स—उपलेखसूत्र। १०)

२७ पुष्पर्षि—लक्ष्मण शास्त्री द्रविड़ द्वारा सम्पादित।
सामप्रातिशाख्य—पुष्प-सूत्र। ४॥)

२८ आनन्दचन्द्र—अग्नि स्वामीके भाष्यके साथ लाट्यायन-श्रौत-सूत्र। नि० १०५० बी० सी०। १८७०—७२ ई०। ४५)

२९ जे० एन० रूटर—द्राह्यायण-श्रौतसूत्र। नि० १००० बी० सी०। २५)

३० चन्द्रकान्त तर्कालंकार—गोभिलगृह्यसूत्र। १८७१—८०। ५)

३१ सत्यव्रत सामश्रमी—गोभिलगृह्यसूत्र। वंगानुवाद। १)

३२ रुद्रस्कन्द—खदिरगृह्यसूत्र। व्याख्यात। १॥)

३३ डब्ल्यू० कैलेंड—जैमिनीयगृह्यसूत्र। १९२२ ई०। ६)

३४ डी० गास्ट्रा—जैमिनीय-गृह्यसूत्र।
डच भाषामें अनुवाद। १९०६ ई०। १०)

३५ डी० गास्ट्रा—जैमिनीय-श्रौतसूत्र। सम्पादित। १२)

अथर्ववेद

१ दुर्गादास लाहिड़ी—शौनक-संहिता।
नि० २७०० बी० सी०। सायणभाष्य। ५ भाग। ८०)

२ डब्ल्यू० डी० ह्विटने और सी० आर० लांगमैन—अंग्रेजी अनुवाद। १९०५ ई०। ४२)

३ एस० पी० पण्डित—सायणभाष्य। १८९० ई०। ४०)

४ डब्ल्यू० कैलेंड—उट्रिच (हालैंड) से प्रकाशित। ६०)

५ क्षेमकरणदास त्रिवेदी—हिन्दीभाष्य। ४७॥)

६ आर० राथ और डब्ल्यू० डी० ह्विटने–जर्मन। १८५६ ई०। २५)
७ ग्रिफिथ–अंग्रेजी अनुवाद। दो भाग। १८९५–९८ ई०। १२)
८ एम० ब्लूमफील्ड और आर० गार्बे–पैप्पलाद-संहिता। चार भाग। ५४० फोटो प्लेटोंमें। १९०१ ई०। महाराजा कश्मीरके राज-पुस्तकालयसे प्राप्त। साधारण संस्करण २५०)। विशेष। ३५०)
९ एम० ब्लूमफील्ड–पैप्पलाद-संहिता। नि० २७०० बी० सी०। अंग्रेजी अनुवाद। १९०१ ई०। २२)
१० डी० गास्ट्रा–गोपथ-ब्राह्मण। नि० १५०० बी० सी०। १९१९। २०)
११ राजेन्द्रलाल मित्र और हरचन्द विद्याभूषण–गोपथ-ब्राह्मण। १८७०–७२ ई०। २५)
१२ क्षेमकरणदास त्रिवेदी–गोपथ-ब्राह्मण। हिन्दी अनुवाद। ७।)
१३ जी० एम० वालिंग और आई० बी० नेगलिन–अथर्ववेद-परिशिष्ट। जर्मन। १९१० ई०। ४५)
१४ रामगोपाल शास्त्री–सम्पादित। अथर्ववेदीय बृहत्सर्वानुक्रमणी। ४)
१५ डब्ल्यू० डी० ह्विटने–अथर्ववेद-प्रातिशाख्य। जर्मन। ३०)
१६ विश्वबन्धु शास्त्री–अथर्ववेदीय प्रातिशाख्य। ३)
१७ भगवद्दत्त–अथर्ववेदीय पंचपटलिका। १॥)
१८ एम० ब्लूमफील्ड–कौशिकसूत्र। १८९० ई०। ३८)
१९ डब्ल्यू० कैलेंड–वैतानसूत्र। नि० २००० बी० सी०। जर्मन। १०)
२० ए० ग्रिल–हंड्रेड लेसन्स ऐंड लेक्चर्स ऑव अथर्ववेद। ७)
२१ भगवद्दत्त–माण्डूकी शिक्षा। १)

वैदिक साहित्यके अन्य महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ

१ डा० लक्ष्मणस्वरूप–द निघंटु और निरुक्त। मूल ग्रन्थ कागज और तालपत्रोंपर मलयालम् तथा नागरी लिपिमें था। २१)

२ आर० राथ–निरुक्त। नि० १००० बी० सी०।·१८४६ ई०। १७)
३ चन्द्रमणि विद्यालंकार–निरुक्तपर "वेदार्थ-दीपक" हिन्दीभाष्य। ७)
४ सत्यव्रत सामश्रमी–निरुक्त। चार भाग। १८८०–६१ ई०। १२)
५ सत्यव्रत सामश्रमी–निरुक्तालोचन। ६)
६ कैलेंड और हेनरी–अग्निस्तोम। जर्मन। ४०)
७ के० रेनो–त्रित आप्त्य। १६२७ ई०। ६)
८ ए० बी० कीथ–हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचर। १६२८ ई०। १८।।)
६ चिन्तामणि विनायक वैद्य–हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचर (वेदिक पीरियड)। १६३० ई०। १०)
१० आर० डब्ल्यू० फ्रेजर-लिटररी हिस्ट्री ऑव इंडिया। १८६८ ई.। १०)
११ पी० पी० एस० शास्त्री–वैदिक-साहित्य-चरितम्। संस्कृत। मैकडानलके हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचरका अनुवाद। १६२७ ई०। ३।=)
१२ मैक्समूलर–हिस्ट्री ऑव दि एन्शियेंट संस्कृत लिटरेचर। १८५६। १०)
१३ ए० वेबर–हिस्ट्री ऑफ दि इंडियन लिटरेचर। जर्मन। १८८२। १०।।)
१४ ए० मैकडानल–हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचर। १६०० ई०। ७।।)
१५ एम० विंटर्निट्ज–हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचर। जर्मन। तीन भाग। १६०४ ई०। ३५)
१६ भगवद्दत्त–वैदिक वाङ्मयका इतिहास। तीन भाग। १५)
१७ राथ और बोहट्‌लिंग्क–पीटर्सवर्ग संस्कृत-जर्मन-महाकोष। सात भाग। पृष्ठ संख्या १००००। १८५५–७५ ई०। १०००)
१८ एच० ग्रासमान–ऋग्वेदिक कोष। जर्मन। १८७३–७५ ई०। ५०)
१६ ए० हिलेब्रान्त–वेदिक डिक्शनरी। तीन भाग। ६०)
२० हंसराज–वेदिक कोष। प्रथम भाग। १६२६ ई०। १२)
२१ एम० ब्लूमफील्ड–वेदिक कंकार्डेन्स। वेदोंके ११६ ग्रन्थोंके आधारपर यह "मन्त्र-महासूची" बनायी गयी है। ६०)

२२ मैक्डानल और कीथ–वेदिक इंडेक्स। ५०)
२३ ए० मैक्डानल–वेदिक ग्रामर। १९१० ई०। ६)
२४ ए० मैक्डानल–वेदिक रीडर। १८९७ ई०। ५॥)
२५ रैगोजिन–वेदिक इंडिया। १८९५ ई०। ५॥=)
२६ लो० तिलक–आर्कटिक होम इन द वेदाज। ८॥)
२७ लो० तिलक–ओरायन। अंग्रेजी और हिन्दी। १८९३। ३), १)
२८ बी० जे० रेले–द वेदिक गाड्स। १९३१ ई०। ६॥)
२९ ए० वेन्स–दि इन्साइक्लोपीडिया ऑव इंडो-आर्यन रिसर्च। १३)
३० ए० बनर्जी शास्त्री–असुर इंडिया। १९२६ ई०। ५)
३१ लुइस रेनो–बाइब्लोग्राफिया वेदिका। नौ भाग। फ्रेंच। १९३१ ई.।१२)
३२ एच० टी० कोलब्रूक–एसे आन द वेदाज। आठ भाग। १८३७। ५०)
३३ ए० हिलेब्रान्त–वेदिक माइथालाजी। जर्मन।
तीन भाग। १९०२ ई०। १८)
३४ एच० ओल्डेनवर्ग–वर्ल्ड व्यू आव ब्राह्मन्स। जर्मन। २०)
३५ एम० ब्लूमफील्ड–रिलिजन ऑव द वेद। जर्मन। १८९४। १५)
३६ जे० म्योर–ओरियंटल संस्कृत टेक्स्ट। १८५८ ई०। २१)
३७ एम० ब्लूमफील्ड–वेदिक वेरियांट्स। १९३० ई०। ८)
३८ रिलिजन ऐंड फिलासफी ऑव द ब्राह्मन्स ऐंड दि उपनिषद्स।
दो भाग। २५)
३९ ई० हार्डी–वेदिक ब्राह्मण पीरियड। जर्मन। १८९३ ई०। १०)
४० स्टेन कोनो–दि आर्यन गाड्स ऑव द मितानी पीपुल। १९२१। ८)
४१ डी० क्यूलिकब्सकिज्–राजबोर वेदिज्सकागो मीफी ओस्कोले,
प्रिमेसेम ज्वटोक सोनी। रशियन भाषा। १५)
४२ रामगोविन्द त्रिवेदी–'गंगा'–'वेदांक'। सम्पादित। १९३२ ई०। २॥)
४३ सत्यव्रत सामश्रमी–त्रयी-चतुष्टय। ४०)
४४ सम्पूर्णानन्द–आर्योंका आदि देश। ५)

४५ भागवतशरण उपाध्याय—वूमेन इन ऋग्वेद । १९४१ । ७)

४६ बलदेव उपाध्याय—वेदभाष्यभूमिका-संग्रह । संस्कृत और अंग्रेजी प्रस्तावना । १९३४ । २॥)

४७ बलदेव उपाध्याय—सायण और माधव । १९४६ । ६)

इन ग्रन्थोंके अतिरिक्त कुछ और भी वैदिक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं और हो भी रहे हैं; परन्तु यहां तालिकाको लम्बी करनेकी आवश्यकता नहीं है। इस पुस्तकमें जिन ग्रन्थोंका परिचय दिया गया है, वे प्रायः तालिकामें आ गये हैं। तालिकाके इन ग्रन्थोंसे संसारकी भाषाओंमें छपे वैदिक साहित्य की विशालताका पता लग जायगा और पढ़ने पर वेदोंके प्रति समस्त विश्वके प्रसिद्ध वेदाभ्यासियोंके विचार भी विदित हो जायँग । वेद-भक्त पाठक इन ग्रन्थोंका संग्रह कर डालें, तो जनताका महान् लाभ हो। इनमेंसे कुछ ग्रन्थ अलभ्य हैं। जो पुस्तकें मिलती हैं, उनका पुस्तक-विक्रेता मन-चाहा मूल्य भी ले लेते हैं।

इन पतोंपर इन ग्रन्थोंका मिलना सम्भव है—

१ दि ओरियंटल बुक एजेंसी, १५, शुक्रवार, पूना।

२ गवर्नमेंट सेंट्रल बुक डिपो, कलकत्ता।

३ मोतीलाल बनारसीदास, चौक, बनारस।

४ भाण्डारकर ओरियंटल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना।

5 B. H. Blackwell Ltd.,
50/51, Broad Street, Oxford, England.

6 Otto Harrassowitz, Leipzig, Germany.

7 W. Heffer and Sons Ltd.,
Cambridge, England.

परिशिष्ट १

ग्रन्थ आदि

य

र

ष

स

परिशिष्ट २

ग्रन्थकार आदि

परिशिष्ट ३

विशिष्ट पुरुष आदि

परिशिष्ट ४

जाति और धर्म

जाति

धर्म

परिशिष्ट ५

देश, प्रदेश, नगर आदि

परिशिष्ट ६

समुद्र, झील, नदी, पर्वत आदि

—:०:—

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२३	७	Cazetteer	Gazetteer
३२	१२	प्रतिध्वनि	प्रतिध्वनित
४०	११	उव्वट	उवट
४०	१७	हरिहर	नरहरि
४३	२	छिपी	छपी
५२	१२	शाकल	शाकल्य
६१	१३	पाशों	पासों
७०	२३	लांलोआ	लांगलोआ
७२	२०	असज्यात्या	असजात्या
७३	५	कर्म	कर्मा
७३	५	वा	वां
८२	२६	पाशेके	पासेके
८७	२०	मैत्रायिणी	मैत्रायणी
८७	२१	कण्व	काण्व
११४	४	देवीरभीष्टये	देवीरभिष्टये
११६	१०	वरुणं	वरुणो
१३०	१५	परीक्षित्पुत्र	परीक्षित-पुत्र
१४८	४	द्रोणकार	द्रोणाकार
१५१	१	योग	याग
१६४	१५	शाहजहांके	शाहजहांका
१८६	१०	एक मात्र	एक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१९६	१५	बौधा–	बौधायन–
२०१	१५	महीदास	महिदास
२२२	१९	सिंही	सिंहो
२७५	१५	सूर्यपर	सूर्यपरक
३०१	४	नैषि	नैषिध
३१५	२१	२६०	३६०
३४५	१३	इनका	'इन्का'
३६२	१३	सुमृलीफः	सुमृलीकः
३६४	२	नानी	नामी
४०२	१५	गौरवर	गौरधर

४१९ पृष्ठमें ८ पंक्तियोंके बाद 'पुरुषसूक्त' शीर्षक होना चाहिये।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४३५	२४	भांग	भाग
४३८	११	स्यामः	स्याम
४४०	७	आश्विना	अश्विना

"वैदिक साहित्य" पर सम्मतियाँ

"वैदिक साहित्य"की छपी फाइल देखकर भारत-प्रसिद्ध विद्वानों और वेद-विज्ञाताओंने जो सम्मतियां लिख भेजनेकी कृपा की है, वे स्थानाभावके कारण संक्षिप्त रूपमें ही प्रकाशित की जा रही हैं।

भारतके अद्वितीय विद्वान् और जीवित विश्वकोष महामहोपाध्याय डा० गोपीनाथ कविराज एम० ए०, डी० लिट्०—

"पण्डित रामगोविन्दजी त्रिवेदीकी "वैदिक साहित्य" नामक पुस्तक को मैंने "स्थालीपुलाक-न्याय"से आद्योपान्त देखा। पढ़कर चित्त प्रसन्न हुआ। हिन्दी-भाषामें वैदिक विषयों एवम् तत्सम्बन्धी साहित्यपर लिखित इस प्रकारके आलोचनात्मक ग्रन्थका अभाव था। इस पुस्तकसे यह अभाव बहुत दूर होगा, ऐसी आशा है।

यह पुस्तक अनेक प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानोंके गवेषणात्मक ग्रन्थों के आधारपर लिखी गयी है। × × × हिन्दी-भाषी पाठकोंके लिये एवम् वैदिक साहित्यमें अभिरुचि रखनेवाले विद्यार्थियोंके लिये इसकी उपयोगिता निस्सन्देह महत्त्वकी है।

पुस्तककी भाषा प्राञ्जल और शैली सुन्दर है। आशा है, वैदिक वाङ्मयके प्रेमी पाठक इस ग्रन्थसे लाभ और आनन्द प्राप्त करेंगे।"

बनारस
२८-७-५०

गोपीनाथ कविराज

डा० मंगलदेव शास्त्री एम० ए०, डी० फिल० (आक्सन), भूतपूर्व प्रिंसिपल, गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, बनारस—

"श्री रामगोविन्द त्रिवेदीजी द्वारा लिखित हिन्दीकी नवीन पुस्तक "वैदिक साहित्य" के कई स्थलोंको मैंने ध्यानपूर्वक पढ़ा। पुस्तकमें वैदिक संहिताओंसे लेकर वैदिक अनुक्रमणियों तकके वेद-सम्बन्धी वाङ्मय

के विभिन्न भागोंकी साहित्यिक रूप-रेखाके साथ-साथ उनके स्वरूप और महत्त्वको भी सामान्य रूपसे दिखानेका प्रयत्न किया गया है। उक्त वाङ मयके विस्तारको और साथ ही पुस्तकके अल्प परिमाणको देखते हुए यही कहना चाहिये कि ग्रन्थकारको अपने उद्देश्यमें बहुत कुछ सफलता प्राप्त हुई है। × × × × हिन्दी भाषामें अपने विषयको, एक ही ग्रन्थके रूपमें, प्रतिपादित करनेवाली यह प्रथम पुस्तक है। पुस्तककी उपादेयता स्पष्ट है। हम इसका हृदयसे स्वागत करते हुए ग्रन्थकार महोदयका अभिनन्दन करते हैं।

ग्रन्थकार महोदय वर्षोंसे वैदिक साहित्यके अनुशीलनमें लगे रहे हैं। इस विषयमें आपने जो बड़ा कार्य किया है, वह हिन्दी संसारमें छिपा नहीं है। आपके व्यापक अध्ययनकी छाप प्रस्तुत पुस्तकके प्रायः प्रत्येक पन्नेमें स्पष्ट है। इससे पुस्तककी उपादेयता और महत्ता और भी बढ़ गयी है।"

बनारस
१४-७-५०

मंगलदेव शास्त्री

भारत-प्रसिद्ध इतिहास-विज्ञाता प्रो० जयचन्द्र विद्यालंकार--

"वेद हमारा सबसे पुराना वाङ्मय है। हम हिन्दू उसे अपने धर्म और संस्कृतिका आधार मानते हैं। किन्तु आजका हिन्दूपन वेदसे बहुत दूर है। वेदमें जो जीवट और ताजगी है और आजके हिन्दुओंका विचार और बर्त्ताव जिस प्रकार पथराया हुआ है, वे दोनों एक दूसरेके ठीक उलटे हैं। पर इसीलिये तो आजके भारतमें फिरसे जान फूंकनेको उसके कानमें वेदकी पुकार पड़नी चाहिये।

पं० रामगोविन्द त्रिवेदीने इस दिशामें यह यत्न किया है। × × × उन्होने वैदिक वाङ्मयको खूब मथा है। उस वाङ्मयके अपने साक्षात् परिशीलनके आधारपर इस ग्रन्थमें उन्होंने जो कुछ लिखा है, वह कीमती है। पाठकोंको उससे भरपूर ज्ञान मिलेगा।

× × × × × इस ग्रन्थका मुख्य अंश पाठकोंको बहुत ज्ञान देगा और भारतीय जीवनके उषा-कालीन विचारों और भावनाओंके निकट पहुँचानेका रास्ता दिखायगा, इसमें सन्देह नहीं।"

दुर्गाकुण्ड, बनारस
१ श्रावण (सौर), २००७ वि० } जयचन्द्र

'मंगलाप्रसाद'-पुरस्कार, 'डालमिया'-पुरस्कार तथा 'उत्तरप्रदेश राज्य'-पुरस्कारके विजेता और काशी-हिन्दू विश्वविद्यालयके संस्कृत तथा पालीके अध्यापक साहित्याचार्य प्रो० बलदेव उपाध्याय एम० ए०—

"वेदके स्वरूप, महत्त्व तथा सिद्धान्तसे परिचय प्राप्त करना प्रत्येक शिक्षित व्यक्तिका, प्रधानतः प्रत्येक भारतीयका नितान्त आवश्यक कर्तव्य है। वेद हमारी संस्कृतिके मूल स्रोत हैं, हमारी सभ्यताको उच्चकोटि तक पहुँचानेवाले ग्रन्थरत्न हैं, जिनकी विमल प्रभा देश तथा कालके दुर्भेद्य आवरणको छिन्न-भिन्न कर आज भी विश्वके अध्यात्म-पारखी जौहरियोंकी आंखोंको चकाचौंध बनाती है। जो लोग वेदके भीतर संसारकी समस्त भौतिक तथा ऐहिक विद्याओं, कलाओं और आविष्कारों को ढूंढ़ निकालनेका अक्लान्त परिश्रम करते हैं, वे नहीं जानते कि वेद तथा ज्ञानमें अन्तर हैं। विद् धातु तथा ज्ञा धातुमें सामान्यतः ऐक्य होने पर भी मूलतः पार्थक्य है। भौतिक विद्याओंकी जानकारीका नाम है ज्ञान तथा अध्यात्म-शास्त्रके तथ्योंकी अवगतिका अभिधान है वेद। एक का लक्ष्य ब्राह्य विषयोंके विश्लेषणकी ओर रहता है, तो दूसरेका लक्ष्य आन्तर विषयोंके संश्लेषणकी ओर रहता है। यह पार्थक्य संस्कृतसे सम्बद्ध अनेक यूरोपीय भाषाओंके शब्दोंके अनुशीलनसे भी स्पष्टतः जाना जा सकता है। जर्मन भाषामें दो सम्बद्ध धातु हैं—Kennen तथा Weisen। अंग्रेजीमें दो सम्बद्ध शब्द हैं—Knowledge तथा Wisdom। इनमें Kennen तथा Knowledge का

साक्षात् सम्बन्ध है संस्कृतके ज्ञा धातुसे और Weisen और Wisdom का सम्बन्ध है विद् धातुसे। फलतः इन विदेशी शब्दोंके अर्थोंमें वही भेद है, जो संस्कृतके ज्ञान तथा वेद शब्दोंके अर्थमें है। इसलिये हमारी दृष्टिमें वेदका मौलिक तात्पर्य अध्यात्म-शास्त्रकी समस्याओंका हल करना है। सायणके अनुसार वेदका वेदत्व प्रत्यक्ष अथवा अनुमानके द्वारा अगम्य उपायके बोधनमें है—

"प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥"

विश्वके आद्य ग्रन्थ, भारतीय धर्मके कमनीय कल्पद्रुम, आर्य-संस्कृति के प्राणदाता वेदोंके रूप तथा रहस्य, स्वरूप तथा सिद्धान्तका ज्ञान भारतीय संस्कृतिके उपासकके लिये नितान्त आवश्यक है। परन्तु दुःखकी बात है कि वेदोंके गाढ़ अनुशीलनकी बात तो दूर रहे, उनके साथ हमारा सामान्य परिचय भी नहीं है। वेदोंके परिचायक ग्रन्थोंकी नितान्त आवश्यकता बनी है। इस सम्मतिके दाताने 'आचार्य सायण और माधव', 'वैदिक वाङ्मय' तथा 'वैदिक संस्कृति' के द्वारा वेदके विशाल साहित्य तथा महत्त्व को प्रदर्शित करनेका थोड़ा उद्योग किया है।

सौभाग्यवश पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदीजीने अपने अनेक वर्षोंके अध्ययनका फल इस 'वैदिक साहित्य' में जनताके कल्याणके लिये प्रस्तुत किया है। पुस्तक बड़ी ही सुन्दर, रोचक और उपयोगी है। ग्रन्थकार का लक्ष्य वेदके रूप, विषय तथा महत्त्वका, सर्वसाधारणके उपयोगके लिये सुबोध भाषामें, वर्णन करना है और इस लक्ष्यकी प्राप्तिमें वे सर्वथा कृत-कार्य हुए हैं। विशाल तथा गम्भीर वेदोंका यह अनुशीलन व्यापकता की दृष्टिसे विशेषतः श्लाघनीय तथा संग्राह्य है। ऐसे शोभन ग्रन्थके प्रणयनके लिये हिन्दी-संसार त्रिवेदीजीका चिर कृतज्ञ रहेगा।"

रथयात्रा, सं० २००७ वि०
काशी

बलदेव उपाध्याय

ज्ञानपीठ के आगामी प्रकाशन

[जो सन् ५० में प्रकाशित हो रहे हैं]

१. **हमारे आराध्य**–ये रेखाचित्र श्री बनारसीदास चतुर्वेदीकी सर्वोत्तम कृति है। इसमें उन्होंने अपनी आत्मा उंडेल दी है।

२. **शेर-ओ-सुखन [प्रथम भाग]** उर्दू शायरीका प्रारंभसे ई० सं० १९०० तक का प्रामाणिक इतिहास। तुलनात्मक विवेचन, निष्पक्ष आलोचना और इस अवधिमें हुए प्रायः सभी मशहूर शायरोंके श्रेष्ठतम कलामका संकलन तथा उनका परिचय।

३. **सिद्धशिला [काव्य]** सिद्धार्थके ख्यातिप्राप्त कवि श्री अनूप शर्मा की हिन्दी संसारको अमर देन। भगवान् महावीरका हृदय-स्पर्शी जीवन।

४. **रेखाचित्र और संस्मरण**-हिन्दीके तपस्वी सेवक श्री बनारसीदास चतुर्वेदीकी जीवनव्यापी साधना। उनकी अन्तरात्माकी प्रतिध्वनि।

५. **बापू**–हिन्दीके उदीयमान तरुण कवि श्री 'तन्मय' बुखारिया की महात्मा गांधीके प्रति मूक श्रद्धाञ्जलि।

६. **भारतीय ज्योतिष**–ज्योतिषके अधिकारी विद्वान् श्री नेमिचंद्र जी जैन ज्योतिषाचार्यकी प्रामाणिक कृति।

७. **ज्ञानगंगा**–संसारके महान् पुरुषोंकी श्रेष्ठतम सूक्तियां।

नोटः—जो १०) भेजकर स्थायी सदस्य बन जायंगे उन्हें ये ग्रंथ पौने मूल्य में प्राप्त होंगे।